'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रथांक ७

ओं तत्सत्

वैदिक साहित्य

'आमुख'-लेखक,

माननीय डा० सम्पूर्णानन्द

(शिक्षामंत्री, उत्तर-प्रदेश-राज्य)

लेखक,

प० रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री

(ऋग्वेदके हिन्दीभाषान्तरकार)
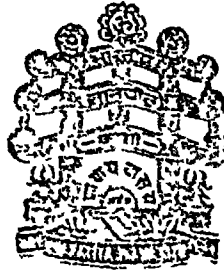
भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ग्रन्थमालासम्पादक और नियामक,
लक्ष्मीचन्द्र जैन एम ए., डालमियानगर

प्रकाशक,
अयोध्याप्रसाद गोयलीय,
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम सस्करण ३०००
नवम्बर, १९५०
मूल्य छ रुपये

मुद्रक,
देवताप्रसाद गहमरी
ससार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

समर्पण

जो हिंदुत्वकी प्रचण्ड चेतनाके प्रख्यात प्रतीक और अनेकानेक अमूल्य
ग्रन्थ-रत्नोंके रचयिता हैं, जो वैदिक धर्म और हिन्दूसंस्कृतिके
अनन्य अनुरागी हैं, जो इस जड़वाद-प्रधान-युगमें
शाश्वत "सनातनधर्म"के प्रबल प्रचारक हैं, जो
धर्म-गतप्राण, परदुःखकातर, परोपकारव्रत-
निरत और आदर्श दान-वीर
हैं, जिनकी पवित्र प्रेरणासे
यह "वैदिक साहित्य"
लिखा गया है,

उन

उद्भट लेखक, यशशाली सम्पादक, प्रसन्न-वदन,
सदाचार-मूर्ति, भक्त-प्रवर और हिन्दीके श्रेष्ठ
मासिक "कल्याण"के सम्पादक

श्री० हनुमानप्रसादजी पोद्दार

के

कमनीय कर-कमलोंमें

सप्रेम समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

१ अध्याय

ऋग्वेद-संहिता

२ अध्याय

ऋग्वेद और नारीजाति

३ अध्याय

यजुर्वेदकी संहिताएँ

४ अध्याय

सामवेदकी संहिताएँ

५ अध्याय

अथर्ववेदकी संहिताएँ

६ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थ

७ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अपूर्व उपदेश

२० अध्याय

वेदव्याख्याता और परम्परा-प्राप्त वेदार्थ

२१ अध्याय

वेद और भूगोल

२२ अध्याय

वेद और खगोल

२३ अध्याय

वेद और ज्यौतिष

२४ अध्याय

वैदिक राष्ट्रकी रूप-रेखा

२५ अध्याय

वैदिक संस्कृतिकी व्यापकता

२६ अध्याय

वेद और अवस्ता

२७ अध्याय

वेद और गोजाति

२८ अध्याय

वेद और विमान

२९ अध्याय

वेद और अवतार

३० अध्याय

वेद और अलंकार

३१ अध्याय

वेद और परलोक

३२ अध्याय

वेद और गायत्री

३३ अध्याय

तीन वैदिक देवता

३४ अध्याय

वैदिक संहिताओंके पदपाठकार

३५ अध्याय

वैदिक भाष्य-टीका-कार

३६ अध्याय

निघण्टु और निरुक्तके भाष्य-टीका-कार

३७ अध्याय

कुछ आदर्श सूक्त

३८ अध्याय

उपसंहार

आमुख

लेखक, डा० सम्पूर्णानन्द

(शिक्षामन्त्री, वित्तमन्त्री और श्रममन्त्री, उत्तर-प्रदेश-राज्य)

"वैदिक साहित्य"के 'विषय-प्रवेश'के आरम्भमे लिखा है—"वेदो पर हिन्दूजातिकी अनन्त कालसे अविचल श्रद्धा है।" इसमे सन्देह नही कि जहातक इतिहास या अनुश्रुति-परम्पराकी गति है, हमको यही पता चलता है कि एतद्देशीय समाजके बहुत बडे अगकी वेदोपर अविचल श्रद्धा रही है। श्रद्धालुओंका क्षेत्र समय-समयपर घटता-बढता रहा है। आज तो वह सिमटकर बहुत छोटा हो गया है। यह बात सुननेमे विचित्र प्रतीत होगी। भारतकी जनसख्यामे हिन्दू ही सबसे अधिक है और हिन्दूके लिये वेद स्वत.प्रमाण और अतिम प्रमाण है। यदि वेदकी कोई स्पप्ट आज्ञा है, तो वह हिन्दूके लिये अकाट्य है। सिद्धान्तत यह बात ठीक है, परन्तु व्यवहार इससे दूर जा पडा है। करोड़ो हिन्दुओने वेदका नाम तक नही सुना है। जिन लोगोने सुना भी है, वह वेदसे परिचित नही है, तुलसीदासजीकी रामायण जैसी पोथिया उनके स्वाध्यायका विषय है और वह वेद-नामधारी अज्ञात पुस्तककी अपेक्षा ऐसी परिचित पुस्तकोको ही प्रामाणिकताके आसनपर बैठा सकते है। पडित-समाज तक वेदोका आदर नही करता। वेदका नाम लेकर शास्त्रार्थ करना दूसरी बात है; परन्तु लाखो पंडितम्मन्य विद्वानोने सम्पूर्ण वेदोको नही देखा है; देखनेका यत्न भी नही करते ! वेदोकी अपेक्षा उनको श्रीमद्भगवद्गीता या श्रीमद्-भागवतपर अधिक श्रद्धा है।

यह दुर्भाग्यकी बात है। वेदोमे हमारे समाजकी अमूल्य सास्कृतिक निधि भरी पडी है। जिन अर्वाचीन पोथियोंको हमने मूर्धन्य बना रखा है, वह तो वेदोके थोडेसे गिने-चुने मन्त्रोपर न्योछावर की जा सकती है। भगवद्गीता बडी ही उत्तम पुस्तक है; पर वह इन दो मन्त्रोकी, के चालीसवे अध्यायमें आते है, व्याख्याके सिवाय और क्या

"ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृध. कस्यस्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा. ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥"

वेदाध्ययन हिन्दूमात्रके लिये तो उपयोगी है ही, हिन्दूधर्ममें दर्शन, उपासना, सदाचार जो कुछ भी है, वह सब वेदपर अवलम्बित है। परन्तु दूसरे लोगोके लिये भी इसका उपयोग कम नही है। मनुष्यकी इस प्राचीनतम पुस्तकमें सहस्रो वर्षोका इतिहास भरा पडा है और ज्ञान की वह ज्योति जगमगा रही है, जिसकी मानवको आज भी आवश्यकता है।

भारतीय, यो कहिये कि हिन्दू, पडित-समाजने वेदके अध्ययनका प्राय परित्याग कर रखा है। उपनिषदोको छोडकर ब्राह्मण-ग्रन्थ प्राय पढे नही जाते। 'रुद्राध्याय' या ऐसे ही कुछ और अशोको छोडकर सहिता-भाग प्राय अछूता रह जाता है। यज्ञयाग होते नही। इसलिये वेदाध्ययन अर्थकर नही रह गया। शास्त्रार्थ-विषयत्व कम होनेसे सरस भी नही है। पचमहायज्ञकी प्रथा उठ गयी, अत स्वाध्यायकी भी परम्परा नही है। फलत वेद जाननेवालोकी सख्यामें निरन्तर ह्रास होता जाता है। ऐसे लोग, जिनको सहिता कठस्थ हो, कम होते जा रहे है और जिन लोगोको कर्म्मकाण्डके सम्बन्धसे कुछ अश कठस्थ है भी और जो मत्रोको स्वरादिके साथ ठीक-ठीक पढना भी जानते है, उनमें भी यथार्थ अर्थ जानने वाले बहुत कम है। वेदके शब्दोका, शब्दोके क्रमका और शब्दोके शुद्ध उच्चारणका बहुत महत्त्व है। स्वरमे थोडा-सा व्यतिक्रम हो जानेसे अनर्थ हो सकता है —

"मत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु' स्वरतोऽपराधात् ॥"

(जो मन्त्र स्वर या वर्णसे हीन होता है अथवा जिसका प्रयोग ठीक-ठीक न किया जाय, वह उद्देश्यकी सिद्धि नही करता। वह वाग्वज्र बनकर

यजमानको ही मार डालता है, जैसे कि स्वरदोषके कारण वृत्रासुर मारा गया।) इन्द्रको मारनेके लिये विश्वरूपने यज्ञ किया। मन्त्रमे था "इन्द्र-शत्रुर्वर्धस्व"। उनका तात्पर्य यह था कि **इन्द्रके शत्रु, वृत्रासुरको, वृद्धि हो**, परन्तु स्वरका अशुद्ध उच्चारण होनेसे यह अर्थ निकला कि **इन्द्रकी, जो शत्रु है, वृद्धि हो**। इससे इन्द्रकी विजय हुई और वृत्रासुरका पराभव हुआ।

प्रत्येक मन्त्रका विनियोग नियत है अर्थात् यह नियत है कि वह मत्र किस अवसरपर पढा जाय। विनियोग कब नियत हुआ, यह कहना कठिन है; यह तो नही ही कहा जा सकता कि किसने विनियोग नियत किया। यदि किसी मन्त्रमें "**अग्निमीले**" (मै अग्निकी स्तुति करता हूँ) जैसे शब्द आते हो और उसका विनियोग अग्निको स्थापित करने अथवा आहुति डालनेमें होता हो, तो यह बात समझमे आती है; परन्तु कही-कही अर्थ और विनियोगमे कोई सम्बन्ध नही देख पड़ता। "**शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शंयोरभिस्रवन्तु नः**" का अर्थ है, 'दिव्य जल हमारे कल्याणके लिये बरसे, हमारे लिये हितकर हो और अभद्र तथा अनिष्ट वातोको हमसे दूर करे।' इस मन्त्रका विनियोग शनिकी पूजामे क्यो होता है, यह कहना कठिन है!

स्वर, वर्ण और उच्चारणके साथ-साथ मन्त्रके छन्द और उसकी देवताको भी जानना चाहिये। मन्त्र-देवताओके सम्बन्धमे बहुत भ्रम है। सामान्य बोलचालमे तो देवताका प्रयोग देवके अर्थमे किया जाता है। सस्कृतमे देवता स्त्रीलिग शब्द है, परन्तु इस मन्त्रकी 'देवता इन्द्र है' न कहकर ऐसा कहनेका चलन है कि इस मन्त्रके देव इन्द्र है, इत्यादि। एक ओर पाश्चात्त्य विद्वान् यह कहते है कि प्राचीन आर्य हवा, पानी, आग, बिजली आदिकी पूजा करते थे। दूसरी ओर वह लोग है, जो ऐसा कहते है कि इन्द्रादि सब परमात्माके ही नाम है और मन्त्रोमे अनेक नामो से उसकी ही उपासना होती है। यह यथार्थ है कि परमात्मा एक है और

सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त है तथा सभी नामो और रूपोसे उसीकी उपासना होती है। परन्तु देव और देवताके अर्थमें अन्तर है। जो लोग अपने तप और कर्म्मके द्वारा ऊँचे लोकोमें पहुँचते है, उनको देव कहते है। देवोके भी दो भेद है। जो लोग उन लोकोके भोगमात्रके अधिकारी होते है, वह 'कर्म्मदेव' कहलाते है। जिनको भोग और शक्ति, दोनो प्राप्त होते है, उन्हें 'आजान देव' कहते है। इन्द्र, यम, अग्नि आदि इसी दूसरे वर्गमें आते है।

परमात्मा और उसकी ज्ञानेच्छा, क्रिया, सामर्थ्य एक दूसरेसे अभिन्न है। इन दोनोको ही शिव और शक्ति, प्रकाश और विमर्श कहते है। शक्तिहीन शिव शवके समान निश्चेष्ट और जड होगा और शिवविरहित शक्ति निराश्रय टिक ही नही सकती। यह आदिशक्ति ही परा देवता है। ज्यो-ज्यो जगत्का विकास होता है, त्यो-त्यो यह मूल देवता भी नाना रूपोको धारण करती है। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, जितनी भी शक्तिया है, सभी इस देवताके भेद मात्र है। इसीलिये कहा गया है कि देवता असख्य है। परन्तु इनमेसे कुछ प्रधान शक्तियोको यज्ञ-सम्पादनकी दृष्टिसे चुन लिया गया है। ऐसा माना जाता है कि मन्त्रोका ठीक व्यवहार होनेसे जगत्मे ऐसे कम्प उत्पन्न होते है, जिनसे प्रसुप्त शक्तियोमेंसे कोई एक शक्ति विशेष उद्भूत, जागरित, अभिव्यक्त हो उठती है। उस शक्तिको उस मन्त्रकी देवता कहते है। जहा यह कहा गया हो कि अमुक मन्त्रकी देवता इन्द्र है, वहा यह समझना चाहिये कि उस मन्त्रके यथार्थ प्रयोगसे ऐन्द्री शक्ति जागरित होती है और मन्त्र अपना फल देता है।

अस्तु। मन्त्रसे लाभ उठानेके लिये यथोचित उच्चारणके साथ-साथ छन्द और देवता तथा ऋषिका ज्ञान होना आवश्यक है। ऋषिके सबध में आगे विचार होगा। परन्तु इन सब बातोके होते हुए भी यदि मन्त्रके अर्थका ठीक-ठीक बोध न हो, तो मन्त्र निरर्थक होगा अर्थात् फल न देगा। निरुक्तकारने इस सम्बन्धमें इन वाक्योको उद्धृत किया है:—

"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेद न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥"

"यद्गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥"

(जो मनुष्य वेदको पढकर अर्थको नही जानता, वह बोझ ढोनेवाला स्थाणु है । जो अर्थज्ञ है, वह भद्रका भोगी होता है और ज्ञानसे पापको धोकर स्वर्गको प्राप्त करता है । जो विना अर्थ समझे रटा हुआ पढा जाता है, वह अग्निहीन स्थानमे पडी हुई सूखी लकडीके समान कभी प्रज्वलित नही होता ।)

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मन्त्रार्थ समझनेके लिये केवल उस मन्त्रको देखना पर्याप्त नही है, वरन्

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥"

(इतिहास और पुराणके द्वारा वेदार्थका विस्तार करना चाहिये । वेद अल्पश्रुत व्यक्तिसे डरता है कि यह मुझे मारेगा ।)

इतना ही नही, तर्कसे भी काम लेना आवश्यक है । ऐसा कहा गया है—"ऋषिषूत्क्रामत्सु मनुष्या देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्यः तर्कमृषिं प्रायच्छन् ।" (जब ऋषिगण पृथिवीसे उठ गये, तव मनुष्यगण देवोसे बोले कि अब हमारा ऋषि कौन होगा । तब उन्होने उनको तर्कको ऋषि-रूपसे दिया ।) अतः ऋषिके समान तर्कसे भी सहायता लेनी होगी ।

इन बातोका मैने किंचित् विस्तारसे इसलिये निरूपण किया है कि हम वेदाध्ययन-सम्बन्धी साम्प्रत अवस्थाको समझ सकें । अर्थबोध, यथोचित उच्चारण और सद्विनियोगकी कसौटियोको अपने सामने रख कर विचार किया जाय, तो वेदको जाननेवालोकी सख्या बहुत थोडी प्रतीत होगी । और फिर जो लोग साधारणत अर्थज्ञ कहे जा सकेंगे, वह

और असीम है। कभी कभी किसी किसी कलाकार, कवि, विचारकको उसकी एक झलक मिल जाती है। वह उतनेमे ही नाच उठता है ! किसी किसी सत्यकाम योगीको समाधिमे इस ज्ञानराशिके अशका साक्षात्कार होता है। वह अपनी अनुभूतिको जिन शब्दोमे व्यक्त करता है, वह मत्र है। स्फूर्ति दैवी है, परन्तु शब्द ऋषिके है। कवि और ऋषि, दोनोमें समानता है। दोनोको स्फूर्ति भीतरसे, जब वह अन्तर्मुख होते है, मिलती है और उससे प्रेरित होकर दोनो ही रचना करते हैं। भेद इतना ही है कि ऋषि योगी होता है, अत वह जिस स्तरका भेदी होता है, वह कविकी पीठिकासे बहुत ऊँचा होता है। मुझको स्वय यही मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

"रचना किसने की" के समान ही यह प्रश्न महत्त्वका है कि "रचना कब हुई"। साधारण आस्तिक हिन्दूकी तो यह धारणा है कि वेद अनादि है। विषय-दृष्टिसे अनादि होते हुए भी शब्द-दृष्टिसे वेद अनादि नही है। इसका तो पुष्ट प्रमाण है कि सब मत्र एक साथ अवतरित नही हुए। द्वापरका अन्त होने पर याज्ञवल्क्यको सूर्यने शुक्ल यजुर्वेदकी शिक्षा दी। महिदास ऐतरेयको पृथिवीने वह मत्र बतलाये, जो उनके पहले किसीको भी विदित नही थे। यह तो सर्वसम्मत कथाएँ है, परन्तु मत्रोमे भाषा-भेद जैसे आभ्यन्तर प्रमाणोसे भी यही अनुमान होता है कि इनकी रचना एक साथ नही हुई। एक ही वश, जैसे भृगु या वशिष्ठ या कण्व गोत्र, के कई व्यक्ति मन्त्रद्रष्टा हुए हैं। यह सब समकालीन नही हो सकते।

पाश्चात्य विद्वानोके अनुसार वेदोका रचना-काल आजसे ३५००—४००० वर्षोके भीतर था। वह वेदोके लिये इससे अधिक प्राचीनताकी कल्पना नही कर सकते थे। इसका कारण यह है कि बाइबिलके अनुसार मानव-जातिका इतिहास कुल ८००० वर्षोका है। इसीके भीतर सब कुछ घटाना था। उन लोगोने यह भी स्थिर किया कि आर्यजातिका आदिम निवास-स्थान मध्य एशियामें था। इन परिणामोपर पहुँचनेमे उन लोगो

(हे लोगो, इन्द्र वह है, जिसने व्यथित, हिलती-डोलती, पृथिवीको दृढ किया और कुपित, चचल, पर्वतोको शान्त किया।) ऋग्वेदके दशम मडलके पचासीवें सूक्तका तेरहवा मत्र इस प्रकार है —

"सूर्य्याया वहतु. प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥"

(सूर्यने अपनी लडकी सूर्य्याके विवाहमें जो दहेज दिया था, वह आगे चला। उसको ढोनेवाली गाडीके वैलोको मघा नक्षत्रमें मारना पडता है। फाल्गुनियो–पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी—मे रथ वेगसे चलता है।)

सामान्यत इस मत्रका अर्थ कुछ समझमे नही आता। सायणने इसका अर्थ निकालनेका यत्न नही किया। परन्तु ज्यौतिपसे इसपर प्रकाश पडता है। सूर्यके पास प्रकाशके सिवाय और क्या था, जिसे वह अपनी लडकीको देते। प्रकाश चला। मघापर पहुँचते-पहुँचते उसकी गति वहुत धीमी हो गयी, गाडीके वैल मानो अडकर वैठ गये, उनको डडो से पीट-पाटकर फिर उठाया। फाल्गुनीमें पहुँचकर गाडीकी गति वढ गयी, प्रकाश वेगसे आगे वढा। तात्पर्य यह है कि दक्षिणायन चलते-चलते सूर्यकी गति कम होती जाती थी, मघामे पहुँचकर एकमात्र रुक जाती थी। फिर उत्तरायण-गतिका आरम्भ होता था और फाल्गुनीमे वेगमें प्रत्यक्ष वृद्धिका अनुभव होता था। मघा सिह राशिमे है। आजकल उत्तरायणका आरम्भ मकर राशिमे होता है, जो चार महीने पीछे आती है। पर आजसे १८०,०० वर्ष पूर्व मत्रमे सकेत किया हुआ दृग्विपय होता था।

इसके कहनेका तात्पर्य यह नही है कि सव मन्त्र १८,००० से २५-३० सहस्र वर्ष पुराने है। मत्रोकी पुष्ट काव्य-शैली यह वतलाती है कि उसके पीछे वहुत लम्बा साहित्यिक इतिहास होगा। यह इतिहास कितना पीछे जाता है, यह नही कहा जा सकता, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि आर्य्य-जातिने अद्भुत प्राकृतिक उथल-पुथल देखे थे। अपने इस अनुभवको

सम्भवतः उन्होने छन्दोबद्ध भी किया होगा; गीत भी गाये होगे। काल पाकर पुरानी रचनाएँ नष्ट हो गयी होगी। पर उनमे जो स्मृतियां सुरक्षित थी, वह नयी रचनाओमें भी अनुस्यूत हो गयी होगी। कई जगह वेदो मे "नः पूर्वे पितरः"..... हमारे पूर्व पितरोका उल्लेख आया है। पितर तो सभी अपनेसे पुराने होते है, 'पूर्वे' विशेषण अति प्राचीन कालकी ओर सकेत करता प्रतीत होता है। यह कहना कठिन है कि कौनसे मंत्र २५,००० वर्ष या उसके पूर्वके है। सम्भवत ऐसी सब रचनाएँ लुप्त हो चुकी है; परन्तु ऐसे बहुतसे मत्र है, जो भूगोल, भूगर्भ और खगोलवर्ती दृग्विषयोका ऐसे शब्दोमे वर्णन करते है, जो प्रत्यक्षदर्शीकी लेखनीसे ही निकल सकते है। उनको १५,००० वर्षसे पूर्वका मानना ही होगा।

वेदोकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मणोने जैसा यत्न किया, उसको हम भूल नही सकते। उनके ऋणसे सभ्य जगत् मुक्त नही हो सकता। फिर भी वैदिक वाङ्मयकी बहुत-सी पुस्तके नष्ट हो गयी, स्वय वेदकी कई शाखाओ का लोप हो गया! नाम मात्र अवशिष्ट रह गया है। सम्भव है, किन्ही निजी पुस्तकालयोमे रद्दीके ढेरके नीचे कुछ पन्ने पड़े हो। यह भी सम्भव है कि देशी नरेशोके पुस्तकालयोके कोनोमे कुछ ऐसे ग्रथ पडे हो। काशी के राजकीय सस्कृत-महाविद्यालयसे सम्बद्ध सरस्वती-भवनमे कई सौ ऐसे हस्तलिखित ग्रथ है, जिनकी अभी तक सूची भी नही बन पायी है! विदेशोमें भी ऐसे ग्रथ मिल सकते है। अथर्ववेदकी पैप्पलाद-शाखाकी सहिता लुप्त मानी जाती थी; परन्तु काश्मीरके राज-पुस्तकालयमे शारदा लिपिमे मिली। वहांसे बर्लिन पहुँची।

अस्तु। प्रत्येक दृष्टिसे वेदोका महत्त्व अपूर्व और असाधारण है। मोक्षमूलरने ऋग्वेदके सम्बन्धमे लिखा था:—

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावदृग्वेद-महिमा लोकेषु प्रचरिष्यति॥"

(जब तक भूतलपर नदी और पर्वत रहेगे, तब तक लोकोमे ऋग्वेद की महिमाका प्रचार रहेगा।)

यही बात न्यूनाधिक रूपसे सम्पूर्ण वेदके लिये कही जा सकती है। इस अद्वितीय निधिकी रक्षा करना यो तो मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है, परन्तु उन लोगोपर, जो वेदानुगामी माने जाते है, यह दायित्व विशेष रूपसे आता है। इस निधिकी रक्षा करनेका एक उपाय यह भी है कि वेदके अमृतमय उपदेशका यथाधिकार जनसाधारणमें प्रचार किया जाय। "इमा वाच कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" (मै इस कल्याणमयी वाणीका प्रचार लोगोमें करूँगा, ऐसा हमारा सकल्प होना चाहिये।) किसी मत या ग्रथ या उपासना-पद्धतिका उन्मूलन या खडन करना अभीष्ट नही है, परन्तु सबके मूल, सबके आधार, सबको प्राण देनेवाले, वेदका परिचय कराना धर्म्म है। ऋषियो और मनुओका हमपर जो ऋण है, वह यो ही हल्का हो सकता है कि उनका जलाया हुआ दीपक बुझने न पाये, वरन् बुझनेके पहिले प्रत्येक दीपक पार्श्वस्थ प्रदीपको प्रज्वलित कर जाय।

परन्तु इस कर्त्तव्यका पालन करनेके पहिले यह आवश्यक है कि हम स्वय वेदको जाने और यह तब हो सकता है, जब हमको यह ज्ञात हो कि वेद-परिवार क्या है, वेदके अग कौनसे है, वेदका विषय क्या है, इत्यादि। श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदीकी लिखी यह पुस्तक इस कामके लिये उपयोगी है। अपने छोटेसे कलेवरमें वैदिक वाङ्मयके विस्तार और थोडेमें उसके विषयका जो विहगावलोकन कराया गया है, वह सन्तोषजनक है। जो लोग इसके आगे वेदाध्ययनके लिये प्रवृत्त न हो सकेंगे, उनको भी इस जानकारीसे लाभ होगा।

शिक्षा-विभाग,
सचिवालय,
लखनऊ
दिनाक १३ जुलाई, १९५०

सम्पूर्णानन्द

प्राथमिकी

जो पक्षपात-हीन होकर भाष्यों और टीकाओके साथ वैदिक साहित्यका सविधि स्वाध्याय कर चुके हैं और साम्प्रदायिकतासे ऊपर उठकर तथा तटस्थ होकर सारे वैदिक वाङ्मयको मथ चुके हैं, वे कहते हैं—

"वेद आर्य-सभ्यता और हिन्दू-संस्कृतिका मूलाधार है। वेद आर्य-ज्ञान-विज्ञानका उज्ज्वल धाम हैं। वेद सम्पूर्ण आर्य-वाङ्मयका प्राण हैं। वह भक्ति-रसकी मन्दाकिनी और उच्च गम्भीर विचारोका सुखद आवास हैं। वेदमें ओज, तेज और वर्चस्वकी राशि है। वेद ब्रह्मगवी का गान और रणाङ्गणका बिहाग है। वेदमे दिग्दिगन्तको पावन करनेवाले उदात्त उपदेश हैं। वेदमे मानवताके विद्रोहियोमे हडकम्प मचानेवाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों-अनाचारियोको ध्वस्त-विध्वस्त करनेवाला रणोन्मादी आर्योका ब्रह्मास्त्र है। वेद मानवके समस्त उच्च गुणोकी क्रीडा-स्थली है। वेदमे आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमा है, आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नयनका चूडान्त रूप है।"

प्रसिद्ध विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्दने इस ग्रन्थके 'आमुख'में ठीक ही लिखा है कि "यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके प्रथम दो मन्त्रोंकी व्याख्याके सिवा "गीता" और क्या है ?" जिस भागवत गीताके सैकड़ो संस्करण हो चुके है, जिसकी प्रशसा संसारके उद्भट विद्वान् करते है,

(ऋ० ५ २७ १) । शहरके शहर लोहे और सोनेके बनते थे (७ ३ ७)। केवल लोहेके बने सौ नगर थे (ऋ० ७ १५ १४)। रथपर सारथियोके बैठनेके तीन स्थान होते थे (ऋ० ७ ६९ २)। तीन तल्लोवाले मकान भी बनते थे (ऋ० ८ ५० १२) । ध्वस और पुरुषन्ति राजाओने अवत्सार ऋषिको तीस हजार वस्त्र दान दिये थे (ऋ० ९ ५८.४)। हाथीको अकुश से वशमे रखा जाता था। (ऋ० १०.४४ ९) । पाँच-पाँच सौ रथ एक साथ चलते थे (ऋ० १० ९३ १४)। मेघोके समान वाणवर्षा की जाती थी (ऋ० १०.१०२ ११)। नौकर वेतनपर रखे जाते थे (ऋ० ९ १०३ १)। हार, वलय आदिसे वच्चोको अलकृत किया जाता था (ऋ० ९ १०४ १) । तैत्तिरीयारण्यक (१ ३१ १) मे एक ऐसे रथका उल्लेख है, जिसमें अनेक चक्र है, एक हजार धुरे है और एक हजार घोडे जुते है । घोडोको मोतियोकी माला भी पहनायी जाती थी।

आर्योकी चार सस्थाएँ थी—समिति, सभा, सेना और विदथ। उनका राज्य जन-तन्त्र था। राष्ट्रपति वा प्रधान शासकका प्रजा द्वारा चुनाव होता था। अन्यायी शासकको प्रजा पदच्युत करती थी। आर्य वायूयान वनाते थे। उनके विमान मन और वायुकी तरह वेगशाली होते थे (ऋ० १ ११८ १, १ १२० १०, ४ ३६ १)। वे पखोवाली नाव भी वनाते थे (ऋ० १ १८२ ५)। ऋग्वेदसे लेकर उपनिषदोतक में विजलीका विवरण और उसके विविध उपयोगकी बाते पायी जाती है। यहाँ अधिक उल्लेखका स्थान नही है। मुख्य वात यह है कि आर्य लोग आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमापर पहुच चुके थे।

परन्तु केवल आधिभौतिक उन्नतिसे मानव-जातिका सर्वांगीण उन्नयन नही हो सकता। केवल भौतिकवादसे न तो किसी धनाधिपति को स्थिर शान्ति प्राप्त हो सकती है, न अनवरत आनन्द ही उपलब्ध हो सकता है। केवल भौतिकतामें चिपटे रहनेसे तो मानव-जातिका

सर्वनाश हो सकता है। हिटलर, मुसोलिनी और तोजोने भी तो पूरी भौतिक उन्नति कर ली थी। परन्तु इसका फल क्या हुआ ? मदान्ध होकर ये तीनो रणागणमे कूद पड़े। लाखो जर्मन, इटालियन और जापानी गाजर-मूलीकी तरह काट दिये गये, इनके देश रौंद डाले गये और ये अनेक वर्षोंके लिये गुलामीकी जजीरमे जकड़ दिये गये ! जहा भौतिक वादकी शानमें विश्व-विधाताको भी दुत्कार दिया जायगा और जहा नीति, न्याय, धर्म और सदाचारको पैरो तले कुचला जायगा, वहां प्रलय-काड मच जायगा और शान्ति तथा आनन्दका नाम-निशान भी नही रहेगा। इन दिनो ससारके राष्ट्र भौतिक उन्नतिके लिये दौड़ लगा रहे है, अमेरिका भौतिक उन्नतिकी चरम सीमापर पहुचनेकी चेष्टा कर रहा है। परन्तु ससारमे इसका नतीजा क्या देखनेमे आ रहा है ? एक ओर युद्ध-भयसे सारा विश्व विकम्पित हो रहा है, पृथिवीकी छातीपर परमाणु बम दानवी दावानल उगलनेको तैयार बैठा है, दूसरी ओर ससारमे करोडो आदमी दाने-दानेको मर रहे है, करोडो कपड़ेके लिये हाहाकार मचाये हुए है। हर ओर हडताल, सब ओर मार-काट, ब्रह्माण्ड भरमे घनघोर अशान्ति और प्रलय–ताण्डव !! आज भौतिकवादके उपद्रव-उत्पात और उथल-पुथलसे दसो दिग्गज डोल रहे है और वसुन्धराका कण-कण 'त्राहि-त्राहि' कर रहा है !!! केवल उच्छृङखल भौतिकवादमे परमात्माका जघन्य तिरस्कार, धर्मके प्रति घोर घृणा, अपने लिये निकृष्ट स्वार्थपरता और नृशस विषयाभिलाषा रहती है ! इसीलिये जातिकी जाति सदाके लिये धरातलसे विध्वस्त हो जाती है ! इतिहासमे इसके अनेकानेक उदाहरण पाये जाते है।

इसीलिये वेदमें केवल आधिभौतिक उन्नतिकी चरम सीमा ही नही है, आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा भी है। दिव्य गुण, दिव्य शक्ति, दिव्य चरित्र, दिव्य विभूति और दिव्य लोकको प्राप्तिके लिये

वेदमें सत्य, सदाचार, नीति, यज्ञ आदिके पालनकी विधि है। ऋग्वेद (१० १९० १) से विदित होता है कि प्रज्वलित तपसे सत्यकी उत्पत्ति हुई है। अपनेसे ऊपर उठकर अपनी स्वार्थ-हानि करके भी सत्य-बोलने, सत्य सकल्प करने, सत्य कर्म करनेके आदेश वेदमें बार-बार दिये गये है। आर्य लोग सबसे अधिक घृणा असत्यसे करते थे। उनकी पक्की धारणा थी कि 'असत्य बोलनेवालेकी पवित्रता नष्ट हो जाती है' (शतपथ-ब्राह्मण ३ १ ३ १८)। 'असत्य बोलना वाणीका छिद्र है, जिसमेंसे सब कछ गिर जाता है' (ताण्ड्य-महाब्राह्मण ८ ६.१३)। 'असत्यवादीका तेज कम होता जाता है—वह प्रतिदिन पापी होता जाता है' (शतपथ-ब्राह्मण २ २ २.१९)। 'सत्यसे ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है' (ताण्ड्यमहाब्राह्मण १८ २ १९)। और तो और, तीनो वेदोको ही सत्य रूप बताया गया है (शतपथ ९ ५ १.१८)। सत्यवादी अजेय कहा गया है (शतपथ ३ ४ २ ८)।

यज्ञ-कर्ताके लिये कहा गया है—'वह झूठ तो बोले ही नही, मास भी न खाय' (तैत्तिरीय-सहिता २ ५ ५ ३२)। शराब पीना पाप माना गया है (मैत्रायणी-सहिता २ ४ २ और काठक-सहिता १२ १२)। द्वेष करना, चोरी करना, डाका डालना, गाली देना भी पाप माना गया है (आपस्तम्बधर्मसूत्र २ ३ ६ १९–२०, ऐतरेयब्राह्मण ८ ११ और ७ २७)। अहकारको अध पतनका द्वार बताया गया है (शत-पथ ५ १ १ १)। अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता न करनेवाला भी पापी माना गया है (काठक–सहिता १३ ६)।

तैत्तिरीयोपनिषद् (१ ११ १) में कहा गया है कि 'सत्य बोलो। सत्यसे कभी दूर नही जाना।' प्रश्नोपनिषद्का कथन है कि 'सत्य, तप और ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेके लिये ही ब्रह्मलोक है।'

गौतमधर्मसूत्र (८ २० २५) का मत है कि 'जो सद्गुण (सत्य, सदाचार आदि) से शून्य है, वे न तो ब्रह्मलोक जा सकेंगे, न ब्रह्मको

पा सकोगे।' वसिष्ठधर्मसूत्र (६ ३) मे कहा गया है कि 'जैसे चिड़ियोंके बच्चे पंख हो जानेपर घोसलेको छोडकर चले जाते है, वैसे ही वेद और वेदाग सद्‌गुण-शून्य मनुष्यका त्याग कर देते हैं।'

पूजा, उपासना, परोपकार आदि यज्ञके अर्थ है। यज्ञसे हमे शिक्षा मिलती है कि 'भले काम किये जाओ और बुरे कामोसे बचे रहो।' वेदाज्ञा है कि 'यज्ञके द्वारा स्वार्थ-त्याग-पूर्वक अपनेको समाजमे, देशमे, विश्वकी सम्पूर्ण मानवजातिमे और सारे प्राणियोमें मिला दो, अपनेमें देवोको समझो और अपनेको देवोमे समझो। मनको वशीकर अपनेको ब्रह्माण्डमे मिला दो, तुम्हें दिव्य शक्ति मिल जायगी।'

यज्ञरूप नीवपर ही धर्म-रूप इमारत खडी है। ऋग्वेदका मत है कि 'यज्ञमे ही सब कुछ उत्पन्न हैं' (१० ९० ८–९)। अथर्ववेदका भी कहना है कि 'ससारका उत्पत्ति-स्थान यज्ञ ही है।' 'तपस्वियोने यज्ञ-पुरुपको हृदयमे प्रवुद्ध किया है' (ऋ० १० ९० ६)। शतपथब्राह्मण (१ ७.१ ५) ने 'यज्ञको सर्व-श्रेष्ठ कर्म तो माना ही है', प्रजापति और विष्णुका रूप भी यज्ञको बताया है।

अग्निमे दी गयी हवि वायुके सहारे सूर्यकी ओर जाकर समस्त अन्तरिक्षमे व्याप्त होती है। सूर्यके प्रभावसे मेघ-मण्डलके साथ धूम-मिश्रित हविके मिल जानेपर वर्षा होती है, जिससे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजाकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त हविसे पार्थिव पदार्थ, वायु और सूर्य-किरण आदि भी शुद्ध होते हैं। हविसे देवता तृप्त होकर मनुष्य-समाजका कल्याण करते है। यज्ञ-रूप फलसे स्वर्ग आदिकी प्राप्ति होती है। यज्ञमें देव-पूजनके कारण याज्ञिकको देवत्व प्राप्त होता है।

जैसे सूर्य ससारकी दुर्गन्धको दूर करता है और जलको पवित्र करता है, वैसे ही यज्ञ भी करता है। यज्ञके द्वारा विशुद्ध वर्षा-जल

अन्य जलको और अन्नको शुद्ध करता है और शुद्ध अन्न-जलसे ही शरीर स्वस्थ और शुद्ध रहता है। इसीलिये कहा गया है—'वृष्टि-कामो यजेत्' (वर्षाकी इच्छावाला यज्ञ करे।)

षड्विंश-ब्राह्मण (३ १ ३) का मत है कि 'यज्ञ-कर्त्ता सारे पापोको मारता है।' शतपथब्राह्मण (२ ३ १ ६) का तो कहना है कि 'यज्ञ-कर्त्ता सारे पापोसे छूट जाता है।' जैमिनीय मीमासाके मतसे तो यज्ञसे ही मुक्ति भी मिल जाती है।

इस तरह अनेक मार्गोंसे यज्ञ मानव-कल्याण करता और मनुष्यको दिव्य शक्ति और भव्य विभूति प्रदान करता है।

फलत वेदमें आधिदैविक अभ्युदयकी भी पराकाष्ठा है।

परन्तु आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठासे भी चिर शान्ति, अखण्ड आनन्द और मोक्षकी प्राप्ति नही हो सकती। मीमासाके मतसे यज्ञसे जो मुक्ति-प्राप्तिकी बात कही गयी है, वह यज्ञकी स्तुतिके लिये है। वस्तुत बात ऐसी नही है। आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा में भी मनुष्यमें वासना बनी रहती है, इसलिये उसे मोक्षकी प्राप्ति नही हो पाती। स्वर्ग-सुख भोग करते-करते पुण्य समाप्त हो जाता है, जिससे देवत्वसे पतित होकर जीव पुन मनुष्य-योनिमे आ जाता है। इसीलिये वेदमें आधिदैविक अभ्युदयकी पराकाष्ठा ही नही है, आध्यात्मिक उन्नयनका चूडान्त रूप भी है।

यद्यपि वेदमे ३३ देवता माने गये है और ऋग्वेदके दो मन्त्रों (३ ९ ९ और १० ५२ ६) में ३३३९ देवता माने गये है; परन्तु सायणाचार्यने लिखा है कि "देवोकी विशाल महिमा बतानेके लिये ही ३३३९ देवोका उल्लेख किया गया है"। ३३ देवोके बारेमें सायणकी राय है कि परमात्माके कर्मानुसार अनेक नाम है, इसलिये वह अनेक नामोसे वैदिक मन्त्रोमें स्तुत किये गये है। वस्तुत सभी देव-नामोसे परमात्मा

की ही पुकार लगायी गयी है—"तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते" (सायण)। ऐतरेयब्राह्मण (३.२.३ १२) का भी मत है कि 'ऋग्वेदी लोग एक ही सत्ताकी उपासना विविध मन्त्रोंमे करते है।' ऋग्वेद (१ १६४ ४६) मे स्पष्ट कहा गया है कि 'परमात्मा एक है, तो भी विद्वान् उन्हे अनेक नामोसे पुकारते है।' एक दूसरे मन्त्र (१० ११४.५) मे कहा गया है कि 'क्रान्तदर्शी लोग अनेक प्रकारसे परमात्माकी कल्पना करते है।' परमात्माको सारे लोकोका स्वामी (६ ३६ ४) और द्यावा-पृथिवीका धारक बताया गया है (१०.३१ ८) माध्यन्दिन-सहिता (शुक्ल यजुर्वेद ३१. १९) मे कहा गया है कि 'परमात्मामे ही सारे लोक अवस्थित है।' 'परमात्मा सारी प्रजामें ओत-प्रोत है' (३२.८)। 'उस प्रभुका ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य मृत्युको लाघ सकता है, उसके मुक्त होनेका कोई भी दूसरा मार्ग नही है' (३१.१८)। अथर्ववेद (शौनकसहिता ९ १०.१) का कहना है, 'जिन्होने परमात्माको जान लिया, उन्हे मोक्ष मिल गया।' 'एक मात्र परमात्मा ही प्रणम्य और स्तुत्य है' (२.२ १)। 'भगवन्, हम तेरे भक्त हो' (६ ७९ ३)।

ऋग्वेदके ३य मण्डलके ५५ वे सूक्तमे २२ मन्त्र है और सबके अन्तमें कहा गया है कि 'देवोकी शक्ति एक (परमात्मा) ही है, भिन्न २ वा स्वतन्त्र नही है।' इसी वेदके १० म मण्डलका १२१ वा सूक्त 'हिरण्यगर्भ-सूक्त' है। यह सूक्त आध्यात्मिक तत्त्वोसे भरा पडा है। ईश्वर, जीवात्मा, सृष्टि, परलोक आदि अध्यात्म-विषयोका इसमें जागरूक विवरण है। दशम मण्डलका ९० वा सूक्त 'पुरुषसूक्त' है, जिसके दूसरे मन्त्रमे स्पष्ट कहा गया है कि 'जो कुछ है, जो कुछ हुआ है और जो कुछ होगा, सो सब परमात्मा है।' प्रथम मण्डलका ८९ वा सूक्त 'अदिति-सूक्त' है। इसमे भी ब्रह्मके सर्वव्यापी होनेका सुन्दर वर्णन है।। ऋग्वेदके 'अस्य वामीय सूक्त' (१.१६४) और 'नासदीय सूक्त' (१०.१२९) तो अध्यात्मवादके प्राणसे है। लोकमान्य तिलकने

नासदीय सूक्तको 'मनुष्यजातिका सर्वश्रेष्ठ स्वाधीन चिन्तन' कहा है। इसी प्रकार ऋग्वेदके अनेक स्थानो (१०.७९ १, १० १२० ६; १० ८९. १, १० १२८ ७, ३ ५५ ३, ५ ८५ १, १०.२७ ६, १० ३१ ८, १० ११४ ५ और ७) में अध्यात्मवादके विशिष्ट विषयोका अत्युच्च विवरण है। एक स्थल (१० २७ ६) पर महाज्ञानी ऋषि कहते है— "ससारमें घास (शाक) और अन्न खानेवाले जितने मनुष्य है, वह मै ही हूँ। हृदयाकाशमें जो अन्तर्यामी ब्रह्म अवस्थित है, वह मै ही हूँ।'

अथर्ववेदके 'स्कम्भसूक्त' (१०-७-८ सूक्त) और 'उच्छिष्टसूक्त' (११ ९) अध्यात्मवादके महत्त्वपूर्ण सूक्त है। इनमे ब्रह्मकी व्यापकता और उसकी आत्मासे अभिन्नताका सुन्दर प्रतिपादन है।

उपनिषदोमें तो अध्यात्मवादका विशद वर्णन है ही। ब्रह्म-तत्त्व, आत्म-तत्त्व, जीवतत्त्व, परलोक-तत्त्व और सृष्टि-तत्त्वका उपनिषदोमें ऐसा मार्मिक विवरण है कि ससारके बडे-बडे मनीषी उपनिषदोपर विमुग्ध है। उपनिषदोका नाम ही 'ब्रह्मविद्या' है।

चिर शान्ति, अखण्ड आनन्द वा मोक्षकी प्राप्तिके तीन मार्ग है— निष्काम कर्म, परा भक्ति और परम ज्ञान। तीनोमे तीनोका साहाय्य अपेक्षित होता है। इनमे सबसे सरल मार्ग भक्तिका है। महात्मा गाधी निष्काम-कर्मी होते हुए भी भक्ति-मार्गके पथिक थे। उन्होने बार-बार कहा है— "अध्यात्मवाद और ईश्वर-विश्वासके विना मनुष्य सत्य और अहिसाको नही समझ सकता।" गाधीजीने अपनी "आत्मकथा" मे लिखा है—"ईश्वर-प्रार्थनाने मेरी रक्षा की। प्रार्थनाके आश्रयके विना मै कबका पागल हो गया होता। प्रार्थनाके विना जीवन मुझे नीरस और शून्य मालूम होता है। शरीरके लिये भोजन भी उतना आवश्यक नही, जितनी आत्माके लिये प्रार्थनाकी आवश्यकता है। ईसा, महम्मदको प्रार्थनासे ही प्रकाश मिला। वे प्रार्थनाके विना

जीवित नही रह सकते थे। प्रार्थनाके ही कारण राजनीतिक आकाश निराशाके वादलोसे घिरा रहनेपर भी मेरी आन्तरिक शान्ति कभी भग नही हुई ।"

महात्मा गाधीकी राजनीति अध्यात्मवादपर आश्रित है—गान्धीजी के आधिभौतिकवाद और आधिदैविक वाद (नैतिकता आदि) अध्यात्म-वादके विना वैसे ही निर्जीव है, जैसे प्राणके विना शरीर। यही हिन्दू-सस्कृति और आर्य-मर्यादा है। जहाँ सुमर, अक्कद, चाल्डियन, बेवीलोनियन, फिनिशियन आदि जातियां ससारसे सदाके लिये मिट गयी, वहाँ इसी सस्कृति और मर्यादाके कारण हिन्दूजाति विश्वमें हिमालयकी तरह अटल-अचल बनी हुई है—सो भी प्राय. वैदिक सस्कृतिके उसी प्रलापी रूपमे।

गान्धीजीने कई बार यह भी लिखा है कि "अध्यात्मवादके विना प्राप्त स्वराज्यकी रक्षा नही की जा सकेगी।" "धर्मनिरपेक्ष राज्य" चलाने वालोको अपने पथ-प्रदर्शकके इस मूल्यवान् उपदेशको सदा ध्यानमे रखना चाहिये। वेद वा किसी भी हिन्दूशास्त्र वा ऋषिने अध्यात्मवाद वा धर्मसे अधिभूतवाद वा अधिदैववादको कभी भी अलग नही किया। वेद-स्मर्त्ताओने और शास्त्र-कर्त्ताओ सबका आधार और लक्ष्य परमात्माको रखा है। उनका अनुभव था कि "मनुष्य कितना ही अधीर हो, चचल हो, ससारके थपेडे खाकर मरणासन्न हो चुका हो; परन्तु प्रभुका स्मरण करते ही वह सबल-सतेज हो उठता है। जिस समय अपने मकानमे प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो, प्रबल तूफान उठा हुआ हो, प्रतापी ज्वालामुखी हुहुकार मचाये हुए हो, महासागरका वड़वानल क्षुब्ध हो उठा हो और जहाज ससारके अगाध गर्भमें विलीन होने वाला हो, उस समय ईश्वरका सर्वशक्तिमान् स्मरण मनुष्यमे अनन्त विक्रम और विश्व-विजयी प्रताप भर देता है और

वह इन आपदाओको देखकर भक्तराज प्रह्लादकी तरह हँसने-खेलने लगता है ।" वस्तुत ईश्वर भक्तके भयको लेकर निर्भयता, रोगको लेकर नीरोगिता, दु खको लेकर आनन्द, चञ्चलताको लेकर शान्ति और मरणको लेकर जीवन प्रदान करता है । मनुष्य अपने सारे दु ख-दैन्य, झंझट-प्रपच, पाप-ताप और कुकर्म-कुवासनाएँ ईश्वरके ऊपर फेंक देता है, "ब्रह्मार्पण" वा "कृष्णार्पण" कर देता है और वह प्रतिक्षण अपने नाथसे सरसता और सुन्दरता, प्रतिभा और वर्चस्व प्राप्त करता रहता है। इसी रहस्यको अनुभूत करके प्रो० हालडेनने जोर देकर लिखा है कि "मै तो अध्यात्म-क्षेत्रके अतिरिक्त और किसी क्षेत्रका विचार ही नही कर सकता ।"

इसी प्रचण्ड चेतनाका पावन प्रतीक वेद है। इसके साथ ही वेदमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक वादोका सुन्दर समन्वय भी है और इन तीनो वादोके अभ्युदयका चूडान्त स्वरूप भी पाया जाता है। यही कारण है कि वेदमे और वैदिक वाङ्मयमें स्फूर्त्ति और तारुण्य है, ताजगी और जीवट है। पाठक इस "वैदिक साहित्य"में इन सारे रहस्योका विवरण पावेंगे ।

वेद—ऐतिहासिकोके मतसे ऋग्वेद—ससारकी सबसे प्राचीन पुस्तक है, इसलिये ससारकी प्राचीनतम मनुष्यजातिके इतिहास-भूगोल, आचार-विचार और सस्कृति-सभ्यता जाननेके लिये एक मात्र आधार वेद है ।

हिन्दू-जातिका तो मूल ग्रन्थ वेद है ही; इसलिये हिन्दूजातिके धर्म, सदाचार, वीर्य, शौर्य, परोपकृति, देशभक्ति, त्याग, तप, इतिहास, कला, विज्ञान, समाज-व्यवस्था, राजनीति आदि आदि जाननेके लिये एकमात्र अवलम्ब वेद है ।

प्राथमिकी

प्रायः समस्त संस्कृत-साहित्यकी रचना वेदके आधारपर ही हुई है; इस दृष्टिसे भी वेदका अध्ययन अनिवार्य है।

ऊपर लिखी इन सारी बातोपर ध्यान रखकर वर्षोंके परिश्रमसे इस ग्रन्थका निर्माण किया गया है। अन्यान्य विषयोंके अतिरिक्त इन सारी बातोंका विशद विवेचन और समालोचन इस ग्रन्थमें किया गया है। जहाँ तक इन पक्तियोके लेखकको ज्ञात है, वैदिक साहित्यपर इस तरहका ग्रन्थ अबतक नही था। यह ग्रन्थ कैसा बन पडा है, इसका विवेचन विज्ञ वाचक ही कर सकते हैं।

अत्यन्त कार्यव्यस्त रहते हुए भी उत्तर-प्रदेश-राज्यके शिक्षामन्त्री, अर्थमन्त्री और श्रममन्त्री तथा प्रख्यात मनीषी डा० सम्पूर्णानन्दने जो इस ग्रन्थका महत्त्व-पूर्ण "आमुख" लिखनेकी कृपा की है, उसके लिये लेखक आभार मानता है।

अनेकानेक भाषाओ और विषयोके प्रख्यात पण्डित दर्शनकेसरी बन्धुवर पण्डित वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी एम० ए०, काव्य-साख्य-तीर्थके सत्परामर्शोंके लिये भी लेखक अनुगृहीत है।

इस "वैदिक साहित्य"की फाइल वा छपे फार्म देखकर दिग्गज विद्वान् और जीवित विश्वकोष डा० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०, विख्यात वेद-विज्ञाता डा० मङ्गलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल्० (आक्सन), भारत-प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार और वैदिक-साहित्य-विषयक अनेक ग्रन्थोके रचयिता साहित्याचार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए० ने जो अपनी अमूल्य सम्मतियां दी है, उनके लिये लेखक कृतज्ञ रहेगा।

"ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला"के सम्पादक और संचालक तथा प्रसिद्ध विद्वान् बाबू लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए० की प्रेरणा और

तत्परताके ही कारण यह ग्रन्थ इतना शीघ्र प्रकाशित हो सका है। इसके लिये ग्रन्थ-लेखक आपको शतश साधुवाद देना आवश्यक समझता है।

"ज्ञानपीठ"के सुयोग्य मन्त्री वावू अयोध्याप्रसाद गोयलीयने वडी लगनसे इस ग्रन्थको सुन्दरता और शुद्धतासे छपाया है। इसके लिये लेखक आपको वहुत-वहुत धन्यवाद देना नही भूल सकता।

ग्राम कूसी, डाकखाना दिलदारनगर,
जिला गाजीपुर।
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, स० २००७ विक्रमीय

रामगोविन्द त्रिवेदी

सम्पादकीय वक्तव्य

भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना और उसके प्रकाशनोका उद्देश्य व्यक्त करते हुए हमने अपनी पूर्वप्रकाशित रचनाओका 'आमुख' प्राय इन वाक्योसे प्रारम्भ किया है –

"जैन, वौद्ध, वैदिक—भारतीय सस्कृतिकी इन प्रमुख धाराओका अवगाहन किये विना अपनी आर्यपरम्पराका ऐतिहासिक विकासक्रम हम जान नही सकते। सभ्यताकी इन्ही तीन सरिताओकी त्रिवेणीका सगम हमारा वास्तविक तीर्थराज होगा। और ज्ञानपीठके साधकोका अनवरत यही प्रयास रहेगा कि हमारी मुक्तिका महामदिर त्रिवेणीके उसी संगमपर वने; उसी सगमपर महामानवकी प्राणप्रतिष्ठा हो।"

उपर्युक्त वाक्यमे जैन, वौद्ध, वैदिक धाराओका नामक्रम देते समय यह व्यक्त करना इष्ट था कि प्रकाशन–योजनाएँ स्थिर करते हुए पहले जैन साहित्यको और फिर वौद्ध तथा वैदिक साहित्यको प्रमुखता दी जायगी, क्योकि वैदिक और वौद्ध साहित्यकी अपेक्षा जैन साहित्य अभी कम प्रकाशमे आया है। प्रकाशनोका क्रम इस प्रकारसे चला ही था कि ज्ञानपीठके संचालको तथा सम्पादक-मडलको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यद्यपि वैदिक साहित्यके अमुक-अमुक विशेष अगोपर प्रकाश डालनेवाला पाडित्यपूर्ण साहित्य थोडा-वहुत उपलब्ध है भी, किन्तु ऐसी एक भी पुस्तक नही, जो समस्त वैदिक साहित्यका तथा उसके आनुषगिक ग्रन्थो और पूरक रचनाओका सक्षेपमे एव सुवोध शैलीमे परिचयात्मक मौलिक ज्ञान करा सके। 'वैदिक साहित्य'का प्रकाशन इसी कमीको पूरा करनेके लिए, उक्त प्रकाशन-योजनाके पूर्वनिश्चित क्रममे परिवर्तन करके, किया जा रहा है।

यह हमारा सौभाग्य है कि वैदिक साहित्यके प्रकाड विद्वान् और परम्परागत धर्मशास्त्र, पुराण तथा भारतीय दर्शनोके प्रसिद्ध अध्येता श्री

गडित रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्रीने यह ग्रन्थ लिख देनेकी कृपा की। शास्त्रीजी आज तीस वर्षोसे वैदिक साहित्यके अध्ययन, अनुशीलन और प्रचारमे लगे हुए है। आपने सम्पूर्ण ऋग्वेदका हिन्दीमे अनुवाद करके आजसे प्राय २० वर्ष पहले आठ भागोमें प्रकाशित कराया था। आपका दूसरा ग्रन्थ 'दर्शन-परिचय' भी कई भागोमे छपा था। 'विष्णु-पुराण' ग्रन्थमे आपने १८ पुराणोका आलोचनात्मक दिग्दर्शन कराया है। अनेक पत्रोके सम्पादनके अतिरिक्त मासिक पत्र 'गगा'के 'वेदाक'के सम्पादकके रूपमे आपने ख्याति पायी है। त्रिवेदीजीने अपनी सहज प्रतिभा के बलपर सस्कृत, अग्रेजी, वगला, मराठी, गुजराती, नेपाली और क्रिओली भाषाओमें यथोचित गति प्राप्त की है। वैदिक साहित्यके प्रचारकी उद्दाम भावना आपको देशकी सीमाओके पार वर्मा, चीन, लका, मोरिशस, दक्षिण अफ्रिका, न्यूगिनी, मेडागास्कर, जजीवार, रोडेशिया और पूर्व अफ्रीका आदि देशोमे ले गयी, जहा आपने अनेक सास्कृतिक सस्थाओकी स्थापना की। हमारा दृढ विश्वास है कि उपयोगिताकी दृष्टिसे 'वैदिक साहित्य' हिन्दीमे अद्वितीय प्रमाणित होगा। वैदिक साहित्यका इतना मौलिक सागोपाग समीक्षण हिन्दी तो क्या, सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओमें भी उपलब्ध नही है। पुस्तकके लगभग ५०० पृष्ठोमें अबतक प्राप्त ११ वैदिक सहिताओ, १८ ब्राह्मण-ग्रन्थो, ६ आरण्यको और २२० उपनिषदोकी मूल ज्ञानराशि और उनके सम्बन्धमे अन्य ज्ञातव्य बातोको भी त्रिवेदीजीने सार रूपमे रख दिया है।

हमें इस बातकी विशेष प्रसन्नता है कि पुस्तकका 'आमुख' विख्यात विद्वान् और राजनैतिक नेता डाक्टर सम्पूर्णानन्दजीने लिखकर हमे उपकृत किया है। पुस्तकके अनुरूप ही डा० सम्पूर्णानन्दजीने अत्यन्त सुन्दर ढगसे वैदिक साहित्यकी मूल भावनाओ और अनुपम महत्त्वको ओजस्वी भाषामें सार रूपसे समझाया है। उनकी भूमिका वैदिक साहित्यके विद्यार्थीको एक निश्चित दृष्टि देती है, जिसके प्रकाशमे सारा वैदिक साहित्य वाद-

प्रतिवादके क्षेत्रसे ऊपर उठ जाता है; क्योकि वह श्रद्धाका विषय बन जाता है। वह लिखते है –

"अमुक यज्ञ करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, यह बात अनुभवसे नही निकल सकती। इस प्रकारके दृष्टादृष्ट विषयोका प्रतिपादन करनेमे ही वेदका परम प्रामाण्य है।"

नि सन्देह, वेद और वैदिक साहित्यकी महत्ताका यह एक प्रमुख विचार-क्षेत्र है, किन्तु वैदिक साहित्यका एक उच्चतम नैतिक, राष्ट्रिय और अन्तारराष्ट्रिय महत्त्व भी है, जिसे न श्रद्धाके अवलम्बकी अपेक्षा है, न वैदिक याज्ञिक निष्ठाकी। विद्वान् भूमिका-लेखकने वैदिक साहित्यकी इस विशेषताकी ओर सकेत किया है, पर इसे गौण माना है।

वेदका यह गौण पहलू अर्थात् उसकी उच्चतम नैतिकता और राष्ट्रियता आज हमारे देशके लिए अपरिमित महत्त्वकी है। वैदिक युगके मनीषियों और अलौकिक द्रष्टाओकी वाणीमे हमे धर्मकी मूल प्रेरणाओका स्फुरण मिलता है–धर्मका वह रूप, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक नैतिकताके कारण अनुभूत और ग्राह्य है। धर्मकी व्यापकताके विषयमे कहा गया है –

ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा। (अथर्व० १२.१)

"यह ध्रुव और अचल भूमि, यह पृथ्वी, जो धर्मद्वारा धारण* की गयी है, हम इस शिव-सुख-दायिनी भूमिपर निश्चिन्त विचरण करें।"

---

* अथर्ववेदमें प्रायः ऐसे धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वोंका उल्लेख है, जो एक ओर ऋग्वैदिक कालकी सभ्यतासे पूर्वके है और दूसरी ओर उसी परम्पराके क्रमागत विकास और व्याख्याके साथ ऋग्वेदकी रचना-कालके सामयिक अथवा रचनाकालके बादके है। आर्य और आर्येतर सभ्यताओकी मान्यताओ और विचारोके आदान-प्रदान द्वारा विकसित यह धार्मिक तत्त्व कही-कहीं यज्ञ-परक, इन्द्रादि-देवतामूलक मान्यताओसे मेल नहीं खाते। इसका परिहार कभी कभी 'वेदत्रयी' अर्थात् ऋक्,

वैदिक ऋषियोने धर्मको जीवनयात्राके लिए उपयोगी वताया है, जो उनके अनुभवकी उपज है। "सुगा ऋतस्य पन्थाः"—(ऋग्वेद ८ ३ १३) धर्मका मार्ग सुखसे गमन करने योग्य है। "सत्यस्य नाव. सुकृतमपीपरन्" (ऋ० ६ ७३ १)—सत्यकी नाव ही धर्मात्माको पार लगाती है।

इसी साहित्यमें हमें उस चरम अहिंसाके भी दर्शन होते है, जो भारतीय सस्कृतिकी सारे विश्वको देन है और आज भी जिसका सन्देश ससारको देनेकी क्षमता रखनेके कारण भारत अन्ताराष्ट्रिय नेतृत्वकी कल्पना कर रहा है। अहिंसाकी शुद्ध सर्वग्राही परिभाषाके लिए आजकल हम प्रसिद्ध जैनाचार्य उमास्वातिके 'तत्वार्थ-सूत्राधिगम'का यह सूत्र प्रस्तुत करते हैं—

"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।"

प्रमाद(असावधानी और असयम)के कारण प्राणोका व्यपरोपण करना—किसी जीवको ठेस लगाना—हिंसा है। अथर्ववेदमें प्राचीन मूल-धारासे यह विचार इस प्रकार लिया गया है—

"मा जीवेभ्य प्रमद।" (अथर्व ८.१.७)

जीवोंके प्रति प्रमादी मत वनो।

'प्रमाद' शब्द अपने समूचे अर्थमे अत्यन्त विशद है। अथर्ववेदमे हिंसाके प्रकरणमे ठीक इसी शब्दका प्रयोग सास्कृतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

यजुः और साम, केवल तीनको ही वेद मानकर किया जाता है। पुस्तकके लेखक इस मतको नहीं मानते मालूम होते। उनके लिए अथर्ववेद समान रूपसे प्रामाणिक है। वेदत्रयीका अर्थ वेदोमें तीन प्रकारकी रचनाओ—गद्य, पद्य और गेय—से है। धर्मकी इस परिभाषाको आचार्य समन्तभद्रने रत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें इस प्रकार दिया है:—

देशयामि समीचीन धर्मं कर्मनिवर्हण
ससारदु.खतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।

कर्मों का नाश करनेवाले सच्चे धर्मका मैं उपदेश करता हूँ। धर्म वह है, जो जीवोंको ससारके दु खसे छुडाकर (और ऊपर उठाकर) उत्तम सुखमें धारण करे।

कृषि-कर्ममे लीन वेदकालीन गृहस्थ, भूमि जोतते हुए दयार्द्र और विनम्र होकर, सरल भावसे पुकार उठता है—

"यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥"

हे भूमि, मैं तुम्हें जहाँसे खनूँ, वह शीघ्र ही (प्राणोंसे) हरा-भरा हो जाय। मैं तुम्हारे मर्मपर आघात न करूँ, मैं तुम्हारे हृदयको व्यथित न करूँ।

जिन वेदग्रथोमे नरमेध और अश्वमेधका वर्णन है, उनमे इस दिव्य अहिंसाके दर्शन कर हम विमुग्ध हो जाते है।

वेदकी एक और विशेषता, जो सदासे स्फूर्तिदायिनी रही है और आजके युगमे हमे जिसके महत्त्वको विशेष रूपसे समझना चाहिए, वह है वैदिक वाङ्मयमें ध्वनित तत्कालीन राष्ट्रकी प्रबुद्ध चेतना, तत्कालीन मानवका सबल व्यक्तित्व। पिछले ५० वर्षोमे हमारे सामने जिस इतिहासकी आवृत्ति हुई है और आज हम इतिहासकी जिस धारासे गुजर रहे हैं, वह हमें प्रेरित करती है कि हम वेदवाणीमे आरम्भिक राष्ट्र-जागरणकी प्रभातीके स्वर सुने और समझे कि राष्ट्रका उदय, सगठन और समुत्थान कैसे होता था।

उस दिन उस प्रबुद्ध मानवने अपनी मातृभूमिके साथ आत्मसात् होकर बालककी भाति किलकारी भरी थी—

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।" (अथ. १२.१.१२)

यह भूमि मेरी माता है, मैं पृथ्वीका पुत्र हू।

उसने अपने नेताकी पुकार सुनी थी—

"उपसर्प मातरं भूमिम् ।" (ऋ. १०.१८.१०)

मातृभूमिकी सेवा कर।

और उसने अन्य पृथ्वीपुत्रोके साथ खडे होकर प्रतिज्ञा की थी—

"यतेमहि स्वराज्ये ।" (ऋ. ५.६६.६)

(आओ) हम स्वराज्यके लिए सदा प्रयत्नशील रहें।

अनेक देवताओकी उपासना करनेवालोके वीच उस स्वावलम्बी महा-महिम मानवने गर्वोन्नत स्वरमे कहा था–

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।" (ऋ. ४.३३.११)

विना स्वयम् परिश्रम किये देवोंकी मैत्री प्राप्त नहीं होती।

और उसका इससे भी अधिक उन्नत और गौरवशील स्वर सुनाई देता है अथर्ववेदमे—

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहित.।" (अथ. ७.५२.८)

पुरुषार्थ मेरे दाहिने हाथमें और जय बाये हाथमें है।

यह प्रतापी व्यक्ति जब अपने साहस और श्रमसे गृहनिर्माण करवाता था, तो प्रवेशके समय उसकी भावना दर्प और दम्भकी नही होती थी, वह अपने आत्मसतोषकी आभासे दीप्त, कल्याणकारी तथा मैत्री भावसे सम्पन्न चक्षुसे ही इन घरोको देखता था–

"गृहानैमि मनसा मोदयान, ऊर्जं विभ्रद् वः सुमति· सुमेधाः।
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणा पश्यन्यय उत्तरामि ॥"
(अथ. ३.२६.१.)

मैं प्रसन्न मनसे घरमें आता हू, शक्ति और सामर्थ्यको पुष्ट करता, मतिमान् और मेधावी, कन्याणकारी और मैत्रीपूर्ण चक्षुसे इन्हें देखता हूँ और इनमें जो रस है, उसे ग्रहण करता हू।

आश्चर्य नही कि यह स्नेहशील सुखी मानव प्रवासमें रहते हुए घर लौटनेके लिए आकुल हो उठता है—

"येषामध्येति प्रवसन्।" (पैप्प० ३.२६.४)

(घर) जिनकी याद हमें प्रवासमें आती रहती है।

राष्ट्रके कर्णधार इन उदारचेता मनुष्योने धन और परिग्रहके प्रति कही-कही अद्भुत अलिप्साकी भावनाका प्रचार किया है। वेदके सहस्रो मत्रोमें जहा सैकडो देवताओसे अनेकानेक याचनाएँ की गयी है और जिन याचनाओ—आकाक्षाओको अपरिमित प्रलोभनो द्वारा यज्ञ-साधकोने इसलिए प्रेरित किया है कि उनकी प्राप्तिमें वह साझीदार थे, उन वेद-ग्रन्थो

मे उत्कृष्ट त्याग-भावना और अकिंचनत्व देखकर आधुनिक समाजवादकी नूतनता समाप्त हो जाती है। वैभवके प्रति उनका अनुभूत दृष्टिकोण है—

"ओहि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुपतिष्ठन्ति रायः।"

(ऋ. १०.११७.५)

राय (धन-सम्पत्ति) रथके पहियोंकी तरह आर्वातत होनेवाली है। कभी एकके पास रहती है, कभी दूसरेके पास।

केवल यही नही कहा कि—

"मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।" (यजु० ४०.१)

'किसीके धनपर मत ललचाओं।

किन्तु यह भी घोषित किया है कि जो स्वार्थी हैं, उसका अन्न उपजाना व्यर्थ है। इस प्रकारका स्वार्थपूर्ण उत्पादन ही उस व्यक्तिका सहार करता है—

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।"

इस ऋषिकी वात्सल्यपूर्ण, आग्रहपूर्ण, स्वात्मानुभवपूर्ण वाणी देखिए; वह कहता है, "सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य"—"मैं सच कहता हूँ, इस प्रकारका स्वार्थपूर्ण अन्न-उत्पादन स्वय उत्पादकका वध करा देता है।"

"नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।" (ऋ. १० ११७ ६)

जो धनको न धर्ममें लगाता है, न अपने मित्रको देता है, जो 'केवलादी'—अपना ही पेट पालनेवाला हैं, वह 'केवलाघ'—साक्षात् पापमय है।

इसीलिए इन अनुभवी पूर्वजोने कर्मठ पुरुषोके सामने आदर्श रखा था—

"शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।" (अ. ३.२४.५)

सैकडों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बांट दो।

सक्षेपमे, अथर्ववेदके ब्रह्मर्षिने यहा तक व्यवस्था कर दी है—

"समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे, सह वो युनज्मि।"

(अथ. ५.१६.६)

तुम लोगोंका पानी समान हो, तुम्हारा अन्न समान हो। तुम सबको समान बधनमें बांधता हूँ, तुम एक दूसरेके साथ सम्बन्धित रहो।

इस मन्त्रके अर्थमें यदि यह सन्देह हो कि इस प्रकारका बधन, इस प्रकारका समान अन्न ही नही, पानी भी, मनुष्योमे कैसे सार्थक होगा, तो पशुलोककी यह दूसरी उपमा सुनिये—

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व' ।
अन्योऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥" (पैप्पलाद० ५.१९ १)

आप सबके बीचसे विद्वेषको हटाकर मैं सहृदयता और समनस्कताका प्रचार करता हूँ, आप सब एक दूसरेसे इस प्रकार प्रेम करें, जिस प्रकार गौ बछड़ेसे प्रीति करती है।

सहज प्रश्न होता है, कौनसा समाजवाद या साम्यवाद ऐसा होगा, जो सिद्धान्त रूपमें इससे आगे जायगा ?

वैदिक साहित्यपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते समय सबसे बडी कठिनाई यह आ उपस्थित होती है कि वेदके प्राय प्रत्येक पहलूपर विवाद है और विविध मान्यताएँ है। समारकी किसी भी भाषाका इतना विपुल साहित्य इतने प्राचीन रूपमे प्राप्त नही है। आर्योने जिस महान् प्रयत्न, सूझ और श्रमसे इस साहित्यको सहस्राब्दियो तक सम्हाले रखा है, वह विश्वमे निराला उदाहरण है। मनुष्य अपने श्रममे नही चूका, पर प्राय ऐमा हुआ है कि समय और परिस्थितिया उसे भटकाती रही है, उसे मुखर और मूक करती रही हैं। देशोके मानचित्र इस प्रकार बदल गये कि आज उनके पूर्व रूपकी कल्पनाको कल्पना तक मानना कठिन हो गया है। साम्राज्य, सस्कृतिया और इतिहासकी परम्पराएँ परिवर्तित, ध्वस्त और नवनिर्मित होकर पुन पुन अनेक प्रैत्यावर्तनोको पार करती रही है। ऐसी स्थितिमे यह कहा सम्भव था कि प्राणोकी रक्षासे भी लाचार मानव इतने विशाल और विस्तृत साहित्यको केवल कठगत बनाये पीढियो के बाद पीढियोको उत्तराधिकारमे दिये चला जाय। किन्तु यह आश्चर्य-जनक घटना घटी है और इसीलिए वेदका अस्तित्व विश्वका विस्मय है। पर, जब मूल वेदधारी मानवके वशानुवश विजयकी प्रेरणा, पराजयकी

प्रतारणा अथवा प्राणरक्षाके निमित्त आश्रय और अन्नकी खोजके कारण इधरसे उधर स्थानच्युत हुए, तो इन उपजातियोका सबध अन्य उपजातियो से विच्छिन्न होता गया। कालान्तरमे परिवर्तित जलवायुके कारण नये उच्चारण और अन्य मानसिक अथवा परिस्थिति–जन्य कारणोसे शब्द, अर्थ और भावमे नये परिवर्तन तथा मौलिक मान्यताओमे भी अन्तर आ गया।

इस सबधमे कुछ बाते विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं–

१ वेदमन्त्रोके शुद्ध उच्चारणपर अत्यन्त अधिक जोर दिया गया है और यहा तक कहा गया है कि स्वर और वर्णके अशुद्ध प्रयोगके कारण मत्र वज्र बनकर स्वय यजमानका ही सहार कर देता है।

"मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।"

उदाहरण दिया गया है कि मंत्रपाठीका अभिप्राय था कि इन्द्रशत्रु अर्थात् इन्द्रके शत्रुकी वृद्धि हो, किन्तु जिस ढगसे यह समासयुक्त शब्द पढा गया, उसमे स्वरभेद हो गया और इन्द्रके शत्रु (वृत्रासुर) की अभिवृद्धिकी जगह स्वयं इन्द्र, जो शत्रु है–उसकी अभिवृद्धि हो गयी। यजमान वृत्रासुर मारा गया।

वैदिक कालमे उच्चारणकी विभिन्नतासे ही 'आर्य' और 'म्लेच्छ' का भेद किया जाता था। असुरोको 'मृध्रवाच' कहा गया है। शतपथ-ब्राह्मणमे पराजित असुरोके युद्ध-क्रन्दनका उल्लेख है–

"ते असुरा आत्तवचसो हे अलवो हे अलव इति वदन्तः पराबभूवुः।"
अर्थात् वे असुर 'हे अलवो, हे अलवो' इस प्रकार कहते हुए पराजित हो गये।

असुरोका अभिप्राय 'हे अरयः', 'हे शत्रुओ' कहनेका है, किन्तु वह 'र' का 'ल' और 'य' का 'व' उच्चारण करते है और अरय को अलवः बना देते है। मूल भाषा वही है।

अब कल्पना कीजिये कि शपतथ-ब्राह्मणका पाठ करनेवाला कोई द्विज भारतके किसी सीमाप्रान्तीय गावमें रहता है। वह देखता है कि मुसलमान 'अल्ला', 'अल्ला' पुकारते है और मुसलमान उसकी दृष्टिमे असुर तथा म्लेच्छ है ही, तो वह शतपथब्राह्मणमें दिये उक्त वाक्यके आधारपर अलवा और अल्लाके उच्चारणकी समानता देखकर तत्काल यह धारणा बना सकता है कि वेदमें असुर-रूपमें मुसलमानोका और उनके अल्लाह का वर्णन है। इस तरह उच्चारण-भेदके आधारपर अर्थभेद हो जायगा और इतिहासका क्रम समझनेवाला यदि कोई व्यक्ति भूल सुझायगा तो विवाद खडा हो जायगा। हो सकता है, काशीके विद्वानोमें ही आज भी ऐसे पडित हो, जो शतपथब्राह्मणके उक्त उद्धरणका यह अर्थ लगाते हो।

ऊपर हमने देखा कि वर्णके उच्चारणभेदकी बात तो दूर, मात्र स्वर के उच्चारण-भेदसे यजमान वृत्र मारा गया। किन्तु वेदकी प्रचलित उच्चारण शैलियोमे कही-कही वर्णोके उच्चारणमे गम्भीर अन्तर है। यजुर्वेदकी वाजसनेयशाखाके अनुयायी 'ष'का उच्चारण 'ख' करते हैं। 'सहस्रशीर्षा पुरुष' मन्त्रका उच्चारण वह करेंगे 'सहस्रशीरखा पुरुख'। यह ठीक है कि इस विभिन्नताके समर्थनमे कोई शास्त्रीय व्यवस्था उपलब्ध होगी और यजमान घातसे बच जायगा, किन्तु भाषाशास्त्रीके निष्कर्षमे उस व्यवस्थासे कोई अन्तर नही पडेगा। उसको यह मानना ही होगा कि कालान्तरमें वेदके मूल मन्त्रोका पाठान्तर और अर्थान्तर हो गया।

२ यह तो रही स्वर, वर्ण और शब्दोके परिवर्तनकी बात। वेदमन्त्रो के अर्थके विषयमे तो विवाद सदासे ही चला आ रहा है। आश्चर्यजनक बात यह है कि जितना समय बीतता जाता है, जितनी अधिक छानबीन होती जा रही है, विवादका क्षेत्र उतना ही विस्तृत होता जा रहा है। संस्कृत भाषाकी यह विलक्षणता है कि व्युत्पत्तिके आधारपर इसके प्रत्येक शब्दके अनेक अर्थ किये जा सकते है। मूल धातुमे प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर सन्धि और विग्रह, आगम और परिहार द्वारा मनचाहा अर्थ लगाया जा

सकता है। यद्यपि शब्द भावानुगामी है और व्यवहारमे लौकिक सस्कृतके शब्दोके अर्थ भी निश्चित है; किन्तु विवाद उपस्थित हो जानेपर प्रत्येक पक्ष उसी शब्दमे अपना अर्थ आरोपित कर सकता है। जैसा कि लेखकने इस ग्रन्थमे दिखाया है, यास्कने वेदार्थ करनेकी अनेक प्रणालियोंका और पक्षोका उल्लेख किया है। वेदोका अर्थ निम्नलिखित पक्षोने अपने-अपने ढगसे किया है और आदिसे अन्त तक अपने पक्षकी विचारप्रणालीकी सार्थकता वेदोसे सिद्ध की है—

१. आधिदैवत	४ ऐतिहासिक	७. परिव्राजक
२ आध्यात्मिक	५ नैदान	८. पूर्वयाज्ञिक
३ आख्यानसमयपरक	६ नैरुक्त	९. याज्ञिक

लेखकने दिखाया है कि स्वय यास्कने लगभग एक दर्जन निरुक्तकारों के मतका उल्लेख किया है और दिखाया है कि उन्होने किस प्रकार एक शब्दके विभिन्न अर्थ करके मन्त्रोको विभिन्नार्थक वनाया है। सायणके मतानुसार वेदोमे तीन प्रकारकी भाषाओका प्रयोग है—समाधि भाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा। उदाहरणार्थ, इन्द्रके विभिन्न अर्थ ह—ईश्वर, देव, ज्ञान, विद्युत्। इसी तरह वृत्रके विभिन्न अर्थ असुर, अज्ञान, मेघ और असुरोके राजा किये जाते हैं। पृश्निके इतने अर्थ है—मरुतोकी माता, पृथ्वी, आकाश, मेघ। इसी तरह गौ शब्दके अर्थ गाय, किरण, जलधारा, इन्द्रिय और वाणी है। ऋग्वेदके प्रथम मडलके १६४ वें सूक्तके पैतालीसवे मत्रकी व्याख्या सायण और पतजलिने ७ प्रकारसे की है। स्वामी दयानन्दने तो ऐतिहासिक या भौगोलिक नामोका भी यौगिक अर्थ किया है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्रका अर्थ वह क्रमश मन, प्राण और कान करते है। अनेक यूरोपीय विद्वानों, विशेपकर डाक्टर रेलेकी तो यह धारणा है कि वेदमे देवताओके क्रियाकलाप मनुष्य के मन और चैतन्यकी विभिन्न क्रियाओके द्योतक है।

वेदार्थके सम्बन्धमे इतनी मतविभिन्नता देखकर और सम्भवतया

वितडावादसे हताश होकर एक सम्प्रदाय ही ऐसा उत्पन्न हो गया—कौत्स सम्प्रदाय–जिसने प्रचार किया कि मन्त्रोका कुछ अर्थ ही नही–"**अनर्थका हि मंत्राः।**" उनका मत है कि वेदमत्रोका उच्चारण मात्र कर देनेसे ही फलकी सिद्धि हो जाती है।

३. वेदोके अर्थका विचार करते हुए इस बातको भी दृष्टिमे रखना बहुत आवश्यक है कि जो अर्थ किया जाय, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे, पूर्वापर सम्बन्धकी उपयुक्ततासे, भाषाके विकास-क्रमकी स्थितिसे, पूर्वोत्तर विचार-धाराओकी क्रमानुगत शृ खलासे तथा मत्र-रचयिता या मत्रद्रष्टाकी तत्कालीन सभावित भौतिक तथा मानसिक परिस्थितियोके सामजस्य द्वारा समर्थित हो। खोज-शोध करनेवाले निष्पक्ष विद्वानोका वैज्ञानिक दृष्टिकोण यही है। पर इस तरहका अनुशीलन विना सारा जीवन खपाये बडेसे बडे विद्वान्‌को भी उपलब्ध नही। इसके लिए वैदिक साहित्यके रचनाकालसे लेकर आजतक, अवतक, जो अनुशीलन हो चुका है, उस सवका ज्ञान होना चाहिये। कितना दीर्घकाल है यह और कितनी विवादास्पद है इसकी दीर्घता ! वेदोका रचनाकाल श्रद्धालुओकी दृष्टिमें अनादि, पाश्चात्त्य विद्वानोकी दृष्टिमे साढे तीन हजार वर्षसे लेकर पाच हजार वर्ष तक, लोकमान्य तिलकके मतसे १० हजार वर्ष और पुस्तकके विद्वान लेखक तथा भूमिकालेखकके मतसे यह समय २५ हजार वर्षसे ५० हजार वर्ष तक है। इतने लम्बे इतिहासकी परम्पराओका सामजस्य बिठाना तो दूर, इसकी स्थूल घटनाओका ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन है। तथ्यकी प्राप्ति तो और भी कठिन है।

कहते हैं, अग्रेज जातिके पराक्रमी पर्यटक और विद्वान् सर वाल्टर रेले जब राजनैतिक विरोधके कारण 'टवर आफ लन्दन'के बन्दीगृहमे बन्द थे, तो उन्होने अवकाशका सदुपयोग करनेके लिए ससारका इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। जब वह लिख रहे थे तो एक दिन जेलके दरवाजेपर उन्होने हल्लागुल्ला सुना। खिड़कीसे झाककर देखा तो कोई विशेष घटना घटित

हो जानेके लक्षण नजर आये। नीचे जाकर उन्होने जेलरोसे पूछा कि क्या बात है? जेलरोने बताया कि किसी आदमीकी हत्या हो गयी है। आगे छानबीन की तो यह पता ही न चला कि हत्या कैसे और किसके द्वारा हुई। हताश होकर उन्होने कहा, "जब मै अपनी नाकके नीचे घटित घटनाका भी तथ्य मालूम न कर सका, तो मै ससारका इतिहास क्या खाक लिखूगा?" उन्होंने कलम फेक दी।

यदि वेद-सम्बन्धी मूल साहित्य भी पूरा पूरा प्राप्त हो जाय, विशेषकर सहिताएँ और ब्राह्मणग्रन्थ, तो मूलपाठो और व्याख्याओके सादृश्यके आधार पर बहुतसे अस्पष्ट स्थलोका स्पष्टीकरण हो जाय। ऋग्वेदकी २१ शाखाओमे केवल १ और यजुर्वेदकी १०० शाखाओमे केवल ५ ही उपलब्ध हैं। सामवेदकी एक हजार और अथर्ववेदकी ९ शाखाओका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वेदकी ११३० शाखाओकी सम्भावना मुक्तिकोपनिषद्के उल्लेखसे ध्वनित होती है। इनमेसे केवल ११ सहिताएँ ही प्रकाशमे आयी है।

४ वैदिक साहित्य अपने समूचे आनुषगिक ग्रन्थोके प्रकाशमे जिस सभ्यता और सस्कृतिका दिग्दर्शन कराता है, वह सहस्राब्दियोके क्रमिक विकासके आधारपर ही समझी जा सकती है। देशके विभिन्न प्रदेशोमे, जातिके विभिन्न वर्गोमे और समाजके विभिन्न स्तरोमे अनेक समयोमे अनेक प्रकारकी जीवनचर्या और उससे उत्पन्न होनेवाली सास्कृतिक मान्यताएँ रही है। परम्पराएँ भी चली है और स्वतन्त्र चिन्तन भी चला है। **'स्तोमं जनयामि नव्यम्'**—(ऋ० १-१०९-२) मैं नया स्तोत्र बनाता हूं—यह कहनेवाला कवि और द्रष्टा पुरातन सस्कृतिको वहन करके ही सतुष्ट नही हुआ होगा, उसने उस सस्कृतिके विकासमे नई भावनाओ और नई प्रेरणाओका सृजन भी किया होगा।

वैदिक साहित्यका बहुत बडा भाग यज्ञ, अनुष्ठान और क्रियाकाडके विधि-विधानोसे सम्बन्धित है। यह विधान इतने गूढ और रहस्यमय थे अथवा यो कहे कि यह इतने दुर्बोध तथा दुर्गम बना लिये गये थे कि ब्राह्मणोके अतिरिक्त अन्य किसी वर्गका इनपर अधिकार ही नही रह

गया था और न कोई इनके विकासमे नये कृतित्वका योगदान दे सकता था। यथार्थ वात यह प्रतीत होती है कि वैदिक क्रियाकाडके समर्थक गुरु-पुरोहितोने प्राणपणसे यही प्रयत्न किया है कि उनकी यज्ञानुष्ठानमयी सस्कृति जीवन और कालके परिवर्तनोकी छायासे बची रहे और वह सदा उनकी प्रतिष्ठा, अधिकार और अर्थोपार्जनका चिरन्तन साधन बनकर वशके लिए धरोहरका काम करती रहे।

देशमे वसनेवाली वहुसख्यक आर्येतर जातियोके प्रवल प्रभावसे वचने के लिए ही आर्योने अपने ऊपर विधि-निषेधात्मक बन्धन लगाये थे। वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी इसी उद्देश्यसे की गयी मालूम होती है। इस योजना का लौकिक, आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्य कुछ भी रहा हो, इसका एक सास्कृतिक सुखद परिणाम यह निकला कि वेद-ग्रन्थोकी धरोहर सुरक्षित रह सकी। यदि इतर जातियोके तत्कालीन साहित्यका ससारसे लोप हो गया है, तो उसका एक कारण यह भी है कि उन जातियोके साहित्यसर्जको को किसी ऐसी उद्दाम प्रेरणाका आकर्षण प्राप्त नही था, जो उनके वशजोके लिए अधिकार, अर्थ और धार्मिक नेतृत्वके अर्जन और सरक्षणकी आधार-शिला हो सकती। इसीलिए वैदिक ऋत्विकोके वशजोको उनकी सूझबूझ और नीतिज्ञताकी सराहना अवश्य करनी होगी। वेदके अन्य अध्येताओके लिए भी ब्राह्मण-वर्गका यह महारथी प्रयत्न आकर्षणका विषय है।

५ जैसा कि ऊपर लिखा गया है, वैदिक सस्कृतिके व्यवहारिक रूपमें यज्ञानुष्ठानोका विस्तृत विधि-विधान वहुत वडा महत्त्व रखता है। सोम, हवि और पाक सस्थाओके सात-सात यज्ञोकी गणनाके अनुसार नीचे लिखे २१ प्रकारके यज्ञोका विस्तृत वर्णन वैदिक साहित्यमे मिलता है—

१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडशी, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र, ७ आप्तोर्याम, ८ अग्न्याधेय, ९ अग्निहोत्र, १० दर्श, ११ पौर्णमास, १२ आग्रायण, १३ चातुर्मास्य, १४ पशुवन्ध, १५ सायहोम, १६ प्रातर्होम, १७ स्थालीपाक, १८ नवयज्ञ, १९ वैश्वदेव, २० पितृयज्ञ और २१ अष्टका।

प्रत्येक अनुष्ठानमे कितने प्रकारकी क्रियाएँ होती थी और प्रत्येक क्रियाके लिए किस प्रकार अलग अलग मन्त्रोका और अनुयोगोका विधान था, इसका अनुमान उन ४६ क्रियाओकी सूचीसे लगेगा, जो दर्श या पौर्ण-मासके (क्योकि कही कही दोनोको एक माना गया है) यज्ञके अनुष्ठानमे करनी पडती है। यह सूची इस ग्रन्थके 'यज्ञ-रहस्य' नामक अध्यायके अन्तमे दी हुई है।

जिन यज्ञोके अनुष्ठानके लिए इतने लम्बे-चौडे क्रियाकाडका उल्लेख है, उनके सम्बन्धमे यह भी अभी विवादग्रस्त है कि इन यज्ञोमे पशुवलि होती थी या नही। ऐतिहासिक दृष्टिसे वेदोका अध्ययन करनेवालोका स्पष्ट मत है कि वेदोमे नरमेध, अश्वमेध और अजमेध यज्ञसे मनुष्यकी, घोडेकी और वकरेकी आहुतिसे अभिप्राय है। ऋग्वेदमे 'पक्व वाजिनम्'से 'पकाये हुए घोडे'के खानेका अभिप्राय झलकता है। पर, आजके दिन लाखो शाकाहारी ब्राह्मणोका मत है कि (१) यज्ञोमे जीव-वध नही होता था। नर, अश्व और अज शब्दोका आध्यात्मिक अर्थ है। पशुवलिके स्पष्ट उल्लेखका परिहार इस प्रकार भी किया जाता है कि (२) पशुयज्ञो मे आटेके पिड आदिका अनुकल्प (वदल) चलता था या (३) पशुवलिका विधान तामसिक लोगोके लिए था अथवा यह कि (४) कलियुगमे पशु-वलिका निषेध है। विद्वान् लेखकने अभिमत दिया है, "लेखकके मतसे चारो उत्तर यथास्थल ठीक हो सकते है।" अर्थात् विवादकी सामग्री यथावत् मौजूद है।

तटस्थ दृष्टिसे देखे तो समझ जायगे कि यज्ञकी भावना, यज्ञके दार्श-निक आधार और धार्मिक प्रयोजनके पीछे विकासका एक लम्बा इतिहास है। वैदिक यज्ञोके लम्बे और गूढ क्रियाकाडको कितना ही बाधकर और शिकजेमें कसकर रखा गया हो, यज्ञकी आधारभूत मूलभावनाओमे चूडान्त परिवर्तन होता रहा है। मनुष्यकी वलिसे लेकर वनस्पतियो द्वारा यज्ञ सम्पादित करनेके शास्त्रीय विधान तक पहुचने-पहुचते मनुष्यको अनेक मन्नी और भीषण धार्मिक क्रान्तियोमेसे गुजरना पड़ा होगा। यह भी

स्पष्ट है कि इस क्रान्तिके नेतृत्व और सफल सम्पादनमे उन मनीषियोका प्रभाव उत्तरोत्तर क्रियाशील होता रहा होगा, जो अहिंसक सस्कृतिके अनुयायी या समर्थक थे। इस विकास-प्रयत्नकी झाकी हमें शतपथमें ही मिल जाती है।

"आदिमें वलिके लिए पुरुष या ईश्वर मनुष्यके शरीरमे गया। परन्तु तन्नारोचत—वह उसको अच्छा नही लगा। फिर वह गऊके शरीरमें गया। वह भी अच्छा नही लगा। इसके वाद घोडे, फिर भेड, वकरीके शरीरोको छोडा। अन्तमें उसने औषधियोमे प्रवेश किया। यह उसे अच्छा लगा। इस छोटेसे आख्यानमे उन सैकडो या हजारो वर्षोका इतिहास वन्द है, जिनमे नरमेधसे आर्ययाजक फल, फूल, पत्तियोकी वलि या हवि तक पहुचे।" (श्रीसम्पूर्णानन्द लिखित 'आर्योका आदि देश', पृष्ठ २३८)।

गीताके समय तक पहुचते पहुचते यज्ञ शब्दके अर्थमे, यज्ञके प्रयोजनमें ही आमूल परिवर्तन हो गया। इसका भाव हो गया, 'नि.स्वार्थ पूजन'। महात्मा गाधीने इस भावको और आगे वढाया और यज्ञका अर्थ किया, 'परोपकार'। गीताने यज्ञका अर्थ और प्रयोजन ही नही वदला, उसने क्रियाकाडका सर्वथा परिहार भी कर दिया। इससे भी अधिक उसने वैदिक देवताओकी उपासनाका भी वन्धन नही रखा। गीताने कहा—

"येऽप्यन्यदेवता-भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥" ८.२३.

हे कौन्तेय! जो श्रद्धापूर्वक दूसरे देवताको भजते हैं, वे भी भले ही विधिरहित भजें, मुझे ही भजते हैं।

यहा हमे यह नही भूलना चाहिये कि गीता एक उपनिषद् है, अतः वेदका महत्त्वपूर्ण अग है। गीताका कथन वेदका ही कथन है।

किन्तु कहा ऋग्वेदकी यह याचना—

"यावया वृक्यं वृक यवयस्तेन भूम्ये अथा नः सुतरा भव।"
(ऋ० १०.१२७.६)

हमसे भेड़ियोंको दूर करो, चोरोंको दूर करो, हे रात्रि, हमारे लिए पार जाने योग्य (सुतर) वनो।

और कहां गीताका निष्काम कर्म, त्याग-भावनायुक्त पूजन, क्रिया-काडका अभाव और देवताओकी मान्यताके सम्बन्धमे छूट ।

यह हम मानते है कि गीताने जिस दर्शनका विकसित रूप उपस्थित किया, वह दर्शन वेदोमे वीज रूपसे है; किन्तु वह तो सस्कृतिका आभ्यन्तर रूप है। वेदोमे सस्कृतिका जो वाह्य और व्यावहारिक रूप है, वह यज्ञोके सविधि अनुष्ठान और अनेक देवता-शक्तियोकी निर्दिष्ट उपासनापर आश्रित है। ऊपर हमने यह दिखाया है कि स्वय वैदिक परम्परामे मत्रोके अर्थो, यज्ञके प्रयोजनो, देवताओंकी पूजाभावना और कर्मकाडकी उपयोगिता आदिके विषयमे विभिन्न मत है, जो सस्कृतिके मूलाधार है। ऐसी अवस्था में सस्कृतिके किस रूपको और किस मान्यताको वैदिक सस्कृति समझा जाय ? वेदमे आस्था रखने और वेदको अन्तिम प्रमाण माननेके लिए वैदिक युगकी किस सस्कृति और सस्कृतिकी कौनसी मान्यताको वैदिक संस्कृति माना जाय और किसे न माना जाय ?

विद्वद्वर सम्पूर्णानन्दजीने 'आमुख'मे लिखा है—

"ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार न करनेवाला भी हिन्दू हो सकता है; परन्तु वेदको न माननेवाला हिन्दू नही हो सकता। लोकमान्य तिलक के शब्दोमे "प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु"—वेदोको स्वत· प्रमाण मानना, हिन्दू होनेका अव्यभिचारी लक्षण है।"

इस ग्रन्थके लेखक श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदीने भी श्रीसावरकरके 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला है—

"इस दृष्टिसे तो आर्य शब्दसे हिन्दू शब्द नवीनतर नही है। फलत: हिन्दूधर्मका अर्थ वैदिक धर्म है और हिन्दूसस्कृतिका अर्थ वैदिक सस्कृति है।" (पृष्ठ ३४३)।

श्रीसम्पूर्णानन्दजीने लोकमान्य तिलकके मतका उल्लेख करते हुए जो वेदोको स्वत. प्रमाण माननेवालोको ही हिन्दू कहा है और श्रीत्रिवेदीजी ने वैदिक सस्कृतिका अर्थ हिन्दू-सस्कृति किया, उसे स्वीकार करनेमे जो आपत्तिया है, उनपर विचार करना आवश्यक है।

स्वय इस ग्रन्थमे ही श्रीत्रिवेदीजीने लोकमान्य तिलकके मन्तव्यो और निष्कर्षोको पृष्ठ ३७ पर दिया है, जिनके अनुसार निम्नलिखित बातो की प्रामाणिकता वेद-सिद्ध है—

१ अधिकारि-भेद अथवा उपासनाकी शैलीमे रुचि-स्वातन्त्र्य ।

२ उपास्य देवताके विषयमे नियमका अभाव अर्थात् जो जिस देवको माने, उसीकी उपासना करता रहे ।

३ वैदिक धर्मके मूल प्रवर्तकका अभाव ।

४ वैदिक धर्मका सब धर्मोसे अविरोध ।

इसका यह अर्थ हुआ कि वेदमे सब देवोकी सब प्रकारकी धार्मिक उपासनाको समर्थन प्राप्त है और वेदका किसी धर्मकी किसी मान्यतासे विरोध नही । तब फिर वेद इस मान्यताके समर्थनके लिए भी प्रमाण बन जाते हैं कि ससारमे जितने भी धर्म और दर्शन है, चाहे वे वैदिक हो या अवैदिक, आर्य हो या आर्येतर, भारतीय हो या अभारतीय, सब वैदिक हैं । ऐसी अवस्थामे वेदको प्रमाण माननेका कोई अर्थ ही नही रह जाता । ईश्वर, यज्ञ, धर्म और नैतिकताको न माननेवाला हिन्दू ब्राह्मण वेदको किसलिए, किस बातका प्रमाण मानेगा, यह समझमे नही आता । फिर भी वह हिन्दू ही रहेगा । उसके हिन्दुत्वका वेदकी प्रामाणिकतासे कोई सम्बन्ध नही ।

वास्तवमें 'वैदिक' और 'हिन्दू' शब्दोको समानार्थक मानना ठीक नही, क्योकि वैदिक शब्द एक विशेष प्रकारकी धार्मिक और सास्कृतिक परम्पराओ और मान्यताओका द्योतक है या कालपरक शब्द है, जब कि हिन्दू शब्द प्रधानत भौगोलिक सीमाओका सकेत करनेवाला, देश या तद्देशवर्ती जनताका द्योतक है । यह बात अब प्राय सभी शिक्षित व्यक्ति जानते हैं कि मूलत सिन्धु शब्दसे ही हिन्दू शब्द बना है, क्योकि प्राचीन कालमें बाबुलके लोग (बैबिलोनियन) हमारे इस देशको सिन्धु कहते थे और वैदिक सिन्धुहीका पारसियोकी भाषामे 'हिन्दू' उच्चारण पाया जाता है ।

सिन्धु अथवा हिन्दू नदीकी सीमाके आधारपर उस पार बसनेवाले जन-समुदायको पारसियो, यूनानियो आदिने हिन्दू कहा।

यो तो हिन्दू शब्दकी व्याख्या इस प्रकार भी की गयी है–

"हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः।"

जिसका चित्त हिंसासे दुखे, वही हिंदू है।

किन्तु सबसे सरल, निर्विवाद और सम्भवतया आजतक उपलब्ध ऐतिहासिक सत्यके सबसे अधिक निकट जो परिभाषा हुई है, वह श्रीसावरकर की है। उन्होने घोषित किया है–

"आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥"

अर्थात् सिन्धु नदसे लेकर सिन्धु (सागर=कन्याकुमारी) पर्यन्त भारतभूमिको अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि माननेवाला व्यक्ति हिंदू हैं।

राष्ट्रिय दृष्टिकोणसे और धार्मिक तीर्थोंके अस्तित्वकी दृष्टिसे भारतवर्ष वैदिक आर्यो (जिनके पश्चिमोत्तर यूरोप, एशिया माइनर और उत्तरी ध्रुवप्रदेशसे आकर बसनेकी मान्यता विद्वानोमे प्रचलित है) की अपेक्षा उन व्यक्तियोकी पितृभूमि और पुण्यभूमि निश्चित रूपसे अधिक है, जिनके पूर्वज भारतवर्षके मूलनिवासी माने जाते हैं।

इतिहास और पुराण साक्षी है कि इस देशका नाम भारतवर्ष राजा भरतके नामपर निर्धारित है। भरत उन ऋषभ भगवान्के पुत्र थे, जिन्हे आदिब्रह्मा कहा गया है। ऋषभ जैनियोके प्रथम तीर्थंकर है। इनका वर्णन श्रीमद्भागवतमे निम्नलिखित. शब्दोमे आया है–

"इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत
ऋषभाख्यस्य विशुद्धचरितमीरितं पुंसो समस्तदुश्चरितानि हरणम्।"

इस तरह (हे परीक्षित) सम्पूर्ण वेद, लोक, देव, ब्राह्मण और गौके परम गुरु भगवान् ऋषभ देवका यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया। यह मनुष्योंके समस्त पापोंको हरनेवाला है।

इन भगवान् ऋषभदेवके गृहत्याग और दिगम्बरत्वके विषयमे वहां लिखा है—

"उन्होने केवल शरीरमात्रका परिग्रह रखा और सब कुछ घरपर रहते ही छोड दिया। अब वे वस्त्रोका भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्तकासा वेश था। इस स्थितिमे वे आहवनीय, अग्निहोत्रकी अग्नियोको अपनेमें ही लीन करके सन्यासी हो गये और ब्रह्मावर्त देशसे बाहर निकल गये।" (भागवत का अनुवाद ५.२८)।

आगे चलकर लिखा है कि योगमायासे भगवान्‌का शरीर अनेक देशोमे विचरता रहा और वह दैववश कोक, वैंक और कुटक आदि दक्षिण कर्णाटकके देशोमे गया।

यदि हम उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर उक्त वर्णनका भाव देखे तो पता लगेगा कि दिगम्बरी अवस्थामे भगवान् ऋषभदेवने कोक, वैंक, कुटक और दक्षिण भारतमे जिस धर्मका प्रचार किया था, वह वेदोमे निर्दिष्ट व्रात्यधर्म था, जो भारतवर्षके प्राचीनतर मूल निवासियो की नाग, यक्ष, द्रविड और राक्षस नामक जातियोमे प्रचलित हुआ। व्रात्य का अर्थ था व्रतमे दीक्षित।

अथर्ववेदमे व्रात्यके सम्बन्धमें लिखा है—

"व्रात्य आसीदीयमान् एव स प्रजापति समैरयत्।" (१५.१)

अर्थात् व्रात्यने अपने पर्यटनमे प्रजापतिको शिक्षा और प्रेरणा दी। सायणने इस पदकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"कचिद्विद्वत्तम महाधिकार पुण्यशीलं विश्वसंमान्यं
कर्म परैर्ब्राह्मणविद्विष्ट व्रात्यमनुलक्ष्य वचनमिति मन्तव्यम्।"

अर्थात् यहाँ उस व्रात्यसे मन्तव्य है, जो विद्वानोंमें उत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील और विश्वपूज्य है और जिससे कर्मकांडी ब्राह्मण विद्वेष करते हैं।

इन व्रात्य मुनियोका जहा जहा वर्णन आया है, उसमें इनकी यही विशेषता दिखायी है कि वे शरीरसे निर्मोह, योगियोकी तरह विचरते थे और इन्द्रियनिग्रह, त्याग, त्रिगुप्ति (मन, वचन, कायको सयत रखने) का उपदेश देते फिरते थे। यह वर्णन ऊपर दिये गये भगवान् ऋषभदेवके

वर्णनसे मिलता जुलता है, जिससे प्रकट होता है कि यह उनके व्रतमे दीक्षित साधुओ और मुनियोका वर्णन है। यह वेदको नही मानते थे, यह भी स्पष्ट है।'

सम्भवतया इन्ही व्रात्योका वेदमे 'अन्यव्रत' नामसे उल्लेख है, जिनके विरुद्ध बहुत चुभती हुई भाषाका प्रयोग किया गया है—

"अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः
त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ।"

यह हमारा अपमान करनेवाला दस्यु अकर्मा (गृहत्यागी), अन्यव्रत (दूसरे व्रत-धर्ममें दीक्षित) और अमानुष (दूसरी जातिका) हैं। हे इंद्र, तुम इस शत्रुका, इस दासका, वध करो।

इस प्रसगसे यह मालूम होता है कि दक्षिण देशका साधारण जन-समाज, विशेषकर वैदिक कालसे पूर्वके मूल निवासी बहुसख्यामे व्रात्योके अनुयायी थे और उनका प्रभाव वैदिकोमे भी इतना अधिक बढ गया था कि अपनी आस्था और कर्मकांडको अक्षुण्ण रक्षणमे तत्पर याज्ञिक पुरोहित इस प्रभावके आघातसे विचलित हो गये थे।

वैदिक धर्मकी मान्यताको अस्वीकार करनेवाले एक और वर्गका उल्लेख वेदोमे आता है, जिन्हे 'पणि' कहा गया है। बादमे इनका नाम 'पणिक' और उसके बाद 'वणिक' हो गया मालूम होता है। ये लोग व्यापारी थे। हमारे साहित्यमे पणस् (बेचने योग्य वस्तु), पण्यशाला (दूकान या हाट), पण्यपति (व्यापारी) आदि शब्द इसी अर्थके द्योतक हैं। पणियो के सम्बन्धमे वेदमे जिस प्रकारका उल्लेख आता है, उससे धारणा बनती है कि ये लोग पूर्वी समुद्रके किनारेके आसपास रहते थे। बल इनका वीर नेता था। यह वैदिक देवता इन्द्रको नही मानते थे। ये धन कमाने तथा पशु-सग्रहमे निपुण थे।

व्यापारकुशल पणियोने पूर्वी और दक्षिणी समुद्रके सुदीर्घ तटोपर बस्तिया बसायी और अन्य देशोसे व्यापार सबध जोड़ा था। वेदमे एक मनोरजक उल्लेख मिलता है कि जब पणि लोग बृहस्पतिकी गाये उठा ले गये, तो इन्द्रने सरमा नामक दूतीको पता लगानेके लिए भेजा।

सरमाने पता लगा लिया और पणियोसे कहा–'इन्द्रने गाये मगायी है, वापिस दो।' इसपर पाणियोने उत्सुक होकर पूछा–

"कीदृक् इन्द्रः सरमे कादृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।"

हे सरमे, जिस इन्द्रकी दूती बनकर तुम इतनी दूरसे आयी हो, वह इन्द्र कैसा है और उसकी सेना कैसी है?

अर्थात् पणि लोग इन्द्रको जानते ही नही थे। इसीलिए इन्हे 'अनिन्द्र' (इन्द्रको न माननेवाले) कहा है।

"दहामि सयहीरनिन्द्रा।"

जो अन-इन्द्र है, उन्हे जला देता हू और उनका सहार कर देता हूँ।

पणि लोग यदि मूल रूपसे आर्य नही थे, तो भी इतना तो सिद्ध होता है कि आर्योसे इनका सम्पर्क था। यह सम्पर्क अमैत्रीका था, जिसका प्रधान कारण पणियोकी अवैदिकीय मान्यता और इन्द्रकी अवहेलना था। यह अवैदिकीय सस्कृति इन पणियोको कहासे मिली?

इस प्रश्नका उत्तर हमे इस बातसे मिलेगा कि पणियोका सम्पर्क आर्योके अतिरिक्त अन्य किसी जातिसे था या नही। यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि वेदमे जितना भूगोल मिलता है अथवा वैदिक जातिका क्रीडास्थल जितना क्षेत्र था, भारतवर्ष उतना ही नही था। पूर्वी और दक्षिणी समुद्रके आसपास विन्ध्यगिरिकी उपत्यकाओमे और दक्षिण भारत मे एक प्राचीनतर सस्कृतिका प्रचलन था, जिसके उत्तराधिकारी उस देश-खडकी मूल जातिया यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और द्राविड आदि थी। इन जातियो और उपजातियोकी सभ्यताको आज 'द्रविड सभ्यता'के सामूहिक नामसे उपलक्षित किया जाता है। उस सभ्यताका कोई वेद जैसा प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशमे नही आया है। शताब्दियोसे उत्तर भारतका जो महत्त्व रहा है, उसने दक्षिण भारतके वैभवको उसकी विशाल सस्कृति को, उपेक्षाके तमिस्र पटसे आवृत रखा है। वैदिक कालमे इन जातियोका प्रभाव उपेक्षणीय नही था, यह इसी बातसे प्रगट है कि वेदके सैकडो मन्त्रोमे अत्यन्त करुण रूपसे प्रार्थना की गयी है कि वेदमे आस्था न रखनेवाले, यज्ञ-विरोधी, 'व्रात्यो' 'अन्यव्रतो' और 'अनिन्द्रो'का विनाश हो, उनसे हमारी

रक्षा हो और वे हमारा अपमान न करे आदि। वेदेतर सस्कृतिके अनुयायी द्रविडोका प्रभाव पणियोपर पडा था और इसीलिए पणि भी 'अनिन्द्र' (इन्द्रको न माननेवाले) हो गये थे। श्रीसम्पूर्णानन्दने 'आर्योका आदि देश'मे लिखा है—

"राजपूताना समुद्रके दक्षिणी-पश्चिमी तटपर इन पणियोको वह द्रविड मिले होगे, जो यहा पहलेसे बसे थे। इनके साथ मिलकर राष्ट्रमे भी सकरता आयी होगी और सस्कृतिमे भी।"

यह इतिहास-सम्मत है कि पणि लोग समुद्र पारकर दूर देशोमे गये है और वहा अपनी आर्थिक और सास्कृतिक प्रभुता स्थापित की है।

सुमेर, अक्काद, ईराक, ईरान, यूनान और बैबिलोन आदि प्राचीन सभ्यताओके सबधमे गत एक शताब्दीमे यूरोपके विद्वानो, अन्वेषकों और पुरातत्त्वविदोने जो अध्ययन किया है, उसका मूलाधार वह पुरातत्त्व-सामग्री है, जो उक्त देश-प्रदेशोकी खुदाइयोमे समय समयपर प्राप्त हुई है। यहासे प्राप्त मूर्तियोके गठन, आकृति और शैलीमे दक्षिण भारतकी आकृति और शैलीकी समानता देखकर विद्वान् विस्मित थे। समझमे नही आता था कि सुमेरु, अक्कादसे लेकर दक्षिण भारततक व्याप्त यह सास्कृतिक प्रभाव और सम्पर्क कब कहासे प्रारम्भ हुआ और कहा समाप्त हुआ। भारतवर्षमे जो स्तूप, मूर्तिया और स्थापत्यके भग्नावशेष मिले, वह दो ढाई हजार वर्षो से अधिक पुराने नही थे। यह सब मौर्यकालीन सामग्री थी, जब कि उक्त विदेशी प्रदेशोमे प्राप्त पुरातत्त्व-सामग्री ४–५ हजार वर्ष पुरानी थी। बीचकी कडी हमे मिल नही रही थी।

दक्षिण भारत और सुमेर, अक्कादकी मूर्तियोमे जो साम्य है, उसकी व्याख्या करनेवाली मध्यवर्ती कडी हमे महेंजोदरो और हरप्पाके भग्नावशेषोमे मिल गयी। महेजोदरो (सिन्धमे लरकाना जिला) की खोज और खुदाईने भारतीय इतिहासके मूर्त पुरातत्त्वपर लगभग ६ हजार वर्षो की प्राचीनताकी छाप लगा दी। महेंजोदरोके प्रकाशमे आनेसे पूर्व हमारा पुरातत्त्व–अध्ययन मौर्यकालीन कलासे प्रारम्भ होता था। अब हम भी

सुमेर, अक्काद और वैविलोनियनोके मुकाबलेमे अपने पटहरोकी वुजुर्गी से भी अपना वडप्पन प्रमाणित कर सकते है ।

सर जान मार्शलने महेंजोदरोकी खुदाइयोका विस्तृत विवरण 'महेंजोदरो एण्ड इण्डस सिविलिजेशन' नामक ग्रन्थकी तीन जिल्दोमें किया है । मार्शलने महेजोदरोकी खुदाईके विभिन्न स्तरोमे प्राप्त मूर्तियो और सिक्कोके चित्र प्रकाशित किये है । यो तो ये सभी चित्र भारतीय सस्कृतिके अध्ययनके लिए अनिवार्य और अमूल्य है, किन्तु हमारे प्रयोजनके लिए वहासे प्राप्त कुछ मूर्तियोका उल्लेख करना अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है । पहली जिल्दकी १२वी प्लेटकी १३, १४, १५, १८, १९ और २२वी टैब्लेट्स (टिकडो)मे जो मूर्तिचित्र दिये गये है, वह ऐसे योगियोके है, जो कायोत्सर्ग अर्थात् खडी मुद्रामे है, ध्यानमग्न है और नग्न दिगम्बर है । मूर्तिया जटा युक्त है । कही सिरपर, कही पार्श्वमे त्रिशूल बने है । हाथी, हिरण, वैल, सिह आदि पशुओकी मूर्तिया अकित है । धर्मचक्र और विनीत भावसे वैठे उपासक, उपासिकाओके चित्र भी अकित है । मूर्तियोके दिगम्बर अवस्थामे होनेके कारण तत्काल ही धारणा बनती है कि यह जैन-मूर्तिया है । इस धारणाकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि कायोत्सर्ग अर्थात् खडी अवस्थामे ध्यानमग्न मूर्तिया, जिनके आजानुबाहु नीचे लटके हुए हो, पलके इस प्रकार नीचे झुकी हुई हो कि दृष्टिका केन्द्र नाकका अगला भाग हो, जैन-मूर्तियोकी तक्षणशैलीकी विशेषता है । दक्षिण भारतमे श्रवण वेलगोलामें ऋषभ-पुत्र भरतके छोटे भाई वाहुवलिकी विशाल कायोत्सर्ग, दिगम्बर मूर्ति, जो 'गोमट्ट' नामसे प्रसिद्ध है, इस ध्यानमग्न मुद्राका उदाहरण है । महेजोदरोसे प्राप्त मूर्तियोकी एक और विशेषता यह है कि इन मूर्तियोपर या तो फणधारी नाग अकित है या इनके उपासकोके सिरपर नागफण बनाकर यह लक्षित किया गया है कि ये उपासक नागवशी है । जैनमूर्तियोमे तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्तियोके सिरपर नागफणका आच्छादन दिखाया जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि तपस्याके समय जब भगवान् पार्श्वपर उनकी अहिंसक सस्कृतिके विरोधी कमठ नामक

साधुने उपसर्ग किया था, तो नाग-जातिके राजा या नेता धरणेद्रने रक्षा की थी। नागफण इसीका प्रतीक है। यह नागजाति, जिसे आज नागा कहा जाता है, भारतके प्राग्वैदिक कालके निवासियोकी वशज है, जिनकी सस्कृति वैदिक सस्कृतिसे भिन्न थी। हो सकता है, पार्श्वनाथ इसी नाग जातिकी विभूति हो। जैन-मूर्तियोपर गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि संस्कृति-रक्षक शासनदेवता और २४ तीर्थ करोके प्रतीक चिन्ह बैल, हाथी, घोड़ा, हिरण, सर्प, सिंह आदिके चिन्ह तथा उन चैत्य वृक्षोका अकन रहता है, जिनका सवध प्रत्येक तीर्थंकरके ध्यानस्थलसे है अर्थात् उस वृक्षसे, जिसके नीचे ध्यान, धारणा करते हुए उन्होने कैवल्य प्राप्त किया। महेजोदरोकी मूर्तियोमें इन प्रतीक-चिन्हो और चैत्य-वृक्षोके अकनकी बहुलता है। वहुत सम्भव है कि महेंजोदरोमे प्राप्त जटाजूटधारी दिगम्बर मूर्ति उन्ही आदि ब्रह्मा ऋषभकी हो, जिनका उल्लेख श्रीमद्भागवतके आधारपर इस लेखमे अन्यत्र किया गया है। ऋषभ भगवान्‌का चिह्न वृषभ (बैल) है। यही बैल नन्दी रूपसे शिवका चिह्न है। ऋषभनाथके सबधमे भारतीय साहित्य मे यह भी मान्यता है कि उन्होने समाजकी व्यवस्था की और कृषिकर्मकी शिक्षा दी। कृषिके लिए बैलकी जो अद्भुत महत्ता है, उसके उपलक्षमे उसे देशका 'शिव' (कल्याण) मान लिया गया है और उस चिह्नको ऋषभ भगवान्‌की मूर्तिके साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। ऋषभने जिस त्रिभेद-सयम अर्थात् मन, वचन, कायको वशमे रखनेका उपदेश दिया है, वही उनका त्रिदण्ड या त्रिशूल है। महेजोदरोकी ध्यानस्थ योगी मूर्तियोके सिरपर अवस्थित जिस त्रिकोणको जॉन मार्शलने सीग समझा है, वह उक्त त्रिशूल हो सकता है। यह बहुत सम्भव है कि कालान्तरमे ऋषभ और शिवके दो रूपोकी अलग अलग मान्यता लेकर दो प्रकारकी मूर्तिया बन गयी हो और ऋषभके व्रात्य सम्प्रदायसे शिव या रुद्रका सम्प्रदाय भिन्न हो गया हो।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि महेजोदरो जिस प्राचीनतम सस्कृति का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करता है, उसमे ध्यानस्थ दिगम्बर योगियोकी या शिवकी प्रधानता है, उसमे यज्ञ और हवनकी अपेक्षा मूर्तिपूजाको

उपासनाका माध्यम माना है। वैदिक इन्द्रादिकी मुख्यता नहीं है। गायकी अपेक्षा बैलका अधिक महत्त्व है। मनुष्याकृतियों और मूर्तियोंका साम्य वैदिक आर्यकी अपेक्षा दक्षिणके द्राविड़ोंसे अधिक है। यह इस बातका प्रमाण है कि महेंजोदरोकी संस्कृति जिस सुमेर, अक्काद और चाल्डियन संस्कृतिका पूर्व रूप (अथवा वाडेलके अनुसार उत्तर रूप) है, उसका सीधा संबंध दक्षिण और पूर्व भारतकी मूल जातियोंकी संस्कृतिसे बैठता है, जिनकी सभ्यता वैदिक सभ्यतासे अधिक उन्नत और समृद्ध थी और जिनका सांस्कृतिक विकास अधिक वैज्ञानिक, प्रकृत और उच्च स्तरपर था। यह कैसे संभव है कि इस संस्कृतिने वैदिक संस्कृतिके ताने-बानेको अपने रंगमें न रंग लिया हो और यज्ञानुष्ठानके अतिरिक्त जो दार्शनिकता, नैतिकता और मानवता वेदोंमें ध्वनित होती है, वह इस संस्कृतिसे न प्रभावित हो। वैदिक कालमें कई सांस्कृतिक युग हुए होंगे और आचार-विचारमें गम्भीर परिवर्तन हुआ होगा।

आज हम पाते हैं कि स्वयं वैदिक धर्मको माननेवाले हिन्दुओंकी धार्मिक आस्था, आचार-विचार और दार्शनिक दृष्टिकोणमें वैदिककालीन संस्कृति के तत्त्वोंका अभाव है। कुछ उदाहरण लीजिये। वैदिक परम्परामें इन्द्रकी उपासना मुख्य है, आज शिव या दुर्गाकी पूजा होती है। वेदोंमें शिवपुत्र गणेश या विनायकको उपद्रवी कहा गया है, पर आज बिना गणेश-वन्दनाके कोई मंगलकार्य प्रारम्भ ही नहीं हो सकता। आजकल गंगाको पतितपावनी और मोक्षदायिनी कहा जाता है, वैदिक कालमें गंगाका कोई महत्त्व ही नहीं था। उस जमानेमें सिन्धु और सरस्वतीकी धूम थी; आज हिमालय विश्वका महान् पर्वत है और शिवधाम है। वैदिक युगमें वह आंखों में ही नहीं चढ़ता था—उस समय विन्ध्यकी महत्ता थी। वैदिक लोग पुण्य करके यमपुरी जाते थे, आज वह पापियोंका नरक-धाम है। आज यदि कोई कुत्तोंपर बोझ लादे, गधोंसे रथ खिंचवाये और घोड़ोंसे हल चलवाये, तो उसे लोग पागल कह दें और एक विनोदपूर्ण तमाशा लग जाय, किन्तु वैदिक आर्योंकी यह साधारण दिनचर्या थी। वैदिक युगमें उष्णीश (पगड़ी)

और द्रापी (बंडी)का फैशन था। आज हम टोपी और कुरता पहनते है, पर यह नही जानते कि टोपी और कुरता किस भाषाके शब्द है और कहासे आये।

कलाके क्षेत्रमे हम भारतीय सगीतको विश्व-सगीतमे बहुत ऊँचा स्थान देते है और अभिमानके साथ कहते है कि हमारा सगीत सामवेदसे उत्पन्न हुआ। स्वय सामवेदकी इतनी महिमा है कि भगवान् कृष्णने अपने लिए उसे ही चुना—"वेदाना सामवेदोऽस्मि"—वेदोमे मै सामवेद हूँ—किन्तु आज हमारी सगीतपद्धति जिस षड्ज, ऋषभ, गधार—सा रे ग म आदि सप्त स्वरोपर अवलम्बित है, उन सात स्वरोका सामवेदमे कही उल्लेख भी नही मिलता। जिस ॐ से सगीतकी उत्पत्ति हुई है, वह ॐ वैदिक सस्कृति मे वेदेतर सस्कृतिसे आया, यह भी मान्यता है। नाटकके परदेके लिए जब हम सास्कृतिक शब्दका प्रयोग करते है तो कहते है 'यवनिका'। यह यवनिका उन यूनानियोकी देन है, जो यवन अर्थात् आयोनियाके निवासी थे।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि भारतीय धर्म, दर्शन और सस्कृतिका वर्तमान रूप, आजके भारतीय समाजका सगठन और आजके आचार-विचार तथा व्यवहारका प्रचलन हजारो वर्षोकी प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक क्रिया-प्रतिक्रियाओका फल है। वैदिककालीन आर्य और उनसे पुराकालीन द्रविड जातियोके वश और उनकी विभिन्न मान्यताएँ अनेक धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रान्तियोके आवर्तनो और प्रत्यावर्तनोमे घुल-मिलकर एक हो गयी है। सहस्राब्दियोके अन्तर्जातीय सम्पर्क, चिन्तन और श्रमसे जिस सस्कृतिकी उपलब्धि हमे हुई है, उसे हम केवल भारतीय विशेषणसे ही व्यक्त कर सकते है। उसे मात्र हिन्दू सस्कृति कहना उसकी सीमाको सकुचित करना है। और उसे वैदिक सस्कृतिके अर्थमे समानार्थक बनाना तो सर्वथा ही असगत है। राष्ट्रिय दृष्टिसे जैन, वैदिक और बौद्ध, सब हिन्दू है; क्योकि 'आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्त' सबकी पुण्यभूमि और पितृ-भूमि समान है। सास्कृतिक दृष्टिसे तीनो संस्कृतिया भिन्न है। तीनोके योगदानसे निर्मित संस्कृतिको हिन्दू सस्कृति कहा जा सकता है। यह

संग्राहिका शक्ति ही हिन्दू संस्कृतिकी विशेषता है। वेदोंको अप्रमाण माननेवाले और हिंसामय वैदिक यज्ञके विधानके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले तथागत बुद्धको भी हिन्दू संस्कृतिने अवतार-रूप माना है'—

"निन्दसि यज्ञविधेरहरह श्रुतिजातं सदयहृदयदर्शितपशुघातम्,
केशव धृत-बुद्धशरीर, जय जगदीश हरे।" (गीतगोविन्द)

जिस दर्शनने हम भारतीयोंको यह उदार 'अनेकान्त' दृष्टि दी, उसका विकास प्राग्वैदिक कालसे लेकर अथर्ववेदमें वर्णित यम-नचिकेता-संवाद तक किस रूपमें हुआ, उपनिषदोंकी अनुपम आत्मगवेषणा द्वारा प्रस्फुटित होकर उसने आधुनिक चिन्तनको किस प्रकार समृद्ध बनाया, यह अध्ययन का एक और पहलू है, जिसकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट हुआ है।

वैदिक वाङ्मयको वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करनेपर कितने ही अकल्पित तत्त्व हाथ लगेंगे। जिस सत्यको परतप कहा है और जिसकी प्राप्ति के लिए भारतीय मनीषियोंने आजीवन साधना की है, उसकी खोजके लिए उद्यत सत्यान्वेषीको सबसे पहले वैदिक साहित्यके देव-द्वारपर आकर विनत होना होगा, क्योंकि आजके दिन मूर्त ज्ञानकी पहली किरण इसी प्राचीनतम उपलब्ध साहित्यसे प्रस्फुटित होती है।

इस वक्तव्यमें मैंने जो कुछ कहा है, उसकी मुख्य प्रेरणा मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ और उसके साथ जानेवाली आमुखसे मिली है। इसके लिए मैं श्री पं० रामगोविन्द त्रिवेदी और श्रीसम्पूर्णानन्दजीके प्रति आभारी हूँ। जो दृष्टिकोण उक्त दोनों विद्वानोंने उपस्थित किया है, वह एक निश्चित प्रकारकी मान्यताओंका प्रतिनिधित्व करता है। वैदिक साहित्यके संबंध में दूसरे कुछ दृष्टिकोणोंकी ओर संकेत कर देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। मेरा वक्तव्य पाठकोंको यदि किसी निष्कर्षकी ओर ले जाने लगे, तो मेरा निवेदन है कि वे वहां पहुँचनेसे पहले सतर्क हो जायँ। मैं स्वयं अभी निश्चित निष्कर्षोंपर पहुँचनेको तैयार नहीं हूँ।

डालमियानगर
१४-१०-५०

लक्ष्मीचन्द्र जैन;
सम्पादक, लोकोदय-ग्रन्थमाला

वैदिक साहित्य

विषय-प्रवेश

वेदोपर हिन्दूजातिकी अनन्त कालसे अविचल श्रद्धा है। पृथिवीके किसी भी देशके किसी भी कोनेमे रहनेवाला कोई भी आस्तिक हिन्दू अपने धर्मका-मूल ग्रन्थ वेदोको बताता है। यह धारणा आजकी नही, जबसे आर्य-जातिका अस्तित्व है, तबसे है। अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोसे लेकर तन्त्रशास्त्रके ग्रन्थोतकमे वेदोकी अपार महिमाके अमर गीत गाये गये है। यहीतक नही, हिन्दुओके अधिकाश प्राचीन ग्रन्थ वेदोको उसी तरह नित्य मानते है, जिस तरह परमात्माको।

कौषीतकि-ब्राह्मण (१०.३०), **ऐतेरयब्राह्मण** (३.६) आदिका कहना है कि वेद-मन्त्र देखे गये है। सूक्तोके ऊपर जो ऋषियोके नाम रहते है, वे ऋषि मन्त्ररचयिता नही, मन्त्र-दर्शक है। निरुक्तकार यास्कने लिखा है—**"ऋषिर्दर्शनात्"** (**निरुक्त, नैगमकांड** २.११) अर्थात् मन्त्रोको देखनेवालेको ऋषि कहा जाता है। कात्यायनके **'सर्वानुक्रम-सूत्र'** मे ऋषिको स्मर्त्ता वा द्रष्टा बताया गया है। याज्ञवल्क्यका भी यही मत है। श्रीशकराचार्यने वेदान्तदर्शनके **शारीरक-भाष्य** (२.३.१) मे वेद-नित्यता-प्रतिपादक अनेक वचनो और तर्कोको उपन्यस्त किया है।

निरुक्तकी ही तरह आरण्यको, उपनिषदो, कल्पसूत्रो, वेदाग-ग्रन्थो और प्रातिशाख्योने भी वेदोकी नित्यता स्वीकार की है। सबसे बडे तर्क-समुद्र दर्शनोने भी वेदोको नित्य और अपौरुषेय बताया है। और तो और, ईश्वर तकको न माननेवाले साख्य-मीमासको आदिका भी यही सिद्धान्त

है। मनु महाराज तो वेद-नित्यताके प्रचण्ड समर्थक है ही। मनु-स्मृतिके टीकाकार कुल्लूक भट्टकी तो धारणा है कि प्रलयकालमें भी परमात्मामें वेद अवस्थित रहते है—'प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेद-राशि स्थितः।" मनुजीने एक स्थानपर कहा है कि वेद शब्दोसे ही सभी वस्तुओके नाम रखे गये, इसलिये वस्तुओ और विषयोके नामोको वेदोमे देखकर इतिहासकी कल्पना नही की जा सकती है। वेदोक्त नामोको लेकर सासारिक व्यक्तियो और पदार्थोंके नाम पीछेके ग्रन्थोमे रखे गये तथा इन व्यक्तियो और पदार्थो-ने ही उत्तरकालीन ग्रन्थोमे इतिहासकी सृष्टि की—वेदोमे तो इतिहासकी गन्ध भी नही। इस तरह मनुजीने वेदोको नित्य और ज्ञानभाण्डार वताया है और वेद-शब्दोकी प्रामाणिकताके आगे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोको भी तुच्छ बताया है। मनुजीने वेद न माननेवालेको ही नास्तिक वताया है, ईश्वर न माननेवालेको नही। असख्य हिन्दुओकी यह भी धारणा है कि वेद हिरण्यगर्भ (Cosmic Egg) से सम्भूत है। अधिकाश सना-तनियो और आर्यसमाजियोका तो कमसे कम ऐसा ही दृढ विश्वास है। उनके इस विश्वासको अधिकाश सस्कृत-साहित्य पुष्ट करता है। वौद्धो और जैनोमे भी वेदज्ञाता वौद्धो और जैनोकी वडी प्रतिष्ठा मानी गयी है। स्वय वुद्ध और तीर्थकर महावीर स्वामी वेदोके विद्वान् थे। सिखोमें भी वेदोका यथेष्ट सम्मान है। गुरु गोविन्द सिंह वेदोके अनन्य अनुरागी थे।

इस तरह देखा जाता है कि हिन्दूजातिके हृदयपर वेदोका, अगम्य कालसे, अखण्ड साम्राज्य स्थापित है। वेदोकी उच्छिन्नताकी सम्भावना देखकर हिन्दूजातिकी राजकुमारीतक "को वेदानुद्धरिष्यति" की विभी-षिकामयी चिन्तामे मूर्च्छित हो जाती है और कुमारिल भट्टके समान महा-विद्वान् हथेलीपर प्राणोको रखकर विरोधियोकी विकट वाहिनीके सामने कूद पडते है। "वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते"की दारुण दुर्दशा देखकर शिवाजीके समान प्रतापी वीर तलवारोकी नगी धारोपर नाचने लगते है और वेदोकी उपेक्षा देखकर स्वामी दयानन्द जैसे त्यागी देशभक्त वेद-

प्रचारमे अपने जीवनको ही समर्पित कर देते है। सचमुच हिन्दू वेदोको प्राणोसे भी बढकर समझते है। धार्मिक हिन्दू वेदोकी ज्ञान-गरिमापर मुग्ध है, ऐतिहासिक हिन्दू उनकी प्राचीनतापर आसक्त है। किसी भी दशामे हिन्दूजातिका हृदय टटोलिये, उसमे वेद—और वेदकी विमल और व्यापक, सुन्दर और सरस, मधुर और मजुल ध्वनि मिलेगी।

वेद हिन्दूधर्मकी आशास्थली है, हिन्दूत्वकी सजल वाटिका है, हिन्दू सभ्यता और सस्कृतिके सुदृढ दुर्ग है। इसीलिये हिन्दूधर्मका लक्षण करते हुए **लोकमान्य तिलकने** ठीक ही कहा है—**"प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु।"** वस्तुत. वेदोको एकमात्र प्रमाण मानना ही हिन्दूधर्मको मानना है, क्योकि वेद ही हिन्दूधर्मके मूल है।

वेदोंका निर्माण-काल

परन्तु सभी हिन्दू वेदोकी नित्यताके कायल नही है। कुछ लोगोका मत है, "भाषा-विज्ञानके अनुसार अपनी अभावपूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करते है और भाषाएँ बदलती रहती है। स्वय वैदिक भाषा कितने ही रूपोमे आ चुकी है। ऋग्वेदसहिता और अथर्ववेदसहिताकी भाषाओमे पर्याप्त भिन्नता है। शतपथब्राह्मण और गोपथब्राह्मणकी भाषा-शैलीमे वडा भेद है। यजुर्वेदकी तैत्तिरीयसहिता और माध्यन्दिनसहिताकी भाषा-ओमे भी मार्मिक भिन्नता है। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक सहिताओकी रचना समय-समयपर हुई है, एक साथ नही।"

भाषा-विज्ञान-वेत्ता (Philologists) कहते है कि 'मनुष्यकी स्वाभाविक ध्वनियोकी नकलपर ही शब्दोकी सृष्टि हुई है। जिस समय माता बच्चेको दूध पिलाने लगती है, उस समय यदि बच्चेकी इच्छा दूध पीनेकी नही होती, तो वह स्वभावत "नि नि" करने लगता है। इसी "नि नि" की नकलपर ना, न, नो, नाट, नही आदि शब्दोकी सृष्टि हुई है। मनुष्य श्लेष्मा फेंकते समय थू, पिच आदि ध्वनि करता है, इसलिये इसकी

नकलपर थूक, पिचपिच आदि शब्दोकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार कुत्तेके भोकनेपर भो-भो, घोड़ेके हिनहिनानेपर हिन-हिनाहट, मेढकके टर्रानेपर टरटराहट आदि शब्दोकी सृष्टि हुई। एक ही विषयके लिये विभिन्न जातियोमे विविध ध्वनिया भी हुआ करती है। अंग्रेजीमें पिचके लिये 'स्पिट' और माताके लिये 'मामा' ध्वनिया है। इस प्रकार विविध जातिगत ध्वनियोकी विभिन्नता, विभिन्न समयोके जल-वायुकी विभिन्नता और विविध अनुकरणोकी विभिन्नताके कारण विविध सकेतो, शब्दो और भाषाओकी सृष्टि हुई है। फलत वैदिक भाषा हो या कोई भी भाषा हो, इसी अनुकरण-प्रणालीपर मनुष्यके द्वारा ही बनायी गयी है। मनुष्य ही भाषाको भी बनाता है और गायत्री, जगती आदि छन्दोकी रचना करके उनमे वैदिक मन्त्रोको निबद्ध करता है। इसलिये वेद, कुरान वा बाइबिल मानव-निर्मित ग्रन्थ है—इलहामी वा छन्दो, शब्दो और अक्षरोके रूपोमें समाधि-दशामें प्राप्त नही है।'

ऐतिहासिकोका ऐसा ही दृष्टिकोण है और इसीके अनुसार उन्होने वैदिक साहित्यके ग्रन्थोका निर्माण-काल निश्चित किया है।

ब्रिटेनकी "Sacred Books of the East" पुस्तकमालामें मैक्समूलरने ऋग्वेद (शाकल-सहिता) को छपाया है। वे ऋग्वेदका रचनाकाल १२०० बी० सी० अर्थात् ईस्वी सन्से १२०० वर्ष पहले बताते है। साथ ही वे यह भी कहते है कि 'यह आनुमानिक तिथि है। वेदोके आरम्भिक कालका पता लगाना किसीके लिये सरल कार्य नही है। कदाचित् ही कोई इस बातका पता लगा सके कि वेदोका बनना कबसे शुरू हुआ।' कोलब्रूक, विलसन, कीथ आदिकी राय मैक्समूलरसे मिलती है।

हाग, आर्कविशप प्राट आदि ऋग्वेदका काल २००० बी० सी० मानते है। किन्तु कोई प्रामाणिक तर्क नही, कोई अखण्डनीय युक्ति नही। सम्भवतया इनकी युक्तिका आधार यह है कि 'बाइबिलके अनुसार ६

हजारसे ७ हजार वर्षोके भीतर ही सृष्टि हुई है, इसलिये इसके भीतर ही कोई भी पदार्थ रखा गया होगा।'

कल्पसूत्रोके विवाह-प्रकरणमे "ध्रुव इव स्थिरा भव" वाक्य आया है। इसपर प्रसिद्ध जर्मन ज्योतिषी जैकोबीने लिखा है कि 'पहले ध्रुव तारा अधिक चमकीला था और स्थिर था। इसकी इस अवस्थाकी तिथि ईसासे २७०० वर्ष पूर्वकी है।' इस तरह कल्पसूत्रोका निर्माण-काल ४७०० वर्षोका हुआ। ज्योतिर्विज्ञानसे अर्थात् नक्षत्रो और ग्रहोकी आकशीय स्थितिके आधारपर जैकोवीने वेदोका निर्माण-काल ६५०० वर्षोसे अधिक सिद्ध किया है।

लोकमान्य वाल गगाधर तिलक, रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर, शकर पाण्डुरग पण्डित, शकर बालकृष्ण दीक्षित आदिने विदेशियोका अन्धानुकरण छोडकर स्वय वेदोका कालान्वेषण किया है।

लो० तिलकने खोज की कि ब्राह्मण-ग्रन्थोके समय कृत्तिका नामक नक्षत्रसे नक्षत्रोकी गणना होती थी और कृत्तिका नक्षत्र ही सब नक्षत्रोमे आदि गिना जाता था। उन दिनो कृत्तिका नक्षत्रमे ही दिन-रात वराबर (Vernal Equinox) होते थे। आजकल २१ मार्च और २३ सितम्बरको दिन-रात वरावर होते है और सूर्य अश्विनी नक्षत्रमे रहता है। खगोल और ज्यौतिषके सिद्धान्तोके अनुसार यह परिवर्तन आजसे ४५०० वर्ष पूर्व हुआ। इसलिये ४५०० वर्ष पहले ब्राह्मण-ग्रन्थ बने।

मन्त्र-सहिताओके समय नक्षत्रोकी गणना मृगशिरासे होती थी मृगशिरा ही सबसे पहला नक्षत्र गिना जाता था और इसी नक्षत्रके सूर्यमे दिन-रात वरावर होते थे। खगोल और ज्यौतिषके सिद्धान्तानुसार आजसे ६५०० वर्ष पहले यह स्थिति थी। फलत सहिताएँ ६५०० वर्ष पहले वनी। लोकमान्यके मतसे २००० वर्षोमे सारे मन्त्र रचे गये। इस तरह

कुछ प्राचीन ऋचाएं ८५०० वर्षोंकी है। मृगशिरामे वसन्त-सम्पात होना ही, इस दिशामे, लोकमान्यकी सबसे बडी युक्ति और आधार है।

श्रविष्ठा (धनिष्ठा) मे रात-दिन बराबर होनेका उल्लेख पाकर लोकमान्यने मैत्रायणीय उपनिषद्का रचनाकाल आजसे प्राय ३००० वर्ष पूर्वका माना है। लोकमान्य और शकर बालकृष्ण दीक्षितने वेदाग ज्योतिषका रचनाकाल ई० सन्से १४०० वर्ष पूर्व सिद्ध किया है।

अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) के समय ग्रीक विद्वानोने अनेक देशोकी वशावलियोका जो सग्रह किया था, उनके अनुसार चन्द्रगुप्त तक १५४ राजवश ६४५७ वर्ष भारतमे राज्य कर चुके थे। आरियानके मतसे चन्द्रगुप्त तक १५३ वश ६०४३ वर्ष तक राज्य कर चुके थे। इन सारे राजवशोके बहुत पहले ऋग्वेद बन चुका था। इस तरह ऋग्वेदका रचना-काल ८००० वर्षका हुआ।

पूनाके नारायण भवनराव पावगीने भूगर्भशास्त्रके प्रमाणोके आधार पर ऋग्वेदीय निर्माणकाल ६००० वर्षोका सिद्ध किया है।

ऋग्वेद (१० १३६ ५) मे पूर्व और पश्चिम समुद्रोका उल्लेख है। पूर्व समुद्र पजाबके ठीक पूर्वमे समस्त गागेय प्रदेशको आच्छादित करके अवस्थित था। इसके भीतर ही पाचाल, कोसल, वत्स, मगध, विदेह, अग और वग लुप्त और गुप्त थे। ये सारे भूभाग समुद्र-गर्भमे थे। पश्चिम समुद्र कदाचित् अरब सागर था।

ऋग्वेदके दो मन्त्रो-(१० ४७ २ और ९ ३३ ६) में चार समुद्रोका उल्लेख है। इस प्रकार आर्य-निवासके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चार समुद्र थे। उत्तरी समुद्र वाह्लीक और फारसके उत्तरी भागमे तथा तुर्किस्तानके पश्चिमी प्रात मे था, जो प्राकृतिक कारणोसे शुष्क होकर इन दिनो कृष्णह्रद् (Black Sea), कश्यपह्रद् (Caspean Sea), अरालह्रद् (Sea of Aral) और बल्काशह्रद् (Lake Balkash) के रूपोमे अवस्थित है। भूगोल-वेत्ताओने इसका नाम "एशियाई

भूमध्यसागर" रखा है । इसके उत्तरमे आर्कटिक महासागर था । इसके पास ही वर्तमान भूमध्यसागर था । एशियाई समुद्रका तल ऊचा था और यूरोपवालेका नीचा । प्राकृतिक परिवर्तनोने जब वासफरसका मार्ग बना डाला, तब एशियाई समुद्रका पानी यूरोपीय समुद्रमे चला गया और एशियाई समुद्र नष्टसा हो गया । इसके अश उक्त ह्रदोके रूपमे हो गये । दक्षिणी समुद्रका नाम "राजपूताना समुद्र" था (Imperial Cazetteer of India. Vol. I) । इसीमे वह सरस्वती नदी गिरती थी, जिसके तटोपर सैकडो वेद-मन्त्र बने थे । नैसर्गिक कारणोसे राजपूताना समुद्र और सरस्वती सूख गये । आज भी राजपूतानाके गर्भमे खारे जलकी साभर आदि झीले और नमककी तहे मरुभूमिमे विलुप्त राजपूताना समुद्रका साक्ष्य दे रही है ।

एच० जी० वेल्स ने अपने "The outlines of History" ग्रन्थमे पचीस हजारसे पचास हजार वर्षोके ससारका नकशा दिया है । उसमे ऐसे समुद्रोका अस्तित्व पचीस हजारसे लेकर पचास हजार वर्षोके बीच माना गया है । गागेय प्रदेश, सरस्वती और चारो समुद्रोके सम्बन्धमे भूगर्भशास्त्रियोका मत है कि पचीस हजार वर्षोसे लेकर पचहत्तर हजार वर्षोके भीतर ये सब लुप्त, गुप्त और रूपान्तरित हुए ।

इन्ही और ऐसे अन्य प्रमाणोसे अमलनेरकरने ऋग्वेदका निर्माणकाल ६६००० वर्षोका और अविनाशचन्द्र दासने ७५००० वर्षोका माना है ।

प्रोफेसर लौटूसिह गौतमके समान कुछ कट्टर सनातनी ऐतिहासिक तो ऋग्वेदका रचना-काल ४ लाख ३२ हजार वर्षोका बताते है । इनके प्रमाण आप्त-वचन ही अधिक है ।

जिन यूरोपीयोने वैदिक साहित्यके बारेमे लेखनी उठायी है, उन सबने काल-निर्णयपर बडी माथापच्ची की है । वेदोके उपदेश क्या है, उनकी अपूर्वता क्या है, उनका प्रतिपाद्य क्या है, वैदिक सस्कृति क्या है—इन बातोपर कम ध्यान दिया गया है और काल-निर्णयपर अधिक ।

इसी उलझनको समझकर प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ह्वेगलने पहले ही लिख दिया कि "वेद संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और इनका समय नहीं निश्चित किया जा सकता। इनकी भाषा भारतीयोंके लिये भी उतनी ही कठिन है, जितनी विदेशियोंके लिये।" बिलकुल ठीक!

परन्तु सबसे मार्केकी बात लिखी है प्रसिद्ध जर्मन वेद-विद्यार्थी वेबरने। उन्होंने कहा है—'वेदोंका समय निश्चित नहीं किया जा सकता। वे उन तिथियोंके बने हुए हैं, जहाँ तक पहुँचनेके लिये हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं हैं। वर्तमान प्रमाण-राशि हम लोगोंको उन समयोंके उन्नत शिखरपर पहुँचानेमें असमर्थ है।' यह उन वेबर साहबकी राय है, जिन्होंने अनेक वैदिक ग्रन्थ सम्पादित कर छपाये हैं और अपने जीवनका अधिकांश भाग वेदाध्ययनमें बिताया है।

वेद और इतिहास

खोदाईके द्वारा पायी गयी पट्टिकाओं, अभिलेखों, शिलालेखों, ताम्र-पत्रों, प्रशस्तियों आदिसे पुरातत्त्ववेत्ता (Archaeologists) इतिहास-निर्णयका प्रयत्न करते हैं। भारतमें मोहन जो दड़ो (सिन्ध) और हरप्पा (पंजाब) में जो खोदाइयाँ हुई हैं, उनसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व विदित हुए हैं। पाटलिपुत्र, बसाढ (मुजफ्फरपुर), मथुरा, तक्षशिला (अटक), सहेटमहेट (गोंडा), सारनाथ, नालन्दा आदि स्थानोंकी खोदाइयोंसे तो विशेषतः बौद्ध इतिहासपर ही प्रकाश पड़ा है। भीटा (ग्वालियर), पहाड़पुर (राजशाही), अर्जुनीकोटप्पा (मद्रास) आदिकी खोदाइयोंसे हिन्दूइतिहासपर अवश्य कुछ प्रकाश पड़ा है। परन्तु भारतके प्राचीनतम इतिहासके लिए अनेकानेक खोदाइयोंकी आवश्यकता है। उत्खनन-सामग्रीसे प्राचीन और प्रामाणिक इतिहासका कुछ पता चलता है। इसीलिये विदेशोंमें करोड़ों रुपये खर्च करके खोदाइयाँ करायी गयी हैं थोड़ी बहुत खोदाईसे तो कुछ ही देश बचे हैं। मिश्र (ईजिप्ट) की

खोदाईमे सर्वाधिक अर्थ-व्यय किया गया है । हरनर साहवने मिश्रकी नाइल वा नील नदीके किनारे ६० फीट तक खोदाई करायी है। इसमे ईंटें और जली हुई ठटरिया मिली हैं । जिस तरहकी मिट्टीपर यह खोदाई हुई है, वैसी ही पर जेनेवा झीलके पास खोदाई कराकर मोर्लो साहवने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि १५०० वर्षोमे चार फीट मिट्‌टी बैठती है । इस हिसाबसे तो हरनरको २२।। हजार वर्षोकी ईंटे और ठटरिया मिली हैं । इससे उनका सिद्धान्त खडित हो जाता है, जो २० हजार वर्पोसे ही मनुष्य वा "होमोसवाइस"की सृप्टि स्वीकार करते हैं। अत्यन्त प्राचीन कालके जीवोकी ठटरियोके साथ मिश्रमे मनुष्यकी ठटरिया भी मिली है। मेनाके वाद, हरसेसु राजाके समय, मिश्रमे एक ऐसा शिलालेख और वकरीके चमडेपर लिखी पुस्तक मिली थी, जो मेनाके हजारो वर्ष पहलेकी हैं । इनसे मिश्रकी अत्यन्त प्राचीन सभ्यता और इतिहासपर यथेष्ट प्रकाश पडता है । '

अर्जेटाइन और व्राजिल (दक्षिण अमेरिका), प्रेडमर्थ (वोहेमिया), ओल्मो (इटली), शिपकर (वालकन प्रायद्वीप), स्पाई (बेलजियम) आदि आदिमे भी खोदाइया हुई हैं । नियडर्थल (जर्मनी) की खोदाईमे एक पशु-कपालके समान खोपडी मिली है, जिसे ५० हजार वर्षोकी कहा जाता है। पिल्ट डाउनकी खोदाईमे प्रथम मानवकी खोपडिया मिली हैं, जिन्हे एक लाख वर्पकी कहा जाता है । हाइडलमे जो हड्‌डिया मिली है, वह अर्द्ध-मनुष्यकी और २।। लाख वर्षोकी मानी जाती है । १८९२ मे ई० मे डा० यूजीनने ट्रिनिल (जावा) की खोदाईमे कपाल, जघास्थि, दात आदि जो पाये थे, उनका काल, डा० डुवोइसके मतसे, लगभग ६ लाख वर्प है और वे मानवाकार वानर और मनुष्यके वीचके हैं। वहुत लोग इन अस्थियोको मनुष्यकी ही वताते हैं । परन्तु जिन लोगोकी धारणा है कि गोरिल्ला वन्दरका मस्तिष्क १० छटाक और मनुष्यका १६ छटाकका है तथा मनुष्य और बन्दरके दोनो हाथोकी हड्‌डिया समान है, वे जावा-कर्परको मनुष्यका

क्यो मानने लगे। जो हो, परन्तु अनेक मानवतत्त्व-विज्ञाताओके मतसे जावा-कपालसे पुराना कपाल अवतक नही मिला।

इन सारी खोदाइयोके आधारपर यूरोपीयोने प्रस्तर-युग, पीतलयुग, ताम्र-युग, लौह-युग, विद्युद्युग आदि कितने ही युगोकी सृष्टि की है। इनके मतमे ५ लाख वर्ष पहले प्रथम हिम-युग, ३५ हजार वर्ष पहले प्रस्तर-काल और १५ हजार वर्ष पहले कृपि-काल था। परन्तु जब कि ऋग्वेदमे सरस्वती नदीका राजपूताना समुद्रमे गिरना लिखा है और भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ताओके मतानुसार राजपूताना समुद्रको सूखे ७५ हजार वर्ष तककी बात हो सकती है, और, जब कि ऋग्वेदमे स्वर्णा-भूपणो और उन्नत कृपिका वर्णन है, तब ३५ हजार वर्षका प्रस्तर-युग और १५ हजारका कृपि-युग कैसे माना जाय ?

जो हो, किन्तु इसमे सन्देह नही कि मिश्रके ६-६ कोस लम्बे स्थानोकी खोदाईका आधा रुपया भी यदि भारतकी खोदाईमे खर्च किया जाय, तो कितनी ही मनोरजक अस्थिया मिल जायँ और भारतके प्राचीनतम इति-हासपर यथेष्ट प्रकाश भी पडे। अभी भी भारतीय पुरातत्त्व वेत्ता कहते है कि 'विन्ध्याचलके परीक्षणसे विदित होता है कि वह २० हजार वर्ष पहले ठडा हुआ था।' इसी बातको शास्त्रकी चमत्कारिणी भापामे कहा गया है कि 'गोत्रभिद् इन्द्रने विन्ध्यगिरिके पखोको काट गिराया था। तबसे वह ठडा, अग्निहीन वा शात हुआ।'

अब तक भारतमे जितनी खोदाइया हुई है, उनसे भारतीय इतिहासपर प्रकाश पडा है और यदि आगे खोदाइया हो, तो अत्यधिक प्रकाश पडनेकी सभावना है। अब तक न तो काफी खोदाई हुई है, न उत्खननसे इतनी सामग्री ही मिली है, जिससे भारतीय इतिहास सागोपाग लिखा जा सके। अब तक भारतके जितने इतिहास लिखे गये है प्रायः सब एकदेशीय है। शास्त्रीय पद्धतिको छोडकर यूरोपीयोके दृष्टिकोणका ही अधिक अनुधावन किया गया है। यही कारण है कि भारतीय इतिहासके प्रति विदेशी ऐति-

हासिकोंकी विचित्र धारणाएँ हैं। वे कहते हैं, 'मिश्रके पिरामिडोके वने ४००० बी० सी० तक हुए। वहाके प्रथम राजा मेनाने ५५०० बी० सी० (मतान्तरमे ५००४ बी० सी०)मे राज्य किया था। वहाके राजा थटमीसिस तृतीयने १५५७ बी० सी० मे पश्चिम एशियापर राज्य किया था। मिश्रकी चर्चा इलियड, बाइबिल, कुरान आदिमे भी है। वहाकी प्राचीन राजधानी 'मेमफिस' की ६ कोसोमे उपलब्ध उत्खनन-सामग्रीसे मिश्रका इतिहास ६००० वर्षोका सिद्ध होता है।

'चीनका फौहो नामका सम्राट् २९५० बी० सी० मे गद्दीपर बैठा था। हाया-वशका शासनकाल २२०७ बी० सी० से शुरू हुआ।

'फिनिशियनोने कार्थेज (उत्तर अफ्रीका) पर ८२२ बी० सी०मे अधिकार किया था। असुर बनिपालकी चित्र-पट्टिकाओ आदिसे असीरियनो का इतिहास ४००० बी० सी० का सिद्ध होता है।

'सुमर लोगोके निप्कुर और ईरियड शहरोका इतिहास ५५०० बी० सी० का है।

'यूनानमे हिरोडोटस (४८४ बी० सी०) और थ्युकिडिडस (४७१ बी० सी०) तथा रोममे टसिटस (प्रथम शताब्दी) जैसे ऐतिहासिक हुए, जिन्होने हजारो वर्षोका उन देशोका क्रम-बद्ध इतिहास लिखा है। यूनानकी एकियन, ईजियन, डोरियन जैसी प्राचीनतम जातियोका भी इतिहास है।

'इधर भारतमे न तो कोई प्राचीन इतिहास है, न आर्य लोग इतिहास लिखना ही जानते थे।'

ये ही पाश्चात्त्य विद्वानो और उनके एतद्देशीय अनुगामियोकी बाते हैं। परन्तु जिस जातिमे पाणिनि जैसे वैयाकरण और कपिल जैसे दार्शनिक हो सकते है और जिस जातिमे '**नासदीय सूक्त**' जैसी विचार-धारा बह सकती है, उसमे इतिहास लिखनेकी क्षमता नही थी, यह असम्भव बात है।

यह हो सकता है कि आर्य लोग मनुष्यकी कहानिया लिखनेकी अपेक्षा मनुष्यके जन्मदाता विश्व-पिताकी कथाएँ लिखना ही अच्छा समझते रहे हो। तो भी वे इतिहासका महत्त्व अवश्य स्वीकार करते थे। प्राचीनतम कथाओ और कल्पनाओमें जिन अलकारो और रूपकोके द्वारा इतिहास-वर्णन किया गया है, उनका ज्ञान आवश्यक है।

वैदिक साहित्यमे इतिहासकी यथेष्ट सामग्री है। **शतपथब्राह्मण** (१४.५.४.१०) और अथर्ववेदमे इतिहासको एक कला माना गया है। **मनुस्मृति** (२ ७२) मे इतिहासकी महिमा है। छान्दोग्योपनिषद् और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको स्पष्ट ही **'पचम वेद'** माना गया है। इतिहाममे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, पुराण आदि भी सम्मिलित थे। **महाभारत** (१.१.८३) मे इतिहामको मोहान्धकार दूर करनेवाला वताया गया है। ऋग्वेद आदिकी सहिताओमे विविध ऋषियो और राजाओके वशोका विवरण दिया हुआ है। इसी प्रकार शतपथमे मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जन्मेजय, उग्रसेन आदिका वर्णन है। ताण्ड्य महाब्राह्मणमें भी विदेह आदिकी कथाएँ है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कालकज असुर और वाराहावतारकी वाते है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय और शाखायन आरण्यकोमे शुन शेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पाचाल आदिकी स्पष्ट कथाए है। ऋग्वेदका **'दाशराज्ञ-युद्ध'** सूर्य-चन्द्र-वशियोका प्रसिद्ध युद्ध है—कुछ लोग इसे आर्य-अनार्य-युद्ध तथा देवासुर-सग्राम भी कहते है। ऋग्वेदके दो स्थानोपर गगा तथा कुभा (कावुल नदी), असिक्नी (चिनाव), परुष्णी (रावी), वितस्ता (झेलम), यमुना, विपाश् (व्यास), सिन्धु, शुतुद्री (सतलज), सुवास्तु (स्वात) आदि नदियोका विवरण है। गोपथ, ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय, कौषीतकि आदि ब्राह्मणोमे अग, अन्ध्र, काशी, कुरु, कोसल, नैषिध, पचाल, पुण्ड्र, मगध, मत्स्य, कौशाम्बी, त्रिप्लक्ष, प्लक्ष प्रास्रवण, विनशन आदि प्रान्तो, प्रदेशो, जातियो और नगरोके नाम आये है। वग-ब्राह्मणमे कम्वोज, वृहदारण्यकोपनिषद्मे मद्र, तैत्तिरीय

आरण्यकमे तूर्घ्न और जैमिनीय ब्राह्मणमे विदर्भका नाम आया है। ऋग्वेदसहितामे कीकट, गन्धार, चेदि आदि प्रदेशोका उल्लेख है।

यजुर्वेद (३.६१) मे शिवजीके धनुष्, हाथीकी छाल, उनका निवास-स्थान (पर्वत) आदिका पुराणोकी तरह स्पष्ट उल्लेख है। निरुक्त (२.४) मे शन्तनु और देवापिकी कथा है। सुदास, विश्वामित्र, कण्व भार्म्यश्व आदिका भी विवरण निरुक्तमे है। वेदोके कोष और व्याकरण निरुक्तमे ५-६ स्थानोपर "तत्रेतिहासमाचक्षते" आया है।

इस तरह वैदिक साहित्यके सैकडो स्थानोपर इतिहासकी बाते है। सस्कृत-साहित्यके अनेकानेक ग्रन्थोमे इतिहास भरा पडा है। अवश्य ही यह इतिहास क्रमबद्ध नही है और आर्योकी तरह उन्नत अध्यात्म-वादियोके लिए ऐसा मानवेतिहास लिखना सम्भव भी नही था।

परन्तु यदि ऋग्वेदका रचना-काल १० ही हजार वर्षोसे अधिक माना जाय, तो भी ऋग्वेदमे मानवजातिका आदिम इतिहास पाया जाता है। यह इतिहास ही कारण है कि हमने एशियाई तुर्किस्तानकी उईगुर, तुगस आदि जातियो तथा चीन, बर्मा, सिलोन आदिको आर्यमय बना डाला और मारडोनियसके सेनापतित्वमे, भारतीय सैनिकोने, प्लेटिया (ग्रीस) के रण-क्षेत्रमे ४७९ बी. सी. मे यूनानियोको परास्त कर अपने अजेय प्रतापको अमर कर दिया। हमारा गौरवमय प्राचीन इतिहास ही कारण है कि, जहा चाल्डियन, सुमेरियन, अक्कद, बेबीलोनियन आदि जातिया धरातलसे उठ-सी गयी, वहा आर्यजाति हिमालयकी तरह अचल और प्रशान्त महा-सागरकी तरह गम्भीर बनी हुई है—सो भी लगभग उसी अनन्तकालकी वैदिक सभ्यताके प्रतापी रूपमें।

परन्तु जो लोग मीमासाके "परन्तु श्रुति-सामान्यमात्रम्" के अनुसार कहते है कि वेदोक्त शब्दोको ही लोकमे ग्रहण किया गया है, लोकोक्त विषय वेदोमे नही है, उनकी तो बात ही दूसरी है। परन्तु कट्टर सनातनी और वेदभाष्यकार सायण, स्कन्द स्वामी, उदगीथ, वेंकट माधव, भट्ट-

भास्कर, महीधर आदिने और वेदोके अनन्य भक्त शकर, रामानुज, वल्लभ आदि आचार्योने वेदोमे इतिहास माना है ।

वेदोके सारे ऐतिहासिक शब्दोका आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले भी कम लोग नही है । कहा जाता है कि वेदके वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज आदि नामोके दूसरे अर्थ है । इन नामोको वेदसे लेकर लोगोने व्यक्तिविशेषमे प्रयुक्त किया । अच्छा, नामोकी तो यह वात है, परन्तु उर्वशी, यमी, विश्वामित्र आदिकी कथाओकी क्या गति हो ? उत्तर दिया जाता है कि ये कथाएँ रूपक है । परन्तु यदि वैदिक साहित्य रूपक है, तो विश्वामित्र, वसिष्ठ आदिकी रामायणीय, महाभारतीय और पुण्यकालीन कथाएँ भी क्यो नही रूपक है ? वेदोमे नि सन्देह सीधा-सीधा ऐतिहासिक तथ्य है और जहा ऋषियोकी कल्पनाने इतिहासको काव्यका परिधान दिया है, वहा हमे इस तथ्यको चुनकर ग्रहण करना होगा ।

वस्तुत हमारा मुख्य वल वेद और उसमें उपनिवद्ध इतिहास ही है, जिन्हे पाकर हम युगोसे गौरवान्वित हो रहे हैं । इसी वातका समर्थन लोक० तिलक, पावगी आदिने किया है[१] ।

वेदकी नित्यता

हम पहले लिख आये है कि हमारे शास्त्र और धर्माचार्य वेदकी नित्यता स्वीकार करते है । सनातनी और आर्य-समाजी वेद-नित्यत्वके प्रवल पक्षपाती हैं । कई तो छन्दोरूपमे ही, शब्दश और अक्षरश, वेदको नित्य मानते है । स्कन्दस्वामी, सायण आदि सभी प्राचीन भाष्यकार वेदकी

---

१ जिन्हें इस सम्बन्धमें अधिक जानना हो, वे डा० अविनाशचन्द्र दासकी "Rigvedic India" और "Rigvedic Culture", हरविलास शारदाकी "Hindu Superiority" और दुर्गादास लाहिडीकी "पृथिवीर इतिहास" (आठ भाग) नामकी पुस्तकोका अवलोकन करें ।

नित्यता स्वीकार करते हैं । अनेक लोग शब्द-स्फोट, वाक्यस्फोट आदिकी नित्यता स्वीकार कर वेदको नित्य बताते हैं और अनेक वेदको ईश्वरका स्वाभाविक निश्वास मानते है । ग्रामोफोनके रेकार्डमे भरे हुए शब्द महीनो और वर्षो बाद सुनाई देते हैं, इस लिये भी शब्द और शब्दरूप वेद नित्य माने जाते है ।

परन्तु यहा यह प्रश्न उठता है कि 'यदि शब्द मात्र नित्य हैं, तो शब्दरूप बाइबिल, कुरान और प्रतिदिन गढी जानेवाली ठुमरी और कजलीको भी नित्य मानना पडेगा । वेदकी विशेषता ही क्या रही ? दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि जब कि न्याय, वैशेषिक आदि शब्दके आधार आकाश (वैज्ञानिक मतसे वायु) को ही नित्य नही मानते, तब शब्द कैसे नित्य हुआ ? साख्यके मतसे जब प्रकृतिकी साम्यावस्थामे आकाश और वायु ही नही रहते, तब गुण-रूप शब्द, शब्दरूप वेद, छन्दोरूपमे कैसे रहेगे ? यह बात दूसरी है कि दैवी शक्तियोकी उपासना और आवाहन, सत्य-सम्भाषण, तपस्याका आचरण, विविध विद्याओका प्रचार आदि वेदमे है और ये सारे उपदेश जगन्नियन्ताके नित्य उपदेश है, इसलिये ज्ञान-रूप वेद नित्य है । वेदके जिन अगोमे ये उपदेश है, उनको उपदेश वा ज्ञानके आधार-रूपमें नित्य माननेमे वेद-नित्यता-विरोधियोको कदाचित् कोई बड़ी आपत्ति नही; परन्तु अद्वैतवादियोके लिए यह नित्यता भी व्यावहारिक रूपमे है, पारमार्थिक दशामे नही । इतना होने पर भी वेदके जिन अगोमें ऐतिहासिक बाते है, वे अश तो किसी भी रूपमे नित्य नही । अभाव-पूर्तिके लिये मनुष्य भाषाएँ बनाया करता है और वे भाषाएँ बदला करती है। स्वय वैदिक भाषा कितने ही रूपोमे आ चुकी है। ऋग्वेदसहिता और अथर्ववेदसहिताकी भाषाओमे, अनेक स्थलोमे, भेद है । शाकलसहिता और माध्यन्दिन-संहिताकी भाषाओमे जमीन-आसमान का भेद है । तैत्तिरीय और मैत्रायणीय संहिताओको देखकर क्या कोई कह सकता है कि दोनोकी भाषा एक वा समकालीन है ?

'वस्तुत ईश्वरीय शक्तिसे शक्तिमान् होकर तप पूत ऋपियोने वेदको वनाया। अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमे जन्, कृ, सृज्, तक्ष आदि धातुओका प्रयोग, ऋग्वेदसहिताके मत्रोमे, कई स्थानोपर आया है। इन धातुओका प्रयोग ऐसे ढगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋपि लोग आवश्यकतानुसार वरावर नये-नये मत्र वनाते थे। यह मत सायणभाष्यानुसार है। जिन्हे सायण-भाष्य देखना हो, वे इन मत्रोके भाष्य देखे—ऋग्वेद १ ३८ १४, १ २० १, ७ ६४ १, ६ ११४ २, १० ८० ७, ४ १६ २१, १ ६३ ६, ७ १८ ४, ६ ८ ५, ७ ६७ ६, १ १६६ १५, ८ ८ १७, १० २३ ६, ७ २२ ६, २ २६ ८, १ १२ १२, १ १८४ ५, ३ ३० २०, ४ ६ ११, १ ४७ २, ५ २८ १, १० १० ५ आदि आदि।

'वस्तुत वेदमें अनन्त कालके अनन्त ऋषियोकी अनन्त उच्चतम चिन्ताएँ, अनन्त गिरि-निर्झरोको चीरती, भेदती और प्रतिध्वनि करती हुई, इकट्ठी की गयी है। वेदमे ऐसे दिव्य सन्देश, ऐसी अगम्य और मौलिक चिंताएँ भरी पडी है कि जिन (नासदीय सूक्तकी चिंताओ) से वढकर, लोक० तिलकके शव्दोमे, सभ्यतम मनुष्य कोई चिन्ता ही नही कर सकता। वेद उन स्थितप्रज्ञ और परदु खकातर मनीषियोकी तेजस्विनी वाणी है, जो हमारे प्रात स्मरणीय पूर्वज थे। वेद हमारे उन पूर्वजोका विजयी निनाद है, जिन्होने ससारके प्राय सारे देशोपर राज्य किया था। इन्ही सव दृष्टियोसे वेदकी महत्ता है और वेद हमारा पूजनीय ग्रथ है।'

वेद-नित्यता-वादियोका मत पहले दिया गया है और वेद-नित्यताविरोधियोका यह मत है। पाठक विचार करके अपनी कोई धारणा वना सकते है। वेदका नित्यता-विरोधी मत जिन्हे अभीष्ट हो, वे अपनी वैसी धारणा वना सकते है, हमारा कोई दुराग्रह नही है।

वेदधर्म और अन्य धर्म

ससारमे अनेकानेक धर्म प्रचलित है। यूरोपीय आर्य-धर्ममे इतने धर्म अन्तर्भूत मानते है—प्रत्येक प्रमुख भारतीय धर्म, यूनानी धर्म, रोमन धर्म,

वेडिक धर्म, ट्यूटनिक धर्म, केल्टिक धर्म, स्लावोनियन धर्म और स्काडेने-वियन धर्म । सेमेटिक धर्ममे भी कई धर्म है–ईजिप्सियन, वेवीलोनियन, असीरियन, 'फिनिशियन, जुडिइज्म, महम्मडनिज्म, क्रिश्चियानिटी । वहुत लोग वेविलोनियन वा चाल्डियन धर्मसे असीरियन धर्मकी उत्पत्ति वताते है। कई इजिप्सियन और असीरियन धर्मोको हेमेटिक मानते है । कुछ लोग इजिप्सियन धर्मसे ईथिओपियन वा अवीसीनियन धर्मकी उत्पत्ति मानते है ।

वहुतोका मत है कि हिब्रू धर्मसे क्रमश मूसाई, इजराइली, यहूदी और ईसाई धर्म पैदा हुए। वेवीलोनियन धर्मपर ईजिप्सियन धर्मकी छाप पडी भी मानी जाती है । मगोलियन धर्मोमेसे चीनमे कनफुसियानिज्म और ताओइज्म तथा जापानमे शितोइज्म प्रचलित है। इनके सिवा कई टापुओ की जातिया, अमेरिकी इडियन और भारतकी टोडा, वदागा, कोल, भील, गोड, खोड, सन्ताल, काकी, नागा, मुडा, उराव, वादो, धीमल, कछिया, मिशमिस आदि जातिया भूत-प्रेत-पूजनको ही धर्म मानती है ।

हिदुओके वेदग्रन्थो, पारसियोकी अवस्ता-गाथाओ, चीनियोके शीकिग ली-की आदि पुस्तको, मिश्रके वीजाक्षरो (Hieroglyphics), वेवी-लोनियाकी मृत्फलक-लिपि और असीरियाकी कोणाकार-लिपिका अध्ययन करके यूरोपीयोने इन धर्मोकी छोटाई-वड़ाईकी जाच करनेकी भी चेष्टा की है। वहुतोके मतसे ईजिप्सियन (मिश्रदेशीय) धर्म प्राचीनतम धर्म है । ईजिप्सियनोके धर्मोपदेष्टा और प्रथम राजा मेनस वा मेना (प्रथम फरोह) ५००४ बी० सी० मे पैदा हुए थे। उनकी वनायी धर्म-पुस्तक भी है। ईजिप्सियनोके मतसे मिश्रपर सत्ययुग मे २४६०० वर्ष देव-राज्य था और त्रेतामे ६०० वर्ष । ईजिप्सियनोकी "The Book of the Dead" पुस्तकसे विदित होता है कि वे मृतक-पूजक थे । वे व्रह्मा (Ptah) को मानते थे । रवि या सूर्यको 'रा' कहते थे । सूर्यके अनन्य उपासक थे । दिनमे दो वार स्नान

करते, मांससे घृणा करते, मृगचर्मपर बैठते और पत्ते पहनते थे । उनमें वर्ण-धर्म था । व्यभिचारिणी स्त्रियोकी नाक काट ली जाती थी । इस तरह वैदिक आचार-विचारोके साथ मिश्रियोका कुछ मेल था । ऐसी ही कई बातो को देखकर डा० अविनाशचन्द्र दासने सिद्ध किया है कि 'हिंदुओने मिश्र या ईजिप्टमे जाकर अपनी सभ्यता और धर्मका प्रचार किया था।' एच० एच० विलसनका भी मत है कि 'मिश्र शब्द सस्कृतका है और भारतीय ब्राह्मणो द्वारा वहा पहुँचाया गया है। मेना ही मनु हैं और मेनाका ग्रन्थ मनुस्मृति।'

दूसरी सख्यामे चीनी रखे जाते हैं । उनके दो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं–शुकिंग और शीकिंग । पहला २४०० बी० सी० मे और दूसरा १७६६ बी० सी० मे बना । पहला ग्रन्थ "Sacred Books of the East" मे लेग द्वारा छपा है और दूसरा १८९१ मे जेनिंग्स द्वारा। अनालेक्टस, ली-की और चु गयाग नामके ग्रन्थ भी चीनियो के पूज्य हैं । इनसे पता चलता है कि वैदिकधर्मी हिंदुओकी ही तरह चीनियोके भी धार्मिक नियम हैं। हमारी ही तरह चीनी भी १० दिशाएँ, १२ राशिया, श्राद्ध आदि मानते हैं। इस तरह ये भी वेदधर्मके परम्परया अनुयायी ही जान पडते हैं ।

तीसरे ईरानी (पारसी) हैं। इनका मूल ग्रन्थ अवस्ता और गाथाएँ हैं। अवस्ताके २१ भाग थे। कहा जाता है कि इनमेंसे दोको शराबके नशेमें आकर सिकन्दरने नष्ट कर दिया और कुछको उसके अनुयायी ग्रीस उठा ले गये। शेष जेन्द टीकाके साथ छपी है। डर्मेस्टेटर द्वारा **"सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट"** मे, १८९५ मे, अवस्ता प्रकाशित की गयी। पारसियोकी ५ गाथाएँ, १८९४ मे, मील्स साहबके द्वारा छपी हैं। इनसे पता लगता है कि ईरानी अग्निपूजक, गोरक्षक और यज्ञोपवीतधारक होते हैं। ये मित्र वा मिथ्रके पूरे भक्त होते हैं। मिथ्रकी मूर्त्तिया ग्रीक और रोमन स्तम्भोपर भी मिलती हैं। अवस्तामे प्राचीन आर्यनिवासकी प्रशसा है। अवस्तामें

वेदोके सैंकडो शब्द, तद्भव रूपोंमे, आये है। इन बातोसे स्पष्ट है कि ये भी वेद-धर्मका अनुधावन करनेवाले हैं।

पहले ग्रीक और रोमन धर्म एक ही थे। ग्रीक और लैटिन भाषाओमें सस्कृतके बहुत तद्भव शब्द है। इनके धर्म-ग्रन्थ 'साकुलर' और 'मोमसेन' है। कहते हैं, मोमसेन १६०० बी० सी० मे बना। जो हो, परन्तु ग्रीक और लैटिन भाषाओके वैदिक भाषासे प्रभावित होनेसे और ईरानके मिथ् (वैदिक मित्र) देवताकी स्तम्भोपर प्राप्तिसे विदित होता है कि ये धर्म भी वैदिक धर्मकी नकलपर ही बने है। ग्रीकोके जियस, मिनर्वा और हेलिओस देवता तो इन्द्र, उषा और सूर्यके नामान्तर भर हैं। ब्रह्मा ही ग्रीको और रोमनोके वलकन है।

स्लावोके ग्रन्थ "लुथियाना" और ट्यूटनोके धर्मग्रन्थ "एड्डा" से ज्ञात होता है कि ये धर्म भी वेद-धर्मके अनुकरणपर प्रचलित है।

बेबीलोनियन और चाल्डियन नक्षत्र-पूजक थे। इनके ग्रन्थ है "डाइ-रेविंटग बुल" और "इज्डुबर"। कहते है, ये ग्रन्थ ४००० बी० सी० के हैं। इनमे दरायसके समय, छठी बी० सी० मे, मूर्तिपूजा प्रचलित थी। सूर्यके ये परम उपासक थे। सूर्यको ये "सुरस" कहते थे। सेफरवेन स्थानमे एक सूर्य-मन्दिरका ध्वसावशेष मिला है, जिसे ३८०० बी० सी० मे नष्ट हुआ बताया जाता है—बना न मालूम कबका होगा! बेबीलोनियाकी (मिट्टीके नीचेके पुस्तकालयकी) मृत्फलक लिपिमे और कस्साइट लेखमे सूर्य-विवरण है। "Aryan witness" मे रेवरेड के० एम० बनर्जीने लिखा है कि ऋग्वेद (१.११.५) का 'बल' ही बेबीलोनाधिपति 'बेल' था। बेबीलोनियाकी भाषामे कितने ही वैदिक शब्द भी आये है।

असीरियन और फिनिशियन धर्म इसी धर्मकी नकलपर चले है। इन सबका प्रधान आराध्य "अस्सुर" है। यही अस्सुर ऋग्वेदका असुर है। दक्षिण मेसोपोटामियावाला अक्कद जातिका सुमेरियन धर्म भी वैदिक सिद्धान्तोके अनुकरणपर है। मोहनजोदड़ो और हरप्पाकी खोदा-

इयोसे सुमेरियन देवताओका जो पता लगा है, उससे ऐसा ही सिद्ध होता है।

मिश्री, ग्रीक, रोमन, पारसी, ट्यूटन, वेवीलोनियन आदि सबने आर्योसे ही सूर्योपासना सीखी थी और सबकी भाषाएँ वैदिक भाषासे उत्पन्न-सी है। कमसे कम वैदिक धर्म और वैदिक भापाकी छाप तो सभी धर्मो और भाषाओपर पडी है।

भारतके द्रविड लोग प्रसिद्ध व्यापारी थे। वे ५००० वी० सी० मे एशिया माइनर गये और वहा सुमर लोगोकी सभ्यताको जन्म दिया। हालका यही मत है। बहुत लोगोने तो मूल आस्ट्रेलियावालोकी सभ्यताका भी द्रविडो द्वारा प्रादुर्भाव वताया है। सुमर लोगोकी तरह उनकी भाषामे भी द्रविड शब्दोकी भरमार है। अफगानिस्तानकी ब्राहुई जातिकी भाषा भी द्रविड भाषासे मिलती है, इसलिये वह जाति द्रविडो की शिष्या मानी जाती है। हाल और दासके मतसे चाल्डियन भी द्रविड ही थे। यहा यह ध्यान देनेकी बात है कि द्रविड शब्द आधुनिक है। यह देशज शब्द है। द्रविड आर्य ही है। हा, कुछ लोग इन्हे अवश्य ही वैदिक "दस्यु" और "अनार्य" कहा करते है। परन्तु यह मत सन्दिग्ध है।

जो हो, परन्तु इसमें सन्देह नही कि ससारके सभी प्राचीन धर्म वैदिक धर्मसे किसी न किसी रूपमे प्रभावित तो अवश्य है। वैदिक गायत्रीकी सूर्योपासनासे सभीने सूर्योपासना सीखी और अन्य वैदिक देवताओको भी ग्रहण किया। वोगाजकुई (मेसोपोटामिया) के प्राप्त लेखसे सिद्ध है कि मेसोपोटामियाकी मित्तनी और हिताइत जातिया वैदिक देवताओकी भक्त थी। सवने वैदिक भाषासे असख्य शब्द लिये और वैदिक सस्कृतिकी नकल की। यह सव होते हुए भी इन धर्मोमे जादू-टोना, नर-वलि, पशु-वलि आदिका वोलवाला है। इन सभी धर्मोमे कुछ ऐसे थोडेसे नियम है, जिन्हे इनके अनुयायियोको अवश्य मानना पडता है, परन्तु वैदिक धर्ममें अधिकारानुसार विविध साधन है। इसका प्रधान कारण यह है कि

ये सारे धर्म वैदिक धर्मके एक-एक अगको लेकर चले है; पूर्ण नही है। लोकमान्य तिलक महोदयके शब्दोमे वेद-धर्ममे ऐसी विशेषताएँ है, जो ससारके किसी भी धर्ममे नही है। कुछ विशेपताएँ ये है–

१–वैदिक धर्ममे अधिकारि-भेद है। जो जिस रुचिका व्यक्ति है, वह वैसा ही साधन पसन्द करता है। ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि रुचि-वैचिभ्यके अनुसार साधन है। अद्वैतवादसे लेकर आत्मबहुत्व-वादतकके साधन है। यह बात किसी धर्ममे नही है।

२–वैदिक धर्ममे उपास्य देवताका नियम नही–कोई भूतभावनका उपासक है, कोई रण-चण्डिकाका, कोई विघ्नहर गणेशका सेवक है, कोई निराकार निरजनका, कोई मूर्तिपूजा करता है, कोई भूत-प्रेतकी आराधना। यह प्रक्रिया अन्य धर्ममे नही है।

३–हिन्दू धर्मका कोई प्रवर्त्तक नही। जैसे बुद्धने बौद्धधर्म, ईसाने ईसाईधर्म, जरेतुष्टने पारसीधर्म और महम्मदने मुसलमानधर्म चलाया, वैसे किसीने वैदिक धर्म नही चलाया। उपर्युक्त आचार्योंके पहले इन धर्मो का ससारमे कोई नाम भी नही जानता था, परन्तु वैदिक धर्म सदासे चला आता है, इसका कोई प्रवर्त्तक वा जन्मदाता नही है।

४–वैदिक धर्मके व्यापक अर्थके अन्तर्गत सभी धर्म है। वैदिक धर्मके मानसिक तप (अहिसा) से जैन और बौद्धधर्म, वाचनिक तप (प्रेम) से ईसाई धर्म और शारीरिक तप (साहस) से मुसलमानधर्म अनुप्राणित है। इसी प्रकार वैदिक धर्मके सदाचारको लेकर कनफुसी (चीनी) धर्म, अग्नि-पूजाको लेकर पारसीधर्म और सूर्य-पूजनको लेकर ईजिप्सियन, वेबीलोनियन आदि धर्म प्रचलित है।

५–वैदिक धर्म किसीसे विरोध नही करता। मूर्तिपूजा न माननेवालो का, मुसलमानधर्म माननेवालोका और वर्णधर्म न माननेवालोका वा ईसाई धर्मका भी वैदिक धर्म विरोध नही करता। वैदिक धर्मके ही

ऐसे लाखो अनुयायी है, जो मूर्तिपूजा नही मानते, परन्तु वैदिक धर्म उन्हें भी अपनी अभय गोदमे लिये हुए है।

वेदोका स्वाध्याय, परिशीलन और मनन करनेपर वैसे तो वेदधर्ममें अगणित विशेषताएँ मिलेंगी, परन्तु उक्त विशेषताएँ ऐसी है, जिन्हे हम यो ही, सरलतासे, समझ सकते है। वैदिक धर्मकी इन्ही विशेषताओको लक्ष्य कर लोकमान्य तिलक महाराजने यह कारिका वनायी है—

"प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥"

प्रथम अध्याय

ऋग्वेद-संहिता

छन्दो और चरणोसे युक्त मन्त्रोको ऋक् वा ऋचा कहा जाता है। वेद शब्द विद् धातुसे बना है, जिसका अर्थ ज्ञान है। ऋचाओंका जो ज्ञान है, उसे ऋग्वेद कहते है। गुप्त कथनका नाम मन्त्र है। किसी देवताकी स्तुतिमे प्रयुक्त होनेवाले अर्थका स्मरण करानेवाले वाक्यको भी मन्त्र कहा जाता है। सहिता मन्त्रोके सग्रहका नाम है।

अनेक पुराणो और पातंजल महाभाष्य (पस्पशाह्निक) आदिके अनुसार ऋग्वेदकी २१ सहिताएँ अथवा शाखाएँ है; परन्तु इन दिनो केवल एक शाकल-संहिता ही उपलब्ध है। देश-विदेशमे यही छपी है। इसके विभाग दो तरहसे किये गये है–(१) मण्डल, अनुवाक और वर्ग तथा (२) अष्टक, अध्याय और सूक्त। सारी सहितामे १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (वालखिल्यके १६ सूक्तोको छोडकर) है तथा ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त है। १४ छन्दोमे समस्त मन्त्र गाये गये है। सब १०४६७ मन्त्र है। केवल दो चरणवाले १७ और एक चरणवाले ६ मन्त्र है। स्वरपर ३५८६, कवर्गपर ४०७, चवर्गपर १४२, तवर्गपर १८३३, पवर्गपर १३७७, अन्तस्थ अक्षरोपर १७६३ और ऊष्म-अक्षरोपर १३५६ मन्त्र है। शौनक ऋषिकी **'अनुक्रमणी'** के अनुसार तो १०५८०॥ मन्त्र, १५३८२६ शब्द और ४३२००० अक्षर है। औसतसे प्रत्येक सूक्तमे १० मन्त्र और प्रत्येक मन्त्रमे ५ अक्षर है, परन्तु शाकल-सहिताके कितने ही सस्करणोके मन्त्रोकी गणना करनेपर उक्त 'अनुक्रमणी' के मन्त्रों, शब्दो और अक्षरोकी सख्या कम मिलती है। सम्भव है, कुछ

मन्त्र लुप्त हो गये हो। ऋग्वेद १० मण्डल, ११४ सूक्त, ८ मन्त्रमे जो ऋग्वेदकी १५००० मन्त्र-सख्या मानी गयी हैं, उससे भी कुछ मन्त्रोके लोप होनेका अनुमान होता है।

ऋग्वेद ससारकी सबसे प्राचीन पुस्तक है—ऐसा विश्वके चोटीके ऐतिहासिक भी मानते हैं। कुछ ऐतिहासिक कहते है कि 'कोणाकार लिपिमें लिखी असीरियाकी खण्डित धर्म-पुस्तक ऋग्वेदके समयकी है।' परन्तु अब तो इस मतका प्रामाणिक खण्डन हो चुका है। ऋग्वेदकी भाषा ऐसी हैं कि केवल लौकिक सस्कृतका ज्ञाता मन्त्रोका अर्थ नही समझ सकता।

वेदार्थ समझनेके साधन ब्राह्मण-ग्रन्थ, प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी, कल्पसूत्र, निरुक्त, जैमिनीय मीमासा आदि हैं—सायण, स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वेकट माधव, उव्वट और महीधरके भाष्य भी है, परन्तु शाकल-सहितापर सायणाचार्यके सिवा किसीका भी भाष्य पूर्ण नही है। इसलिये एक मात्र आधार सायण ही है। सन् १३५० से १३७९ ई० तक सायणने वेदो (शाकल, तैत्तिरीय, काण्व, कौथुम, शौनक आदि सहिताओ), ब्राह्मणो (ऐतरेय, तैत्तिरीय, शतपथ, ताण्ड्य, सामविधान, गोपथ आदि), आरण्यको (ऐतरेयारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक आदि) और साम-प्रातिशाख्यपर भाष्य लिखा था। इस महाकार्यमें हरिहर आदि अनेक विद्वान् सत्पुरुप सायणाचार्यके सहायक थे। विजयनगराधिपति बुक्करायके समयमे भाष्यलेखन समाप्त हुआ और विजयनगरमे ही ऋग्वेद-भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित भी हुआ।

वेदाध्ययनसे विमुख हो केवल वाणीसे वेद-भक्त बननेवाले कुछ लोग कहते हैं कि 'अनेक जन्म तपस्या किये बिना और जीवन्मुक्ति प्राप्त किये बिना कोई भी न तो वेदोका अर्थ ही समझ सकता है और न उनके बारेमे कोई राय ही दे सकता है।' किन्तु इन पक्तियोके लेखकमें न तो ये गुण ही है, न लेखक इस मतका समर्थक ही है। यह बात तो अवश्य हैं कि नैरुक्त, नैदान, ऐतिहासिक, ब्रह्मवादी, याज्ञिक, परिव्राजक, स्वरमुक्तिवादी

आदि कितने ही ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो वेदार्थके सम्बन्धमे विभिन्न मत रखते है। औपमन्यव, कौत्स, यास्क, उद्गीथ, स्कन्दस्वामी, भरतस्वामी, रावण, भट्टभास्कर, वेंकट, उव्वट, महीधर, सत्यव्रत सामश्रमी, स्वा० दयानन्द, लो० तिलक, अविनाशचन्द्र दास, राथ, ग्रिफिथ, मैक्डानल, मैक्समूलर, लुड्विग, लालोआ, ग्रासमान, रेले, दाराशिकोह आदि-आदि वेद-समीक्षको की वेदार्थ-सम्बन्धिनी अनेक सम्मतिया भी है। परन्तु सारे वर्ग इन तीन वर्गो मे ही आ जाते है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। ये तीनो ही मत वेदोमे यथास्थान विन्यस्त है। इनमेसे किसी एकको लेकर और सारे मन्त्रोकी खीचतान करके एक-सा ही अर्थ निकालना साम्प्रदायिक वा एकपक्षीय मनोवृत्तिका परिचायक है—निरपेक्षता, उदारता और दृष्टिव्यापकताका नही। प्रयोग, निरीक्षण, व्यवहार, निर्वचन, अभ्यास, समनुगमन आदिका विचार किये विना केवल अध्यात्मवादकी काल्पनिक उडान उडने और ग्रीक, लैटिन भाषाओका कोरा अभ्यास करनेसे कोई भी वेदार्थ नही समझ सकता।

वेदोमे आध्यात्मिक आदि तीनो ही अर्थ है और सायणाचार्यने निरपेक्ष होकर तीनो ही अर्थोको यथास्थान लिखा है। वेदोमे समाधिभाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा—तीनो ही भाषाओका प्रयोग है और सायणने यथास्थान तीनोका ही रहस्य बताया है। इसीलिये उन्होने इन्द्रका अर्थ ईश्वर, देव, ज्ञान, विद्युत्तक लिखा है और वृत्रका अर्थ असुरराज, असुर, अज्ञान और मेघतक। जहा जिस भाषा और जिस वादका कथन है, वहा उसीका उल्लेख करके सायणने अर्थ-समन्वय किया है।

यह सब होते हुए भी देश और विदेशमे सायणके विरुद्ध मत रखनेवालो की कमी नही है। विदेशी वेदाभ्यासियोमे "Los von Sayana" (सायणका बहिष्कार करो) की आवाज कई वार उठायी गयी। 'वैदिक कोष' लिखनेवाले राथ और ग्रासमानका सायणमतखडन तो विश्व-विदित है ही। परन्तु लेखकके मतसे ये सारे मतभेद और खडन निरर्थक है; क्योकि—

अधिक हैं;' परन्तु 'वाष्कल-सहिता' का पता नही चलता। यह कही भी नही छिपी। कहते है, 'बर्लिन लाइब्रेरी' (जर्मनी) मे सस्कृतकी ४० हजार और 'इडिया हाउस' (लदन) मे ३० हजार हस्त-लिखित पुस्तके है। पता नही, इनमे वाष्कल-सहिता है या नही। जबतक वाष्कला नही छपती, तबतक तो शाकला ही वैदिक साहित्यका खजाना और विराट् पुस्तक मानी जायगी। इसके सामने सामवेदकी **कौथुम-सहिताका** प्राय अस्तित्व ही नही है, क्योकि कौथुममे शाकलाके ही सारे मन्त्र है—केवल ७५ मन्त्र ही कौथुमके अपने है। अथर्ववेदकी **शौनक-सहितामे** शाकलाके १२०० मन्त्र पाये जाते है। शौनकके वीसवे काण्डके सारे मन्त्र (कुन्ताप-सूक्त और दो अन्य मन्त्रोको छोडकर) शाकलाके है। कृष्ण यजुर्वेदकी **तैत्तिरीय सहितामें** भी शाकलाके बहुत मन्त्र है। इसलिये ऋग्वेद-सहिता (शाकल-शाखा) के अन्तर्गत ही प्राय तीनो वेद है और इसके सविधि अध्ययनसे प्राय चारो वेदोका स्वाध्याय हो जाता है। इसीलिये ऋग्वेद सबसे महत्त्व-पूर्ण माना जाता है। अनेक लोगोने तो इसके अध्ययनमे अपना सारा जीवन ही खपा डाला है।

'विषय-प्रवेश'में कहा गया है कि वेद ईश्वरका श्वास है; इसलिये वेद ईश्वरकी ही तरह नित्य है, शाश्वत है, अपौरुषेय है और ऋषियोने समाधि-दशामे अपने विशुद्धान्त.करणमे वेदको उसी रूपमें प्राप्त किया था, जिस रूपमे—छन्द, वाक्य, शब्द और अक्षरके रूपमे—वह इन दिनो पाया जाता है। अनन्त हिन्दुओकी धारणा है कि वेद ईश्वर-कृत है। बहुतो का विश्वास है—"**वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ**"। अर्थात् 'वेदसे ही धर्म निकला है।' इसीलिये अनन्त कालसे लाखो हिन्दू वेद-विद्याकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक देते आये है।

लोग पूछते है, 'क्या वेदकी नित्यतामे प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण है ?' परन्तु हमारे यहा शकराचार्य आदिने प्रत्यक्ष और अनुमानका खण्डन कर शब्द-प्रमाणको ही स्थापित किया है (शारीरक-भाष्य २ ३.१।)। क्षुद्रतम

मानव-मस्तिष्क अज्ञेय कालके तत्त्वोका कैसे प्रत्यक्ष करेगा और अनन्त समयकी बातोकी कैसे अनुमिति करेगा ? इसीलिये भगवान्‌की इस उक्ति पर हिन्दुओका दृढ विश्वास है कि–

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।"

–गीता १६.२४।

'इसलिये कार्य और अकार्यकी व्यवस्थिति अर्थात् कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका निर्णय करनेके निमित्त तेरे लिये शास्त्र प्रमाण है।'

हिन्दुओके समस्त शास्त्र वेदको नित्य मानते है। जैमिनीय मीमासामें ऐसे ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे वेदकी नित्यता सिद्ध होती है। कोषीतकि ब्राह्मणके मतसे (१० ३०) वेद-मन्त्र देखे गये है, वनाये नही। ऐतरेय ब्राह्मण (३.६) से मालूम होता है कि गौरवीतने सूक्तो वा मन्त्रसमूहों को देखा था। ईश्वरतकका खण्डन करनेवाले साख्यने भी लिखा है–

"न पौरुषेयत्व तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।"

(वेद अपौरुषेय है, क्योकि वेद-कर्त्ताका अभाव है।) बृहदारण्यकका कहना है–

"अस्य महतो भूतस्य नि.श्वसितमेतत् ऋग्वेदो यजुर्वेदः ।" ।

इत्यादि। अर्थात् वेद भगवान्‌का श्वास है।

श्वेताश्वतर (६।८) का कहना है–

"यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै ।"

(ब्रह्माको पहले उत्पन्न कर ईश्वर उनको लोक-शिक्षाके लिये वेद देते है।) स्मृतिग्रन्थोमे तो वेदकी नित्यताके अनेक प्रमाण है। सायणाचार्य भी वेदको नित्य मानते ही है।

यही नही, वेद हिन्दुओकी प्राय समूची कलाओ और विद्याओका मूल भी है–

"सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति" –मनु।

मनुष्य-जातिके प्राचीनतम इतिहास, सामाजिक नियम, राष्ट्रधर्म, सदाचार, कला, त्याग, सत्य आदिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये एकमात्र साधन वेद ही है। वैदिक ग्रन्थोमे ऋग्वेद, सभी दृष्टियोसे, सर्व-मान्य और विशाल है।

शाकल-सहिताके प्रत्येक सूक्तके ऊपर उसके ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग लिखे रहते है। वेदार्थ जाननेके लिये इन चारोका ज्ञान रखना आवश्यक है। शौनककी अनुक्रमणी (११) मे लिखा है कि, "जो ऋषि, देवता, छन्द और विनियोगका ज्ञान प्राप्त किये विना वेदका अध्ययन, अध्यापन, हवन, यजन, याजन आदि करते है, उनका सब कुछ निष्फल हो जाता है और जो ऋष्यादिको जानकर अध्ययनादि करते है, उनका सब कुछ फलप्रद होता है तथा ऋष्यादिके ज्ञानके साथ जो वेदार्थ भी जानते है, उनको अतिशय फल प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य और व्यासने भी अपनी स्मृतियोमे ऐसा ही लिखा है।

जैसा कि कहा गया है, '**ऋषिर्दर्शनात्**' अर्थात् मन्त्रको देखनेवाले या साक्षात्कार करनेवालेको ऋषि कहा जाता है (**निरुक्त, नैगमकाण्ड** २.११)। महर्षि कात्यायनने '**सर्वानुक्रमसूत्र**'मे ऋषिको स्मर्ता वा द्रष्टा बताया है। याज्ञवल्क्यने भी ऐसा ही लिखा है। जिन ऋषिने जिस सूक्तका आविष्कार किया, उनका वा उनके वशका सूक्तके ऊपर नाम रहता है।

ऋग्वेद (शाकल-सहिता) के दस मण्डलोंमेसे द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीयके विश्वामित्र, चतुर्थके वामदेव, पंचमके अत्रि, षष्ठके भारद्वाज और सप्तमके वसिष्ठ और इनका परिवार ऋषि हैं। अष्टम मण्डलके ऋषि कण्व और उनके वशज तथा गोत्रज है। आश्वलायनने प्रगाथ-परिवारको अष्टमका ऋषि माना है, परन्तु षड्गुरुशिष्यने प्रगाथ को कण्व ही माना है। नवम मण्डलके ऋषि अनेक है। आश्वलायनने लिखा है कि 'दशम मण्डलके ऋषि क्षुद्रसूक्त और महासूक्त है।' परन्तु

वस्तुत दशम मण्डलके ऋषि और उनके वशज अनेकानेक है। प्रथम मण्डलके तो २३ ऋषि है।

सब ऋषि ब्राह्मण थे, परन्तु ऐतिहासिक कहते है कि 'दशम मण्डल' के इन सूक्तोके बनानेवाले ये राजर्षि भी थे—सूक्त ३१ कवष, ६१ आरुण वैतहव्य, १३३ सुदास पैजवन और १३४ मान्धाता यौवनाश्व। ४६ वे सूक्तके ऋषि वत्सप्रि भालन्दन वैश्य थे और १७५ सूक्तके ऋषि ऊर्ध्व-ग्रावा शूद्र थे। परन्तु यह विषय अभी सन्दिग्ध है।

निरुक्तकारने लिखा है—

"देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा।"—दैवतकाण्ड १.५।

'लोकोमें भ्रमण करनेवाले, प्रकाशित होनेवाले या भोज्य आदि सारे पदार्थ देनेवालेको देवता कहा जाता है।' तीन प्रकारके देवोको निरुक्तकार ने माना है—पृथिवी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु वा इन्द्र और द्युस्थानीय सूर्य। इन्हीकी अनेक नामोसे स्तुतिया की गयी है। जिस सूक्त वा मन्त्रके ऊपर जो देवता लिखे रहते है, उस सूक्त वा मन्त्रके वे ही प्रति-पादनीय और स्तवनीय है। जहा ओषधि, जल, शाखा आदि जड पदार्थोको देवता लिखा गया है, वहा ओषधि आदि वर्णनीय है और उनके अधिष्ठाता देवता स्तवनीय है। आर्य लोग प्रत्येक जड पदार्थका एक अधिष्ठाता देवता मानते थे। इसीलिये उन्होने जडकी स्तुति चेतनकी ही तरह की है। मीमा-सक कहते है, जिस मन्त्रमे जिस देवताका वर्णन है, उसमें उसीकी-सी दिव्य शक्ति अनादि कालसे निहित है। मीमासा मन्त्रमें ही देवत्व-शक्ति मानती है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १३९, मन्त्र ११ से मालूम पड़ता है कि पृथिवी-स्थानीय ११, अन्तरिक्षस्थानीय ११ और द्युस्थानीय ११—सब ३३ देवता है। कृष्ण-यजुर्वेदकी तैत्तिरीय-सहिता (१.४.१०१) में भी यही बात है। ऋग्वेदके अनेक स्थानो (१.३४.११; १.४५.२, ९.९३.२; १०.५५.३ आदि) में तथा शतपथ-ब्राह्मण (४.५.७.२) और ऐतरेय-

ब्राह्मण (२.२८) मे ३३ देवोका उल्लेख है। शतपथमे ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी—ये ३३ देवता है और ऐतरेयमे ११ प्रयाजदेव, ११ अनुयाजदेव और ११ उपयाजदेव—३३ देवता है। विष्णु-पुराणके मतसे ११ रुद्र, १२ आदित्य, ८ वसु, प्रजापति और वषट्कार—ये ३३ देवता है। परन्तु ऋग्वेदके दो स्थानो (३.९.९ और १०.५२.६) मे ३३३९ देवताओका कथन है। सायणाचार्यने लिखा है कि देवता तो ३३ ही है, परन्तु देवोकी विशाल महिमा बतानेके लिये ३३३९ देवोका उल्लेख किया गया है।

जो मनुष्योको प्रसन्न करे और यज्ञादिकी रक्षा करे, उसे छन्द कहा जाता है। (निरुक्त, दैवतकाण्ड १ १२)। मुख्य छन्द २१ है। २४ अक्षरसे लेकर १०४ अक्षरतक ये सब छन्द होते है।

जिस कामके लिये मन्त्रका प्रयोग होता है, उसे विनियोग कहा जाता है। मन्त्रमे अर्थान्तर वा विषयान्तर होनेपर भी विनियोगके द्वारा अन्य कार्यमे उस मन्त्रको विनियुक्त किया जा सकता है—पूर्वाचार्योने ऐसा माना है। इससे ज्ञात होता है कि शब्दार्थसे भी अधिक आधिपत्य मन्त्रोपर विनियोगका है। ब्राह्मण-ग्रन्थो और कल्पसूत्रोसे ऋषि, देवता आदि जाने जाते है।

विदेशी, अन्य-धर्मी और स्वच्छन्द विचारधाराके पोषकोका मत है कि 'आर्योको परमात्माका ज्ञान नही था। उनकी पहुँच देवोतक ही थी। प्राकृतिक शक्तियो (अग्नि, वायु आदि) मे अद्भुत शक्ति देखकर वे उन्हे ही चेतन शक्तिवाले देवता समझते थे। इसीलिये उन्होने अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, विष्णु, मरुत्, स्वर्ग, सोम, रुद्र, अदिति, ब्रह्मणस्पति, भग, बृहस्पति, त्वष्टा, ऋभुगण आदि आदिको देवता मान लिया (ऋग्वेद १०.६५.१)। प्रकृतिकी लोल-लीलाओको न समझनेके कारण आर्योने इन्हे देवता समझ लिया।' परन्तु उनका कथन निराधार है— देवता-रहस्य न समझनेका फल है। देवताका रहस्य

"बृहद्देवता" बताती है। उसके प्रथमाध्यायके पांच श्लोकों (६१-६५) से पता चलता है कि इस ब्रह्माण्डकी जड़में एक ही शक्ति विद्यमान है, जिसे ईश्वर कहा जाता है। वह 'एकमेवाद्वितीयम्' है। उसी एककी नाना रूपोंमें–विविध शक्तियोंके अधिष्ठातृ-रूपमे–स्तुति की गयी है। नियन्ता एक है, इसी मूल सत्ताके विकास सारे देव हैं। इसी बातको यास्कने (निरुक्त, दैवतकाण्ड, ७ अध्यायमें) कितनी सुन्दरतासे कहा है–

> "महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
> एकस्यात्मनोऽन्ये देवा. प्रत्यङ्गानि भवन्ति।"

इसी तरह–

> "तस्या महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।"
> –नि०, दै० १.५।

ऐतरेयारण्यक (३.२, ३.१२) ने भी कहा है कि 'ऋग्वेदी लोग एक ही सत्ताकी उपासना ऋग्वेदीय मन्त्रो (उक्थो) मे करते हैं।' यदि ऋग्वेदको देखे, तो इस बातके अनेकानेक प्रमाण मिलेगे।

ऋग्वेद, तृतीय मण्डलके ५५वें सूक्तमे २२ मन्त्र हैं और सबके अन्तमे "महद्देवानामसुरत्वमेकम्" वाक्य आया है। तात्पर्य यह है कि देवोकी शक्ति एक ही है, दो नही, अर्थात् महाशक्तिका विकास होनेके कारण देवोकी शक्ति पृथक् नही–स्वतत्र नही है।

ऋषियोने जिन प्राकृत शक्तियोकी स्तुति वा प्रशंसा की है, उनके स्थूल रूपकी नही की है, प्रत्युत उनकी शासिका वा आधिष्ठात्री चेतन-शक्तिकी की है। इस चेतन-शक्तिको वे परमात्मासे पृथक् वा स्वतत्र नही मानते थे–परमात्मरूप ही मानते थे। उन्होने ऋग्वेदके प्रथम मन्त्रमें ही अग्निकी स्तुति की है, परन्तु अग्निको परमात्मासे स्वतन्त्र मानकर नही। वे स्थूल अग्निके रूपके ज्ञाता होते हुए भी सूक्ष्म अग्नि–परमात्म-शक्ति–रूपके स्तोता और प्रशसक थे। वे मरणशील अग्निमे व्याप्त अमरता के उपासक थे। इसीलिये उन्होने गाया है–

"अपश्यमहं महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु।"
(ऋ० १०.७९.१)

'मरणशील प्रजामे मैने अमर अग्निकी महिमाको देखा है।' इसी तरह वे इन्द्रको देवता मानते हुए भी इन्द्रकी सूक्ष्म शक्तिको परमात्म-शक्तिसे पृथक् नही समझते थे—परमात्म-स्वरूप समझते थे। तभी तो उन्होने कहा है—'इन्द्र मनुष्योके धारक है। उनकी महिमा समुद्रोसे भी अधिक है।' इन्द्र तेजसे सारे ससारको पूर्ण कर देते है' (ऋ० १०.८९.१)। 'स्तुत्य, नाना मूर्त्तियोवाले, दीप्तियुक्त, अनुपम प्रभु और श्रेष्ठ आत्मीय इन्द्रकी मै स्तुति करता हूँ' (ऋ० १० १२०.६)। 'जो इन्द्र सृष्टिकर्ताओके भी कर्त्ता है, जो भुवनोके अधिपति है, जो रक्षक और शत्रु-विजेता है, उनकी मै स्तुति करता हूँ' (ऋ० १०.१२८.७)।

भला परमात्माके सिवा किसकी महिमा समुद्रोसे भी अधिक हो सकती है? कौन ससारको तेजसे पूर्ण कर सकता है? कौन नाना मूर्तियोवाला, और अनुपम प्रभु हो सकता है? दूसरा कौन भुवनाधिपति और सृष्टिकर्ता का भी कर्त्ता है?

सूर्य, विष्णु, वाग्देवी, अदिति वा जितने देवता है, सबको वे उसी तरह परमात्मरूप समझते थे, जिस तरह एक ही धागेमे मालाकी सारी मनिया ओतप्रोत रहती है और केवल माला ही कहाती है।

यह कहना तो बिलकुल व्यर्थ है कि 'आर्योको परमात्माका ज्ञान नही था।' परमात्मतत्त्वका जैसा गहन-गम्भीर ज्ञान उनको था, वैसा तो आजतक प्राय. किसी भी मनुष्य-जातिको नही हुआ। लो० तिलकने (गीतारहस्यमे) ठीक ही लिखा है कि 'ऋग्वेदके नासदीय सूक्तमे जितनी स्वाधीन और उच्चतम चिन्ता है, उतनी आजतक मनुष्य-जाति नही कर सकी।' नासदीय सूक्तमे ही नही, ऋग्वेदके अनेक स्थानोमे ऐसी ही गम्भीर चिन्ताएँ है। दो-चार उदाहरण देखिये—

ऋग्वेद १ मण्डल, १६४ सूक्तके ६ और २० मन्त्रोमें परमात्माका स्पष्ट निर्वचन है। ३.५५.३ और ५.८५.१ मे ईश्वरीय सत्ताका स्पष्ट अनुभव है। १०.२७.६ मे ऋषि समाधिदशाका अनुभव करते हुए कहते है–"ससारमें घास और अन्न खानेवाले जितने मनुष्य है, सब मैं ही हूँ। हृदयाकाशमे जो अन्तर्यामी ब्रह्म अवस्थित है, वह मै ही हूँ।" भला इससे बढकर अद्वैतवादकी अनुभूति क्या होगी ? १०.३१.८ मे कहा गया है–'ईश्वर प्रजाक़ा बनानेवाला और द्यावापृथिवीका धारण करनेवाला है।' इससे अधिक स्पष्ट ईश्वरत्वका ज्ञान किस धर्मको है ?

कुछ मन्त्र और देखिये–'परमात्मा एक है, परन्तु क्रान्तिदर्शी विद्वान् उनकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते है।' (१०.११४.५)। जो देवता-तत्त्व नही जानते, वे इस मन्त्रको बार-बार पढनेका कष्ट करे। १० वे मण्डलका ९०वा सूक्त 'पुरुषसूक्त' कहाता है। यह सारा सूक्त ही ईश्वरमय है। नमूने के तौरपर इसका दूसरा मन्त्र देखिये–'जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, वह सब ईश्वर है। ईश्वर देवताके स्वामी है। प्राणियोके भाग्यके निमित्त वे अपनी कारणावस्थाको छोडकर जगदवस्थाको प्राप्त होते है।' इसमे स्पष्ट ही 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' का उद्घोष है। इसमें यह भी बता दिया गया है कि जैसे जीवात्माके स्वामी होते हुए भी परमात्मा और जीवात्मा एक है, वैसे ही देवोके स्वामी होते हुए भी ईश्वर और देवता एक है। इससे यह भी सूचित होता है कि जीवोके कर्मफलभोगके लिये ईश्वर सृष्टिकी रचना करते है। आगे देखिये–'उस समय–प्रलयावस्थामें–मृत्यु नही थी, अमरता भी नही थी, रात और दिनका भेद भी नही था। वायु-शून्य और आत्मावलम्बनसे श्वास-प्रश्वासयुक्त केवल एक ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त और कुछ नही था' (१०.१२९.२)। 'चूकि सृष्टिकालमे कर्मफल-बीज था, इसलिये परमात्माके मनमे प्रथम सिसृक्षा उत्पन्न हुई' (१०.१२९.४)। जिनसे ज्योतिर्मय सूर्य उत्पन्न हुए है, वे ही सबसे ज्येष्ठ हैं। उनके पहले कोई नही था' (१०.११४.७)।

'परमात्माके चौदह भुवन हैं' (१०.११४.७)। दसवें मण्डलका एक सौ इक्कीसवां सूक्त 'हिरण्यगर्भसूक्त' कहाता है। यह भी ईश्वरमय है। इसके दसों मन्त्र कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

इन समस्त उद्धृत मन्त्रोंपर विचार करनेसे विदित होता है कि कदाचित् ऋग्वेदसे बढ़कर ईश्वरवादका स्पष्ट विवरण किसी भी धर्म, धर्मशास्त्र वा पुराणमें नहीं है। जिनकी अन्तर्दृष्टि जागरित है, वे सभी लेखकके इस मतका समर्थन करेंगे।

अनेक संस्कृत-ग्रन्थोंमें ऋक्, यजु और साम वेदोंका नाम 'त्रयी' है। इसलिये कि तीन (अग्नि, वायु और सूर्य) ईश्वरीय शक्तियोंमेंसे अग्निका ऋग्वेदमें, वायुका यजुर्वेदमें और सूर्यका सामवेदमें विशेष कथन है।

महाभारत (१.२) श्रीमद्भागवत (१२ ६) और विष्णुपुराण आदिसे पता चलता है कि 'ब्रह्माकी आज्ञासे वेद-व्यासने वैदिक संहिताओंको कई खण्डोंमें विभक्त किया—विविध-विषयक मन्त्रोंको पृथक्-पृथक् करके प्रत्येक विषयको क्रमबद्ध किया। वे पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास थे और वेदोंका बँटवारा करनेके कारण ही उन कृष्णद्वैपायनका नाम व्यास पड़ा—

"वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इतीरितः।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदान् महामतिः॥"
(महाभारत १.२)

व्यासजीने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद, जैमिनिको सामवेद और सुमन्तुको अथर्ववेद पढ़ाया। पैल ऋषिने ऋग्वेदके दो भाग करके उन्हें इन्द्रप्रमति और बाष्कलको पढ़ाया। इन्द्रप्रमतिने अपना भाग अपने पुत्र माण्डुकेयको पढ़ाया। माण्डुकेयके बाद उनके पुत्र शाकल, शिष्यदेव और सौभरिने वेदाध्ययन किया। शाकलने अपने अधीत अंशका अध्ययन मुद्गल, गालव, शालीय और शिशिर आदिको कराया। इन्द्रप्रमतिके शिष्य शाकपूणि थे। इन्होंने वेदका जो भाग पढ़ा था, उसके तीन भाग

करके उन्हें अपने शिष्य क्रौञ्च, वैताल और वलाकको पढाया। शाकपूणि ने अपने 'निरुक्तकृत्' नामक शिष्यको निरुक्त वनाकर दिया। वाष्कलने अपनी सहिताके तीन भाग करके उन्हे कालायनि, गार्ग्य और कथाजवको पढाया।' इस तरह ऋग्वेदकी कितनी ही शाखाएँ हो गयी। परन्तु पाच की ही प्रधानता मानी गयी है—'शाकला, वाष्कला, माण्डुका, शाखायनी और आश्वलायनी।' इनमे अव पहली ही पायी जाती है, यह लिखा जा चुका है। अवश्य ही उपर्युक्त कथानक सर्वसम्मत नही है।

उव्वटने इन तेरह प्रकारके मन्त्रोका उल्लेख किया है—विधिवाद, अर्थवाद, याच्ञा, आशी, स्तुति, प्रैष, प्रवह्लिका, प्रश्न, व्याकरण, तर्क, पूर्वानुकीर्त्तन, अवधारण और उपनिषद्। ये सब पाये जाते है।

यास्कने ऋकोको तीन भागोमे विभक्त किया है—प्रत्यक्षकृत, परोक्षकृत और आध्यात्मिक। शाकलने पदपाठकी और गालव या वाभ्रव्य ने क्रमपाठकी रचना की।

ऋग्वेदके पद्योके शव्दोमें जो स्वर मिलते है, उनके नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित है। पाणिनिने जैसे वहुत कुछ वैदिक व्याकरण लिखा है, वैसे ही वैदिक भाषाके उच्चारणो और स्वरोके वारेमे भी लिखा है। परन्तु पाणिनिके सव प्रयोग अव लागू नही होते। स्वरोकी सर्वाधिक झलक शतपथ और तैत्तिरीय व्राह्मणोमें दीख पडती है। वैदिक पद्य-पाठ तो इनमे ओत-प्रोत है। द्राविड भाषामें आज भी वैदिक स्वरोच्चारणोकी झलक देखी जाती है। स्वरोके साथ वेद-पाठकी विधि है। स्वरोके कारण अर्थभेद भी होता है।

पाठ-प्रणालीके भेदसे सहिता दो तरहसे पढी जाती है। पहलीको निर्भुज-सहिता और दूसरीको प्रतृण-सहिता कहते है। मूलके अविकल पाठको निर्भुज कहते है। ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" को ज्योका त्यो पढा जाय, तो निर्भुज कहलायगा। जहा मूलको विकृत-रूपसे पढा जाय, वहा प्रतृण कहा जाता है। प्रतृणके

पद-सहिता, क्रम-सहिता आदि बहुत भेद है। पद-पाठमे पदच्छेद करके पढा जाता है—

"अग्निम्, ईले, पुरः, हितम्, यज्ञस्य, देवम्, ऋत्विजम्।"

क्रम-पाठ इस तरह पढा जायगा—

"अग्नि ईले ईले पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, देवं ऋत्विजम्।"

जटा-पाठ इससे विचित्र है—

"अग्नि ईले, ईले अग्निम्, अग्नि ईले, ईले पुरोहितम्, पुरोहितं ईले, ईले पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य, यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, देवं यज्ञस्य, यज्ञस्य देवम्, देवं ऋत्विजम्, ऋत्विजं देवम्, देवं ऋत्विजम्।"

घनपाठ तो और भी विचित्र है—

"अग्निं ईले ईले, अग्निं अग्नि ईले, पुरोहितं पुरोहितं ईले, अग्नि अग्नि ईले, पुरोहितं ईले पुरोहितम्, पुरोहित ईले ईले, पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य, पुरोहितं ईले ईले, पुरोहितं यज्ञस्य पुरोहितम्, यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहित यज्ञस्य देवम्, देवं यज्ञस्य पुरोहितम्, पुरोहितं यज्ञस्य देवम्, यज्ञस्य देवं देवम्, यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजं ऋत्विजं देवस्, यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्।" इत्यादि।

ये शब्द वार-वार इसलिये भी दोहराये जाते है कि वेदका मूल-पाठ सदा शुद्ध रहे, कही भी कोई ऊपरसे प्रक्षिप्त घुला-मिला न दे। ये पाठ-क्रम और भी कई प्रकारके है—माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ आदि। विस्तार-भयसे अन्य पाठ नही दिये जा रहे है। इन पाठोको देखकर अपने पूर्वजोकी असाधारण प्रतिभा, दुर्द्धर्ष परिश्रम और अदम्य धैर्यपर विस्मित और विमुग्ध होना पडता है। 'छापाखाना' तो अभी उस दिन चला है—हजारो हजार वर्षोसे ब्राह्मणजाति इन पाठो,

वेदोके विशाल साहित्य और शास्त्रोके विराट् वाङ्मयको केवल कण्ठस्थ करके सुरक्षित रखती आ रही है! वाह री अद्भुत प्रतिभा और वाह री ऋतम्भरा प्रज्ञा! क्या इन पूर्वज ब्राह्मणोसे ससार, विशेषत हिन्दू-जाति कभी 'उऋण' हो सकती है? ये ब्राह्मण विद्वान् नही रहते, तो क्या अगाध सस्कृत-साहित्य, हिन्दू-सस्कृति, हिन्दू-धर्म और आर्य-सभ्यताका नाम भी दुनिया सुनती? इस महत्कार्यके लिये ब्राह्मणोने भारतवर्षका राज्य छोड दिया, लक्ष्मीको लात मार दी, स्वेच्छया दरिद्रताका वरण किया और सरस्वतीकी अनन्य उपासना की। यदि व्यास, वसिष्ठ, परशुराम, द्रोण, चाणक्य और समर्थ रामदासकी सोलह आनेमें एक पैसा भी कामना रहती, तो आज तक भारतपर केवल विद्वान् ब्राह्मणोका राज्य रहता, दूसरे किसीका भी नही। परन्तु—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽय क्षुद्रकामाय नेष्यते।
स तु कृच्छ्राय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च॥"

अर्थात् 'ब्राह्मणका यह शरीर छोटे-मोटे कामके लिये नही है, यह तो जीवनमे घनघोर तपके लिये और शरीरपात होनेपर सच्चिदानन्दकी प्राप्तिके लिये है।'

वेदका प्रतिपाद्य यज्ञ है। यज्ञके प्रधान प्रसारक सनातन-धर्मी है। सायणका तो नाम ही 'याज्ञिक भाष्यकार' पश्चिमी वेद-विद्यार्थी रखे हुए है। परन्तु यज्ञके सम्बन्धमे लोगोमे काफी भ्रम भी फैला हुआ है। यज्ञ का वाच्यार्थ पूजन, हवन, याग आदि है। भगवान्‌ने यज्ञकी महिमा गीतामे गायी है—

"यज्ञदानतप कर्म न त्याज्य कार्यमेव तत्।"

यज्ञ, दान, तप और कर्मका त्याग नही करना चाहिये, इनको करना ही चाहिए।'

"यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।"

'यज्ञसे बचे हुए अमृतका उपभोग करनेवाले शाश्वत ब्रह्मको पाते है।'

"यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।'

'केवल यज्ञ ही के लिये कर्म करनेवाले पुरुषके समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं।'

ऐसे ऐसे अनेक वचनोसे भगवान्‌ने यज्ञका विराट् रूप बताया है। इसके सिवा गीतामे ब्रह्मयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ आदि लाक्षणिक यज्ञोका भी वर्णन किया गया है। गीताके तीसरे अध्यायमे भगवान्‌ने यह भी कहा है कि ब्रह्माने यज्ञ और प्रजाको एक साथ उत्पन्न करके प्रजासे कहा कि 'यज्ञ इच्छित फल-दाता है। इससे तुम देवोको सन्तुष्ट करो और देवता तुम्हे तुष्ट करे। यज्ञतुष्ट होकर देवता तुम्हे इच्छित फल देगे।' इस तरह गीतामे यज्ञका व्यापक अर्थ है। भगवान्‌ने तीन तरहके यज्ञोका उल्लेख, १७ वे अध्याय मे, किया है। ये है—सात्त्विक, राजस और तामस। व्यक्तिगत फलाशा त्याग कर किया जानेवाला यज्ञ सात्त्विक वा निष्काम, फलाकाक्षा-वाला यज्ञ राजस वा सकाम और शास्त्र-श्रद्धा-मन्त्रहीन यज्ञ तामस वा अधम है।

वैदिक साहित्यमे तामस यज्ञका पता तो नही चलता, परन्तु सकाम और निष्काम यज्ञोका तथा लाक्षणिक यज्ञोका प्रयोग बहुत पाया जाता है। तरह-तरहके यज्ञ, अपने लिये फलाभिलाषा लेकर भी, किये जाते थे और फलत्याग करके समाज, देश और ससारके कल्याणके लिये भी सैकडों यज्ञ किये जाते थे। निष्काम यज्ञको नियामकतक माना जाता था। यज्ञको विष्णुका रूप भी बताया गया है—"विष्णुर्वै यज्ञः" । विष्णुके नाम ही है यज्ञपुरुष और यज्ञेश्वर। जो यज्ञकी दार्शनिक व्याख्या और यज्ञरहस्य की विशद और यथार्थ मीमांसा देखना चाहे, वे वैदिक वाङ्मयके आरण्यक-

ग्रन्थोको पढ देखे। अनेकानेक ऋपियोके मतसे तो यज्ञका अर्थ ही है 'परोपकार'।

यो तो ऋग्वेदके प्राय सभी सूक्तोमें शौर्यवीर्यकी वाते है—परन्तु ऋग्वेदका सबसे वडा युद्ध 'दाशराज्ञ-युद्ध' है। यह भी महाभारतकी ही तरह कदाचित् आपसमे ही हुआ था। इसका उल्लेख ऋग्वेदके ७.१८,१९ और ३३ सूक्तो तथा ७.८३.७ मे है। इसमें दश प्रधान योद्धा थे। सूर्यवंशी राजा सुदासकी ओर इन्द्रकी सहायता थी। उन्होने शत्रुओके (यज्ञविरोधी लोगोके) ९९ नगरोको ध्वस्त-विध्वस्त कर डाला था (१.५४.६)। इसमें पक्थ, भलान, भनन्तालिन, विषाणिन आदि अनार्य राजा भी सम्मिलित थे। इसमे ६६०६६ मनुष्य काम आये थे (७ १८ १४)।

पाश्चात्त्य वेदांभ्यासियोने ऋग्वेदका काल-निरूपण करनेमें वहुत समय और श्रम लगाया है। अधिक यूरोपीय विद्वानोके मतसे १२०० ईसा पूर्व, हाग और आर्कविशप प्राटके मतसे २००० ईसा पूर्व, लोक० तिलक के मतसे ४५०० ईसा पूर्व, वि० चि० वैद्यजीके मतसे ३१०० ईसा पूर्व, जैकोवीके मतसे ४५०० ईसा पूर्व, पावगीके मतसे ७००० ईसा पूर्व और अविनाशचन्द्रदासके मतसे २५००० से ७५००० वर्ष पूर्व ऋग्वेद वना था।

यद्यपि हवन-यज्ञ-कार्योके लिये स्तुतिवहुल मन्त्र-समुदायका सकलन ऋग्वेदमे किया गया है, तथापि आर्योके धर्म, समाज, इतिहास, सस्कृति, सभ्यता आदिके सम्वन्धके भी हजारो मन्त्र हैं। इनसे अनेकानेक मूल्यवान् विषय ज्ञात होते है।

कहा गया है, सोमलता मूजवान् पर्वतपर मिलती थी (१० ३१ १)। सोमकी रखवाली गन्धर्व करते थे (९.८३ ४)। सोम पीकर आर्य अपने—

को अमर वनाते थे (८ ४८.३)। सोम एक पौधा था, परन्तु आध्यात्मिक भाषामे सोम ब्रह्मद्रव था। इसे पीकर आर्य मुक्त होते थे।

रथको ढाकने (६ ४७ २६) और घोडेकी लगाम आदि बनानेके काम मे आर्य लोग चमडेको लाते थे (१० १०२ २)। वे ऊनका कपडा बनाते थे (१०.२६.६)। स्त्रिया कपडे वुनती थी (२ ३.६)। जुलाहे (तन्तु-वाय) भी कपडे वुनते थे (१०.१०६ १)। वस्त्र दान किया जाता था (१०.१०७ २)। वे हाथोमे सोनेका कडा पहनते थे (५.५८ ३)। सोनेकी माला पहनते थे (५.५३.४)। सोनारको निष्क-कृण्वान् कहते थे (८ ४७ १५)। सौ दरवाजोका भी मकान बनाते थे (७ ८८ ५)। कारागारमे शत्रु रखे जाते थे (१ ११६ ८)। लोहे और सोनेका भी घर होता था (७ ३ ७; ७ १५ १४)। दरवाजेपर दरवान रहता था (२ १५ ६)। पायेदार दोतल्ला मकान होता था (५ ६२.६)। पिजडे-मे बाघ रखे जाते थे (१० २८.१०)। घुडदौडमे बाजी जीतकर अश्विनी-कुमारोने सूर्याको पाया था (१ ११६.१७)। रथमे घोडोके सिवा कभी कभी गधा जोता जाता था (१.१६ २)। रथ स्वर्ण और काठके होते थे (३.६१ २, १० ८५ २)। भृगुवशीय रथ-निर्माणमे निपुण थे (१० ३९.४)। घोडे स्वर्णालङ्कारोसे सजाये जाते थे (४.२ ८)। आर्य तलवार और भालेसे लडते थे। धनुर्वाण प्रधान हथियार थे। कवच पहनते थे। लोहे और सोनेका टोप पहनते थे। दस्ताना भी पहनते थे। वाण तरकसमे रखे जाते थे (छठे मण्डलका पूरा ७५ सूक्त और ८ ९६.३ मत्र)। छुरी और तलवार भी चलाते थे (५.५७.२)। लौहास्त्र पर सान चढाते थे (६.३.५)। ऋषियोके पास गौ, घोडे, सुवर्ण, जौ और वाल-बच्चे होते थे (९.६९.८), इसलिये वे भी युद्ध करते थे (६.२०.१)। साधारणत. लोग सौ वर्ष जीते थे (१०.८५.८)। क्षौर-कर्म नापित (नाई) करता था (१०.१४२.४)।

पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक और पाप-पुण्यपर आर्योका पूर्ण विश्वास था

(१०.१७७ ३)। अश्वमेध-यज्ञसे स्वर्ग मिलता था (१०.१६७.१)। अश्व देनेवाला सूर्यलोक जाता था। स्वर्णदानी अमर होता था और वस्त्र-दानी दीर्घायु प्राप्त करता था (१०.१०७.२)। "त्र्यम्बक यजामहे" (मृत्युञ्जय)का जप करनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति होती थी (७.५९.१२)। मूर्खकी निन्दा की गयी है और पढने पर बडा जोर दिया गया है (१०.७१ भाषासूक्त)। भुने हुए जौ, सत्तू और आटेका उपयोग किया जाता था (३.५२.१)। भडभूजेकी दूकाने थीं (१.११२.३)।

आर्योको ज्योतिर्विद्याका पूर्ण ज्ञान था। सूर्यका रथ ५०५९ योजन चलता था। रथकी गति एक दण्डमे ७९ योजन मानी गयी है। उषा सूर्यसे आधा दण्ड पहले आती थी (१.१२३.८)। आर्य लोग बारह राशियाँ और पाच ऋतु मानते थे। हेमन्त और शिशिरको एक ही ऋतु मानते थे (१.१६४.११—१३)। वे मलमास वा मलिम्लुच् भी मानते थे (१ २५.८)। सूर्य-ग्रहणकी रीति जानते थे (५.४०.५९)। उन्हें सूर्यके दक्षिणायन होने पर वर्षा होनेका ज्ञान था (६.३२.५)। उन्हे मुद्रानीतिकी भी जानकारी थी (५.२७.२)।

वे शकुन्त, मयूर, विच्छू, साप आदि विषधर जीवोके विष-वेगको दूर करनेके लिये प्रार्थना करते थे (१.१९१ ७—१६)। पक्षिध्वनिके अशकुन-को हटानेके लिये २.४२ और ४३ सूक्त जपनेकी विधि है। वे समुद्रयात्रा करते थे (७.८८ ३)। तुग्र-पुत्र भुज्यु समुद्र-यात्रा करते थे (१.११६.३ और १.१५८.३)।

घोडे, कुत्ते और ऊटकी पीठपर अन्न ढोया जाता था (८ ४६.२८)। एक बार एक राजाने ऋषियोको ६० हजार घोडे, दो हजार ऊट, एक हजार काली घोडिया और एक हजार गाये दानमें दी थी (८.४६.२२)। चेदि-वशी राजाने ब्राह्मणोको बहुतसी गाये और ऊट दानमे दिये थे (८.५.३७)। ऋग्वेदमे दो बार (६.४५.३१, १०.७५.५) गगाका उल्लेख

है। शव जलाया जाता था (१०.१६.१)। द्युलोक और भूलोककी सृष्टि साथ ही हुई थी, सृष्टि जलाकृति थी, सृष्टिकर्त्ता अज्ञेयसे है, प्रलयके वाद सृष्टि होती थी (१०.११९ सृष्टिसूक्त)। नासिका-शून्य और शब्द-रहित जाति भी थी (२.३०.८)। हिरण्यकशिपुके पुरोहित शण्डामर्ककी चर्चा आयी है (२.३०.८)। चारो वर्णोंके सिवा पाचवा वर्ण भी था (१.८९.१०, १.७.९, १.१००.१२)।

ऋग्वेद (३.५४.४, १.२२.१७, १.१९०.९ और १.१५४.१) में वामनावतारकी कथा आयी है। खेत जोतनेकी वात है (१.२३.५)। ऋषि दधीचिकी हड्डियोसे इन्द्रके द्वारा ८१० वार असुरोका मारा जाना लिखा है (१.८४.१३)। सूर्यकी ही किरणसे चन्द्रमामे दीप्तिका होना लिखा है (१.८४.१५), जिससे विदित होता है कि आर्य ही ज्यौतिषके इस वातके आदि ज्ञाता है।

आर्य लोग सोने और लोहे—दोनोका कवच पहनते थे (१.२५.१३; १.५६.३)। वे इक्कीस यज्ञ करते थे—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढ-पशुबन्ध और सौत्रामणि नामके सात हविर्यज्ञ, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामके सात सोमयज्ञ एव पितृयज्ञ, पार्वणयज्ञ, अष्टकायज्ञ, श्रावणी यज्ञ, आश्वयुजी यज्ञ, आग्रहायणी यज्ञ और चैत्री यज्ञ (१.७२.६) नामके सात पाकयज्ञ। प्रथम मण्डलके १६२वे सूक्तमे अश्वमेध यज्ञका वहुत ही मार्मिक वर्णन है। सूर्यके सात घोडोकी वात वे जानते थे (१.१६४.२), वारह राशियों, ३६० दिनो और ३६० रात्रियोका विवरण उन्हे मालूम था (१.१६४.१३)। वारह महीने भी आर्य मानते थे (१.१६४.१२)। इसी मंत्रमे दक्षिणायन और उत्तरायणकी भी चर्चा है। नकुल और चक्रवाक् होते थे (१.१९१.१५; २.३९.३)। विषधर प्राणी अनेक प्रकारके थे (१.१९१ सूक्त)। उच्चैःश्रवा घोड़ा समुद्रमे ही जनमा था

(२.३५.६)। प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्रका उल्लेख है (३.६२.१०)। आर्य लोग सोनेका अलकार कण्ठमे धारण करते थे (५.१९.३)। अरुण राजर्षिने अत्रि ऋषिको दस हजार सोनेकी मुद्राएँ (निष्क) दी थी (५.२७.१)। वे उनचास पवनोको जानते थे (५.५२.१७)। वे धनुष्, ज्या, धनुष्कोटि, वाण, लगाम, चावुक, वर्म और विषाक्त वाणका व्यवहार करते थे (६.७५ सम्पूर्ण सूक्त)। शहरके शहर लोहे और सोनेके बनते थे (७.३.७)। महर्षि वसिष्ठके पास पाच हजार गाये थी (७.८.६)। केवल लोहेके वने सौ नगर थे (७.१५.१४)। वे सिंहको मार डालते थे (७.१८.१७)। वसिष्ठ-वशीय लोग सिरके दाहिने भागमें चूडा धारण करते थे (७.३३.१)। पिंगल वर्णके अश्व होते थे (७.४४.३)। नील वर्णके हस होते थे (७.५९.७)। रथपर सारथियोके वैठनेके तीन स्थान होते थे (७.६९.२)। धूपसे वृष्टि होनेका उल्लेख है (७।७०।२)। वहुत तरहके मेढक होते थे (७.१०३ सूक्त)। उल्लू, कुक्कुर, बाज और गिद्ध होते (७.१०४.२२)। प्रतिदिन चालीस कोस चलनेवाले घोडे होते थे (८.१.९)। सोनेका चर्मास्तरण होता था (८ १.३२)। यदुवशी आसग नामक राजाने दस हजार गाये दान दी थी (७.१.३३)। विभिन्दु नामके राजाने चालीस हजार निष्कका एक वार और आठ हजार निष्क (स्वर्णमुद्रा) का एक वार दान दिया था (८.२.४१)। चेदिवशीय कशु नामके राजाने सौ ऊट और दस हजार गाये दान दी थी (८.५.३७)। वज्र सौ धारोवाला भी होता था (८.६.६)। वैश्यका पृथक् भी उल्लेख है (८.४५.१८)। एक वार ७० हजार अश्वो, २ हजार ऊटो, १ हजार काली घोडियो, १० हजार गायो और सोनेका रथ दानमे दिया गया था (८.५६.२२–२४)।

आर्य ४९ ही नही ६३ वायु भी मानते थे (८.४५.८)। जडी-वूटीसे चिकित्सा की जाती थी (८.२८.२६)। शुक, हारीत, भैस, हस, वाज आदि वहुत थे (८.४५.७–९)। तीन तल्लोवाले मकान भी वनते थे (८.५०.१२)। तीस दिनो और तीस रातोका महीना होता था (९.५४.

२)। जौ का दान बहुत दिया जाता था (६.५५.१)। ध्वस्त्र और पुरुषन्ति नामके राजाओने तीस हजार कपडोका दान दिया था (६.५८.४)। राजा वेन और नहुषके वशजोका उल्लेख किया गया है (६.८५.१०, ६.६१.२)। नौकर और वेतनकी चर्चा भी है (६.१०३.१)। बच्चे गहने पहनते थे (६ १०४.१) कुरुक्षेत्रके पास शर्यणावान् तडागमे सोम होता था (६.११३.१)। जुड़वे बच्चे भी होते थे (१०.१३.२)। पितृलोक और यमपुरीका वर्णन मिलता है (१०.१४ सूक्त)। इसी सूक्तमे लिखा है कि 'श्मशान घाटपर पिशाच रहते है और यमद्वारके रक्षक दो भयकर कुत्ते हैं।' १०वे मण्डलके १५ वे सूक्तमे पितरोका पूरा विवरण पाया जाता है। पितृयान और देवयानकी चर्चा पायी जाती है (१०.१८.१)। १०वे मण्डलके पूरे १६वे सूक्तमे गायोकी स्तुति की गयी है। मेष-लोमका कम्बल बनता था (१०.२६.६)। गायत्रीको स्तोत्रोकी माता कहा गया है (१०.३२.४)। द्यूत-क्रीडा और तिर्पन तरहके पाशोका उल्लेख मिलता है (१०.३४ सूक्त)। हाथीको अकुशसे वशमे किया जाता था (१०.४४.६)। जौको कोठीमे भी रखा जाता था (१०.६८.३)। ब्राह्मणोके साथ जो यज्ञ और स्तुति नही करते थे, वे हल जोतते थे (१०.७१.६)। नदीसूक्त (१०.७५) मे गगा, यमुना आदि नदियोका उल्लेख मिलता है। चादर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघाका उल्लेख पाया जाता है (१० ८५ १३)। वाराह भी होता था (१० ८६.४)। इसी मण्डलका ६० वा सूक्त पुरुष-सूक्त है।

पाच-पाच सौ रथ एक साथ चलते थे (१० ६३ १४)। राजा राम और राजा वेनकी बात एक ही मन्त्रमे पायी जाती है (१० ६३.१४)। ६५ वे सूक्तमे उर्वशी और पुरूरवाकी प्रसिद्ध कथा है। ६७ वे सूक्तमे औषधो, रोगो और वैद्यकी बात है। अग्निमे ६६ हजार आहुतिया देनेका विवरण है (१० ६८ १०)। जोताई, हल, सीत, जुआठ, हँसिया, तग (चर्म-रज्जु), खेत, गाड़ी, नाद, गोशाला, काठके पात्र, प्रस्तर-कुठार,

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि व.।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति:।।"

अर्थात् यजमान-पुरोहितो, तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हो और तुम्हारा मन एक हो। तुम लोगोका पूर्ण रूपसे सघटन हो।*

---

* ऋग्वेदकी शाखाओं वा सहिताओकी संख्याके सम्बन्धमे बड़ा मतभेद है। भर्तृहरिने अपने 'वाक्यपदीय'में पंद्रह और पातञ्जल महा-भाष्यने इक्कीस शाखाएँ मानी है। अणु-भाष्य (१ १.१) में उद्धृत स्कन्द-पुराण और आनन्दसहिता (२) के अनुसार २४ तथा श्रीभगवद्दत्तजीके अनुसार सत्ताईस शाखाएँ है। परन्तु तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, इसीके माहि-षेय भाष्य, पातञ्जल महाभाष्य, काशिकावृत्ति, अष्टाध्यायी, कल्पसूत्रो, पुराणों आदिमें ऋग्वेदकी २७ से भी अधिक ये शाखाएँ मिलती है—

१. शाकल, २. मुद्गल, ३. गालव, ४. शालीय, ५. वात्स्य, ६. शैशिरि, ७. वाष्कल, ८. बौध्य, ९. अग्निमाठर, १०. पराशर, ११. जातूकर्ण्य, १२. आश्वलायन, १३. शांखायन, १४. कौषीतकि, १५. महाकौषीतकि, १६. शाम्बव्य, १७. माण्डुकेय, १८. बह्वृच, १९. पैङ्ग्य, २०. उद्दालक, २१. गोतम, २२. शतवलाक्ष, २३. होस्तिक, २४. भार-द्वाज, २५. ऐतरेय, २६. वसिष्ठ, २७. सुलभ, २८. शौनक, २९. आश्मरथ्य, ३०. काश्यप, ३१. कार्मन्द, ३२. कार्शाश्व, ३३. क्रौड और ३४. काङ्कत।

अभीतक वैदिक साहित्य और लौकिक संस्कृत साहित्यके शोध और अन्वेषणका कार्य बाकी है। दोनों साहित्योके अप्रकाशित ग्रन्थ भी सैकड़ों इतस्ततः पड़े हैं; इसलिये सम्भव है, शोध, अन्वेषण और प्रकाशन हो जाने

पर इन नामोंमें और वृद्धि हो या न्यूनता हो या शुद्धता हो और ठीक सख्या को निश्चयता हो। पहले तो विविध ग्रन्थोंमें एक ही नाम इतने रूपोंमें मिलता है कि देखकर आश्चर्य होता है। उदाहरणके रूपमें शाम्बव्य शब्द को लीजिये। इसको कही शावत्य लिखा है, कहीं साम्बाख्य, कहीं सभाव्य, कही शाभव्य, कही शावाश्य, कहीं शाकाभ्य, कहीं शाबव्य, कही साबाख्य, कहीं सबाख्य और कहीं कुछ और कहीं कुछ। ऐसी दशामें नामोकी शुद्धता म ही पहले तो भारी सन्देह है। दूसरे कहीं एक ही नामको शाखामें गिना गया है. कहीं उपशाखामें और कहीं प्रशाखामें।

वैदिक साहित्यमें सौत्र-(श्रौत्र-धर्म-गृह्यादि-सूत्र-सम्बन्धिनी) शाखा भी प्रसिद्ध है। भारद्वाज, हिरण्यकेशी, सत्याषाढ, वाधूल आदि सौत्र शाखाएं वर्तमान ही हैं। बहुत सम्भव है, इन चौबीस नामोमेंसे कुछ नाम सौत्र-शाखाओंके हो। इसी तरह सम्भव है, इन चौंतीस नामोंमेंसे कई नाम सहिता-भाष्यकारो, निरुक्तकारो, प्रातिशाख्यकर्त्ताओं, पदपाठकारो और अनुक्रमणीकारोके हो। इनमें ब्राह्मण-कुलोंके भी नाम हो सकते हैं। वैदिक साहित्यको कठस्थ करनेवालो और लिपिकारोंके कारण भी इन नामोमें अनिश्चित और अशुद्धि आ गयी है। फलतः जोर देकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये चौंतीसो नाम शाखा-प्रवचन-कर्त्ताओंके ही है या ऋग्वेदकी चौंतीस शाखाएँ थीं। जिस शाखाकी सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक या उपनिषद् नहीं मिलती, उसकी निश्चयताके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, भारतवर्षमें ऐसे सैकड़ो घर है, जिनमें खोज करनेपर वैदिक-साहित्यके अनेकानेक ग्रन्थ मिल सकते हैं। इन ग्रन्थोसे शाखा-निर्णयमें बड़ी सहायता मिलेगी।

इसी अनिश्चयताके कारण इस लेखमें लेखकने ऐसे ही शाखा-नाम लिखे है, जो अनेकानेक ग्रन्थोमें अत्यन्त विख्यात हैं। शाखा-संख्या-निर्णय के लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये।

द्वितीय अध्याय

ऋग्वेद और नारीजाति

जैसे धनकी देवी लक्ष्मी, शक्तिकी दुर्गा और विद्याकी सरस्वती है, वैसे ही अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होत्रा, सिनीवाली, श्रद्धा, पृश्नि आदि वैदिक देविया अनेक तत्त्वोकी अधिष्ठात्री है। ये कही देव-माताएँ और कही देवकन्याएँ मानी गयी है। इनमे अदितिका उल्लेख सर्वाधिक है। सब मिलाकर ऋग्वेदमे ८० वार अदिति देवीका उल्लेख है। जिस तरह मिश्रवाले 'मात' (Maat) को पूजते थे और यूनानी थेमिस (Themis) को पूजते थे और देवमाता मानते थे, वैसे ही आर्य लोग अदितिको मानते थे। वे अदितिको मित्र, वरुण, रुद्र, आदित्य, इन्द्र आदिकी माता मानते थे। (सौरीघरमे ही अदितिने इन्द्रको स्तनपान करानेके पहले सोमरस पिलाया था।) अदितिको सर्वशक्तिमती मानकर कही उन्हे आठ वसुओकी पुत्री और कही आदित्योकी भगिनी भी कहा गया है। (अदिति शब्दसे ही आदित्य शव्द बना है।) ऋग्वेदके १० मण्डल, सूक्त १००, मन्त्र १ मे अदितिको 'सर्वतातिम्' (सर्वग्राहिणी) कहा गया है। अदिति शव्दका अर्थ ही है 'बन्धनमुक्त', 'स्वाधीन'। अदिति को **'विश्वजन्या'** (७ १० ४) अर्थात् विश्वहितैषिणी कहा गया है। १. ८९ १० मे कहा गया है—'अदिति आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और समस्त देव है। अदिति पञ्चजन (गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस) है। अदिति जन्म और जन्मका कारण है।' अदिति पापोसे वचानेवाली देवी भी थी। कहा गया है—'धनी मित्र और वरुणकी माता अदिति देवी हमे पापोसे बचावे' (१० ३६ ३)। एक अन्य मन्त्र (७ ८२ १०) मे कहा गया है—'यज्ञवर्द्धिका अदितिका तेज हमारे लिये सुखकर हो'। १० ७२ ५ मे अदितिको दक्ष-पुत्री कहा गया है।

पुराणोमे जिन 'दिति' को दैत्योकी माता कहा गया है, उनका भी ऋग्वेदमें उल्लेख है। कहा गया है–

"हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टवय स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आरोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥"

अर्थात् हे मित्र और वरुण, तुम उष -कालमें सूर्यके उदित होनेपर लौह-कीलसे युक्त सुवर्णमय रथपर यज्ञमें जानेके लिये आरोहण करो और अदिति तथा दितिका अवलोकन करो।

अदितिके साथ दितिका ऋग्वेदमे केवल तीन ही बार उल्लेख है, परन्तु सर्वत्र दिति देवी ही मानी गयी हैं, दैत्य-माता नही।

देवीके रूपमें ही द्यावा और पृथिवीका वर्णन ऋग्वेदमे कई स्थानपर है। १ मण्डल १५९ और १६० दो सूक्तो (दस मन्त्रो) में इन दोनोका पूरा विवरण है। इन मन्त्रोमें इन दोनोको यज्ञवर्द्धिका, महती, यजमान-माता, उदारा, सदया, माता, पिता, अमृतदात्री, सहोदरा, भगिनी, प्रज्ञा-युक्ता, चैतन्य-स्वरूपिणी, सुखदायिनी, सुजाता, निपुणा, जीवरक्षिणी, फलदात्री आदि कहा गया है।

हल द्वारा चिह्नित भूमि-रेखाका नाम सीता है (शुक्ल यजुर्वेद, महीधर), परन्तु ऋग्वेदमें कई स्थानोपर सीताकी स्तुति देवी कहकर की गयी है। कहा गया है–

'सौभाग्यवती सीता, हम तुम्हारी स्तुति करते है। तुम हमें धन और सुन्दर फल दो। पूषा सीताको नियमित करें' (४ ५७ ६–७)।

उषाका अर्थ प्रभात है, परन्तु ऋग्वेदमे उषाका देवी रूपसे प्राय ३०० बार उल्लेख है। सूक्तके सूक्त उषाकी स्तुतिसे भरे पडे है–१ ४८–४९,२३,२४, ३ ६१, ४ ३०,५१,५२, ५ ७९,८०, १० १७२ आदि। उषाको आकाश-पुत्री, सत्यभाषिणी, दीप्तिमती आदि कहा गया है (१ ९२ १३–१४)। उषामे सारे प्राणियोकी इच्छा और जीवन वताया गया है (१ ४८ १०)। उन्हें नित्य यौवन-सम्पन्ना, शुभ्रवसना और धना-

धीश्वरी कहा गया है (१ १३ ७)। यूनानियोमे हओस, दहना, एथेना आदि उषाके कई नाम हैं। लैटिन भाषा-भाषी उषाको 'मिनर्वा' कहते हैं। यूनानी आदिकोमे उषाकी कितनी ही कहानिया प्रचलित हैं और वे उषाके पूरे भक्त हैं।

सूर्यकी पुत्रीका नाम सूर्या है। सूर्याको ऋग्वेदमे देवी और ऋषिका भी कहा गया है। उन्होने १० मण्डलके ८५ सूक्तको बनाया या स्मरण किया है। इस सूक्तमे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकके द्वारा तथा आध्यात्मिक वा समाधि-भाषामे सूर्याका अनेक प्रकारसे वर्णन है। विवाहके अनन्तर सूर्याको अश्विनीकुमार एक रथपर ले गये थे। यह समस्त सूक्त पढने लायक है। इसमे अनेक ज्ञातव्य विषय है।

इन्द्राणी इन्द्रदेवकी पत्नी है। उनका एक नाम शची भी है। ऋग्वेद १० मण्डल, १४५ सूक्तकी ऋषिका इन्द्राणी है और १५९ की पुलोमपुत्री शची है। दोनो सूक्तोसे मालूम पडता है कि इन्द्रकी अनेक पत्निया थी और उन सबसे शचीका भारी द्वेष था। १४५ मे लिखा है—'सपत्नीके नाशके लिये शची एक औषध खोद निकालती है।' यह बात पहले मन्त्रमें है। तीसरेमे शचीने अपनी सौतको नीचातिनीच बताया है और वे सपत्नी से बहुत दूर भागती है। इस औषधको इन्द्राणीने इन्द्रके सिरहाने रख दिया, ताकि सौतोकी ओरसे इन्द्रका मन फिर जाय। १५९ सूक्तमे कहा गया है कि शचीने सौतोका तेज उडाकर उन्हे परास्त किया।

वाक्को भी देवी माना गया है। वाक्को प्रदीपिका, देवानन्दकारिणी, अन्न-जलदात्री, हर्षकारिणी आदि कहा गया है (८ ९९ १०-११)। ये ही अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाग्देवी १० मण्डलके १२५ वे सूक्तकी ऋषिका है। इस सूक्तमे आठ मन्त्र है और सबमे वाक्की बडी महिमा बतायी गयी है। वाग्देवीको मित्र और वरुणको धारण करनेवाली कहा गया है। राज्याधीश्वरी, धनदात्री, ज्ञानवती, प्राणव्यापिनी, उपदेशिका, आकाशजननी आदि भी कहा गया है। अन्तिम मन्त्रमे कहा गया है—'मै ही (वाग्देवी

ही) भुवनका निर्माण करते-करते वायुके समान वहती हूं। मेरी महिमा ऐसी वडी है कि मैं द्यावापृथिवीका अतिक्रम कर चुकी हूँ।'

इलाको घृतहस्ता, अन्नरूपिणी और हविर्लक्षणा देवी कहा गया है (७ १६ ८)। उन्हे मनुके यज्ञमे हविका सेवन करनेवाली भी वताया गया है (१० ७० ८)। एक स्थानपर (५ ४१ १९) इला या इडाको गो-सघकी निर्मात्री कहा गया है। १ ३१ ११ मे इलाको मानवजातिका पौरोहित्य करानेवाली उपदेशिका वताया गया है*।

सरस्वती देवीको पतितपावनी, धनदात्री, सत्यप्रेरिका, शिक्षिका और ज्ञानदात्री कहा गया है (१ ३ १०-१२)। इसमे सन्देह नही कि सरस्वती नामकी एक नदी भी थी, जिसके तटपर आर्योने अनेक यज्ञ किये थे। इस नदीका उल्लेख भी ऋग्वेदमे अनेक स्थानोपर है। परन्तु ये देवी मन्त्रोकी अधिष्ठात्री और वाक्प्रेरयित्री भी मानी गयी है। अनेक मन्त्रोकी आविष्कर्त्री भी सरस्वती देवी है।

भारतीको मनुके यज्ञमे हविका सेवन करनेवाली कहा गया है (१०. ७० ८)। एक स्थानपर (१ २२ १०) भारती देवीको देवोको यज्ञमें वुलाने वाली और सत्यवादिनी कहा गया है। इसी मन्त्रमें होत्रा देवीको देवरमणी वताया गया है।

सरण्यूको यमकी माता और विवस्वान्‌की पुत्री वताया गया है। सरण्यू के पिता त्वष्टा थे। कहा गया है, सरण्यूके विवाहमे सारा ससार आया

---

* ससारके कई देशोमें स्त्रिया पौरोहित्य करानेवाली हो गयी हैं। ब्रिटेनके मन्दिरोमें पूजा करानेवाली स्त्रियां प्रसिद्ध ही हैं। यूनानमें डीमेटर और पर्सीफोनकी पुजारिनें भी ऐसी ही थीं। वोर्नियोकी कयान स्त्रियां भी धान वोनेके समय पूजा कराती हैं। अमेरिकाके रेड इडियनोमें भी यही वात है। वर्मामें तो स्त्रियां ही धर्मकी जड हैं।

था। ये ही देवी दोनो अश्विनीकुमारोकी माता है। अश्विनीकुमार यमज, विद्वान् और वैद्य थे (१० १७ १-२)।

२ ३२ ५-८ में सिनीवाली, राका और गुगु देवियोका उल्लेख है। सिनीवालीको सुबाहु, सुन्दर अगुलियोवाली, लोकरक्षिणी और बहुप्रसविनी कहा गया है। राकाको धनदात्री और शोभना कहा गया है। आठवें मन्त्रमे कुहू, सरस्वती, इन्द्राणी और वरुणानीका भी आह्वान किया गया है। छठे मन्त्रमे सिनीवालीको, देवभगिनीकी सज्ञा दी गयी है। १०.१८४ सूक्तका नाम गर्भरक्षण-सूक्त है। इसमे सिनीवाली और सरस्वती को गर्भधारण करनेके लिये कहा गया है।

१० ५९ ५-६ मे प्राणनेत्री एक असुदेवीका उल्लेख है। देवीसे प्रार्थना की गयी है कि हमे परमायु दो, नेत्र दो, चिरकालतक सूर्योदय देखने दो और हमे सुखी करो। १० १५१ सूक्तमे श्रद्धाका वर्णन है। श्रद्धा ही इस सूक्तकी ऋषिका और देवता या वर्ण्य विषय है। कहा गया है—'श्रद्धासे अग्नि जलता है, श्रद्धासे हविका हवन किया जाता है। मनमे कोई भी सकल्प होनेपर लोग श्रद्धाकी शरणमे जाते है। श्रद्धासे ही मनुष्य धन पाता है। श्रद्धा, हमे इस ससारमे श्रद्धावान् करो।' वस्तुत श्रद्धा ही सब कुछ करती है—**'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** **(गीता)**। बिना श्रद्धाके क्षुद्र-बुद्धि मनुष्य इस अनन्त विश्वको न समझ ही सकता है और न जीवनमे कोई सफलता ही प्राप्त कर सकता है। परन्तु 'विश्वास या श्रद्धा या तो भगवान्‌की दयासे प्राप्त होती है या हृदयकी दृढ भावनासे' (शतपथ-ब्राह्मण १२ ७ ३ ११)।

पृश्नि देवीको मरुतोकी माता कहा गया है। उन्हे सोमरस दूहनेवाली बताया गया है (८ ७ १०)। एक मन्त्रमे (१ २३ १०) पृश्नि-पुत्र मरुतो को यज्ञमे बुलाया गया है।*

*** सायणने पृश्निका अर्थ पृथ्वी किया है। ईसासे कई सौ वर्ष पहले निर्मित 'निघण्टु' में पृश्निका अर्थ आकाश है। 'निरुक्त' के टीकाकार राथ**

अरण्यानी या वनदेवीका भी उल्लेख है। कहा गया है–

"न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते॥"

अर्थात् 'अरण्यानी देवी किसीका प्राणवध नही करती। यदि व्याघ्र, चोर आदि न आवे तो कोई भय नही है। वनमे स्वादिष्ट फल खा-खाकर आनन्दसे समय विताया जा सकता है' (१० १४६ ५)।

"आञ्जनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिषम्॥"

अर्थात् 'कस्तूरीके समान अरण्यानीका सौरभ है। वहा आहार भी है। वहा प्रथम कृषिका अभाव रहता है। अरण्यानी हरिणोकी मातृ-रूपिणी है। इस प्रकार मैंने अरण्यानी देवीकी स्तुति की' (१० १४६ ६)।

१ २२ १२ मे लिखा है–'अपने मगलके लिये और सोमपानके लिये हम इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी (अग्न्यानी) को इस यज्ञमे वुलाते है।'

मुख्य देविया ये ही है। खोजनेपर कुछ अप्रसिद्ध देविया और भी मिल सकती है। ऋग्वेदमे कई स्थानोपर नदियो और स्वर्गवासिनी अप्सराओ की भी स्तुति की गयी है।

आर्योका यह उचित ही विचार था कि कोई भी जड पदार्थ स्वयं कार्य करनेमे असमर्थ है। हा, यदि उसका कोई चेतन अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमे समर्थ हो सकता है। इसी विचारसे आर्य लोग अग्नि, वायु, नदी आदिके सिवा उनके अधिष्ठातृ-रूपसे एक-एक चेतन अग्नि, वायु, नदी आदि भी मानते थे। ऐसे देव तो अनन्त है, परन्तु चूकि परमात्मा सबके अधिष्ठाता, शासक और नियामक है, इसलिये इन सब

ने पृश्निका अर्थ मेघ लिखा है। ऋग्वेदके फ्रेंच टीकाकार लांलोआने भी मेघ ही अर्थ लिखा है। लालोआका कहना है–"Le nuafe, on l'air charge de nuafes." इन अर्थोमें बहुत कुछ खींचतान है।

देवोको ईश्वरका अश भी माना जाता है। फलत शासक-रूपसे उन-विषयोके अनेक देव है, परन्तु चेतन-रूप होनेसे सामुदायिक रूपसे सव देव एक है और वही एकत्व-केन्द्र परमात्मा है। हा, यह बात अवश्य है कि ऋग्वेदके मन्त्रोमे देवियोको छोडकर मुख्य देवता तैतीस ही माने गये है।

दैवी जगत्के अनन्तर मानव जगत्का विचार करनेपर विदित होता है कि आर्य लोग नारियोका वडा सम्मान करते थे। ऋषि, महर्षि आदि प्राय सभी आर्य विवाह करते थे। वे नारीको ही घर मानते थे। 'गृहिणी गृहमुच्यते' आर्य लोग मानते थे (३ ५३ ४)। नारीके विना वे घरका अस्तित्व ही नही समझते थे। वे पूषा देवतासे कमनीय कन्या मागते थे (६ ६७ १०-११)। वे कन्याओका वहुत आदर तो करते ही थे, उनके पुत्र अर्थात् अपने दौहित्रको अपना उत्तराधिकारी भी वनाते थे (३ ३१. १-२)। कन्याका एक नाम दुहिता भी है। यह शब्द 'दुह' धातुसे बना ह, जिसका अर्थ है दूहना। इस शब्दको देखकर अनेक देशी और विदेशी वेदाभ्यासी कहते है कि पहले कन्याओका मुख्य कार्य गौका दूध दूहना था। ये कन्याएँ गो-रक्षा करती थी, दूध दूहती थी और घी निकालती थी। जिस घरमे घी रहता है, उस घरमे देवताके आगमनकी बात कही गयी है (१ १३५ ७)। वे कपडे वुनती थी, कसीदा काढती थी (२ ३ ६, २ ३८ ४)। वे घडे भरती थी (१ १९१ १४)। मा-वापको पानी नही भरने देती थी। वे खेतोकी रखवाली भी करती थी। कन्याकी रक्षा पिता करते थे और पिताकी मृत्यु हो जानेपर भाई अपनी बहनकी रक्षा करता था। जिसके भाई नही रहता था, उसको दूसरी चिन्ता करनी पडती थी (४. ५ ५)। आमरण अविवाहिता रहनेवाली कन्या अपने पिताके धनमे हिस्सा पाती थी (२ १७ ७)। कक्षीवान्की पुत्री घोषा बुढापेतक अपने पिताके घरमे ही थी, परन्तु अन्तमे विवाह कर लिया था (८ ३९ ३)। जवतक वह पितृगृहमे थी, तबतक पितृधनमें अपना अश पाये हुई थी।

वृद्धावस्थातक नारी अपने गृहमे प्रभुता करती थी (१० ८५ २७)। पशु-रक्षिणी और वीर-प्रसविनी नारीके लिये, देवोसे वार-वार प्रार्थना की गयी है (१०.८५.४४)। नारी स्त्री-धनसे भी ब्राह्मणोको दान देती थी (१० ८५ २६)।

इस तरह मालूम पडता है कि आर्य लोग कन्याका वडा सम्मान करते थे, उन्हे सुयोग्य गृहिणी वनाते थे और उन्हे यथेष्ट धन और अश भी देते थे। यह वात आर्योकी ही है। अन्य जातियोमे यह वात नही थी। ससारकी अन्य प्राचीन जातियोमे नारिया 'पैरकी जूती' समझी जाती थी और जो चाहता था, वह मनमानी सौ-दो-सौ स्त्रिया रख लेता था। महम्मद साहवके पहले अरवमे जनमते ही लडकिया जला दी जाती थी। महम्मदने वडे परिश्रमसे यह राक्षसी प्रथा उठायी थी (कुरान, सिपारा १७)। एथेन्म और स्पार्टामे स्त्रियोकी जैसी नारकीय दशा थी, वह इतिहासके विद्यार्थियोमे छिपी नही है।

ऋग्वेदसे मालूम पडता है कि स्त्री-शिक्षाका यथेष्ट प्रचार था। स्त्रिया वेदाध्ययन करती थी, कविताएँ वनाती थी और मन्त्रोका आविष्कार या रचना भी करती थी। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोका आविष्कार स्त्रियोने किया था। ऋग्वेद १० मण्डलके ३६ और ४० सूक्तोकी सृष्टि घोषा नामकी ब्रह्मवादिनी नारीने की थी। दो एक नमूने देखिये।

"इय वामह्वे श्रृणुत मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षितम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरवस्पृतम्॥"

अर्थात् 'अश्विद्वय, मैं तुम दोनोको वुलाती हूँ, सुनो। जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है वैसे ही मुझे शिक्षा दो। मेरा कोई यथार्थ वन्धु नही है। मै ज्ञानशून्य हूँ। मेरा कुटुम्व नही है, बुद्धि भी नही है। मेरी कोई दुर्गति आनेके पहले ही उसे दूर करो' (१०.३६.६)।

"युव रथेन विमदाय शुन्ध्युव न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।
युव हव वध्रिमत्या अगच्छत युव सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये॥"

तात्पर्य यह है कि 'पुरुमित्र राजाकी 'शुन्दृध्युव' नामक कन्याको तुम लोग रथपर चढाकर ले गये थे और विमदके साथ उसका विवाह करा दिया था। तुम लोगोने उसकी बात सुनकर और उसकी प्रसववेदनाको दूरकर सुखसे प्रसव कराया था' (१० ३९ ७)।

"एतं वा स्तोममश्विनावकर्म तक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनु तनयं दधानाः॥"

'जैसे भृगु-सन्तानें रथ बनाती है, वैसे ही हे अश्विनीकुमारद्वय, तुम लोगोके लिये यह रथ प्रस्तुत किया गया है। जैसे जामाताको कन्या देनेके समय लोग उसे वस्त्राभूषणसे अलकृत करके देते है, वैसे ही हमने इस स्तोत्र को अलकृत किया है। हमारे पुत्र-पौत्र सदा प्रतिष्ठित रहे।'

"जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वाम पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥"

'अश्विद्वय, जो लोग अपनी स्त्रीकी प्राण-रक्षाके लिये रोदनतक करते है, स्त्रियोको यज्ञ-कार्यमे नियुक्त करते है, उनका अपनी बाहोसे बहुत देरतक स्पर्श करते है तथा सन्तान उत्पन्न कर पितृयज्ञमे नियुक्त करते है, उनका स्त्रिया सुखपूर्वक समादर करती है' (१० ४० १०)।

इन चारो मन्त्रोसे विदित होता है कि उन दिनो स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी। अश्विनीकुमार चिकित्सा भी करते थे। स्त्रिया रथ भी बनाती थी। लोग वस्त्र और अलकारसे सुसज्जित करके कन्याका दान करते थे। स्त्रिया यज्ञकार्यमे नियुक्त होती थी। स्त्रियोका अत्यधिक प्यार-दुलार किया जाता था।

अगस्त्य ऋषि और उनकी पत्नी लोपामुद्राने एक सूक्त बनाया था। इस सूक्तमे कामशास्त्रकी अत्यन्त उच्च कोटिकी बाते भी है (१ १७९ सूक्त)।

८ वे मण्डलके ९० वे सूक्तकी रचना अत्रिकी पुत्री अपालाने की है। इसमे सब सात मन्त्र हैं। सबमे इन्द्रकी स्तुति है।

प्रथम मण्डल १२६ वे सूक्तके छठे और ७ वे मन्त्रोको वनानेवाली रोमशा या लोमशा हैं।

पचम मण्डलके २८ वे सूक्तकी रचयित्री या आविष्कर्त्री विश्ववारा नामकी नारी हैं। इसमे सव ६ मन्त्र हैं और सवमे अग्निकी स्तुति है।

दशम मण्डलके ८५ वे सूक्तको वनानेवाली सूर्या नामकी ऋषिका हैं। इसमे ४७ मन्त्र हैं, जो अनेकानेक ज्ञातव्य तथ्योसे भरे पडे हैं। इस सूक्तके २० वे मन्त्रसे जाना जाता है कि पलाश और शाल्मलीके वृक्षोसे भी रथ वनते थे। रथ नानारूप, सुवर्णमय, उत्तम और शोभनचक्र वाले होते थे। २६ वे से मालूम पडता है कि नारी पतिके वशमे रहती थी, परन्तु घरके नौकर आदिपर उसीका शासन चलता था। २७ वेमे पतिके साथ स्त्रीको विलीन होनेको लिखा हैं और यह भी लिखा है कि स्त्री वृद्धावस्थातक पति-गृहमे स्वामित्व करनेकी अधिकारिणी है। ३३ वा मन्त्र है–

"सुमगलोरिय वधूरिमा समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्त वि परेतन॥"

अर्थात् 'यह वधू शोभन कल्याणवाली है। सभी आशीर्वादकर्त्ता आवे और इसे देखें। इसे स्वामीका प्रियपात्री बननेका आशीर्वाद देकर सव लोग अपने-अपने घर चले जाये।'

स्त्री-जातिके सम्वन्धमे इससे वढकर कोई भी वैदिक सूक्त नही है। पूरा सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य है।

दशम मण्डलके ८६ वे सूक्तके २,४,७,६,१०,१५,१८,२२ और २३ मन्त्रोकी वनानेवाली इन्द्राणी हैं। इसी मण्डलके १४५ और १५६ सूक्तोकी रचयित्री भी यही है। यही १५३ वा सूक्त इन्द्र-माताका वनाया हुआ हैं।

इसी मण्डलके १०६ वे सूक्तकी रचयित्री ब्रह्मवादिनी और वृहस्पति-पत्नी जूहू हैं। इस सूक्तका चौथा मन्त्र है–

"देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥"

अर्थात् 'तपस्यामे प्रवृत्त सप्तर्षियो और प्राचीन देवोने इन पत्नीकी बात कही है। ये अत्यन्त शुद्ध-चरित्रा है। इन्होने वृहस्पतिसे व्याह किया है। तपस्या और सच्चरित्रतासे निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थानपर स्थापित हो सकता है।'

इसी मण्डलका १५४ वा सूक्त विवस्वान्की पुत्री यमीका बनाया हुआ है।

इसी मण्डलका १५१ वा सूक्त कामगोत्रीय श्रद्धाका रचा हुआ है। प्रथम मन्त्र है—

"श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्द्धनि वचसा वेदयामसि॥"

अर्थ यह है कि 'श्रद्धाके द्वारा अग्नि प्रज्वलित होता है और श्रद्धाके द्वारा ही यज्ञ-सामग्रीकी आहुति दी जाती है। श्रद्धा ऐश्वर्यके सिरके ऊपर रहती है। यह सव मै स्पष्ट रूपसे कहती हूँ।'

१० वे मण्डलके १८९ वें सूक्तकी कर्त्री सर्पराज्ञी है। दीर्घतमा ऋषि की माता ममताने दशम मण्डलके १० वे सूक्तके द्वितीय मन्त्रकी रचना की है। इसी मण्डलके १५ वे सूक्तके २,५,७,९,११,१३,१५,१६ और १८ मन्त्र उर्वशी नामकी अप्सराके बनाये हुए है।

इसी मण्डलके १२५ वे सूक्तकी ऋषिका वाग्देवी मानी गयी है।

स्त्रिया कविताएँ भी वनाती थी। उनके बनाये सब सूक्त कवितामयं है। गानविद्यामे वे निपुण होती थी। साम-गानसे ही सगीत-शास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। कदाचित् वे नृत्य-कला भी जानती थी, क्योकि एक मन्त्र मे (१ ९२ ४) उषाकी उपमा नर्त्तकीसे दी गयी है।

मालूम होता है, पतियोके साथ स्त्रिया युद्धमे भी जाती थी। अगस्त्य के पुरोहित खेल ऋषिकी पत्नी विश्पला अपने पतिके साथ युद्धमे गयी

थी और वहा उनकी जाघ टूट गयी थी। अश्विनीकुमारोने विश्पलाकी जाघ वनायी थी (१ ११२ १० और १ ११८ ८)।

दशम मण्डल, १०२ सूक्त, २ मन्त्रमे कहा गया है कि मुद्गलानी शत्रुओंसे लडकर १००० गायोकौ जीत लायी। ५ ३० ९ मे लिखा है–'दास नमुचिने भी स्त्री-सेना वनायी थी।'

वृत्रासुरकी माता 'दनु' पुत्रके साथ युद्धमे गयी थी। इन्द्रने उन्हे मार डाला था (१ ३२ ९)।

यहा यह प्रश्न उठता है कि यदि ऋग्वेदके समय स्त्रिया वेद पढती थी, यज्ञ करती थी और पुरुषोके अधिकाश कार्य करती थी, तव इन दिनो लोग स्त्रियोके लिये वेदाध्ययन आदिका निषेध क्यो करते है? इसका उत्तर यह है कि ऋग्वेदमे ही नही, उपनिषदोमे भी सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी वाचक्नवी आदि ऐसी स्त्रिया हो गयी है, जो वेद पढती थी, हवन करती थी और वैदिक उपदेश भी देती थी। वाल्मीकि-रामायण (५ १५ ४८) मे भी लिखा है कि सीता वैदिक प्रार्थना करती थी। परन्तु यह वात सवके लिये नही थी, सभी वेदज्ञात्री नही होती थी। जो ब्रह्मज्ञानिनी थी और "तस्मिन् विज्ञाते सर्व विज्ञात भवति" के अनुसार जिन्हे परमात्म-ज्ञान हो चुका था, उनके लिये कुछ अविदित नही था, वे सबकी अधिकारिणी होती थी। इसीसे वीरमित्रोदय (सस्कार-प्रकाश) मे लिखा है–"**द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्य. सद्योद्वाहाश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीना अग्नीन्धनं वेदाध्ययन स्वगृहे च भैक्षचर्येति।**"तात्पर्य यह है कि स्त्रिया दो प्रकारकी थी–एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी तुरत विवाह करनेवाली। जो ब्रह्मवादिनी थी, वे हवन करती थी, घरमे ही वेद पढती थी और भिक्षा मागकर खाती थी। इसी वातको 'आपस्तम्व-धर्मसूत्र" (१ ५ १–८) मे भी विस्तृत रूपसे लिखा गया है। हारीत-स्मृति (२१ २०-२३) मे तो और भी विस्तृत लिखा है। यम-स्मृतिमे लिखा है–

"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः॥"

अर्थात् 'पुराने समयमे कन्याओका उपनयन होता था, वे वेद पढती थी और गायत्री भी पढती थी, परन्तु उन्हे पिता, चाचा वा भाई ही पढाते थे, दूसरे नही।' फलत सर्वसाधारण स्त्रियोके लिये वेदाध्ययनादि उचित नही समझे जाते थे।

स्त्रिया सुन्दर वस्त्र पहनती थी (१० ११४ ३)। ऋग्वेदमे सूती वस्त्रोका स्पष्ट उल्लेख नही है। ऊनी वस्त्र पहना जाता था (१० २६ ६)। स्त्रिया ही कपडे बुनती थी (२ ३ ६)। तन्तुवाय (आर्य जुलाहा) भी ताना-बाना करके कपडे बुनता था (१०.१०६ १)। हाथोमे कडा पहना जाता था (५ ५८ २)। आभूषण, आयुध, माला, हार, वलय आदि सोनेके होते थे (५ ५३ ४)। गहनोसे बच्चोको लोग खूब सजाते थे (६ १०४ १)।

वस्त्रो और आभूषणोसे सजाकर कन्या जामाताको दी जाती थी (१० ३९ १४ और ९ ४६ २)। विवाहावस्थाकी ठीक बात तो स्पष्ट कही नही लिखी है; परन्तु यह अवश्य ही कहा गया है कि युवा युवतीसे ही मिलते है और पूर्ण युवतिया भी युवासे मिलना चाहती है (१० ३० ५-६)। कदाचित् कुछ अधिक अवस्थामे विवाह होता था। कदाचित् विवाहके लिये कुमारियोको बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। एक मन्त्रमे कहा गया है—"भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा स्वयं सा वनुते जने चेत्" (१०.२७ १२)।

तात्पर्य यह है कि सभ्य स्त्री अनेक पुरुषोमेसे अपने मनके अनुकूल प्रियपात्रको पति स्वीकृत करती है। एक स्थानपर यह भी लिखा है कि स्वयवरमे विमद ऋषिने स्त्री प्राप्त की थी (१ ११६ १)। विवाहमे

कन्याको सौभाग्यवती और सुपुत्रवती होनेका आशीर्वाद दिया जाता था (१० ८५ २५)।

विवाहके अनन्तर कन्या जो मलिन वस्त्र छोडती थी, उसे ब्राह्मणोको दे देनेको कहा गया है (१० ८५ २९ और ३४)।

पतिको स्त्रीके वस्त्रसे शरीर ढकनेकी मनाही की गयी है, क्योकि इससे श्री नष्ट हो जाती है (१० ८५ ३०)।

विवाहमे पत्नीका हाथ पकड कर पति कहता था—

"गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास.।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवा ॥"
(१०.८५.३६)।

अर्थात् 'तुम्हारे सौभाग्यके लिये मै तुम्हारा हाथ पकडता हूँ। मुझे पति पाकर तुम वृद्धावस्थामे पहुँचना, यही मेरी प्रार्थना है। भग, अर्यमा और पूषाने तुम्हें गृह-कार्य चलानेके लिये मुझे दिया है।'

इसी सूक्तके ३९ वे मन्त्रमे वरको सौ वर्ष जीनेका आशीर्वाद दिया गया है। ४० वा मन्त्र है—

'सोम. प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तर.।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा.॥"

अर्थात् 'सोमने सबसे प्रथम तुम्हे पत्नीके रूपमे प्राप्त किया। तुम्हारे दूसरे पति गन्धर्व हुए और तीसरे अग्नि। मनुष्यवशज तुम्हारे चौथे पति हैं।' तात्पर्य यह है कि सोम, गन्धर्व और अग्निने तुम्हे पहले आशीर्वाद दिया और इस विवाह-यज्ञमें साक्षित्व किया, तब तुम्हे मनुष्य-पति मिला।'

४२ वे मन्त्रमे कहा गया है—'तुम दम्पती परस्पर कभी पृथक् मत होना।' ४३ वेमें पति कहता है—'प्रजापति हमे सन्तति दे और अर्यमा बुढापेतक हमे साथ रखें। वधु, तुम मगलमयी होकर पति-गृहमे रहना। मनुष्यो और पशुओके लिये कल्याणवाहिनी बनना।' ४४ वेमे कहा गया

है– 'तुम वीरप्रसविनी और देवोकी भक्तिमती वनो।' अन्तमे इन्द्रसे प्रार्थना की गयी है–

"इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥"

तात्पर्य यह है कि 'इन्द्र, इस नारीको उत्तम पुत्रवाली और सौभाग्यवती करो। इसके गर्भमे दस पुत्र स्थापित करो, पतिको लेकर इसे ग्यारह मनुष्यो वाली वनाओ।'

"सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि - देवृषु॥"
(१०.८५ ४६)

अर्थात् 'वधु, तुम सास, ससुर, ननद और देवरोकी महारानी बनो– सबके ऊपर प्रभुत्व करो।' भावार्थ यह है कि ऐसा सद्व्यवहार करना, जिससे सारा परिवार तुमसे प्रसन्न रहे।

ये पवित्र मन्त्र अवतक हिन्दुओके विवाह-मण्डपोमे पढे जाते है। इन मन्त्रोके अर्थोसे विदित होता है कि कन्या विवाहके समय कुछ अधिक अवस्थावाली और शिक्षिता रहती थी। बिलकुल नादान बच्ची इन सब बातोको नही समझ सकती और न कोई वुद्धिमान् व्यक्ति अबोध बालिका को ऐसे उपदेश ही दे सकता है।

कल्पसूत्रोमे तो पुत्रोत्पत्तिके लिये "पुसवन" नामका सस्कार करनेके लिये लिखा गया है। परन्तु ऋग्वेदमे पुत्र-प्राप्तिके लिये वडी प्रार्थनाएँ की गयी है। ५ २३ १ मे ऐसी ही प्रार्थना की गयी है। ६ २० १ मे भी यही बात है। औरस पुत्रकी रक्षाके लिये अग्निकी स्तुति की गयी है (७ १ २१)। अन्यजात या अनौरस पुत्रसे आर्य दूर भागते थे (७ ४ ७)। इसी सूक्तका अगला मन्त्र है–

"न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषालेतु नव्यः॥"

अर्थात् 'दत्तक पुत्र सुखावह होनेपर भी उसे पुत्र कहकर ग्रहण नही किया जा सकता, क्योकि वह फिर अपने ही स्थानपर (पितृस्वभावमे) जा पहुँचता है। इसलिये अग्निदेव, अन्नदाता, शत्रुहन्ता और नवजात शिशु हमे प्राप्त हो।'

घोषा नामकी नारीको कोढ रोग हो गया था। उसे दूरकर अश्विद्वय ने घोषाका बुढापेमे विवाह कराया था (१ ११७ ७)। इन्ही घोषाके बनाये ऋग्वेदके १० म मण्डलके ३९ वे और ४० वे सूक्त है। घोषाने स्वय कहा है कि पितृगृहमे मै वार्द्धक्यको पहुँच चुकी थी (१० ३९ ३)। घोषाने यह भी कहा है कि अश्विद्वयने विश्पलाको लोहेका चरण दिया था (१० ३९ ८)। यही विश्पला युद्धमे लडने गयी थी। घोषाने अपनेको 'राजपुत्री' बताया है (१० ४० ५)। यह भी कहा है कि, 'मै नारी-लक्षण से युक्त हूँ। मेरा वर आ गया है।' (१० ४० ६)।

वृद्ध कक्षीवान् राजाको वृचया नामकी युवती स्त्री व्याही गयी थी १ १५१ १३)। १ ५१ १२ के भाष्यमे सायणाचार्यने लिखा है कि कौषीतकि-शाखाध्यायी कहते है कि भृगु-वशीय च्यवन ऋषिने राजर्षि शर्यातिकी कन्याका पाणिग्रहण किया था। ५ ६१ १ के भाष्यमे सायणाचार्यने एक ऐसी कथा लिखी है, जिससे मालूम पडता है कि श्यावाश्व ऋषिसे 'तरन्त' नामके राजा और उनकी महिषीने अपनी राजकन्या व्याही थी। इस प्रसगमे रानीने यह भी कहा था कि 'मेरे कुलमे राजकन्याएँ ऋषियो को व्याही जाती है।' इन दोनो उदाहरणोसे मालूम होता है कि ऋषि लोग राज-कन्याओसे सदा व्याह करते आये है।

परावृज ऋषि पगु और अन्धे थे। उन्होने यज्ञ करके इन्द्रको प्रसन्न किया। इन्द्रने ऋषिको पैर और आखे दे दी। परावृजने अन्तको कई कन्याओके साथ व्याह किया। (२ १५ ७)।

१ १२५ १ के भाष्यमे सायणने लिखा है कि 'गुरुकुलमे अध्ययन समाप्त कर रात्रिमे घर आते हुए कक्षीवान् ऋषि मार्गमे सो गये। वहा स्वनय

नामक राजा घूमते हुए आये और ऋषिका रूप देखकर मुग्ध हो गये। राजा उन्हे घर लाये और अपनी दस कन्याओके साथ उन्हे व्याह दिया।" १ १२६ २-४ मे लिखा है-(विवाहके अनन्तर दहेजके रूपमे) 'स्वनय (सिन्धवासी) राजाके ग्रहणके लिये कहनेपर मैं (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (तौल) सुवर्ण, १०० घोडे और १०० वैल ले लिये। स्वनय द्वारा भूरे रगके अश्ववाले १० रथ मेरे (कक्षीवान्के) पास आये, जिनपर वधुएँ आरूढ थी। १०६० गाये भी पीछेसे आयी। मै (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब कुछ अपने पिताको दे दिया।' 'गायोके सामने दसो रथोमे चालीस (एक-एक रथपर चार-चार) लोहित-वर्ण अश्व पक्तिवद्ध होकर चलने लगे। कक्षीवान्के अनुचर घोडोके लिये घास आदि लाकर मदमत्त, स्वर्णाभरण-विशिष्ट और सतत गमनशील अश्वो को मलने लगे।'

इन तीनो मन्त्रोसे पता चलता है कि ब्राह्मण राजकन्याओसे विवाह करते थे, वहुविवाह भी होता था, घोडोको भी सोनेके आभूपण पहनाये जाते थे और आर्य लोग धनाधिपति होते थे। १० १० ११ मे दो स्त्रियोका एक ही पुरुषके साथ ब्याह होना लिखा है। सपत्नियोसे नारियो को दुख भी उठाना पडता था (१० ३३ २)। सपत्नियोके नाशके लिये इन्द्राणीने दो सूक्त वनाये थे (१० १४५ और १५९)।

अनेक नारिया विवाहके अनन्तर पतियोके साथ यज्ञमे उपस्थित रहती थी (१ २२ ८-९)। स्त्री-पुरुष यजमान बनकर वरावर यज्ञ करते थे (१ १३१ ३)। ५ ४३ १५ मे भी यही वात है। इसके भाष्यमे सायणने लिखा है कि पतिके साथ नारीको भी अग्न्यधिकार है।

गर्भ-रक्षण वडी सावधानीसे किया जाता था। इसके लिये वडी ही पूजा-अर्चा होती थी। वडी प्रार्थनाएँ और स्तुतिया भी की जाती थीं। इसके लिये दो सूक्त ही हैं (१० १६२ और १८४)।

दस मास गर्भमें रहनेके अनन्तर शिशुका जन्म होता था (५. ७८ ७-९ और १० १८४ ३)। १० ३९ १२ में जाना जाता है कि अश्विनीकुमारों के आशीर्वादसे वध्रिमती नामकी स्त्रीको पिंगलवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ था।

जुड़वें (यमज) भी होते थे (१० १३ २)। मनुकी पुत्री पर्शुको बीस पुत्र उत्पन्न हुए थे (१० ८६ २३)। स्त्रियोंके साथ जो युद्ध करते थे, उनका धन ले लिया जाता था (१० २७ १०)।

यह संसार त्रिगुणमय है। देवासुर-संग्रामकी तरह भलों और बुरोंमें सदा युद्ध होता आया है और विश्वमें भले-बुरे रहते रहे हैं। इस नीतिके अनुसार ऋग्वेदमें भी भले-बुरे, दोनोंका उल्लेख मिलता है। १० ९५ सूक्त में राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशीका कथोपकथन है। १५ वें मन्त्रमें उर्वशीने कहा है—'स्त्रियोंका प्रेम वा मैत्री स्थायी नहीं होती।' एक स्थान पर इन्द्रने स्वयं कहा है—'स्त्रियोंके मनपर शासन करना असम्भव है। स्त्रीकी बुद्धि छोटी होती है' (८ ४३ १७)। 'लज्जाहीना युवती' का भी उल्लेख है (७ ८० २)। ८ ४३ १९ में इन्द्रने कहा है—

"अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥"

अर्थात् 'तुम नीचे देखा करो, ऊपर नहीं (स्त्रियोंका यही धर्म है)। पैरोंको संकुचित रखो (मिलाये रखो)। (इस प्रकार कपड़े पहनो कि) तुम्हारे कश (ओष्ठप्रान्त) और प्लक (नारी-कटिके निम्न भाग) को कोई देखने नहीं पावे।'

इससे मालूम पड़ता है कि स्त्रीका नीचे देखना और घूंघट काढ़ना उसका धर्म माना जाता था। एक स्थानपर ऐसी स्त्रियोंका भी उल्लेख है, जो वाहनपर सोनेवाली हैं। इसी मन्त्रमें आंगनमें सोनेवाली स्त्रियोंका भी उल्लेख है (७ ५५ ८)।

१० वें मण्डलका ३४ वां सूक्त द्यूत-(अक्ष)-सूक्त कहलाता है। इसमें जुए या पाशेके कारण स्त्रीका छोड़ना लिखा गया है। यह लिखा

है कि जुआडीकी स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है। जुआडीका सब निरादर करते हैं। अपनी स्त्रीकी दशा देखकर जुआडीका हृदय फटा करता है। अन्यान्य स्त्रियोका सौभाग्य और सुन्दर अट्टालिका देखकर जुआडीको सन्ताप होता है। जो जुआडी प्रात.काल घोडेकी सवारी कर आता है, वही सन्ध्या-समय दरिद्रके समान, जाडेसे बचनेके लिये, आग तापता है। उसके शरीरपर वस्त्र भी नही रहता (२ ४ और ११ मन्त्र)।

असती" स्त्रीकी एक स्थानपर उत्प्रेक्षा की गयी है (१० ४० ६)। जारो वा उपपतियोका उल्लेख भी कही उपमा, कही उत्प्रेक्षा और कही रूपकके रूपमे किया गया है (१ ११७ १८, ६ ३२ ५, ६ ३८ ४, ६ १०१ १४, १० १६२ ५)।

एक स्थलपर यह भी कहा गया है—विपथगामिनी और पति-विद्वेषिणी नरक तैयार करती है (४ ५ ५)। गुप्तप्रसविनी स्त्रीकी भी चर्चा है (२ २६ १)। १०.४० २ मे लिखा है—'विधवा स्त्री, शयनकालमे, देवरका और कामिनी अपने पतिका समादर करती है।' इस मन्त्रसे यूरोपीयोने ऋग्वेदमे नियोगकी बात निकाली है, परन्तु सायणाचार्यने ऐसा कुछ नही लिखा है।

पतिके साथ चितामे जलनेकी कही चर्चा नही है। एक मन्त्र है—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्त-ग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सबभूथ॥"
(१०.१८.८) ।

तात्पर्य यह है कि 'मृत व्यक्तिकी पत्नी, पुत्रादिके गृहका विचार करके यहासे उठो। यह तुम्हारा पति मरा हुआ है। इसके पास तुम (व्यर्थ) सोयी हो। चलो, क्योकि पाणिग्रहण और गर्भधारण करानेवाले पतिके साथ तुम स्त्री-कर्त्तव्य कर चुकी हो। तुमने इसके प्राण-गमन (मरने) का निश्चय कर लिया है, इसलिये तुम लौट चलो।'

तृतीय अध्याय

यजुर्वेदकी संहिताएँ

यजु शब्दका अर्थ पूजा है—यज्ञ भी है। कही कही गद्यको भी यजु कहा जाता है। ऋग्वेदका होता (पुकारनेवाला) प्रशसात्मक मन्त्रोको कहकर विशिष्ट देवताका आह्वान करता है और यजुर्वेदका अध्वर्यु यज्ञ वा यागका विधिवत् सम्पादन करता है, इसलिये स्वभावत. यजुर्वेदमे यज्ञो और कर्म-काण्डका प्राधान्य है। विभिन्न यज्ञोमे जो विशेष मन्त्र आवश्यक हैं और जिन विशेष नियमोका पालन करना पडता है, उनकी समष्टिका नाम यजुर्वेद-सहिता है। किस मन्त्रके साथ किस क्रियाके अनन्तर किस क्रिया-का सम्पादन करके विभिन्न यज्ञानुष्ठान किये जाते है, इसका विधान यजुर्वेदमे देखा जाता है। फलत यजुर्वेदके विभाग क्रियामूलक है। इसके विभिन्न अध्यायोमे विविध यज्ञ-क्रियाओके मन्त्र और विधिया सगृहीत है।

यज्ञोके कारण देवता प्रसन्न होते थे, वृष्टि होती थी, अन्न और फल होते थे तथा जनता सुख-शान्तिका जीवन विताती थी। परन्तु यज्ञोसे इतने ही लाभ नही होते थे—यज्ञोके कारण, अन्यान्य लाभोके अतिरिक्त, विविध कलाओकी उत्पति भी हुई। यज्ञ-सम्पादनके लिये सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रो-की गतिका निरीक्षण करते-करते ज्यौतिष-विद्याकी उत्पत्ति हुई। यज्ञोमे विशुद्ध मन्त्रोच्चारणके विचारसे आर्य लोग जिन नियमोकी समीक्षा करते थे, उनसे दैवविद्या, ब्रह्मविद्या और व्याकरण-शास्त्रकी उत्पत्ति हुई। यज्ञ-सम्पादनके लिये जो चिति, यज्ञ-वेदी, रेखा आदिका निर्माण किया जाता था, उसके नियमोसे ससारमे ज्यामिति-शास्त्रका आविष्कार हुआ।

कूर्मसंहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, स्कन्द-पुराण आदिके अनुसार यजुर्वेदकी १०७ शाखाएं हैं, मुक्तिकोपनिषद्के अनुसार १०९ है, पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार १०० है और शौनकके "चरण-व्यूह" के अनुसार ८६ हैं। इससे मालूम पड़ता है कि जिस ग्रन्थ-रचनाके समय जितनी शाखाएं उपलब्ध थीं, उसने अपने ग्रन्थमें उतनीका उल्लेख किया। हमारे दुर्भाग्यसे इन दिनों यजुर्वेदकी केवल पांच शाखाएं या संहिताएँ (मन्त्र-समूह-ग्रन्थ) मिलती हैं। कई अन्य संहिताओंके नाम अवश्य मिलते हैं।

यजुर्वेदके दो भाग हैं—कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण यजुर्वेदकी १२ शाखाओं-के नाम कई पुराणोंमें मिलते हैं। वे ये हैं—तैत्तिरीय मैत्रायणी, कठ, चरक, आह्वरक, प्राच्यकठ, कपिष्ठलकठ, औपमन्यव, वार्त्तान्तवेय, श्वेताश्वतर, चारायणीय और वारायणीय। पहली तीन छप चुकी हैं। चौथी चरकसंहिता का प्रचार पतञ्जलिके समयमें, विक्रमसे दो सौ वर्ष पूर्व, गांव गांवमें था, ऐसा महर्षि पतञ्जलिने लिखा है। इन दिनों यह भी विलुप्त हो गयी है। इनकी दो श्रेणियां भी लिखी मिलती हैं—औख्य वा औखीय और खाण्डिकेय। खाण्डिकेय उपशाखाकी पांच प्रशाखाएं ये थीं—आपस्तम्बी, बौधायनी, सत्याषाढी, हिरण्यकेशी और शाट्यायनी। मैत्रायणी शाखाकी छः उपशाखाएं थीं——मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय। शुक्ल यजुर्वेदकी सत्रह शाखाओंके ये नाम पाये जाते हैं—माध्यन्दिन, कण्व, गालव, जाबाल, कापाल, औवेय, वैधेय, वैनेय, वैरेय, वैजव, पौण्ड्रवत्स, ज्ञापीय, पाराशरीय, ताप्यायनीय, कात्यायनीय, आवटिक और परमावटिक। परन्तु इनमें केवल माध्यन्दिन या वाजसनेय और कण्व—ये दो ही इन दिनों पायी जाती हैं।

जिस तरह ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमें केवल एक शाखा मिलती है, उसी तरह यजुर्वेदकी १०० शाखाओं, उपशाखाओं और प्रशाखाओंमें केवल ५ शाखाएं उपलब्ध हैं। शेष शाखाएं क्या हुईं? इसमें सन्देह नहीं कि विदेशियों-विधर्मियोंने अनेक अमूल्य ग्रन्थ नष्ट कर दिये। धारेश्वर

महाराजा भोजने "कामधेनु" नामक एक स्मृति-ग्रन्थ बनाया है। उसकी उपक्रमणिकामे लिखा है कि उज्जैनके राजा मतादित्यने भारतवर्षके हजारो ब्राह्मणोको निमन्त्रण देकर बुलवाया और उनकी सारी पुस्तके ले-लेकर जलवा दी। मरहठोके अभ्युदयके समय बौद्धोने "सह्याद्रिखण्ड" (पुस्तकालय) को विनष्ट कर दिया था। मुसलमानों द्वारा अलेक्जेड्रिया के पुस्तकालयका भस्मीभूत किया जाना प्रसिद्ध ही है। महमूद और नादिर-शाहके द्वारा भी अनेकानेक ग्रन्थ विनष्ट किये गये। कितने ही मुसलमान बादशाह तो संस्कृत-पुस्तके जला-जलाकर "हमाम" गर्म कराया करते थे। इस तरह, बहुत सम्भव है, बौद्धो और मुसलमानोने ही वैदिक संहिता-ओको विनष्ट कर डाला हो।

परन्तु जो संहिताएँ मिलती है, उनके अनुयायियो तकमे उनका प्रचार नही है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणोमे अनेक ऋग्वेदी है, परन्तु कदाचित् एक भी ऐसा कनौजिया नही मिलेगा, जिसे सम्पूर्ण शाकल-संहिता कण्ठस्थ हो। हा, विन्ध्यगिरिके दक्षिणमे कुछ ऐसे ब्राह्मण अवश्य है, जो ऋग्वेदके अनन्य भक्त है। महाराष्ट्र (कोंकण और दक्षिणी) ब्राह्मणोमे इस शाकल-शाखाका प्रचार है। यो तो सारे भारतमे कुछ न कुछ ऋग्वेदी मिलेगे। यही बात सभी वेदोंके सम्बन्धमे है। आगे चलकर सभीका उल्लेख मिलेगा।

हा, तो यजुर्वेदकी जो पाच शाखाएँ उपलब्ध है, उनमे तैत्तिरीय, मैत्रायिणी और कठ नामकी तीन संहिताएँ कृष्ण यजुर्वेदकी है और वाजसनेय तथा कण्व संहिताएँ शुक्ल यजुर्वेदकी है। तैत्तिरीय संहिताके नामकरणके सम्बन्धमे विष्णुपुराणमे एक कथा है। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से एक बार क्रुद्ध होकर बोले—"मैंने जो तुम्हे वेद पढ़ाया है, उसे लौटा दो।" 'याज्ञवल्क्यने विद्याको मूर्त्तिमती कर वमन कर दिया। गुरुकी आज्ञासे अन्य शिष्योने उस 'वान्त' को तित्तिर बनकर चुग लिया, इसीसे इसका नाम तैत्तिरीय-संहिता पडा।' परन्तु पाणिनिके मतसे तित्तिरी ऋषिके नाम

पर इस शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आत्रेय-शाखाकी अनुक्रमणिकामे भी यही बात लिखी है।

कृष्ण यजुर्वेदकी सहिताओमे गद्य और पद्य—दोनो भाग है। इसकी उपलब्ध तीनो सहिताओमे मन्त्र-भाग और ब्राह्मण-भाग मिले हुए है। किसी-किसी काण्ड और प्रपाठकमे दोनो भाग एक साथ ही वर्णित है और कही-कही पृथक् रूपसे। तैत्तिरीय-सहिताके तो दोनो भाग अलग दिये हुए है, परन्तु कही मन्त्र-भागमें ब्राह्मण है और कही ब्राह्मण-भागमे मन्त्र समाविष्ट है।

तैत्तिरीय-सहितामे सात काण्ड, चौआलीस प्रपाठक वा अध्याय, छ सौ इक्यावन अनुवाक और २१९८ कण्डिकाएँ (मन्त्र) है। साधारणतया ५० शब्दोकी एक कण्डिका है। अक्षर ११०२९६ है। सायणाचार्य ने इसपर भाष्य लिखा है—वालकृष्ण दीक्षित और भट्टभास्करके भी इसपर भाष्य है।

ऋग्वेदकी कात्यायनीय "सर्वानुक्रमणी" की भाति कृष्ण यजुर्वेदका कोई विवरण-ग्रन्थ नही मिलता, इसलिये इसके ऋषि आदिका स्पष्ट ज्ञान नही होता। काण्डर्षियोके पूजे जानेका वर्णन कही-कही अवश्य मिलता है। इन्हीके नामपर कदाचित् काण्डोके ६ नाम इस प्रकार रखे गये है——प्राजापत्य, सौम्य, आग्नेय, वैश्वदेव, स्वायम्भुव और आरुण। इनके अतिरिक्त तीन नाग और मिलते है—साहिती देवता, वारुणी देवता और याज्ञिकी देवता। गोपीनाथ भट्टके द्वारा विनिर्मित सत्याषाढ-सूत्रकी टीकासे मालूम पडता है कि प्राजापत्य काण्डमे ही प्रथम और दूसरे काडो (अष्टको) के मन्त्र है। अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिपर जिन मन्त्रोका पाठ होता है, वे राष्ट्रिय भावोसे ओत-प्रोत है। राष्ट्रोन्नतिके लिये देवोसे प्रार्थना करना आवश्यक माना गया है। इस सम्वन्धके इसके कई मन्त्र वाजसनेय-सहितामे भी (२८ २२) पाये जाते है। तैत्तिरीयके अधिकाश देवता ऋग्वेद

के ही हैं। रुद्र देवताका इसमे प्राधान्य अवश्य है—रुद्रपर एक "रुदाध्याय" ही है। गद्य और पद्य—दोनो ही तैत्तिरीयमे है।

इसके क्रमपाठके रचयिता शाकल्य हैं और पद-पाठके गालव। परन्तु हिरण्यकेशी सूत्रके अनुसार पद-पाठके रचयिता आत्रेय हैं। इसके सातवे काण्डमे वसिष्ठ और सूर्यवशी राजा सुदासका आख्यान भी है। तैत्तिरीयके किसी-किसी सस्करणमे धृतराष्ट्र, पाञ्चालो और कौन्तेयोका उल्लेख मिलता है। वाराहवतार और कालकञ्ज असुरकी वाते इसके ब्राह्मण वाले भागमे हैं।

तैलग और द्रविड ब्राह्मण इसी तैत्तिरीय सहिताको आपस्तम्ब-शाखा कहते हैं। इन ब्राह्मणोमे इस सहिताका अत्यधिक प्रचार है। काशीमे भी आपस्तम्व ब्राह्मण बहुत है। इनका उच्चारण माध्यन्दिनोसे कही-कही मिलता है और कही कही नही। ये कभी 'ष' को 'ख' कहते है, कभी नहीं।

इसके और ऋग्वेदके कई मन्त्रोमे विलक्षण साम्य है। जिसको शाकल और तैत्तिरीय सहिताएँ कण्ठस्थ नही है, उसके सामने तैत्तिरीयका एक मन्त्र रखकर पूछा जाय कि 'यह मन्त्र कृष्ण यजुर्वेदका है वा ऋग्वेदका?' तो उत्तर देना जटिल मालूम पड़ेगा। ऋग्वेदकी ही तरह तैत्तिरीयमे भी ३३ देवोका उल्लेख है (१ ४ १०.१)। ऋग्वेदकी तरह इसकी भी सिनी-वाली देवी सौपशा (आलकारिक पट्ट पहननेवाली) है (४ १ ५ ३)। इसमे भी शण्डामर्क (हिरण्यकशिपुके पुरोहित)की चर्चा है (६.४ १०)। लम्बी-लम्बी रात्रियोका उल्लेख मिलता है और उनसे पार पानेके लिये प्रार्थनाकी बात मिलती है (१ ५ ५ और तै० ब्रा० १ ५ ७)। इस तरह तैत्तिरीयकी शाकलसे अनेक स्थलोमे समता है। यहा विशेप लिखनेका स्थान नही है।

कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी सहितामे ४ काण्ड, ५४ प्रपाठक और ६३४ मन्त्र हैं। मैत्रायणीके मन्त्रोमे उच्चारण-चिह्न नही है। यह एक विलक्षण वात है। चरण-व्यूहमे इस सहिताको प्रधान शाखा माना गया है। इसका

वेद-शाखाका नही है—उत्तरसे दक्षिणतक सारे भारतमे इसका अत्यधिक प्रसार है। वाजी (घोडे) का रूप धारण करके सूर्यदेवने इसे याज्ञवल्क्यको वरमे दिया था; इसलिये इसका एक नाम वाजसनेय है और मध्य दिनमे दिया था, इसलिये इसका दूसरा नाम माध्यन्दिन है। सूर्य (प्रकाश) से प्राप्त होनेसे एकका शुक्ल नाम पडा और दूसरेका कृष्ण। इसमे ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक और १९७५ कण्डिकाएँ वा मन्त्र है। चरण-व्यूहके अनुसार १८०० और सी० वी० वैद्यके अनुसार १९०० मन्त्र है। शब्द २९६२५ है और अक्षर ८८८७५। गद्य और पद्य—दोनोमे मन्त्र है। प्रजापतिको प्रथम अध्यायका और दध्यङ् आथर्वणको अन्तिम अध्यायका ऋषि कहा गया है। सर्वानुक्रममे इसके ऋषिको ब्राह्मण लिखा गया है और अजमेरके सस्करणमे ऋषिका नाम दीर्घतम दिया गया है।

इसके प्रथम अध्यायमे दर्शपूर्णमास, द्वितीयान्तमे पिण्डपितृयज्ञ और तृतीयमे अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य है। अग्निहोत्रके प्रसगमे प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र है। चतुर्थसे अष्टमतक अग्निहोत्र, नवसमे राजसूय, दशममे सौत्रामणि और एकादशसे अष्टादशतक अग्नि-चयनका प्रसग है। अग्नि-चयन आर्य-जीवनका प्रधान कार्य था। युवक विद्याध्ययन समाप्त करके जव विवाह कर लेते थे, तव अग्निका आधान करते थे। यह अग्नि घरमे सदा प्रतिष्ठित रहता था और इसीसे गृहस्थके सारे यज्ञ सुसम्पादित होते थे।

इन अठारहो अध्यायोके अधिकाश मन्त्र तैत्तिरीयमे भी पाये जाते है। १९ वे अध्यायसे 'परिशिष्ट' आरम्भ होता है। २१ अध्यायोतक सोम बनाने आदिकी बाते है। २२ से २५ अध्यायोतक अश्वमेधयज्ञकी बाते है। शेषमे पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध आदिकी विवृति है। ४० वा अध्याय सुप्रसिद्ध "ईशावास्योपनिषद्" है। ऋषियोने सव कुछ कहकर अन्तमे सबको ईश्वरमय बता दिया है—"ईशावास्यमिदं सर्वम्"—मानो ब्रह्म-प्राप्ति ही इस सहिताका लक्ष्य है।

"नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय॥" इत्यादि।

(३२ कण्डिकाका प्रथमांश)

तात्पर्य यह कि 'पितरो, नमस्कार। वसन्त ऋतुका उदय होनेपर सभी पदार्थ रसवान् हो अर्थात् तुम्हारी कृपासे देशमे सुन्दर वसन्त हो। पितरो, नमस्कार। ग्रीष्म ऋतु आनेपर सभी पदार्थ शुष्क हो अर्थात् देशमे भली भाति ग्रीष्म ऋतु हो।' इत्यादि।

इसी तरह छहो ऋतुओके सुन्दर होनेकी कामना की गयी है। इसके अनन्तर कहा गया है–"पितरो, हमे तुम लोगोने गृहस्थ (विवाहित) बना दिया है; इसलिये अब हम भी तुम्हे देनेके लिये दातव्य वस्तु अर्पण कर रहे है।" (३२ कण्डिकाका सर्वान्त)

तैत्तिरीयकी तरह माध्यन्दिन (वाजसनेय) मे भी (११ ५६) सिनीवाली देवी सुन्दर केशो, मनोहर केश-गुच्छो और अभिराम चूडावाली है। एक स्थान (८ १) पर कहा गया है कि 'ब्रह्मचारिणी और शिक्षिता कन्याका विवाह होना चाहिये।' इससे मालूम पडता है कि कन्या-शिक्षापर आर्योका वडा ध्यान था। वे अपनी कन्याओको अवश्य ही शिक्षिता करते थे। हा, ऋग्वेदमे तो नही, परन्तु यजुर्वेदमे गेहूँ चावल आदिका उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद भी ऋग्वेदकी ही तरह ३३ देवोका पूजक है। याग-यज्ञोमे देव, गृहमे देव, जप-हवनमे देव, सव सस्कारोमे देव, सव तरफ देव ही देव है। सदा देवोका साथ है। यह कल्पना करके आश्चर्य होता है कि हमारे पूर्वज जब अपनेको देवोसे घिरा पाते होगे, तब यह ससार कितना आनन्दमय, स्वर्णमय मालूम पडता होगा! यदि आप क्षण भर भी देवोसे घिर जाय तो आपका सारा जीवन ही दिव्य और भव्य बन जाय। यदि हम और आप अन्दर बाहर–सब तरफ अकृत्रिम आत्मनियमानुसार चलनेवाली अद्भुत शक्तियो और गुणोवाली इन 'दिव्य' विभूतियोको देखे, इन्हीमे विचरे, इन्हीके साथ सोवे और जागे, इन्हीके साथ पढे और लिखे

प्रसिद्ध पुस्तक वाजसनेय-सहितापर तो उव्वट और महीधरके भाष्य है। यो माधव, अनन्तदेव और आनन्द भट्टके भी इसपर भाष्य है, परन्तु उव्वट और महीधरके ही भाष्य प्रचलित है। परन्तु इन दोनोने "गणानां त्वा गणपतिम्" मन्त्रसे प्रारम्भ करके दर्जनो मन्त्रोके भाष्य ऐसे किये है, जिनमे मर्यादा-विरुद्ध अश्लीलता है—ऐसी बहुतोकी राय है। हो सकती है, परन्तु वेद-मन्त्रोका तो ऐसा अभिप्राय नही है। जब कि तुलसीदासकी एक चौपाईकी दर्जनो तरहकी टीकाएँ हो सकती है और रवीन्द्रनाथकी एक कविताके बीसियो अर्थ हो सकते है, तब वैदिक मन्त्रोके ही अनेकानेक अर्थ क्यो नही किये जा सकते? परन्तु जैसे तुलसीदास और रवीन्द्रनाथका अभिप्राय एक पद्यका एक ही होगा, दर्जनो तरहके नही, वैसे ही वेद-मन्त्रो का भी अभिप्राय एक ही होगा और वह अत्यन्त उदात्त और सात्त्विक होगा।

पद, क्रम आदिसे आवेष्टित रहनेपर भी वेद-मन्त्रोमे पाठ-भेद है। क्यो? वेदके आम्नाय, समाम्नाय, आगम, निगम, छन्द, त्रयी, स्वाध्याय, श्रुति, अनुश्रव आदि नामोमेसे अन्तिम दोके शब्दार्थपर ध्यान दीजिये। इससे मालूम पडता है कि वेद-मन्त्रोको परम्परया सुन-सुनकर आर्य लोग कण्ठस्थ करते थे और सुने हुए भागको शिष्य-प्रशिष्योको सुना-सुनाकर कण्ठस्थ कराते थे। काल-भेद, देश-भेद, व्यक्तिभेद और उच्चारण-भेदसे भी पाठ-भेद हो गये। अध्यापकोके प्रकृति-वैभिन्यके कारण अनुष्ठान-भेद हुए और अनुष्ठान-भेद तथा प्रयोग-भेदके कारण भी पाठ-भेद हो गये। इस तरह भी शाखाओका बाहुल्य हो गया। यह अवश्य है कि पद, क्रम आदिके कारण वेदोमे अवैदिक प्रयोग अबतक नही मिल सके।*

---

*यहा लेखकने यजुर्वेदकी उन शाखाओंके ही नाम लिखे हैं, जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यों तो "प्रपञ्च-हृदय"के अनुसार यजुर्वेदकी ३६, महाभाष्यके अनुसार १०१ और "दिव्यावदान" के मतसे १०५ शाखाएँ हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय संहिताओंके ये १७ नाम बहुत ग्रन्थोंसे मिलते हैं—१माध्यन्दिन,

२ जाबाल, ३ बौधेय, ४ कण्व, ५ शापीय, ६ स्थापायनीय, ७ कापार, ८ पौण्ड्रवत्स, ९ आवटिक, १० परमावटिक, ११ पाराशर्य, १२ वैधेय, १३ वैनेय, १४ औधेय, १५ गालव, १६ वैजव और १७ कात्यायन। "प्रतिज्ञा-परिशिष्ट", वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, चरण-व्यूह और सायणने इनमेंसे १५ ही नाम माने हैं। "प्रतिज्ञा-परिशिष्ट" मे कण्वके स्थानमें काण्व, शापीयके स्थलमें शापेय, स्थापायनीयके स्थानमें तापायनीय, कापारके स्थानमें कापोल, पाराशर्यके स्थानमें पाराशर, वैनेयके स्थानमें वैनतेय और वैजवके स्थानमे वैजवाप है। वायुपुराणमें माध्यन्दिनके स्थानमें मध्यन्दिन, शापीयके स्थानमें शापेयी, स्थापायनीयके स्थानमें ताम्रायण, पौण्ड्रवत्सके स्थानमें वात्स्य, आवटिकके स्थानमें आटवी, पाराशर्यके स्थानमें परायण, वैनेयके स्थानमें वीरणी आदि तो है ही, इन १५ मेंसे कई नाम छोडकर शालिन, विदिग्ध, उद्दल, गालव, शैबिरी, पर्णी आदि नाम भी इनमें जोड दिये गये हैं। यही दशा ब्रह्माण्डपुराण, चरण-व्यूह आदिकी भी है। और तो और, किसी चरण-व्यूहमें शाफेय है, किसीमें शावीय, किसीमें कपोल है, किसीमें कापाल, किसीमें वैणेय है, किसीमें नैनेय और किसीमें अद्धा है, किसीमें औधेय आदि। इस तरह सुन-सुनाकर कण्ठस्थ करनेवालो और लिपिकारोने इस क्षेत्रमें अद्भुत गोलमाल मचा रखा है। कही जाबालोके २६ भेद और किये हुए है और कही गालवोके २४। कुछ लोगोके मतसे शुक्ल यजुर्वेदकी ये १५ शाखाएँ हैं—१कण्व, २ कठ, ३ पिञ्जुलकठ, ४ जृम्भककठ, ५ औदलकठ, ६ सपिच्छलकठ, ७ मुद्गलकठ, ८ शृगलकठ, ९ सौभरकठ, १० मौरसकठ, ११ चञ्चुकठ, १२ योगकठ, १३ हस्तलककठ, १४ दौसलकठ और १५ घोषकठ।

इनमें सारे नाम सहिताओके ही नही हैं—कुछ शाखाओ, कुछ ब्राह्मण-कुलो, कुछ भाष्यकारो और कुछ निरुक्तकारो, कुछ प्रातिशाख्यकर्त्ताओ और कुछ सौत्र-सहिताओके हैं। कुछ नाम तो अत्यन्त भ्रष्ट है।

कृष्ण यजुर्वेदकी इतनी शाखाओके नाम गिनाये गये है—१तैत्तिरीय, २ काण्डिकेय, ३ आपस्तम्बी, ४ बौधायनीय, ५ सत्याषाढ़ी, ६ हिरण्यकेशी, ७ औधेयी, ८ चरक, ९ आह्वरक, १० कठ, ११ प्राच्यकठ, १२ कपिष्ठल-कठ, १३ चारायणीय, १४ वार्त्तलवेय, १५ श्वेत, १६ श्वतत र, १७ औप-मन्यव, १८ पाताण्डनीय, १९ मैत्रायणीय, २० मानव, २१ दुन्दुभ, २२ ऐकेय, २३ वाराह, २४ हारिद्रवेय, २५ शाम और २६ शामायनीय। आथर्वण-परिशिष्ट (४९ वें) के मतसे तो शुक्ल यजुः की दस और कृष्ण यजुः की चौदह ही शाखाएँ है। जो हो, इनमे संख्या ३,४,५,६,२० और २३ तो सौत्र-संहिताओके नाम है। इनमें कुछ शाखाओ, कुछ ब्राह्मण-कुलो आदिके भी नाम है। अनेक ग्रन्थोके मतसे कृष्ण यजुर्वेदकी ये शाखाएँ भीहै—१ आलम्बिन, २ पालंगिन, ३ कामलायिन, ४ आर्चाभिन, ५ आरु-णिन, ६ ताण्डिन, ७ कालाप, ८ छागलेय, ९ तुम्बरु, १० वारायणीय, ११ वार्त्तान्तवेय (वार्त्तलवेय?), १२ श्वेताश्वतर, १३ औखेय (औधेय?), १४ आत्रेय, १५ वैखानस, १६ खाण्डकीय, १७ बाधूल, १८ पौष्पञ्जि, १९ कौण्डिन्य और २० हारीत। इनमें भी सख्या १५, १७, १९ और २० सौत्र-संहिताओके ही नाम है। वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणो के अनुसार तो कृष्ण यजुः की ८६ सहिताएँ थी।

जो हो; परन्तु इसमें सन्देह नही कि जबतक वैदिक साहित्यकी पूरी खोज, शोध और प्रकाशन नहीं हुए है, तबतक यजुर्वेदकी संहिताओकी प्रामाणिक संख्या निश्चित नही की जा सकती—नामोकी शुद्धि और विविध उल्लेखो तथा उच्चारणोका परिमार्जन भी नहीं हो सकता। जिस शाखाके ब्राह्मणादि भी मिल जायं, उसका निश्चय किया जा सकता है।

खोज-ढूंढ़ करनेपर कृष्ण यजुर्वेदकी संहिताओके और भी नाम मिल जायगे, परन्तु यह निर्णय करना असम्भव है कि ये शाखाओके ही नाम है वा दूसरोके।

चतुर्थ अध्याय

सामवेदकी संहिताएँ

वेदका जो एक नाम 'श्रुति' है, उससे सिद्ध होता है कि ऋषियोने यह ज्ञान अपनी वुद्धिसे नही उत्पन्न किया, प्रत्युत परमात्मासे इसे 'श्रवण' किया। अवश्य ही परमात्मा हृदयका अन्तर्यामी है। 'हृद्देशेऽर्जुन, तिष्ठति'। वह अन्तरमे रह कर ही कहता है। यह आन्तरिक ध्वनि ऋषियोको समाधि-दशामे प्राप्त हुई और इस ध्वनि वा ज्ञानको उन्होने, ससारके कल्याणके लिये, विश्वमे प्रसारित किया।

जिस 'विद्' धातुसे वेद वना है, वह लैटिन भाषामे Videre धातु है। अग्रेजी Idea शव्द भी उसी धातुसे निकला है। फलत वेद शव्दके लिये यथार्थ अग्रेजी शव्द Vision है, जिसका अर्थ 'दर्शन' है। जिन पुरुषोको यह महान् दर्शन हुआ, उन्हे द्रष्टा, देखनेवाला वा ऋषि कहते हैं। इसीसे नैगमकाण्ड (२ ११)मे निरुक्तकारने लिखा है—"ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श।" अर्थात् ऋषियोने मन्त्रोको देखा, इसीलिये उनका नाम ऋषि पडा। सर्वानुक्रमसूत्रमे कात्यायनने भी लिखा है—"द्रष्टार ऋषयः स्मर्त्तार." यानी ऋषि द्रष्टा वा स्मर्त्ता है, कर्त्ता नही।

पहले कहा गया ही है कि जैसे आकाशमे व्याप्त नित्य शव्दोको मनुष्य कण्ठ, जिह्वा, तालु आदिसे अभिव्यक्त करता है, वैसे ही शव्दमय नित्य वेदको ऋषियोने समाधि द्वारा अभिव्यक्त किया। दूसरा पक्ष कहता है कि ज्ञान वा ध्वनिके रूपमे नित्य वेदको ऋषियोने प्राप्त किया और अपनी तत्कालीन वैदिक भाषामे उसका उपदेश दिया। पहला पक्ष यह भी मानता है कि वेद-शव्दो और उनके अर्थोका सम्वन्ध भी नित्य है और मन्त्रो

का छन्दोमय रूप भी नित्य है। परन्तु दूसरा पक्ष कहता है कि वेद-भाषा नित्य नही है, क्योकि भाषा तो ध्वनिको प्रकट करनेकी प्रणाली मात्र है और ऐसी प्रणालिया वा भाषाएँ विविध देशोमे, विभिन्न रूपोमे, है। देश-कालके अनुसार विभिन्न उच्चारण-शैलिया होती है। इनके अनुसार शब्द बनते है और मनुष्य इन विविध शब्दोके विविध अर्थ, अपनी प्रकृति और रुचिके अनुसार, निश्चित करता है। इसलिये कोई भी भाषा नित्य नही हो सकती—सारी भाषाएँ और उनके अर्थ मनुष्य-कृत संकेत मात्र है। व्याकरणमे शब्दकी प्रकृति और विकृति होती है और इस तरह जो शब्द परिवर्त्तनशील है, वह नित्य हो भी नही सकता।

कुछ वेद-भक्तोका मत है कि "वेदोकी ११३१ शाखाओमे शाकल, राणायणीय, माध्यन्दिन और शौनक शाखाएँ, शाखाएँ नही, मूल ऋग्वेद सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद है। शेष ११२७ शाखाएँ इन्ही चारोकी व्याख्याएँ है।"

सनातनधर्मी ऐसा नही मानते। वे पातञ्जल महाभाष्यके अनुसार वेदोकी ११३० शाखाएँ मानते है और प्रत्येकको स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते है। जैसे रामायणके सात काण्ड है और सातो रामायणके अवयव है तथा एकसे एक अनुबद्ध और सापेक्ष है, वैसे शाखाएँ न तो अवयव है, न परस्पर अनुबद्ध वा सापेक्ष है। इक्कीस शाखाओके समुदायका नाम ऋग्वेद नही है; प्रत्युत प्रत्येक शाखा स्वतन्त्र रूपसे ऋग्वेद है। इसीलिये किसी एक वेदकी एक शाखाका अध्ययन करनेसे ही समग्र वेदका अध्ययन माना गया है। "**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः**" का अर्थ करते हुए जैमिनिने लिखा है, 'अपनी परम्परागत किसी भी एक शाखाका अध्ययन करना चाहिये।' प्रत्येक शाखा स्वतन्त्र नही रहती, तो एक शाखाका अध्ययन ही वेदाध्ययन क्यों माना जाता? जब कि अनुवाकानुक्रमणीके अनुसार ऋग्वेदीय शाकला शाखासे वाष्कलामे आठ मन्त्र अधिक है, तव शाकलाकी व्याख्या वाष्कला कैसे हुई? जव कि ऐतिहासिकोके मतानुसार माध्यन्दिनसे

तैत्तिरीयकी भाषा प्राचीनतर है, तब माध्यन्दिनकी व्याख्या तैत्तिरीय कैसे हुई? माध्यन्दिनमें १९७५ ही मन्त्र है और तैत्तिरीयमें २१९८। दोनो सर्वथा स्वतन्त्र है। किसी प्रकारकी भी सापेक्षता नही है। अत माध्यन्दिनकी व्याख्याके रूपमें तैत्तिरीयको मानना हास्यास्पद है। सामवेदकी राणायणीय शाखामे १५४९ मन्त्र ही है और कौथुममे १८२४ मन्त्र है तथा एकसे दूसरी अनुबद्ध नही है। फिर भी कहा जाता है कि 'राणायणीय की व्याख्या ही कौथुम है।' विचित्र सिद्धान्त है!

मन्त्रोंके दो भेद माने गये है—कण्ठाप्त और कल्प्य। जिन मन्त्रोको ऋषियोने प्रत्यक्ष किया था, उन्हे कण्ठाप्त और जिनका स्मृति द्वारा अनुमान किया था, उन्हें कल्प्य कहा जाता है। ये विभाग पौराणिक है। यास्कने तो मन्त्रोको तीन भागोमे विभक्त किया है—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक।

ऐतिहासिकोंके मतसे अठारहो पुराणोमे सर्वाधिक प्रामाणिक विष्णुपुराण है। इसके अनुसार वेदव्यासके शिष्य काण्डर्षि जैमिनिने सामवेद पढकर उसे दो भागोमे बाटा। जैमिनिने एक भाग अपने पुत्र सुमन्तुको पढाया और एक भाग अपने पौत्र सुकर्माको पढाया। इन दोनोंने अपने-अपने पठित भागको अनेक शिष्योको पढाया। सुकर्माके शिष्य हिरण्यनाभ ने अपनी सहिताके पन्द्रह भाग करके एक एक भाग एक-एक शिष्यको पढाया। इनका नाम "उदीच्य-सामग" पडा। पौष्यञ्जि ऋषिके लोकाक्षि, कुथुमि, कुसीदि, लागलि आदि शिष्योंने हिरण्यनाभसे सामवेदके कुछ भाग पढे। इनका नाम "प्राच्य-सामग" पडा। हिरण्यनाभके प्रसिद्ध शिष्य कृतिनाभने जो सहिता-भाग पढा, उसे पचीस शिष्योको पढाया। उन लोगो ने अपने-अपने अधीत अशोको अनेक शिष्योको पढाया।

पातञ्जल महाभाष्य, सूतसहिता, मुक्तिकोपनिषद्, स्कन्दपुराण आदिमें जहा कही सामवेदका प्रसग आया है, वहा सामवेदकी हजार शाखाएँ बतायी गयी है। परन्तु आजकल आसुरायणीय, पासुरायणीय,

वार्त्तान्तवेय, प्राञ्जल, ऋग्वर्ण-भेद, प्राचीन-योग्य, ज्ञान-योग्य और राणायणीयके नाम मिलते है। विष्णुपुराणमे राणायणीयके नौ भाग है—शाट्यायनीय, सात्वल, मौद्गल, खल्वल, महाखल्वल, लागल, कौथुम, गौतम और जैमिनीय।

परन्तु जब कि मुक्तिकोपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थोमे वेदोकी ११३० शाखाओका उल्लेख है और जब कि ये सारी शाखाएँ, उनके विभाग, उनके मन्त्र, शब्द, अक्षरतक नित्य है, तव ऋषियो द्वारा विभागोका किया जाना सम्भव ही कैसे है? स्वय यजुर्वेद ही कहता है कि स्वतन्त्र रूपसे विभक्त चारो वेद सृष्टिके आदिमे ही प्रकट हुए—"**ऋचः सामानि जज्ञिरे, छन्दांसि जज्ञिरे। तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।**" ऋच, सामानि आदि बहुवचन प्रयोगोसे विदित होता है कि चारो वेदोके साथ ही उनकी शाखाएँ भी सृष्टि के आदिमे प्रकट हुई और वे सब नित्य हैं। तब व्यासजी या किन्ही ऋषियो के द्वारा विभाग वा वेदकी विकृति करनेका प्रश्न ही नही है। हो सकता है कि उक्त ऋषियोने विभिन्न सहिताओका अध्ययन और विशेष प्रसार किया हो और इसी बातको पुराण-कर्त्ताने विभाग करना, लौकिक भाषामे, लिख दिया हो।

साम शब्दका अर्थ है प्रिय वा प्रीतिकर वचन। कही गानको भी साम कहा गया है। वैदिक साहित्यके कई ग्रन्थोमे ऋक् और यजु के बाद सामका नाम आया है; परन्तु ऋग्वेदके एक मन्त्र (१ ५.८) मे ऋग्वेदसे भी पहले सामवेदका नाम आया है; इसलिये यह कल्पना व्यर्थ है कि ऋक् और यजु के बाद सामका आविर्भाव वा ऐतिहासिकोके मतसे निर्माण हुआ। वस्तुत. सब वेद स्वतन्त्र है; उत्पत्ति वा किसी विषयमे किसीकी अपेक्षा नही।

यज्ञमे मन्त्र पढकर होता देवोको वुलाता है। उसके कार्यको "हौत्र" कहते है। यज्ञमे होम आदि आवश्यक कृत्योका सचालन करनेवालेको "अध्वर्यु" कहते हैं। अध्वर्युके कार्यको "आध्वर्यव" कहा जाता है। देवों

को प्रसन्न करनेके लिये मामगान करनेवालेको "उद्गाता" और उसके कार्यको "औद्गात्र" कहा जाता है।

सामवेदकी प्रसिद्ध कौथुम-सहितापर ही मायणका भाष्य है। गुजरात के श्रीमाली और नागर ब्राह्मणोमें इसका अत्यधिक प्रचार है—बगीय ब्राह्मणोमे भी है। बगालके स्व० प० सत्यव्रत सामश्रमीके समान सामवेदीय साहित्य (सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र आदि) पर भारतके किसी भी विद्वान्ने परिश्रम नही किया है। आपने इन सबपर टीकाएँ लिखनेमें अपना जीवन ही अर्पण कर दिया था। हिन्दू-जातिका ऐसा दुर्भाग्य है कि सामश्रमीजीके कितने ही दुर्लभ ग्रन्थ अब प्राप्य नही हैं और ऊल-जुलूल उपन्यास, बरसाती मेढकोंके समान, सामने आते जा रहे हैं!

हा, तो इस सहिताके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिकको छन्द, छन्दसी और छन्दसिका भी कहा जाता है। पूर्वार्चिकके चार भाग हैं—आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान और आरण्यक पर्व। ये विषयानुसार विभाग हैं। उत्तरार्चिकके भी विषयानुसार सात भाग हैं—दशरात्र, सवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्र। ऋचाओको भी आर्चिक कहा जाता है। आर्चिकको "योनि-ग्रन्थ" भी कहते हैं।

सामगानके चार भाग हैं—गेय, आरण्यक, ऊह और ऊह्य। पूर्वार्चिक में "गेय" और "आरण्यक" गान हैं तथा उत्तरार्चिकमें "ऊह" और "ऊह्य"। दोनो आर्चिकोमें ऋचाएँ हैं और तन्मूलक उक्त चार गान हैं। परन्तु इन चारो गानोकी ऋचाएँ क्रम-बद्ध सजायी हुई नही हैं।

इसके पूर्वार्चिकमे छ और उत्तरार्चिकमे तीन प्रपाठक हैं। सब २९ अध्याय और १८२४ मन्त्र हैं। ७५ को छोडकर इसकी सारी ऋचाएँ (मन्त्र) ऋग्वेदमें हैं।

कौथुम-शाखासे राणायणीय छोटी है। इसमे १५४९ मन्त्र हैं। अग्रेजी अनुवादके साथ १८४२ ई० में जे० स्टीवेन्सनने इसे छापा था। इस

राणायणीयका प्रचार महाराष्ट्र और द्रविडमें है। इसको गानेवाले अत्यल्प है। कुछ उद्गाता सेतुबन्ध रामेश्वरकी तरफ भी है।

सामवेदकी **जैमिनीय** शाखा भी छपी है। डब्ल्यू० कैलेडने इसे छापा था। इसका प्रचार कर्णाटकमे है।

सामवेदकी ये ही तीन संहिताएँ उपलब्ध है। तीनोकी बाते प्राय. एक-सी है—नाम मात्र की ही भिन्नता है। उपलब्ध तीनो सहिताओमे मन्त्रोकी न्यूनताधिकता है—विषय एकसे है, यह बात बराबर ध्यानमे रखनेकी है। सामश्रमीजीके मतसे सामवेदकी १३ सहिताओके ही प्रामाणिक नाम पाये जाते है।

इस बातका स्पष्ट वर्णन नही पाया जाता कि सामवेद कैसे गाया जाता था। हा, सामवेदके उत्तरार्चिक-सूक्तोसे इस विषयपर कुछ-कुछ प्रकाश पडता है। तो भी आजकलके षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद, सातो स्वर साम-गानमे लगते थे कि नही, इसका ठीक पता नही चलता। ओ३म् वा ॐ को कुछ देरतक स्थिर रूपसे उच्चारण करनेपर एक प्रकारका गीति-स्वर निकलता है। कदाचित् इसीलिये सामवेदमे ॐकी बडी महिमा कही गयी है। सामवेदकी छान्दोग्यो-परिषद्मे ॐकी विस्तृत व्याख्या है। सगीतरस-रसिक भगवान् कृष्ण भी सामवेदके बडे प्रेमी थे। उन्होने गीतामे स्पष्ट कहा है—"**वेदानां सामवेदो-ऽस्मि।**" छान्दोग्य (तृतीय प्रपाठक) मे लिखा है कि घोर आगिरसने देवकी पुत्र श्रीकृष्णको वेदान्तमतकी शिक्षा देते समय सामवेदके गान-तत्त्वको वताया था। इसके अनन्तर भगवान्ने एक नवीन रीतिके गानका आविष्कार किया। इसका नाम "छालिक्य" पड़ा और यादवोन इसे खूब अपनाया। इसी छालिक्यको मगलात्मा मुरलीधर वशीमे टेरते-बजाते थे। इसमें ओकार तो था ही, सातो स्वर भी थे। एक भक्तने इसका सुन्दर विवरण यो दिया है—

"लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन्
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन्।
गोपान् सम्भ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन्
ओंकारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः॥"

छान्दोग्योपनिषद्से ज्ञात होता है कि सामगान पाच भागोमे विभक्त है—हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधान (Coda)। इनमेसे प्रथम तीन वर्त्तमान कालके स्थायी, अन्तरा और आभोगके अभिव्यजक है। निधानसे "तान" की सूचना मिलती है।

स्ट्रैंगवेने "Music of Hindustan" नामकी एक पुस्तक लिखी है। उसमे उन्होने लिखा है—'उदात्त आरोहको, अनुदात्त अवरोहको और स्वरित स्थायीको सूचित करता है।' उनका मत है कि 'आजकलकी राग-रागिनियोमे साम-गान नही होता था। सामगान सोम वनानेके समय और चन्द्रलोकमें निवास करनेवाले पूर्वजोकी पूजाके समय विशेषतया गाया जाता था।' परन्तु अपनी धारणाकी पुष्टिमें स्ट्रैंगवेने कोई जवर्दस्त प्रमाण नही दिया है। महाभारत (शान्तिपर्व १६) मे तो स्पष्ट ही लिखा है कि 'भीष्मकी शवदाह-क्रियाके समय साम-गान गाया गया था। भगवद्भक्तिमे तल्लीनता प्राप्त करनेके लिये भी साम-गान गाया जाता था—"गायन्ति य सामगा."।

ऋग्वेद (६ १६ १०) मे एक मन्त्र आया है—

"अग्न आयाहि वीतये, गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि वर्हिषि॥"

यह मन्त्र सामवेदका प्रथम मन्त्र है। यह इस तरह गाया जाता है—

"ॐ ओग्न इ (प्रस्ताव); ॐ आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ); नि होता सत्सि वर्हिषि ओम् (प्रतिहार)।" इस अन्तिम भागको तोडकर "निहोता सत्सि ब (उपद्रव)—र्हिषि ओम् (निधान)" —इस प्रकार किया जाता है। एक, स्तोमकी पूर्त्तिके लिये ये तीन तीन वार दोहराये जाते है। गाये जानेवाले मन्त्र छन्दोके वन्धनोसे मुक्त

रहते हैं। साम-गानके लयोके नाम ये हैं—कुष्ट, प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, मन्द और अतिस्वार्थ।

तीन प्रधान वाद्य बजते थे—दुन्दुभि, वेणु और वीणा।

शतपथ-ब्राह्मणमे कहा गया है कि 'विना सामगानके कोई भी यज्ञ नही हो सकता' (**"नासाम यज्ञो भवति"**) और हिकारके बिना सामगान भी नही होता (**"न वाहिकृत्य साम गीयते"**)।

इस सम्बन्धमे विशेष जाननेकी इच्छावाले सज्जन इन ग्रन्थोको देखे तो उन्हे बडी सहायता मिलेगी—ऋक्प्रातिशाख्य, बृहद्देवता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामविधान-ब्राह्मण, पुष्पसूत्र, सामतन्त्र और नारद-शिक्षा। पूनाके वकील श्री एन० के० पटवर्द्धनने सामगानका पूरा अध्ययन कर कई बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बाते खोज निकाली हैं।

सामवेदका ही उपवेद गन्धर्ववेद वा गान्धर्ववेद है, जिससे सोलह हजार राग-रागिनिया निकली। पहले ये सबकी सब गायी जाती थी। वाद्यो और नृत्योका मूल भी गान्धर्ववेद ही है। इसीके आधारपर सस्कृत भाषामे एकसे एक सगीत-ग्रन्थ बनाये गये हैं।

एक दिन राणायणीय शाखाके एक काशीवासी उद्गाता इन पक्तियो के लेखकसे कह रहे थे—"मैने कितने ही विद्यार्थियोको रखा, पढाया और इस काममे पैंतीस सौ रुपयेका खर्च भी किया, ताकि कोई राणायणीयका योग्य उद्गाता हो जाय। परन्तु एक भी नही हुआ। उलटे गरीब ब्राह्मण का खा-खाकर सब भाग गये!" जो हिन्दू-सस्कृतिकी दोहाई दिन-रात दिया करते हैं, वे इसे ध्यानसे पढे और इस दिशामे कुछ कर सके, तो करे।

सामवेदकी सारी सहिताओमे सोमलता और सोमरसकी बडी महिमा बतायी गयी है। सोमयाग करनेके पहले सोमबल्ली खरीदनेकी विधि है। सोम बेचना भी एक प्रकारका व्यापार था। अध्वर्यु, यजमान आदि खरीदते थे। ३६ अगुल लम्बे और १८ अगुल चौडे अभिषवण-फलकपर बिछाये कृष्णाजिनपर इसे रखकर और अभिमन्त्रित जलसे बीच-बीचमें

सीचकर चार पत्थरोके यन्त्रसे इसे कूटा जाता था। अनन्तर आहवनीय पात्रमें इसे डालकर उसमें जल छोडते थे और वल्लीको मल-मलकर पानीमे मिला देते थे। तलछट वाहर निकाल देते थे। ऐसी वल्लीको वेदमे "ऋजीष" कहा गया है। इसे दशापवित्र वस्त्रके द्वारा छानते थे। वस्त्रमे नीचे छेद करके और उसमे ऊनका डोरा डालकर इस तरह बाध देते थे कि सोमरसकी धार छनती हुई नीचे गिरती थी। देवता-प्रीत्यर्थ पहले इससे हवन करते थे और वचे हुए भागको सदोमण्डपमें होम करनेवाले, वषट्कार कहनेवाले, उद्गाता, यजमान, ब्रह्मा और सहस्रक पीते थे। सोमरसमें दूध, दही, सुवर्ण-रज और घृत, देव-भेदसे, मिलाकर देवार्पण करनेकी भी विधि है। यह दिनमे तीन वार तैयार किया जाता था।

इस लताका रग हरा लिखा है । भागकी तरह इसकी पत्तिया हरी होती थी। इसके अभावमे "पूतिक-तृण" वा "फाल्गुन" नामकी वनस्पति के प्रयोगकी आज्ञा है। आश्वलायन-श्रौतसूत्रके मतसे यह अनुकल्प है। सोमलता तो इन दिनो कही देखनेमें नही आती, इसलिये आजकल सोम-यागके समय इस अनुकल्पका ही व्यवहार किया जाता है।

सोमरसके गुणोका वडा वर्णन है। यह उत्साहदाता है, वुद्धि-वर्द्धक है, वाक्पाटव-प्रदाता है और रोग-विनाशक है। इसकी मादकताका भी उल्लेख है। युद्धमे इसका खूब उपयोग किया जाता था। इन्द्र तथा अन्य देवता इसे पीते थे।

सोमरसमें दूध, दही, घृत, मधु, जल, सत्तू, आटा मिलानेसे यह विशेष मधुर हो जाता था। इसलिये इसके नाम मधुमत्, मधु, पीयूप आदि भी है। उक्त विविध वस्तुएँ मिलाये हुए सोमरसको आशिर, गवाशिर, यवाशिर आदि कहते थे । सोमकी छननी और तलछटका भी वड़ा वर्णन मिलता है।

इस भ्रममें नही रहना चाहिये कि सोमरस भी सुरा वा शराव ही है। ऋग्वेद (८ २ १२) में सुराको 'दुर्मद' कहा गया है। शराव

क्रोध और पाशा पापकी ओर ले जानेवाले बताये गये है (ऋग्वेद ७ ८६ ६)। परन्तु सोमका वर्णन इससे उलटा है। सौत्रामणि-यागमे सोमके अतिरिक्त सुराका विधान भी है। तब दोनो एकसे कैसे हुए? सोमरस पीनेसे तो आर्य बलिष्ठ और अमर होते थे (८ ४८ ३)।

सोमके 'पर्वतावृध' और 'गिरिष्ठ' नामोसे विदित होता है कि यह 'पर्वतके ऊपर, समतल भूमिमे, होता था। मूजवान् (हिमालयके पास), शर्यणावत् (कुरुक्षेत्र), आर्जीकीया (व्यास) आदि सोम-प्राप्तिके स्थान कहे गये है। नदीके किनारेकी काईकी तरह पानीमे वा पानीके आस-पास भी सोमबल्ली होती थी। चन्द्रमासे इसकी उपमा दी गयी है—कही-कही चन्द्रको ही सोम कहा गया है। इसकी रक्षा गन्धर्व करते थे (९ ८३.४)। सोमाहरण-प्रतिपादक सूक्तोका नाम "सौपर्ण" है।

सुश्रुतमे लिखा है कि सोमरसके लिये सुवर्ण-पात्र चाहिये। इसमे सोमके चौबीस प्रकार "वेदोक्त" कहे गये है। इसे कन्द कहकर केलेके कन्दकी तरह इसका वर्णन किया गया है। कहा गया है, सोमलतामे १५ पत्ते होते हैं। इसे "पानीपर तैरनेवाली, वृक्षोपर लटकनेवाली और भूमि पर उगनेवाली" कहा गया है। धर्म-द्रोही, ब्राह्मण-द्वेषी और कृतघ्नके लिये इसे दुर्लभ बताया गया है। चन्द्रमाकी तरह इसके पत्तोका घटना-वढना लिखा है।

सोमलताके बारेमे देशी-विदेशी वेदाभ्यासियोके विभिन्न मत है। डा० राजेन्द्रलाल मित्र इसे एक वनस्पति मानते है, जुलियस एगलिंग और ए० बी० कीथ इसे एक प्रकारकी सुरा कहते है, रागोजिन "दैवी सुरासव" बताते है, वाट साहव "अफगानी अगूरोका रस" कहते है, राइस "ईखका रस" बताते है, मैक्समूलर "आवलेका रस" कहते हैं और हिले-ब्रान्त इसे "मधु" मानते है! इस तरह "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की उक्ति चरितार्थ हो रही है।

ऐतरेय-ब्राह्मणकी अनुक्रमणिकामे मार्टिन हागने लिखा है कि उन्होन सोमरस तैयार कराकर पान किया था। ईरानी लोग सोमको "हउमा" कहते थे। वे इसका कच्चा ही पान करते थे। अवस्तामे "हउमा" की वडी प्रशसा लिखी है। 'स' को 'ह' कहनेकी ईरानियोकी "पुरानी आदत" है ही। थियासोफिकल सोसाइटीकी सस्थापिका मैडम ब्लावस्कीकी राय है कि वेदका सोम ही वाइबिलका ज्ञानवृक्ष (Tree of Knowledge) है। कलकत्तेके बेलगछिया नामक स्थानमें एक वार "बनियालाल बाबाजी" नामके एक सन्यासीने एक ऐसी लता दिखायी थी, जो परीक्षार्थ लदन भेजी गयी थी। परीक्षा करके हुटिनविड कम्पनीने इसे सोमलता वताया था। प्रसिद्ध वेदज्ञ प० दुर्गादास लाहिडीने तो सोमलताको विशुद्ध वुद्धि और सोमरसको निष्कलक ज्ञान वताया है। लाहिडी महाशय आध्यात्मिक अर्थके पूर्ण पक्षपाती थे। परन्तु कर्मकाण्डकी दृष्टिसे आपका अर्थ ठीक नही है। इसी प्रकार जो लोग पूनाके पास होनेवाली "रानशेर" वनस्पति को ही सोमलता मानते है, वह भी ठीक नही है, क्योकि सोमलताका कोई लक्षण उसमें नही मिलता।

वस्तुत इन दिनो सोमलता कही भी नही पायी जाती, इसलिये लोगोने इस सम्बन्धमे अनल्प कल्पनाका विराट् जाल फैला रखा है। श्रौतसूत्रोके ही समय यह अद्भुत जडी अप्राप्य हो गयी थी, इसीलिये सूत्रो में इसके अनुकल्पकी विधि लिखी गयी है।*

---

* पातञ्जल महाभाष्यके अनुसार १००० और "दिव्यावदान" के मतसे १०८० शाखाएँ सामवेदकी है; परन्तु "प्रपञ्च-हृदय" के अनुसार

सामवेदकी सहस्र शाखाओंमेंसे केवल बारह ही बची हुई हैं। तो भी खोज़-ढूंढ़ करनेपर इतनी साम-शाखाओंके आनुमानिक नाम पाये जाते हैं—१ कौथुम, २ जैमिनीय, ३ राणायणीय, ४ सात्यमुग्र, ५ नैगेय, ६ शार्दूल, ७ वार्षगण्य, ८ गौतम, ९ भाल्लविन, १० कालबविन, ११ शाट्यायनिन, १२ रौरुकिण, १३ कापेय, १४ माषशराव्य, १५ करद्विष, १६ शाण्डिल्य, १७ ताण्ड्य, १८ गार्गक, १९ वात्सक, २० बाल्मीक, २१ शैत्यायन, २२ कोहलीपुत्र, २३ पौष्करसाद, २४ प्लाक्ष, २५ प्लाक्षायण, २६ वाडभीकार, २७ सांकृत्य आदि। २० से २७ तकके नाम तैत्तिरोय-प्रातिशाख्यके माहिषेय-भाष्यमें आये हैं। मालूम पड़ता है, ये नाम कृष्ण-यजुर्वेदीय सौत्र-संहिताओंके हैं। १ से १९ संख्याओंके नामोंमे अनेक नाम ब्राह्मण-कुलो, निरुक्त-कारों, प्रातिशाख्य-कर्त्ताओ आदिके हो सकते हैं। ऐसी अनिश्चित दशामें लेखकने इस लेखमें उन्ही शाखा-नामोंका उल्लेख किया है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। वेद-प्रेमी विद्वानोको साम-शाखाओंके नाम निश्चित करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

पञ्चम अध्याय

अथर्ववेदकी संहिताएँ

अंगिरोवंशीय अथर्वा ऋषिके द्वारा परिदृष्ट और आविष्कृत होनेके कारण इस वेदका नाम अथर्व-वेद पडा। अंगिरा ऋषिके वंशज होनेके कारण अथर्वाको आंगिरसकी संज्ञा दी गयी है और अथर्व-वेदका एक नाम अथर्वांगिरस-वेद भी पडा है। इसका एक नाम भृग्वांगिरस-वेद भी इसलिये पडा कि भृगु ऋषि अंगिराके शिष्य थे और आंगिरस कहलाते थे। अथर्व-वेदके प्रचारमे भृगु ऋषिका वहुत वडा हाथ है। अथर्ववेदमें इस वेदका नाम अथर्वांगिरस लिखा है (१० ७ २०)। इसके प्रसिद्ध ब्राह्मण 'गोपथ' मे भी यही नाम है (३ २)। परन्तु इस ब्राह्मण (२ १६) मे इसका एक नाम ब्रह्मवेद भी है। इस वेदमे ब्रह्मका अत्यधिक विवरण रहनेके कारण ही कदाचित् इसका ब्रह्मवेद नाम पडा।

महाभाष्य, चरण-व्यूह आदिके अनुसार इसकी नौ शाखाएँ थी, जिनमे इन दिनो दो ही उपलब्ध है—शौनक और पैप्पलाद। विष्णुपुराणके अनुसार सुमन्तु ऋषिने अथर्ववेद अपने शिष्य कवन्धको पढ़ाया। कवन्धने अपने देवदर्श और पथ्य नामके शिष्योको यह वेद पढाया। देवदर्शने मौद्गल, ब्रह्मवलि, शौक्लायनिन और पिप्पलादको पढाया। पथ्यने जाजलि, कुमुदादि और शौनकको पढाया। शौनकने ब्रभ्रु और सैन्धवायनको पढाया। पश्चात् अथर्ववेदके सैन्धव और मजुकेश नामके दो भेद हुए। काल पाकर इनमे नक्षत्रकल्प (नक्षत्रादि-पूजाविधि), वेदकल्प (वैतालिक-ब्रह्मत्वादि-विवरण), शान्तिकल्प (अष्टादश-महाशान्ति विधि), आंगिरकल्प (अभिचारादिविधि) और संहिताकल्प आदि विभेद हुए।

अथर्ववेदकी ये नौ शाखाएं हैं—पैप्पल, दान्त, प्रदान्त, स्नान, सौत्र, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्गती और चरणविद्या। परन्तु अनेक पुराणोमे अनेक रूपोमें ये नाम मिलते है। वहुत स्थलोमे ये नाम पाये जाते है—पैप्पलाद, तोद, मोद, शौनक, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श और चारण-विद्या। पुराणो मे इनके भी अनेक भेदोपभेद किये हुए है। परन्तु आजकल उक्त दो सहिताओं के अतिरिक्त कोई भी सहिता प्राप्य नही हैं। जैसे कृष्ण यजुर्वेदकी 'अधूरी कठ-कापिष्ठल-सहिता मिली हैं, वैसे भी इस वेदकी कोई तीसरी सहिता नही मिली हैं। सहिताओके नाम अनन्त कालसे सुने-सुनाये चले आ रहे हे; इसलिये अक्षर-विन्यासमे गडवड मालूम पड़ रही है।

इसके गोपथब्राह्मणमे लिखा है कि 'ब्रह्मासे भृगु उत्पन्न हुए और भृगुसे अथर्वण हुए, जो अगिरा कहलाये। अथर्वणके वीस पुत्र हुए, जिन्होने अथर्ववेदके एक-एक काण्डका स्मरण किया।'

इस सम्वन्धमे अनेक स्थलोमे अनेक प्रकारके विवरण पाये जानेसे अनुमान होता है कि कही किसी कल्पकी वात लिखी हैं और कही दूसरे कल्पकी।

एक सन्देह यह भी है कि वेदका एक नाम 'त्रयी' है। त्रयीसे ऋक्, यजु. और सामका ही वोध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण (५ २२), शतपथ-ब्राह्मण (४ ६ ७ १३), वृहदारण्यकोपनिषद् (१ ५ ५), छान्दोग्योपनिषद् (३.१ और ७.१), गौतमधर्मसूत्र (१६ ११), वसिष्ठधर्मसूत्र (१३.३०), वौधायनधर्मसूत्र (४.५ २९) और मनुस्मृति (३ १४५, ४ १२४; ११ २६३, १२ ११२) आदिमे त्रयी (ऋक्, यजु, साम) का ही उल्लेख है, अथर्वका नही। इससे सन्देह होता है कि क्या वेद तीन ही है? परन्तु प्रसिद्ध वेदज्ञाता प० सत्यव्रत सामश्रमीजी कहते है कि 'नही, वेद चार है। इन सव ग्रन्थोमे प्रसगत. अथर्ववेदका अस्तित्व है; क्योकि इनमे प्रयुक्त ऋक्, यजु और साम शब्द तीनों वेदोके वोधक नही है, प्रत्युत पद्य, गद्य और गीतिके रूपोमे, त्रिविध रचनाओंमे, मन्त्रोके वोधक है।

अथर्वमे पद्य अधिकाश हे, गद्य भी हैं। उसका अपना गीतिस्वर भी है। इसलिये उक्त ग्रन्थोमे अथर्वके अस्तित्वकी अस्वीकृति नही है।'

वैदिक साहित्यमे अथर्ववेदका उल्लेख है। ऋग्वेदके १० म मडल का ९७ वा सूक्त अथर्वाके पुत्र भिषक् ऋषिके द्वारा और इसी मण्डलका १२० वा सूक्त अथर्वाके दूसरे पुत्र बृहद्दिव ऋषिके द्वारा दृष्ट है। इसी मण्डलका १०७ वा सूक्त आगिरस दिव्य ऋषि द्वारा और ११७ वा आगिरस भिक्षु ऋषि द्वारा दृष्ट है। इतना ही नही, आगिरसोके द्वारा दृष्ट सूक्त ऋग्वेदमें इतने हैं कि सबके उल्लेखका यहा स्थान तक नही है। इधर अथर्वका एक नाम ही आगिरस वेद है। तैत्तिरीय सहितामे ऋक्, यजु, सामके साथ आगिरस नाम आया है। शतपथ ब्राह्मणके १३ वे, १४ वें और तैत्तिरीय आरण्यकके २ रे और ८ वे अध्यायोमे अथर्ववेदका उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण (५ ३३) का कहना है कि "वाणी और मनसे यज्ञ होता है। तीनो वेद वाणी हैं, चौथा अथर्ववेद मन है। प्रथम तीन वेदोसे एक पक्षका सस्कार होता है और ब्रह्मवेदका ज्ञाता मनके द्वारा यज्ञके दूसरे पक्षका सस्कार करता है।" यही बात गोपथ (३ २) मे भी है। शौनकके चरण-व्यूह और पतजलिके महाभाष्यमें भी अथर्वको उल्लेख है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र आदि आदिमे भी अथर्वका विवरण है। इसलिये मालूम पडता है कि जहा कही केवल ऋक्, यजु और सामका उल्लेख है वा केवल त्रयीका कथन है, वहा वेदोसे तात्पर्य नही है—पद्य, गद्य और गीतिसे है। प्राय सभी वेदोमे सभीका नाम आया है। सभी वेदोमे सभीके मन्त्र पाये जाते है।

ह्विटनेने अथर्ववेदका जो अनुवाद किया है, उसमे सूक्तोके ऋषियोके नाम उच्छोचन, उन्मोचन आदि लिखे हैं, जो आनुमानिक है। इनका अनुमान यह भी है कि अथर्वणकी लिखी १७५, ब्राह्मणकी १००, अथर्वागिरस की १७ और आगिरसकी लिखी १५ ऋचाएँ ही अथर्वमे है। परन्तु सारी सहितामे वा कही भी इस अनुमानका समर्थन नही किया गया है। ऐसे

ही चित्र-विचित्र अनुमान लगा-लगाकर कई विधर्मियोने वैदिक साहित्यको गडवडझालेमे डाल रखा है, जिसकी एतद्देशीय विद्वानोको परवाह तक नही है। वस्तुतः अथर्ववेदीय ऋषियोके नाम ये है—कण्व, वादरायण, विश्वामित्र, कश्यप, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, जमदग्नि, वामदेव आदि।

अथर्ववेदमे २० काण्ड, ३४ प्रपाठक, १११ अनुवाक, ७७३ वर्ग, ७६० सूक्त, ६००० मन्त्र और ७२८२६ शव्द है। ह्विटनेके मतसे ५९८, ब्लूमफील्डके मतसे ७३०, एस० पी० पण्डितके मतसे ७५९ और अजमेरके सस्करणमे ७३१ सूक्त है। ह्विटनेके मतसे ५०३८, ब्लूमफील्डके मतसे ६०००, पण्डितके मतसे ६०१५ और गुजरात्के एक सस्करणमे ६६८० मन्त्र है। हस्तलिखित पुस्तकोको देखकर सारी वेद-सहिताएँ छपी है। कदाचित् लिपिकर्त्ताओके प्रमादके कारण सूक्तो और मन्त्रोकी सख्यामे न्यूनताधिकता हो गयी। इनमेसे १२०० मन्त्र ऋग्वेदसहिताके १ म, ८ म और १० म आदि मण्डलोमे पाये जाते है। अथर्ववेदका वीसवा काण्ड (कुन्ताप-सूक्त और दो अन्य मन्त्रोको छोडकर) ऋग्वेदके मन्त्रोसे भरा हुआ है।

यह गणना शौनक-सहिताकी है। इस शाखाके कुछ ब्राह्मण महाराष्ट्र और गुजरातमे है। परन्तु ये इतने ही है कि अगुलियोपर गिने जा सकते है। यही कारण है कि आजकल भी इस वेदका प्रचार सवसे कम है।

अथर्ववेदकी पैप्पलाद-सहिता भी मिली है। यह काश्मीरमे डा० वूलरको मिली थी। यह काश्मीरकी शारदालिपिमें है। ब्लूमफील्ड और गार्वेने भोजपत्रपर लिखी हुई इसकी अतीव जीर्ज-शीर्ण प्रतिके ५४० फोटो और प्लेट तैयार करके इसे १९०१ मे जर्मनीमें छपवाया। यह फोटो होनेसे हस्तलिखित प्रतिकी हूवहू नकल है। यहा तक कि इसके कागजका रग भी ज्योका त्यो दिखाई देता है। ज्ञात होता है कि मानो मूल प्रतिके पन्ने कागज पर चिपका दिये गये है! यदि यह सस्करण नही होता, तो संसारमे एकमात्र उपलव्ध मूल प्रतिके विनष्ट हो जानेपर ससारसे यह शाखा भी, अन्य शाखाओकी भाति, सदाके लिये विलुप्त हो गयी होती। इसीसे

प्रतीत होता है, कि पाश्चात्य विद्वानोंने किस प्रेम और लगनसे, व्यय और श्रमकी परवाह न करके, हमारी विद्या-निधिकी रक्षामे सहायता की है।

पतञ्जलिके समयमे यह पैप्पलाद-शाखा खूब प्रचलित थी। महाभाष्यमे अथर्व वेदका पहला मन्त्र "शन्नो देवीरभीष्टये" दिया हुआ है, जो पैप्पलादका ही प्रथम मन्त्र है, शौनकका नही। इस पैप्पलाद-सहिताके ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र आदि नही मिलते, केवल प्रश्नोपनिपद् मिलती है।

ऋक्, यजु और सामके यज्ञोमे अथर्ववेदके मन्त्रोका व्यवहार नही होता। इसी तरह अथर्ववेदीय यज्ञोमे तीनो वेदोके मन्त्रोका उपयोग नही होता। अथर्ववेदके यज्ञ भिन्न प्रकारके होते हैं। इसके मन्त्र भी ऋग्वेदकी तरह क्रम-वद्ध सजाये हुए नही पाये जाते।

जैसे सामवेदमे उद्गाता प्रधान है, उसी तरह अथर्ववेदमे ब्रह्मा है। ब्रह्मा प्रधान पुरोहित कहलाता है। यही समस्त याज्ञिक कर्मोका निरीक्षण और सचालन करता है। इसलिये ब्रह्माको चारो वेदोका विद्वान् होना पडता है, लौकिक और पारलौकिक विषयोका भी विज्ञाता होना पडता है, साथ ही व्यवहार-निपुण भी होना पडता है। इतना ज्ञान प्राप्त किये विना ब्रह्मा न तो सारे याज्ञिक कृत्योका निरीक्षण कर सकता है, न त्रुटियो का निर्देश कर सकता है, न विविध प्रश्नोका उत्तर ही दे सकता है। इसीलिये ब्रह्माकी ज्ञान-राशि विशाल होती है। अथर्ववेद पढनेपर इस ज्ञान-राशि का विशाल होना भी निश्चित है, क्योकि इसमें रोग-निवारण, उपद्रव-शमन, दुर्दैव-रक्षा, शत्रु-नाश, मोहन, वशीकरण आदिसे लेकर देश-भक्ति, ब्रह्मज्ञान, मोक्षप्राप्ति तकके उपदेश हैं।

अथर्ववेद (शौनक-सहिता) के प्रथम और द्वितीय काण्डोमे श्वेत-कुष्ठ, पलित रोग आदिकी शान्तिके उपाय बताये गये है। तृतीय काण्डमें वालग्रह, यक्ष्मा, वशीकरण आदिकी वाते है। चौथेमे धूमकेतुकी उत्पात-शान्तिके लिये वरुण-देवकी स्तुति है। पाचवेंमें गायोके चोरको दवानेके और शत्रुको दवानेके मन्त्र हैं। इसी काण्डके एक मन्त्रसे ज्ञात होता है कि

शूद्रोमे शीतज्वर रहता था (५ २२ ७)। ब्राह्मणोको सन्ताप पहुँचानेवाले को राजा दण्ड देता था—समाजमे भी वह घृणित समझा जाता था (५.१९)। यह भी कहा गया है कि जिस राष्ट्रमे ब्राह्मण सताये जाते है, वह कभी भी उन्नति नही कर सकता (५.६—९)। आजकल जो ब्राह्मण-द्वेषी है, वे इन चारो मन्त्रोको पढ देखे। छठे काण्डमे कास, श्लेष्मा आदि रोगोकी शान्ति, अग्निदाहकी निवृत्ति आदिके मन्त्र है। सातवेमे सभामे जय-प्राप्ति करानेवाले मन्त्र है। आठवेके एक मन्त्रसे (८ १.१ ४) विदित होता है कि मृत्युको जीतनेके लिये यह मन्त्र पढा जाता था। आठवेमे (५—९) ऋग्वेदके सात छन्दोके वर्णोकी सख्या दी हुई है। नौवे काण्डमे मधुकशा औषधिका वर्णन है। दसवे काण्डमे ईश्वरवाद है। ग्यारहवेमे ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीकी महिमा है। बारहवेमे देश-भक्तिसे ओत-प्रोत पृथिवी-सूक्त है। तेरहवेमे अनेक फुटकल बाते है। चौहदवेमे विवाह-विषयक मन्त्र है। पन्द्रहवें और सोलहवे काण्डोमे विविध विषय है। सत्रहवेमे दार्शनिक बातें है। अठारहवा काण्ड श्राद्ध-विषयक है। इसी (१८ ३ १) मे सती स्त्रियोको अपने पतिकी चितासे उतर आनेकी बातका उल्लेख है। इस काण्डसे यह भी ज्ञात होता है कि अन्त्येष्टि-क्रियाके अवसरपर यमकी स्तुति की जाती थी। उन्नीसवे काण्डमे ऋग्वेदके मुख्य सात छन्दोकी नामावली दी हुई है। इसी काण्डमे नक्षत्रोका भी वर्णन है। नक्षत्रोकी गणना कृत्तिकासे की गयी है, अश्विनीसे नही (१९ ८)। अगले मन्त्रमे उल्काओकी भी बात है। राज-तिलकके समय राजाकी पगडीमे मणि बाधी जाती थी। छोटे-छोटे राज्योको राष्ट्र और बडे-बडे राष्ट्रोको साम्राज्य कहा जाता था (१९ २४)। इसी काण्डके अन्तमे राजसूय यज्ञका वर्णन है। बीसवे काण्डमे सोमयागका विवरण है।

अत्यन्त सक्षेपमे कहा जा सकता है कि अथर्ववेदमे तीन प्रकारकी बातोका प्राधान्य है—मन्त्रो, औषधो, तरह-तरहके टोटको और यन्त्रोके प्रयोगसे इस लोकमे सर्व-विध दु ख-दारिद्र्य, विघ्न-बाधा और रोग-शोक

का निवारण करके कल्याणकी प्राप्ति, यज्ञो द्वारा स्वर्गलोकके सुख और ब्रह्मविद्याके बलसे मोक्षकी उपलब्धि। नमूनेके तौरपर कुछ मन्त्र पढ़िये।

१ म काण्ड, ५ अनुवाकके दो सूक्तोका प्रयोग श्वेतकुष्ठ और पलित रोगकी शान्तिके लिये किया गया है। कहा गया है—पहले सफेद दागको सूखे गोमयसे इतना घिसे कि लाल हो जाय। फिर उसपर मन्त्रो द्वारा चार औषधियो (भँगरैया, हल्दी, न्यवारी और नीलिका) को पीसकर लेप करे। रोग अच्छा हो जायगा। मन्त्र यह है—

"नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इद रञ्जनि रजय क्लिास पलितं च यत् ॥"

अर्थात् 'तुम रातको उपजी हो, हे हल्दी, भँगरैये, इन्द्रवारुणि, नीलिके। ऐ रगनेवालियो, यह जो श्वेत कुष्ठ और पलित है, इन्हे अपने रगमें रग दो।'

४ ४.१ का पाचवा मन्त्र है—

"सर्वं तद् राजा वरुण विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोतितानि ॥"

अर्थात् 'राजा वरुण सभी कुछ देखते हैं—चाहे वह आकाश और भूमिके बीचमें हो, चाहे उसके भी परे हो, मनुष्योके पलक-पलक गिन डालते हैं और जैसे जुआडी पासे फेकता है, वैसे ही पापियोके पापानुसार उन्हे सीख देते हैं।'

इसी शौनक-सहिताके ५ वे काण्डमे कई ज्ञातव्य बातें हैं। लिखा है कि 'ब्राह्मणमे इतनी शक्ति होती है कि वह क्षत्रिया, वैश्या आदिसे भी विवाह कर सकते हैं (५ १७ ८ ९)।' स्त्रिया चादर ओढती थी, जिसका नाम 'द्रापी' है (५ ७ १०)। 'स्वर्ण-खचित' रेशमी वस्त्र स्त्रिया पहनती थी (५ ७ १०)। नवोढा वधुएँ सौ-सौ गाये मायकेसे ससुरालमे ले जाती थी (५ १७ १२)। अग और मगधका भी नाम एक मन्त्रमें आया है (५ २२)।

६ ११.२ का यह मन्त्र खासीकी शान्तिके लिये पढा जाता है–

"यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥"

अर्थात् 'ऐ खासी, जैसे सूर्यकी किरणे जल्द जल्द निकलती जाती है, वैसे ही तू इस रोगीको छोडकर झट समुद्रकी लहरीमे चली जा ।'

इस काण्डमे एक स्थलपर (६ २ ३) पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रार्थना की गयी है। यह भी कहा गया है कि कन्याके लिये वर चुननेमे मा-बाप ही मुख्य है (६ ६१ ६)।

सभामे विजय प्राप्त करनेके लिये यह मन्त्र पढा जाता था–

"विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के चे सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥" (७.२.५)

'ऐ सभे, मै तेरा नाम जानता हूँ। तेरा नाम नरिप्टा (अजेया) है। इसलिये जितने तेरे सभासद् हो, सव मेरी हामे हा मिलावे।'

इस सातवे काण्डके एक स्थानपर यह भी लिखा है कि 'कन्याकी उत्पत्ति सुख-कारक नही है।' (७ १६.२५)।

दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये यह मन्त्र पढा जाता है–

"उत्क्रामातः पुरुषमावपत्था मृत्योः षड्वीशमवमुञ्चमानः ।
माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥" (८.१.१.४)

'ऐ पुरुष, इस मृत्युके पाशसे बाहर निकल आओ, गिरो मत। मृत्यु की बेडीको काट डालो और इस लोकसे अलग मत हो, चिरजीवी होकर सूर्य और अग्निके दर्शन करते रहो।'

इसी काण्डमे स्त्रियोकी पोशाकका भी उल्लेख है (८.२ १६)।

नौवे काण्डमे एक "मधुकशा" नामकी औषधिका उल्लेख है, जिसमे ये सात गुण वताये गये है–मस्तिष्क-नन्दन, हृदय-शक्ति-नन्दन, प्रीतिकर, वाजीकरण, रक्त-जनक, शीतल और वजन बढानेवाली। एक स्थान (४र्थ मन्त्र) मे कहा गया है–

"हिरण्यगर्भा मधुकशा घृताची महान् गर्भश्चरति मर्त्येषु।"

अर्थात् 'मधुकशाका रंग सोनेके समान है, उसका रस चिकना है। मनुष्यके उदरमें जाकर यह गर्भ-जननका कारण होती है।' इसका सेवन करनेसे मनुष्यमें गर्भ उत्पन्न करनेकी शक्ति आ जाती थी।

दसवें काण्डमें तो अध्यात्मवादकी ऐसी-ऐसी अद्भुत बातें हैं कि इसके समस्त सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

ग्यारहवें काण्डमें ब्रह्मचर्यकी महिमा बताते हुए कहा गया है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥" (११.३.२)

'ब्रह्मचर्यकी ही तपस्यासे देवोंने मृत्युको मारा था। ब्रह्मचर्यके ही साधनसे देवोंके लिये इन्द्र स्वर्ग ले आये।'

ऋग्वेदमें जैसे पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त और नासदीय सूक्त चराचर का गहन रहस्य बतानेवाले हैं, वैसे ही अथर्ववेदके स्कम्भ-सूक्त (१० वां काण्ड, ७ वां, ८ वां सूक्त), उच्छिष्ट-सूक्त (११ ९) और पृथिवी-सूक्त (१२ वां काण्ड) प्रसिद्ध हैं। प्रथम दो सूक्तोंमें जड-चेतनका गूढ रहस्य है और पृथिवी-सूक्तमें देशभक्तिकी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। ब्रह्मको स्कम्भ (आधार) कहा गया है। इसीके आश्रयमें सारे जागतिक पदार्थ निवास करते हैं और अपनी सत्ता बनाये हुए हैं। स्कम्भ ही विश्वका कारण है। कहा गया है—'जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश समाहित हैं, जिसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और वायु रहते हैं, वही स्कम्भ है। स्कम्भ भूत, भविष्य और वर्त्तमानका अधीश्वर है (१० ७ १२ और ३५ तथा १०.८ १)।' आगे चलकर (१० ८ ४४) स्कम्भ और आत्माकी एकता बतायी गयी है। इन कई मन्त्रोंमें उपनिषदोंका मार्मिक रहस्य विवृत है।

दृश्य प्रपंचका निषेध करते-करते जो अवशिष्ट बचता है, वही ब्रह्म है। ब्रह्म-स्वरूपके निर्देशके लिये बृहदारण्यकोपनिषद् (२ ३.११ और ४.२ ११) 'नेति नेति' पुकारती है। यही अवशिष्ट ब्रह्म उच्छिष्ट

है और इसीके ऊपर सारे विश्व-पदार्थ अवलम्बित हैं। कहा गया है—'उच्छिष्टपर ही नाम-रूप अवलम्बित है (११.६ १)। वेदो और पुराणो की भी उत्पत्ति उच्छिष्टसे हुई है (२४)। प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, स्थिति, प्रलय—सब उच्छिष्टसे उत्पन्न हैं (२५)।' वस्तुत सत्, स्कम्भ, उच्छिष्ट, प्रजापति, पुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्म, आत्मा—सब एक हैं और इसी बातका रहस्य बताना उपनिषदो और वेदान्तका प्रधान लक्ष्य है।

१२वें काण्डके पृथिवीसूक्तके मन्त्र देशभक्तिके लिये बड़े ही जागरूक और प्रोज्ज्वल हैं। इसके ये तीन मन्त्र हैं—

"यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैऽलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां नदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥"

अर्थात् 'जिस भूमिपर विनाशी मनुष्य शोर-गुल मचाते, नाचते और गाते हैं, जिसपर युद्ध करते और नगाड़ा पीटते हैं, वह धरित्री हमारे शत्रुओ को मार भगावे और हमे निष्कण्टक करे।'

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विशाषाडाशामाशां विषासहिः।"

'मैं अपनी मातृभूमिके लिये और उसके दु ख-विमोचनके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूँ। वे कष्ट जिस ओरसे आवे, चाहे जिस समय आवे, मुझे इसकी परवाह नही है।'

"यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः॥"

'अपनी मातृभूमिके लिये जो मैं कहता हूँ, वह उसकी भलाईकी बात है, जो देखता हूँ, वह उसकी सहायताके लिये है। मै ज्योति.पूर्ण, तेजस्वी और बुद्धि-सम्पन्न होकर मातृ-भूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओका विनाश करता हूँ।'

इन मन्त्रोसे मालूम पडता है कि हमारे पूर्वज देशमाताके लिये प्राण तक देनेको तैयार रहते थे और देशका दु ख दूर करनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट झेला करते थे। अन्तिम मन्त्रमे चोरो, डाकुओ, भ्रष्टाचारियो, स्वार्थी शासको और आक्रामकोसे देशकी रक्षा करनेका उपदेश है। क्या इन मन्त्रो से भी वढकर देश-सेवाका उपदेश ससारकी किसी अन्य जातिमे है? इतना महत्त्वपूर्ण और प्राचीनतम उपदेश ससारकी किसी दूसरी जातिके भाग्यमे वदा है?

इसी काण्ड (१२ ४) मे लिखा है कि 'गायोंकी पूजा करनी चाहिये।' एक मन्त्र (१२ ३ १७ १८) मे यह भी कहा गया है कि 'ब्रह्मचारिणी और सुशिक्षिता कन्याका विवाह उसका पिता करता था।'

चौदहवा काण्ड विवाह-सम्बन्धी मन्त्रोसे पूर्ण है। ऋग्वेदके १० वें मण्डलका ८५ वा सूक्त सूर्या-सूक्त है। इसमे नारीजातिके सम्वन्धमे वडी ही महत्त्वपूर्ण वाते हैं। यह सूक्त भी इस वेदमे है। कहा गया है, 'कन्याकी विदाईमे उसके पिता उसे पलग, गद्दा और कोच आदि देते थे' (१४ २ ३१ ४१)। 'खजानेकी सन्दूक कन्याको दी जाती थी' (१४ २ ३०, १४ २० ३)। स्त्री ही घरका सारा प्रवन्ध करती थी। घरके सव छोटे लोगोपर उसका शासन रहता था—

"यथा सिन्धुर्नदीना साम्राज्य सुषुवे वृषा।
एवा त्व सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्त परेत्य च॥" (१४.१.४३)

काण्ड १७, अनुवाक १, सूक्त २, मन्त्र ९ मे तो ऐसी वाते कही गयी हैं, जो सांख्य, योग, वेदान्त, वौद्ध आदि दर्शनोकी मूल भित्ति है। मन्त्र गद्यमे है—

"असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहित भव्यं भूते प्रतिष्ठित तदेव विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि। पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन्॥"

तात्पर्य यह है कि 'असत्, अभाव, शून्यमे—निरस्त-समस्तोपाधिक नाम-रूप-रहित अप्रत्यक्ष ब्रह्ममे—ही सत्, भाव या प्रत्यक्ष मायाका प्रपंच प्रतिष्ठित वा अध्यस्त है। इसी सत् अर्थात् प्रत्यक्ष मायाके प्रपचमे सारी सृष्टि (भव्य) के उपादानभूत पृथिव्यादि पच महाभूत निहित है; इसीसे उत्पन्न होते है। वे ही पांचो महाभूत समस्त कार्योमे विद्यमान रहते है। समस्त सृष्टि (कार्यजात) उन्ही महाभूतोमे—पीपलके वीजमे पीपलके वृक्षकी तरह—वर्त्तमान रहती है। यही, आत्माके प्रपच-रूपकी महिमा, हे विष्णो, आपका अनन्त बल-वीर्य है। आप हम लोगोको इस लोकमे सब तरहके पशुओसे भरा-पूरा रखिये और (शरीर-पात होनेपर) परम कल्याण-धाम पहुँचाकर हमे अमृतमे सुरक्षित कर दीजिये।'

क्या ही उदात्त उपदेश है! सैकडो ग्रन्थोका सार एक ही मन्त्रमे रख दिया गया है—गागरमे सागर भर दिया गया है। वेदोके ऐसे ही एक-एक मन्त्रको लेकर उत्तर कालमे अनेकानेक ग्रन्थ रचे गये है।

इस शौनक-शाखापर भी आचार्य सायणका भाष्य है।

विभिन्न वेदोकी स्वर-लहरी विभिन्न होती है। कही हस्तचालन करना पडता है और कही शिर॰-सचालन। वसन्त-पूजा और यज्ञ-विशेषके अवसरोपर जो विविध स्वर-निर्घोष और मेघ-मन्द्र-निनाद सुनाई देता है, वह बडा ही दिव्य और भव्य, मृदुल और मजुल तथा महनीय और स्तवनीय जान पडता है। मन प्राण परिप्लुत हो जाते है और हृदय चाहता है कि यह पावन निनाद वह सदा सुना करे।*

---

*"अहिर्बुध्न्य-संहिता" (१२ और २०)में अथर्ववेदकी पांच शाखाओ की ही बात लिखी हुई है। अधिकांश ग्रन्थोके मतसे अथर्ववेदकी नौ शाखाएँ है; परन्तु आज कल इतने नाम पाये जाते है—१ पैप्पलाद, २

शौनक, ३ तोद, ४ मोद, ५ जाजल, ६ जलद, ७ ब्रह्मवेद, ८ देवदर्श, ९ चारणवैद्य, १० दामोद, ११ तोत्तायन, १२ जाबाल, १३ कुनखी, १४ ब्रह्मपलाश, १५ त्रिखर्व, १६ ततिल, १७ शैखण्ड, १८ सौकरसद्म, १९ शार्गरव, २० अश्वपेय आदि आदि। पाणिनीय व्याकरणके गण-पाठमें भी ऐसे कितने ही नाम आये हैं। इस दशामें यह निश्चय करना विकट कार्य है कि अथर्ववेदकी वस्तुत. कितनी शाखाएँ हैं। नाम तो और भी भ्रष्ट हो गये हैं। कहीं तोद है, कहीं दामोद है, कहीं दान्त है, कहीं योद है! कहीं पिप्पल है, कहीं पिप्पलाद है, कहीं पैप्पल है, कहीं पैप्पलाद है। कहीं देवदर्श है, कहीं वेददर्श है, कहीं देवर्षि है! इस तरह प्रायः सभी नामो के अक्षर-विन्यासमें गोलमाल है। पता नहीं, इन नामोमें कितने शाखा-नाम हैं और कितने अन्योके है। ऐसी परिस्थितिमें लेखकने उन्हीं नामोको लिखा है, जो विशेष विख्यात है।

षष्ठ अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थ

वेदभाष्यमे आपस्तम्ब ऋषिका एक वचन उद्धृत किया गया है–"मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।" अर्थात् वेदके दो विभाग है–मन्त्र और ब्राह्मण। दोनोमे ही मुख्यतया यज्ञोका प्रतिपादन किया गया है। दोनोसे ही दोनो सम्बद्ध हैं।

ब्रह्म शब्दका एक अर्थ यज्ञ है। यज्ञका प्रतिपादन करनेके कारण इन ग्रन्थोका नाम "ब्राह्मण" पडा। कुछ लोगोका मत है कि 'याज्ञिक कृत्योके प्रधान संचालक ब्राह्मण पुरोहित थे, इसलिये इनका नाम ब्राह्मण पडा।' इसमे सन्देह नही कि यज्ञो और समूचे कर्मकाण्डके आधार ये ब्राह्मण-ग्रन्थ ही हैं। कर्मकाण्ड ही, क्रियात्मक रूप ही, किसी भी धर्मकी विशेषता है। किसी भी धर्मसे उसका क्रियात्मक रूप निकाल दीजिये, वह नि.सत्त्व और जड़ हो जायगा। इसलिये हिन्दूधर्मका जीवित रूप ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। मन्त्रभाग वा सहिताभागका यथार्थ रहस्य ब्राह्मण-भागके विना समझमे ही नही आ सकता। इसीसे मन्त्र ओर ब्राह्मण–दोनोको वेद कहा गया है–"मन्त्रब्राह्मणात्मको वेद" (आपस्तम्वपरि-भाषा ३१)। इन दोनोका सम्वन्ध इतना विजडित है कि कही-कही दोनोको अलग-अलग करना भी कठिन हो जाता है। कृष्ण यजुर्वेदकी जो तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक सहिताएँ उपलब्ध ह, उनको ही उदा-हरणके रूपमे ले लीजिये। अन्तकी दोनो सहिताओमे मन्त्र और ब्राह्मण सम्मिलित है, पृथक्-पृथक् नही। सहितामे कुछ मन्त्र कहकर उसी प्रपाठक मे ब्राह्मण भी कहा गया है। किसी-किसी प्रपाठकमे दोनों भाग एक साथ

ही वर्णित है और कहीं-कहीं भिन्न रूपमे। तैत्तिरीयमे मन्त्र और ब्राह्मण अलग-अलग कहे गये है, परन्तु अनेक मन्त्र ब्राह्मण-भागमें और अनेक ब्राह्मण मन्त्र-भागमें पाये जाते हैं। माध्यन्दिनशाखाके शतपथ-ब्राह्मण मे नौ काण्डोतक सहिताके अनुसार ही ब्राह्मणका भी क्रम है—पितृ-पिण्ड-यज्ञको छोडकर। सहितामे इस यज्ञके मन्त्र दर्श-पौर्णमासके अनन्तर कहे गये है और ब्राह्मणमे आधानके अनन्तर। बस, इतना ही भेद है। शुक्ल यजुर्वेदकी दूसरी शाखा काण्वसहितामें पहले दर्शपूर्णमास-सम्बन्धी मन्त्र पढे गये है और ब्राह्मणका प्रारम्भ आधानसे होता है। सच बात तो यह है कि उपनिषदेंतक सहिता-भागमे सबद्ध है। माध्यन्दिन-सहिताका अन्तिम अध्याय ही "ईशावास्योपनिषद्" है। श्वेताश्वतरोपनिषद् भी श्वेताश्वतर-सहिताका ही भाग है। इसलिये यह प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है कि मन्त्र-भाग ही वेद है, ब्राह्मण और उपनिषद् नहीं। वस्तुत सभी एकमे मिले हुए है—सभी वेद है। ये बातें पहले भी लिखी ही गयी है। यह दूसरी बात है कि कोई नकली उपनिषद् और ब्राह्मण गढनेकी निरर्थक चेष्टा करे। कहते है, "अल्लोपनिषद्"की तरह कुछ नकली उपनिषदे गढी भी गयी है।

ब्राह्मण-भागमें विधि, अर्थवाद और उपनिषद् नामके तीन भाग है। विधि शब्दसे कर्म-विधायक, अर्थवादसे प्ररोचनात्मक और उपनिषद् शब्दसे तत्त्वविचारात्मक प्रकरण विवक्षित है।

कुछ ब्राह्मणोमे "कृत्तिका"से नक्षत्र-गणना की गयी है और कुछ सहिताओमे "मृगशिरा" से। आजकल "अश्विनी"से नक्षत्र-गणना की जाती है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोमे मन्त्रोकी अर्थ-मीमासा, यज्ञानुष्ठानके सम्बन्धमे विस्तृत विवरण तथा आलोचना, नाना विषयोके उपाख्यान, शब्दोकी व्युत्पत्ति एवम् प्राचीन राजाओ और ऋषियोकी कथाएँ है। इस प्रकार वेदागो और सम्पूर्ण सस्कृत-साहित्यका बीज ब्राह्मण-ग्रन्थोमे निहित है।

जैसे ११३० संहिताओंमें ११ संहिताएँ ही उपलब्ध हैं, वैसे ही ११३० ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें १८ ही मिलते हैं—शेष कालके गालमें समा गये। उपलब्ध ब्राह्मण प्राय गद्यमें हैं।

ऋग्वेदके दो ब्राह्मण छपे हैं—ऐतरेय और कौषीतकि (शाङ्खायन)। ऐतरेय अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसे १८६३ ई० में, अंग्रेजी अनुवादके साथ, मार्टिन हागने, १८७९ में थ्यूडोर आउफरेस्टने, १८९६ में काशीनाथ शास्त्री ने और १९२० में ए० बी० कीथने प्रकाशित किया। इसपर सायण-भाष्य है, जिसे उक्त शास्त्रीजीने भी अपने संस्करणमें छापा है।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें ४० अध्याय हैं। यह सोमयज्ञके विवरणसे परिपूर्ण है। इसके एकसे लेकर सोलह अध्यायोंमें एक ही दिनमें होनेवाले "अग्नि-ष्टोम" नामक सोमयागका, अनन्तर दो अध्यायोंमें ३६० दिनोंमें पूर्ण होनेवाले "गवामयन"का और बादके ६ अध्यायोंमें "द्वादशाह"का प्रति-पादन किया गया है। आगेके अध्यायोंमें अग्निहोत्रादिका वर्णन है। अन्तके आठ अध्यायोंमें राज्याभिषेक-महोत्सवोंमें राजपुरुहितोंके अधिकारका वर्णन है। अन्तिम दस अध्यायोंमें उपाख्यान और इतिहास विशेष हैं। ५ अध्यायोंकी एक "पंचिका" कहाती है। सब आठ "पंचिकाएँ" हैं। इसकी सप्तम "पंचिका" (३ अध्याय) राजा हरिश्चन्द्रके उपाख्यानके लिये प्रसिद्ध है। इक्ष्वाकु-वंशीय राजा हरिश्चन्द्रके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये उन्होंने वरुणदेवकी उपासना की। वरुणने प्रसन्न होकर वर दिया—"संन्तान तो होगी, परन्तु बलि देनी होगी।" कदाचित् वरुण परीक्षा ले रहे थे। राजाको रोहित नामका लड़का तो हुआ, परन्तु लड़के की बलि देनेकी बात राजा टालने लगे। अन्तको राजाको रोगने पकड़ लिया। तब राजाने अजीगर्त्त ऋषिके पुत्र शुनःशेपको खरीदकर उसकी बलि देना तै किया। यज्ञ-समारम्भ हुआ। उस यज्ञमें चार पुरोहित थे—होता विश्वामित्र, अध्वर्यु जमदग्नि, उद्गाता अयस्य और ब्रह्मा वसिष्ठ। वरुणकी स्तुति कर शुनःशेपने मुक्ति पा ली। हरिश्चन्द्र भी नीरोग हो गये।

शुनःशेपने लोभी पिताका त्याग कर दिया और विश्वामित्रने उसे पुत्र मानकर रख लिया।

ऐतरेयके अन्तिम तीन अध्यायोंमे जो ऐतिहासिक विवरण हैं, उनसे विदित होता है कि भारतवर्षकी पूर्वी सीमामे विदेह आदि जातियोंका राज्य था। दक्षिणमें भोज-राज्य, पश्चिममे 'नीच्य' और 'अपाच्य' लोगोंका राज्य, उत्तरमे उत्तर-कुरुओं और उत्तर-मद्र लोगोंका राज्य तथा मध्य देशमें कुरु, पाञ्चाल लोगोंका राज्य था। इस ब्राह्मणमे परीक्षित-पुत्र जनमेजय, मनुपुत्र शार्यात, उग्रसेन-पुत्र युधाश्रौष्ठि, पिजवन-पुत्र सुदास, दुष्यन्त-पुत्र भरत आदि तथा काशी, मत्स्य, कुरुक्षेत्र, खाण्डव आदिका भी उल्लेख है।

ऐतरेय-ब्राह्मण (१ २७) मे सोमाहरणकी कथा भी है। गायत्रीने पक्षीका रूप धारण किया और श्येन-रूपमे पैरोंसे पकडकर सोमको देवोंके पाससे ले आयी। यहीं यह भी कहा गया है कि "एक बार यज्ञमे सोम-पान के लिये देवोंने झगड़ा हो गया। जो चलनेमें बाजी मारे, वही सोम-पान करे, यह निश्चित हुआ। अन्तको वायु और इन्द्र पहले आये, मित्रावरुण पीछे आये। सोमाहरणके लिये ईशान्य दिशा उत्तम है; कारण इसी दिशामे असुरोंने देवोंपर विजय पायी थी।" सोमाहरण–प्रतिपादक सूक्तोंको इसी स्थलपर "सौपर्ण" संज्ञा दी गयी है।

ऐतरेय (२.२८) ने मुख्य देवता ३३ ही माने हैं। इसके ३.४४ में आत्माकी उपमा सूर्यसे दी गयी है। आत्माको अमर माना गया है और पुनर्जन्मका भी उल्लेख है। स्पष्ट ही कहा गया है–"आत्मा एक शरीरसे अस्त होकर दूसरे शरीरमे उदित होती है।" यह प्रसग भी कण्ठस्थ करने योग्य है।

इससे थोडा आगे चलकर (३ २३) कहा गया है–"सन्तानोत्पत्ति कर देव-ऋण, पितृ-ऋण आदिके परिशोधके लिये पुरुष अनेक विवाह कर सकता है।" एक स्थान (४ २७ ५–६) पर यह भी लिखा है–"न्यायतः विवाह वही है, जो उचित प्रेमपूर्वक किया जाता है।" ५.३३ से ज्ञात

होता है कि "तीनो वेद वाणी है, मन अथर्ववेद है।" कहा गया है-"ऋक्, यजु, सामसे यज्ञके एक पक्षका सस्कार होता है-अकेला ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) ही मनके द्वारा दूसरे पक्षका सस्कार करता है।" यह स्थल देखने योग्य है। जो लोग अथर्ववेदको "नवीन रचना" मानते है, उन्हे तो इस ऋग्वेदीय ब्राह्मणके इस स्थलको वार-वार देखना चाहिये। ऐतरेयने (७.३ १३) नारीको सखा कहा है-"सखा ह जाया।" इसी ब्राह्मण (७ ९-१०) मे कहा गया है कि "जिसके नारी नही है अर्थात् मर गयी है, वह भी वैदिक यज्ञ कर सकता है। उसकी श्रद्धा ही उसकी उत्तम नारी है"-"अपत्नीकः कथमग्निहोत्रं जुहोति ? श्रद्धा पत्नी सत्य यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम् ।" परन्तु कन्योत्पत्तिको सुखकर नही माना गया है (७ १३)।

इन्द्रको सभी देवोमे श्रेष्ठ माना गया है। लिखा है-"देवोमे इन्द्र सबसे अधिक ओजस्वी, वली और साहसी है, वही वास्तव है और सबसे दूरतक पार लगानेवाले है"-("स (इन्द्रः) वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः" (७.१६)।)

उपलब्ध ऋग्वेदीय शाकल-शाखाका ऐतरेय ब्राह्मण है और अनुपलब्ध शाङखायन-शाखाका कौषीतकि-ब्राह्मण है। कौषीतकिको १८८७ ई० मे वी० लिडनरने और १९२० मे ए० वी० कीथने सुसम्पादित कर प्रकाशित किया था।

कौषीतकि (शाङखायन) मे ३० अध्याय है। इसमे प्रथम अग्न्याधान, तव अग्निहोत्र, तदनन्तर दर्शपौर्णमास और सवसे अन्तिम अध्यायोमे चातुर्मास्यका वर्णन है। इसमे भी सोमयागकी प्रधानता है। इस ग्रन्थमे यज्ञका सम्पूर्ण विवरण मिलता है।

यज्ञको वैदिक साहित्य (विशेपत ब्राह्मण-ग्रन्थो) मे विश्वके नियामक के रूपमे ग्रहण किया गया है। ब्राह्मणोने सारे विश्वको ही यज्ञ-रूप कहा है। यज्ञके कारण देवता लोग अपने-अपने अधिकारोका निर्वाह करते

ऋग्वेदके अन्य ब्राह्मण न तो अखण्डित रूपमें मिलते ही हैं, न छपे ही हैं।

यह सभी जानते हैं कि यजुर्वेदके दो भाग हैं—कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण मे छन्दोबद्ध मन्त्रो और गद्यात्मक विनियोगोंकी मिलावटके कारण कृष्ण यजुर्वेद संज्ञा हुई और शुक्लमे केवल मन्त्रोंका संग्रह रहने और विनियोग-वाक्योंके अभावके कारण शुक्ल यजुर्वेद नाम पड़ा। याज्ञवल्क्य ऋषिको सूर्यके द्वारा दिनमें प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेद नाम पड़ा—ऐसा भी माना जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी और काठक संहिताओंके ब्राह्मण तो संहिताओंमें ही सम्बद्ध है, परन्तु तैत्तिरीय संहिताका तैत्तिरीय ब्राह्मण पृथक् छपा है। इसपर सायणाचार्यका भाष्य है। भट्ट भास्करका भी इसपर भाष्य है। परन्तु पूर्ण नही है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १८६६ ई० मे पूनासे और १८६० मे कलकत्तामे प्रकाशित किया गया।

तैत्तिरीयमे सब तीन भाग वा काण्ड, २५ प्रपाठक और ३०८ अनुवाक है। इस ब्राह्मणके एक स्थल (१ ३.७) पर लिखा है कि 'यज्ञारम्भके

पहले पुरुषोंकी शुद्धि की जाती थी।' इसमे दीर्घकालीन रात्रि और रात्रिकी प्रार्थनाका उल्लेख है (१.५ ७)। इसके अश्वमेध-प्रकरणमे यज्ञीय मासकी चर्चा है। कालकज असुर और ऋग्वेदकी ही तरह वाराहावतारकी बाते भी है। एक स्थान (२ ३ ११) पर लिखा है कि 'प्रजापतिने सोम और तीन वेद प्रकट किये। सोमने तीनो वेदोंको मुट्ठीमे छिपा रखा। प्रजापति के दो कन्याएँ थी—श्रद्धा और दूसरी 'सीता-सावित्री'। सोम श्रद्धासे विवाह करना चाहता था और 'सीता-सावित्री' सोमसे विवाह करना चाहती थी। परन्तु प्रजापति जानते थे कि सोम इससे विवाह नही करेगा; इसलिये उन्होने "स्थागर" नामकी औषधिको घिसकर सीता-सावित्रीके भालमें गन्ध-लेप किया। इस वशीकरण लेपको लगाये हुए कन्या सोमके पास गयी। सोम वशमे आ गया और उसने तीनो वेद सीता-सावित्रीको देकर उससे विवाह कर लिया।' यह कथानक प्ररोचनात्मक है और सोमकी महिमा बतानेके लिये कहा गया है। इसमे सीता-सावित्री एक ही नाम है। इसे देखकर ही सस्कृत-साहित्यमे दो नाम रखे गये जान पड़ते है—सीता और सावित्री। इस ब्राह्मण (३.१२ ३) मे चारो वर्णोके साथ चारो आश्रमोके कर्त्तव्योका सुन्दर वर्णन है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित नामके स्वरोका भी विवरण है। सक्षेपमे यह समझिये कि हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशसा, सशय, विधि, परकृति, पुराकल्प, व्यवधारण, कल्पना, उपमान आदि जितने विषय ब्राह्मण-ग्रन्थोमे रहते है, वे सबके सब इसमें भी है।

कही कही लिखा है कि अध्वर्यु-ब्राह्मण (मैत्रायणी-ब्राह्मण), बल्लभी-ब्राह्मण और सत्यायनी-ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेदके है, परन्तु इन दिनों तीनोमे एक भी नही मिलता।

शुक्ल यजुर्वेदके ब्राह्मणका नाम **शतपथ-ब्राह्मण** है। शुक्ल यजुर्वेदकी **माध्यन्दिन** और **काण्व** नामकी दो संहिताएँ मिलती है तथा दोनोके ब्राह्मणों का नाम शतपथ है। सौ अध्याय होनेके कारण शपपथ नाम पड़ा। अभी

केवल २२ ही वर्ष हुए डब्ल्यू० कैलेडने काण्वशाखीय शतपथको छपाया है। यह तो कुछ छोटा है, परन्तु माध्यन्दिन-शाखीय शतपथ इतना विशाल-काय है, जितना ऋग्वेदको छोड़कर वैदिक साहित्यमे कोई भी ग्रन्थ नही है। अग्रेजी अनुवादके साथ, ५ भागोमे, जे० एगलिंगने इसे छपाया है। इस सस्करणका अच्छा प्रचार है। सायण-भाष्य तथा हरिस्वामी और द्विवेदगगकी टीकाओके साथ १८५५ मे ए० वेवरने तथा सायण-भाष्यके साथ १९१२ मे सत्यव्रत सामश्रमीजीने शतपथ-ब्राह्मणका प्रकाशन किया था। इसका एक नाम वाजसनेय-ब्राह्मण भी है। इसपर कवीन्द्राचार्य सरस्वतीकी भी टीका है।

शतपथमे सब १४ काण्ड है। इसके नौ काण्डोमे यज्ञ-विवरण है। दसवेमे अग्नि-रहस्य है। दसवे और ग्यारहवे काण्डोमे अग्नि-चयनके सम्बन्धमे अनेक बाते है। १२ वा काण्ड प्रायश्चित्त-विषयक है। तेरहवेमें अश्वमेध और नरमेधकी बाते है। इसी काण्डमे दुष्यन्त, शकुन्तला-पुत्र भरत, भरतोके राजा सत्राजित्, इनके प्रतिद्वन्द्वी काशीराज धृतराष्ट्र, परीक्षित्पुत्र जनमेजय और इनके भाई (भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन) आदिका उल्लेख है।

इसके १४ वे काण्डको आरण्यक कहते है। ऋग्वेदके मन्त्र भी इस ब्राह्मणमे यथेष्ट है।

शतपथ (१ १ १) से विदित होता है कि अप्सराएँ नाचने और गानेका कार्य करती थी। १३ वें काण्डमें अप्सराओका सौन्दर्य-वर्णन है। इसके ११.१ ६ में कहा गया है-"देवोकी सृष्टिसे उजाला और असुरोकी सृष्टिसे अन्धेरा हो गया। इसीलिये अन्धकारमें असुरोका बल बढता है। दिन देवोका है, रात्रि असुरोकी है।" एक स्थल (१.१.२ ३) पर कहा गया है-"अथ ब्रह्मैव परार्द्धमगच्छत्। तत्परार्द्धं गत्वा ऐक्षत कथं न्विमांल्लोकान् प्रत्यवेयामिति। तद् द्वाभ्यामेव प्रत्यवैद् रूपेण चैव नाम्ना

च।" अर्थात् ब्रह्मका त्रिपाद, अमृत वा परार्द्ध भाग तीनो लोकोसे अतीत है। उसने सोचा—'किस प्रकार मै इन लोकोमे पैठू?' तब वह नाम और रूपसे इन लोकोमे पैठा।

इसीके अनुसार शंकराचार्यने बार-बार इस नाम-रूपात्मक मायाके आवरणका वर्णन किया है। आचार्यकी मूल भित्ति कदाचित् यही है।

शतपथमे ये तैंतीस देवता माने गये हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आकाश और पृथिवी (१ ५ ७.२)। कितने ही वेदज्ञ कहते हैं—'यहा शिवको रुद्रोमें और विष्णुको आदित्योमे सम्मिलित कर लिया गया है।'

रेत या वीर्यको सोम कहा गया है—"**रेतो वै सोमः**" (१.९ २.९)। रेत समस्त शरीर—प्राणो और इन्द्रियोको प्रसन्न रखता है। मस्तिष्कको शक्ति देनेके लिये रेतसे बढकर कोई दिव्य पदार्थ नंही है। इसीलिये इसकी रक्षाका इतना उपदेश दिया गया है और इसकी प्रशसामे इसे सोमतक कहा गया है।

शतपथ (४ ४.२ १३) मे स्त्रियोके उत्तराधिकारको अस्वीकृत किया गया है। हिन्दू-धर्म स्त्रियोकी पृथक् सत्ता नही मानता—उसके गोत्र, प्रवर आदि पतिके गोत्रादिमे विलीन हो जाते हैं। उसका सर्वस्व उसका पति ही माना गया है।

आगे चलकर (५.१.६.१०) कहा गया है कि 'पुरुष शरीरका अर्द्ध भाग है। वह तबतक पूर्ण नही होता, जबतक उसकी पत्नी नही होती और उसको लड़का नही उत्पन्न होता—"**अर्द्धो ह वैष आत्मनस्तमाद्यावज्जायां न विन्दते। अर्द्धो ह तावद्भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि सर्वो भवति।**" यही यह भी कहा गया है कि "**अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीकः।**" अर्थात् 'जो मनुष्य नारी-रहित है, वह यज्ञ नही कर सकता।' इसीलिये भगवान् रामचन्द्रने सीताके अभावमे सीताकी सोनेकी प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया था।

५ २ १ ८ में स्त्रियोकी चादरका उल्लेख है। यही यह भी लिखा है कि 'यज्ञमे सम्मिलित होनेके पहले नारीकी शुद्धि की जाती थी।' ५ २ १. १० मे कहा गया है कि 'पत्नीके विना पुरुष स्वर्ग नही जा सकता'; इसलिये स्वर्गार्थ-विहित यज्ञमे पुरुष स्त्रीके साथ ही यज्ञ करता था—"स रोक्ष्यञ्जायामामन्त्रयते, जाये, एहि स्वो रोहावेति। रोहावेत्याह जाया। तस्माज्जायामामन्त्रयते। अर्द्धो ह वैष आत्मनो यज्जाया।"

अन्नसे ही प्राणका धारण होता है, अन्नसे ही सूक्ष्म विद्युत् स्वरूपवाली शक्ति शरीरमे उत्पन्न होती है, इसलिये अन्नकी प्रशसामे अन्नको सोम कहा गया है—"अन्न वै सोम." (३.९ १ ८)। प्राणके विना मनुष्य एक क्षण भी नही जी सकता—प्राण ही शरीरका सर्वस्व है, इसलिये प्राणको प्रजापति कहा गया है—"प्राणः प्रजापति" (६ ३ १ ९)।

काण्ड १०, अध्याय ४, प्रपाठक २ और ब्राह्मण १८ से जाना जाता है कि "प्रजापतिने १२ हजार बृहतीमें ऋग्वेदीय मन्त्रो, ८ हजारमे यजुर्वेदीय मन्त्रो और ४ हजारमे सामवेदीय मन्त्रोका व्यूहन या सग्रह किया था।" परन्तु इन तीनो वेदोमे इतने मन्त्र नही मिलते। सभी वेदोके कितने ही मन्त्र लुप्त हो गये।

१३ ३ ६ मे ज्ञात होता है कि प्रत्येक चौथे वर्षमे सवत्सरको पूर्ण करनेके लिये २१ दिन अधिक लिये जाते थे और उसी वर्ष अश्वमेध-यज्ञ किया जाता था।

१४ ३ १ ३५ मे ज्ञात होता है कि स्त्रिया भी यज्ञोमें साम-गान करती थी—"पत्नी-कर्मैव एतेऽत्र कुर्वन्ति यदुद्गातार.।"

१४ ५ ४ १० में इतिहासको एक कला माना गया है। जो लोग कहते है कि 'आर्य लोग इतिहासकी उपेक्षा करते थे', उन्हें इस मन्त्रपर ध्यान देना चाहिये। माध्यन्दिनीय शतपथमे और अनेकानेक ज्ञातव्य बातें है; परन्तु स्थानाभावसे विशेष बातें नही लिखी जा सकती।

काण्व-शाखाके शपतथमे भी इसीके अनुकूल बाते है—कही-कही कुछ भेद है। इसमे ऋषि-वशावलीका जो वर्णन है, वह विशेषत गौतम-वशका है।

सामवेदीय **कौथुमशाखाका** ब्राह्मण ४० अध्यायोमे विभक्त है। प्रथम पचीस अध्यायोको '**पचविश-ब्राह्मण**' वा '**ताण्ड्य-महाब्राह्मण**' कहा जाता है। २६–३० अध्यायोको '**षड्विश-ब्राह्मण**' और ३१ तथा ३२ अध्यायोको '**मन्त्र-ब्राह्मण**' कहा जाता है। 'षड्विश-ब्राह्मण' के अन्तिम अध्यायको '**अद्भुत-ब्राह्मण**' कहते है। अन्तके आठ अध्यायोको '**छान्दोग्य-ब्राह्मण**' भी कहा जाता है, परन्तु वस्तुत यही छान्दोग्योपनिषद् है, क्योकि इसमे क्रिया-प्रतिपादक अश बहुत ही थोडा है। इसीका एक अश '**देवताध्याय**' वा '**दैवत-ब्राह्मण**' है। सामवेदके '**आर्षेय-ब्राह्मण**', '**वंश-ब्राह्मण**', '**संहितोपनिषद्-ब्राह्मण**' और '**सामविधान-ब्राह्मण**' भी प्रकाशित हो चुके है। सामवेदीय **जैमिनीय-संहिताके** '**जैमिनीय-ब्राह्मण**' और '**जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण**' भी छप चुके है। **राणायणीय** शाखाका कोई ब्राह्मण नही प्रकाशित हुआ है। इस शाखाके अनुयायी कौथुमीय शाखावाले ब्राह्मणोको ही मानते है। 'जैमिनीय-ब्राह्मण' को '**जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मण**' और '**छान्दोग्य-ब्राह्मण**'को '**छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मण**' भी कहते है। 'जैमिनीय-ब्राह्मण' को ही '**तलवकार-ब्राह्मण**' भी कहा जाता है।

'तण्डि' ऋषिके वशजो और शिष्योके द्वारा प्रचारित और पूजित होनेके कारण वा तण्डि शाखावाला होनेके कारण 'पचविश-ब्राह्मण' का नाम 'ताण्ड्य-ब्राह्मण' पड़ा। सामवेदके ब्राह्मणोमे यही प्रधान है, इसलिये इसका एक नाम '**महाब्राह्मण**' और दूसरा नाम '**प्रौढ़-ब्राह्मण**' भी है। इसे दो भागोमे, १८७४ ई० मे, सायण-भाष्यके साथ, ए० सी० वेदान्त-वागीशने कलकत्तासे प्रकाशित किया। इसमे अत्यल्प कर्मसे लेकर सौ दिनो तथा अनेक वर्षों तक होनेवाले सोमयाग-सम्बन्धी क्रिया-विशेषका क्रमानुसार वर्णन है। 'सरस्वती' और 'दषद्वती' नदियोके बीचके प्रदेशो

का भी वर्णन है। सोम-यज्ञके विवरणसे परिपूर्ण होनेपर भी इसमे कितनी ही ज्ञातव्य वाते है। व्रात्य-स्तोममे व्रात्योका विवरण मिलता है। नैमिषारण्यके यज्ञ और कुरुक्षेत्रका उल्लेख है। कोशलराज 'पर आत्मा' और विदेहराज 'निमि साप्य'की भी कथा है। इसके ४ १ १ और १३ ४.३ मे स्त्रियोके वेणी-बन्धनकी चर्चा है। इसको कोई-कोई 'आलङ्कारिक पट्ट' भी कहते है। इसके एक स्थान (१८.१ २) पर प्रजापतिके दो पुत्र कहे गये है—देव और असुर। एक स्थल (१९ ३) पर सन्ततिकी प्राप्तिके लिये अप्सराओकी स्तुति की गयी है।

इसके सब यज्ञ श्रौत यज्ञ है।

षड्विंश-ब्राह्मणमे अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त कहे गये है। दुर्दैव, पीडा, कृषि-नाश, भूकम्प आदिके विनाशके लिये अनुष्ठान बताये गये है।' षड्विंशके भी सब यज्ञ श्रौत है। गृहस्थके लिये गृह्य-क्रियाका विवरण "मन्त्र-ब्राह्मण" मे पाया जाता है। यह बहुत ही छोटा ग्रन्थ है। षड्विंश के दो सस्करण है—एकको के० क्लेमने १८९४ मे निकाला और दूसरेको एच० एफ० एलसिंगने १९०८ मे छपाया। मन्त्र-ब्राह्मणको सत्यव्रत सामश्रमीजीने १८९० में प्रकाशित किया।

अद्भुत-ब्राह्मणको प्रो० वेबरने १८५८ मे बर्लिनसे निकाला। यह भी बहुत छोटा है। छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मणको १८८९ मे ओ० वोट्लिंग्क ने छपाया। देवताध्याय-ब्राह्मणको १८७३ में ए० सी० बर्नेलने और बगानुवादके साथ सत्यव्रत सामश्रमीने भी निकाला। इसमें प्रधानतया सामवेदीय देवताओकी स्तुति की गयी है। आर्षेय-ब्राह्मणको १८७६ मे उक्त बर्नेल साहबने ही छपाया था। आर्षेयको डब्ल्यू० कैलेडने भी प्रकाशित किया है। इसके पाचवे काण्डमे सामद्रष्टा ऋषिके वशका वर्णन है। वश-ब्राह्मणको वेबरने भी छपाया है और बगानुवादके साथ सामश्रमीजीने भी छपाया है। इसपर भी सायण-भाष्य है। इसमें वेदको ब्रह्मासे उत्पन्न बताया है। इसमे सामवेदीय आचार्योके वशोका भी विवरण है। बर्नेलने भी १८७३

मे वश-ब्राह्मणको छपाया था। सहितोपनिषद्-ब्राह्मणको १८७७ में बर्नेलने प्रकाशित किया। इसमे ऐतरेयारण्यकके तृतीय काण्डकी तरह वेदाध्ययनकी रीति बतायी गयी है। सामविधान-ब्राह्मणको १८७३ में बर्नेलने, सायण-भाष्यके साथ, छपाया। भाष्यके साथ ही १८९६ मे इसका एक भारतीय सस्करण निकला। इसमे ताण्ड्यके समान ही साम-वेदीय प्रतिपाद्य विषयोका रोचक वर्णन है। प्रो० कोनोने १८९३ में इसका एक सस्करण निकाला था।

सामवेदकी जैमिनीय-शाखाके जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मणको बर्नेलने १८७८ मे और जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मणको १९२१ मे एच० एर्टलने प्रकाशित किया। डब्ल्यू० कैलेडने जैमिनीय-तलवकार-ब्राह्मणको, डच अनुवादके साथ, छापा है। ताण्ड्य-ब्राह्मणसे जैमिनीय-ब्राह्मणोका बहुत कुछ मेल है।

अथर्ववेदका ब्राह्मण गोपथ है। इसमे दो काण्ड वा खण्ड है। प्रथममें ५ अध्याय है और द्वितीयमे ६। अध्यायोको प्रपाठक भी कहा गया है। शतपथ और ताण्ड्यसे अनेक वाक्य इसमे उद्धृत किये गये है। इसके प्रथम काण्डमे ब्रह्मा नामके अथर्ववेदीय चतुर्थ पुरोहितकी बड़ी प्रशसा की गयी है। द्वितीय काण्डमे यज्ञ-क्रियाका प्रतिपादन है। यूरोपीय वेदाभ्यासियोकी धारणा है कि सम्पूर्ण गोपथ-ब्राह्मण अबतक नही प्राप्त हुआ है।

डी० गास्ट्राने १९१९ मे तथा राजेन्द्रलाल मित्र और हरचन्द विद्या-भूषणने १८७२ में गोपथको प्रकाशित किया था।

तैत्तिरीय-सहिता (६.६ ४ ३) और ऐतरेय-ब्राह्मण (३ २३) की तरह ही गोपथ (२ ३ १९) का भी मत है कि 'सन्तानोत्पत्ति कर देव-ऋण, पितृ-ऋण आदिके परिशोधके लिये पुरुष अनेक विवाह कर सकता ह।' इस (२ १६) मे अथर्ववेदको ब्रह्मवेद कहा गया है। एक स्थल (३ २) पर कहा गया है कि 'ब्रह्माने चारो वेदोंका कार्य क्रमश होता,

अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मासे लिया। इस प्रकार तीन वेदोसे एक पक्षका सस्कार होता है और ब्रह्मा मनसे अकेला ही दूसरे पक्षका सस्कार करता है।'

आर्यसमाजी विद्वानोने भी कई ब्राह्मणोको छपाया है। श्रीभगवद्दत्तजी ने तो "वैदिक वाङ्मयके इतिहास"मे अपने मतानुसार ब्राह्मण-ग्रन्थोका सुन्दर इतिहास भी लिखा है।

दुःख है कि प्राचीन यज्ञोमेसे अनेक लुप्त हो गये है और अनेक रूपान्तर प्राप्त कर चुके है। यज्ञसे अभ्युदय और मोक्षकी प्राप्ति होती है--विश्व भी सुखी होता है। परन्तु स्थूल-बुद्धि मनुष्य यज्ञका अद्भुत रहस्य नही समझता। यही कारण है कि उपनिषदोका कोरा ज्ञान बघारनेवाले तो देशमे बहुत मिलेगे, परन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थोका स्वाध्याय करनेवाले नहीके बराबर मिलेगे।*

---

*मैत्रायणी और काठक सहिताओंकी तरह अनेक सहिताओमे अवतक ब्राह्मण मिले हुए हैं। जैसे तैत्तिरीय-सहितासे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् पृथक् किये गये है-और उनके नाम तैत्तिरीय-ब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक और तैत्तिरीयोपनिषद् है, वैसे ही अनेक सहिताओसे ब्राह्मणादि निकालकर उनके नाम रखे गये है। यही कारण है कि ब्राह्मणो, आरण्यको और उपनिषदोको भी वेदकी तरह ही नित्य माना जाता है। यह ठीक ही है; क्योकि सभी एक मन्त्र-भागके ही अग वा अंश है। कुछ लोग कहते है कि ब्राह्मण वेद नहीं है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है; क्योकि सारा सस्कृत-साहित्य और वेद-टीकाकार आदि ब्राह्मणोको वेद मानते है। आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र (२४.१.३१), सत्याषाढ-श्रौतसूत्र (१.१.७)

बोधायनगृह्य-सूत्र (२.६.३), कौशिकसूत्र (१.३), चरण-व्यूह (२ य कण्डिका), आपस्तम्ब-परिभाषा-सूत्र (३४), मीमांसा-दर्शन-भाष्य (२.१.३३), तन्त्रवार्त्तिक (१.३.१०), मनुस्मृति-टीका (२.६), गौतम-धर्मसूत्र-भाष्य (१.१), तैत्तिरीय-संहिता-सायण-भाष्य (पृष्ठ ७) आदि आदिमें स्पष्ट ही ब्राह्मणोंको वेद कहा गया है।

जिन ब्राह्मणोंका परिचय दिया जा चुका है, उनके सिवा नीचे लिखे ऋग्वेदीय ब्राह्मणोंके नाम भी वैदिक साहित्यमें पाये जाते हैं—१ बाष्कल, २ माण्डूकेय, ३ पैङ्ग्य, ४ कंकति, ६ सुलभ, ६ पराशर, ७ शैलाली और ८ गालव। इतस्ततः ग्रन्थोंमें ये नाम पाये तो जाते हैं; परन्तु यह बात प्रामाणिक रूपसे नहीं लिखी जा सकती कि ये आठों ऋग्वेदीय ब्राह्मण हैं। गालव ब्राह्मण तो शुक्ल यजुर्वेदका भी हो सकता है; क्योंकि शुक्ल यजुर्वेदकी एक शाखाका गालव नाम पाया जाता है। शुक्ल यजुर्वेदके एक जाबाल-ब्राह्मणका नाम भी कई ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदके इतने ब्राह्मणोंके नाम पाये जाते हैं—१ चरक, २ श्वेताश्वतर, ३ काठक, ४ मैत्रायणी, ५ औखेय, ६ खाण्डिकेय, ७ हारिद्रविक, ८ आह्वरक, ९ तुम्बरु, १० आरुणेय और ११ अन्वाख्यान ब्राह्मण। किन्तु ऐसा कोई अखण्डनीय प्रमाण नहीं है, जिससे ये ग्यारहों कृष्ण-यजुर्वेदीय ब्राह्मण समझ लिये जायं।

सामवेदके भी इतने ब्राह्मणोंके नाम पाये जाते हैं—१ भाल्लवि, २ शाट्यायन, ३ कालबवि, ४ रौरुकी, ५ माषशरावि, ६ कापेय, ७ करद्विष आदि। ये सब सामवेदके ही हैं, इसका कुछ भी निश्चय नहीं है।

अथर्ववेदके एक त्रिखर्व नामक ब्राह्मणका भी उल्लेख पाया जाता है; भले ही यह ब्राह्मण अन्य वेदका ही हो।

ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अनुब्राह्मणोंका भी उल्लेख पाया जाता है। "निरुक्तालोचन"में सत्यव्रत सामश्रमीजीने ताण्ड्य-ब्राह्मणको छोड़कर

सामवेदके सभी ब्राह्मणोंको "अनुब्राह्मण" लिखा है। इन्होंने "आर्षेय-ब्राह्मण"को तो अनुब्राह्मण कहकर छपाया ही है। वेदभाष्यकार भट्ट-भास्कर, माधव आदि तथा "निदानसूत्र" आदिने ब्राह्मणोंको अनुब्राह्मण कहकर ही उद्धृत किया है। परन्तु ब्राह्मणोंको केवल अनुब्राह्मण लिख देनेसे कोई भेद नहीं आता।

ब्राह्मण दो तरहके बताये गये हैं—कर्म और कल्प। कर्म-ब्राह्मणमें कर्म-विधान और मन्त्र-विनियोग होते हैं तथा कल्प-ब्राह्मणमें विनियोग नहीं होते, केवल मन्त्र रहते हैं।

सप्तम अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अपूर्व उपदेश

यद्यपि ब्राह्मण-ग्रन्थ-राशिमे शब्दोके निर्वचन, राजाओ, आचार्यों और ऋषियोकी वशावली तथा विविध आख्यान-उपाख्यान भी हैं; परन्तु प्रधानतया (ब्रह्म) यज्ञका प्रतिपादन करनेके कारण इनका नाम ब्राह्मण-ग्रन्थ है।

पहले चारो वेदोकी ११३० शाखाएँ थी और प्रत्येक शाखाका एक ब्राह्मण था, इसलिये ब्राह्मण भी ११३० थे, परन्तु इन दिनो प्राय १८ ब्राह्मण मिलते हैं, जिनमे कई वेदज्ञोके मतसे सामवेदीय ७ अनुब्राह्मण भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थोमे प्राय. तीस ऐसे ब्राह्मण-ग्रन्थोके नाम मिलते हे, जो अप्राप्य है। परन्तु नही कहा जा सकता कि ये तीसो ठीक ब्राह्मण ही है वा इनमे कुछ अन्य विषयोके भी ग्रन्थ है।

मन्त्रभाग (सहिताएँ) और ब्राह्मणभाग—दोनो ही वेद हैं; यद्यपि कुछ लोग मन्त्र-भागको ही वेद मानते हैं। परन्तु यह मत प्राचीन वैदिक परम्पराके विरुद्ध है। आपस्तम्ब-श्रौत-सूत्र (२४ १.३१), सत्याषाढ-श्रौतसूत्र (१ १ ७), बोधायनगृह्य-सूत्र (२.६.३), बोधायनधर्म-सूत्र (२ ९.७), कौशिकसूत्र (१ ३.), आपस्तम्ब-परिभाषासूत्र (३४), कात्यायन-परिशिष्ट-प्रतिज्ञासूत्र, शबरस्वामी (जैमिनीयमीमासा, २. १.३३), तन्त्रवार्त्तिक (१.३.१०), मनुस्मृति (मेधातिथि (२.६), शंकर-भाष्य (वेदान्तदर्शन १ ३.३३), मस्करी-भाष्य, सायण-भाष्य आदि सभी ने मन्त्र और ब्राह्मण—दोनोंको वेद माना है। फलत दोनों ही वेद हैं।

ब्राह्मणोंमें यज्ञकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। कहा गया है–'यज्ञ सभी कर्मोंमे श्रेष्ठ कर्म है'–"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (शतपथ-ब्राह्मण १.७.१.५)। ब्राह्मणोंके अतिरिक्त काठक-संहिताका भी यही कथन है (३० १०)। यज्ञको सूर्यके समान तेजस्वरूप कहा गया है–"स य. स यज्ञोऽसौ स आदित्य" (शतपथब्राह्मण १४.१.१.६)।

ब्राह्मणोंमें प्रजापतिको परमात्मा माना गया है और यज्ञको प्रजापति कहा गया है–"एष वै प्रत्यक्ष यज्ञो यत्प्रजापति." (शतपथ ४.३.४.३)। अग्निहोत्रसे लेकर अश्वमेध तक प्रजापतिके आराधनके लिये हैं। प्रजापति प्रजाका रक्षक है और यज्ञ भी रक्षक है। अग्निमें दी गयी हवि वायुके सहारे सूर्यकी ओर जाती है। पुन समस्त अन्तरिक्षमें व्याप्त होती है। सूर्यके प्रभावसे मेघ-मण्डलके साथ मिश्रित होकर हवि नीचे उतरकर वर्षा करती है, जिससे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजाकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त हविसे पार्थिव पदार्थ, आकाशस्थ वायु और सूर्य-रश्मि आदि शुद्ध होते हैं। यही नही, हविसे देवता तृप्त होते हैं और तृप्त देवता मनुष्य का कल्याण करते हैं। यज्ञरूप महापुण्यके फलसे स्वर्ग आदिकी भी प्राप्ति होती है। प्रत्येक यज्ञसे देवो (परम्परया परमात्मा) का अर्चन होता है, इसलिये यज्ञ-कर्त्ता मोक्ष-मार्गकी ओर अग्रसर होता है।

जो कुछ सृष्टिमे हो रहा है, उसका उत्तमांश यज्ञ कहा गया है। जैसे सूर्य संसारकी दुर्गन्धको दूर करता और जलको पवित्र करता है, उसी तरह यज्ञ भी करता है। जैसे वर्षमें ३६० दिन होते हैं और मानव-शरीरमें ३६० हड्डियां होती हैं, वैसे ही अग्नि-चयनमें ३६० ईंटे चुनी जाती है। फलत यज्ञोंसे सृष्टि-नियमका भी ज्ञान होता है।

इस तरह अनेकानेक मार्गोंसे यज्ञ मानव-कल्याण करता और विश्वकी शान्ति और सुव्यवस्थामें पूरी सहायता पहुँचाता है। ये ही कारण हैं कि यज्ञको ब्राह्मण-ग्रन्थोंने सर्व-श्रेष्ठ कर्म बताया है। यही स्तवनीय ब्राह्मण-संस्कृति है।

यज्ञके द्वारा मनुष्य सारे पापोसे छूट जाता है–"**सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति**" (शतपथ २.३.१.६)। अर्थात् 'जो जानकार अग्निहोत्र (यज्ञ) करता है, वह सारे पापोसे छूट जाता है।' दूसरे स्थानपर (शतपथ १३ ५.४.१) लिखा है–"**सर्वां ह वै पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन यजते।**" अर्थात् 'अश्वमेध-यज्ञ करनेवाला सारे पापो और ब्रह्महत्याको विनष्ट कर डालता है।' "**पाप्मानं हैष हन्ति यो यजते**" (षड्विंशब्राह्मण ३.१.३) अर्थात् 'जो यज्ञ करता है, वह पापको मारता है।'

एक तो मन्त्र-पाठसे चित्त शान्त होता है, मन सबल होता है, साथ ही पाप नष्ट होते है। ऐतरेयब्राह्मण (१ ४ ३) से यह भी विदित होता है कि 'यज्ञ और मन्त्रोच्चारणसे सारे वायुमण्डलमे ही परिवर्त्तन हो जाता है, निखिल विश्वमे धर्म-चक्र चलने लगता है।' इस तरह सारी पृथिवी, आकाश और मनुष्य-जातिको उन्नत और पावन बनानेका साधन यज्ञ है।

यज्ञोके प्रधान भेद २१ है (गोपथ-ब्राह्मण, पूर्व० ५ २५)। इनमें ७ गृहाग्नि-यज्ञ है और १४ श्रौताग्नि-यज्ञ। इनके अतिरिक्त पूर्णाहुति, पुत्रेष्टि, राजसूय, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि अनेक यज्ञोका उल्लेख भी ब्राह्मणोमे मिलता है।

यज्ञोमे बलि-प्रदानकी जो विधि है, वह बहुतोके मतसे क्षेपक है। अनेक वेदज्ञ वनस्पतियोकी बलि देते है। शतपथ (३ २ २ ९) मे वनस्पतियोको "यज्ञिय" कहा गया है। यहां तो इतनी दूरतक कहा गया है कि "यदि वनस्पतियां न होती, तो मनुष्य यज्ञ नही कर सकते थे।" इससे ज्ञात होता है कि जीवके बदले वनस्पतियोंका अनुकल्प उत्तम है।

वृष्टि-विज्ञानका जैसा रहस्य ब्राह्मण-ग्रन्थोमें मिलता है, वैसा कदाचित् ही किसी संस्कृत-पुस्तकमें हो। शतपथ (५.३ ५.१७) का कहना

है–"अग्नेर्वै धूमो जायते, धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः।" अर्थात् 'अग्नि (ताप)से धूम उत्पन्न होता है, धूमसे वादल वनते हे और वादलसे वृष्टि होती है।' ऐतरेयब्राह्मण (२.४१)का मत है–"विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति।" मतलव यह कि 'विद्युत् (अग्नि) का ताप ही वर्षा करता और खाने योग्य पदार्थोंको देता है।' तैत्तिरीय-संहिता (२ ४ ६ १०), मैत्रायणी-संहिता (२ ४ ८) और काठक-संहिता (११ १०) में भी ऐसी ही वातें हैं। शतपथ (१ ८ ३ १२) मे कहा गया है–'वायुके प्रतापसे वादल वनते है।' इसीलिये कहा गया है–'मरुत् (मानसून) ही वृष्टिपर राज्य करते है'–"मरुतो वै वर्षस्येशते" (शतपथ ६ १ २ ५)। फलत जिधर वायु जाता है, उधर ही वर्षा भी जाती है–"तस्माद्यां दिशा। वायुरेति तां दिशां वृष्टिरन्वेति" (शतपथ ८.२.३.५)।

यज्ञोके द्वारा विशुद्ध वर्षा-जल अन्य जलको और अन्नको शुद्ध करता है और शुद्ध अन्न-जलसे ही शरीर भी शुद्ध और स्वस्थ रहता है। इसलिये "वृष्टिकामो यजेत" अर्थात् 'वर्षाकी इच्छावाला पुरुष यज्ञ करे'–ऐसी आज्ञा है।

अपने जीवनमे दृढ निश्चयके साथ अक्लात रूपसे सदा आगे वढत चलनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश ऐतरेयब्राह्मण (३३.३ १५)देता है–

"चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरँश्चरँवेति॥"

('गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है और आगे वढनेवाला स्वादिष्ट उदुम्वर आदि फल भी प्राप्त कर लेता है। अविश्रान्त रूपसे दिन-रात गतिशील रहनेके ही कारण सूर्य विश्व-वन्द्य है। इसलिये जीवनमें दृढ निश्चयके साथ कदम वढाये चल।')

स्वर्गलोकके सम्वन्धमे कहा गया है कि 'एक तेज घोड़ा हजार दिनोमें जितना चलता है, उतनी ही दूर यहासे स्वर्ग है'–"सहस्राश्वीने वा इतः

स्वर्गो लोकः" (ऐतरेयब्राह्मण २.१७)। इस 'स्वर्गको देवोने यज्ञ, श्रम, तपस्या और आहुतियोसे प्राप्त किया'—"देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाऽहुतिभिः स्वर्गं लोकमायन्" (ऐतरेय ३.४२)। 'जो मनुष्य पुण्यकर्मा है, वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं—"ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति" (शतपथ ६.५.४.८)।

लोक कितने हैं? इसका उत्तर ब्राह्मण देता है—'तीन लोक हैं'—"त्रयो वा इमे लोकाः" (शतपथ १.२.४.२०)। ये तीनो कौन कौन है? —'पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ'—"पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः" (शतपथ ११.५.८.१)।

इन सब लोकोका रक्षक प्रजापति है। ब्राह्मणोके मतसे प्रजापति ही परमात्मा है। 'प्रजापति अमर और अनादि है'—"प्रजापतिर्वा अमृतः" (शतपथ ६.३.१.१७)। प्रजापति ही पहले था; वह अकेला था; उसने (सृष्टिकी) कामना की'—"प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत" (शतपथ ६.१.३.१)। यही बात शतपथमे एक स्थान (२.२.४.१) पर पुन. कही गयी है। 'मनुष्य मनसे ही उसे प्राप्त करता है'—"मनसैवैनमाप्नोति" (काठकसंहिता २९.६)। यही बात कई उपनिषदोमें भी कही गयी है (बृहदारण्यकोपनिषद् ४.११, कठवल्ली ४.११ आदि)।

बार बारकी मृत्युसे (पुनर्जन्मसे) छूटनेको मुक्ति कहा गया है। यज्ञाग्निहोत्रसे मुक्ति प्राप्त होती है—"पुनर्मृत्युं मुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिं वेद" (शतपथ २.३.३.९)। तात्पर्य यह है कि, 'वह बार बारकी मृत्युसे छूट जाता है, जो इस अग्निहोत्रमे मृत्युसे मोक्षको जानता है।' आगे चलकर इसी शतपथ (१०.१.४.१४) मे कहा गया है कि 'अग्नि-चयन करनेवाला पुनर्मृत्युको जीत लेता है।' शतपथके ११ वें काण्डमे (११.५. ६. ९) यह भी कहा गया है कि 'वह बार बारकी मृत्युको तो जीत ही लेता है, ब्रह्मात्मैक्य-भावको भी प्राप्त कर लेता है'—"पुनर्मृत्युं मुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्मताम्।"

इसी काण्ड (११ २ १ २) में यह भी कहा गया है कि 'आत्मामें ही अर्थात् आत्माके आश्रयसे ही सारे प्राण ठहरे हुए है।'

आजकलके शरीर-शास्त्री जैसे मनुष्यका २१६०० वार २४ घटोंमें श्वास लेना मानते हैं, वैसे ही शतपथ (१२ ३ २ ८) भी मानता है।

कौषीतकि-ब्राह्मणके मतसे (११ ७) मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी होती है—"**शतायुर्वै पुरुषः।**" परन्तु शतपथ (१ ६ ३ १६) के मतसे सौ वर्षसे भी अधिक मनुष्य जीता है—"**अपि हि भूयांसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।**" अग्निहोत्रीको पूर्ण आयु प्राप्त करनेवाला कहा गया है (शतपथ २ १ ४ ६)। दो ही वार मिताहार करनेवाला पूरी आयु पाता है (शतपथ २ ४ २ ६)। मैत्रायणी-सहिताके मतसे (१ ६ ५) 'अग्निहोत्र करनेवाला पूर्णायु प्राप्त करता है।' सोना धारण करनेवाला दीर्घ आयु प्राप्त करता है'—"**यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः**" (अथर्ववेद १.३५.२)।

व्याधियोकी उत्पत्ति और उनके विनाशको वातें भी वैज्ञानिक और आयुर्वदीय शैलीमें कही गयी है। कौषीतकि-ब्राह्मण (५ १) और गोपथब्राह्मण, उत्तरार्द्ध (१ १९)में कहा गया है—"**ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।**" अर्थात् 'मौसम बदलते' समय रोग उन्त्पन्न होता है।' रोगके कीटाणुओको मारनेवाला यज्ञीय अग्निको वताया गया है—"**अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता**" (शतपथ १ २ १ ६)। अग्निका सार सुवर्णको माना गया है और सोनेको कीटाणुओका विनाशक कहा गया है (शतपथ १४. १ ३ २९)। यही कारण है कि आर्य लोग कानोमें कुण्डल धरण करते थे। इसी तरह सूर्य-तेज (शतपथ १ ३ ४ ८), वेदवेत्ता विद्वान् (श० १ १ ४ ६) और साम-मन्त्र-पाठको भी कीटाणुनाशक (श० ४ ४.५ ६) वताया गया है। शुद्ध जलको भी रोग-नाशक वताया गया है। (तैत्तिरीयब्राह्मण ३.२ ३. १२)। विज्ञान और आयुर्वेद भी इन वस्तुओको रोग-विनाशक मानते हैं।

पुरुषको स्त्रीके सामने और स्त्रीको पुरुषके सामने भोजन करना ब्राह्मणोने मना किया है (शतपथ १० ५ २ ६ ; १.६.२.१२)। यही यह भी कहा गया है कि, 'स्त्रीके सामने न खानेवाला पुरुष बलवान् पुत्रको उत्पन्न करता है।' पुत्रको उत्पन्न करना आवश्यक बताया गया है। इतनी दूर तक कहा गया है कि "**नापुत्रस्य लोकोऽस्ति**" (ऐतेरेय-ब्राह्मण ७.१३)। अर्थात् 'ससारमे पुत्रहीनका कल्याण नही है।' 'वार्द्धक्यमे पुत्र ही पिताके आधार होते है ; इसलिये भी पुत्र-प्राप्तिको आवश्यक माना गया है'—"**तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवति**" (शतपथ १२.२.३-४)। आशय यह है कि वृद्धावस्थामे पुत्रोके आश्रयसे ही पिता जीता है। पिण्ड-दानमें पुत्र प्रथमाधिकारी है ; इसलिये भी पुत्र-प्राप्तिकी आवश्यकता बतायी गयी है।

स्त्रीजातिके सम्बन्धमे भी ब्राह्मणोमे बहुत प्रकाश डाला गया है। सुन्दरी स्त्रीको प्रिया कहा गया है—"**तस्माद् रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका**" (शतपथ १३ १ ६ ६)। अर्थात् 'रूपवती युवती पुरुषोके लिये प्रिया और भावप्रवणा होती है।' सुन्दरी कौन है ? इसका भी लक्षण बताया गया है—"**पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशंसन्ति**" (शतपथ ३.५.१.११)। तात्पर्य यह कि, 'पीछेसे चौड़ी जाघोंवाली और मोटी श्रोणीवाली स्त्री प्रशसाके योग्य है।' ऐसा ही अन्यत्र भी (श० १.२ ५ १६) कहा गया है। शतपथ (६.५.१ १०) मे उक्ति है—"एतद्वै योषायै समृद्ध रूप यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।" अर्थात् 'सुन्दर चूडावाली, सुन्दर अलंकार-वाली और सुन्दर पट्टोवाली स्त्री सौन्दर्यका विकसित रूप है।' आर्य लोग पत्नीको अर्द्धांगिनी कहते थे—"**अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः। यत्पत्नी**" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण ३ ३ ३ ५)।' पत्नीविहीनको यज्ञका अधिकारी नहीं माना गया है'—"**अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः**" (तै० ब्रा० २.२.२.६)। 'स्त्रियोको लक्ष्मीरूपिणी माना गया है'—"**श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्यः**" (तै० ब्रा० २.६.४ ७)।

परन्तु स्त्रियोमें जो दुर्गुण होते हैं, उन्हें भी ब्राह्मणोने कहा है–"मोघसहिता एव योषा। तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैता निमिश्लतमा इव" (शतपथ ३ २ ४ ६)। अर्थात् 'स्त्रिया निरर्थक बातोकी ओर जाती हैं। जो नाचता और गाता है, उसीको चाहने लगती हैं।' यही बात है "मैत्रायणी-सहितामें भी (३.७.३) कही गयी है।

ऊन और सूतका कातना स्त्रियोका कर्म बताया गया है–"तद्वा एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम्" (श० १२ ७ २ ११)। यह कर्म अब तक स्त्रियोमे पाया जाता है। स्त्रिया चर्खे चलाती हैं, गुलूबन्द, जुराव आदि बुनती हैं। परन्तु आर्य लोग कन्या-जन्मको कुछ अच्छा नही समझते थे (मैत्रायणी-सहिता ४ ६ ४)।

पुरुष ही सभामें जाते थे, स्त्रिया नही (मैत्रायणीसहिता ४ ७ ४)। 'अपने घरोमे पतियोके साथ रहनेको ही स्त्रियोकी प्रतिष्ठा' कहा गया है (शतपथ ३ ३ १.१० ; २ ६ २.१४)। 'स्त्रियोको मारनेकी निन्दा की गयी है'–"न वै स्त्रियं घ्नन्ति" (श० ११ ४ ३ २)।

वैदिक धर्ममें सत्यपर बडा जोर दिया गया है। सच्चा बोलना, सच्चा संकल्प करना, सच्चा कर्म करना आदि वेदधर्मका प्रधान उद्देश्य है। आर्य लोग सबसे अधिक घृणा असत्यसे करते थे। झूठ बोलना और असत्याचरण करना महापातक समझा जाता था। शतपथ (३ १ ३ १८) कहता है–"अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति।" अर्थात् झूठ बोलनेवाला अशुद्ध है–झूठ बोलनेवालेकी पवित्रता नष्ट हो जाती है। असत्य भाषणका कोई प्रभाव नही पड़ता। 'असत्य बोलना वाणीका छिद्र है, जिसमेसे सब कुछ गिर जाता है'–"एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्" (ताण्ड्यब्राह्मण ८.६.१३)। 'असत्यवादीका तेज भी कम होता जाता है–वह प्रति दिन पापी होता जाता है। इसलिये मनुष्यको सत्य ही बोलना चाहिये'–"तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति–श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत्" (शतपथ

२.२ २.१९)। यज्ञानुष्ठाताके लिये तो विशेष सावधान रहनेके लिये कहा गया है–'वह झूठ तो बोले ही नही, साथ ही मास भी न खाय, न स्त्रीके समीप जाय'–"नानृतं वतेदेन्न मांसमश्नीयात् न स्त्रियमुपेयात्" (तैत्तिरीय-सहिता २.५.५.३२)। 'सत्य-पथसे ही स्वर्गकी प्राप्ति मानी गयी है'–"ऋतेनैवं स्वर्गं लोकं गमयति" (ताण्ड्य-ब्राह्मण १८.२.१९)। और तो और तीनो वेदोको ही सत्य बताया गया है–"तद्यत्तत् सत्यं त्रयी सा विद्या" (शतपथ ९.५.१.१८)।'सत्यवादी अजेय माना गया है' (श० ३.४.२.८)। 'मद्य वा शराव पीना बड़ा पाप समझा जाता था' (मैत्रायणी-सं० २.४.२ और काठक-सहिता १२.१२)। जिसका गुरु मूर्ख है, जो मूर्ख गुरुसे उपनयन कराता है, वह भी पापी वा अन्धकारयात्री माना गया है–(आपस्तम्ब-धर्म-सूत्र १.१ १.११मे ब्राह्मण-वचन)। 'अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता न करने-वाला (रोगी) भी पापी माना गया है'–"पात्मनैष गृहीतो य आमयावी" (काठक-सहिता १३.६)। 'द्वेष करनेवाला भी पापी माना गया है' (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र २ ३.६ १९–२०)। 'चोरी करना, डाका डालना पाप है' (ऐतरेय-ब्राह्मण ८.११)। 'गाली देनेवाला भी पापी है' (ऐतरेय-ब्राह्मण ७ २७)।

इन सारे पापोके प्रायश्चित्तका विधान है। प्रधान प्रायश्चित्त यज्ञ करना बताया गया है।

अभिमान वा अहंकार करनेकी मनाही है। अभिमानको अधःपतन-का द्वार बताया गया है–"तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदति-मानः" (शतपथ ५.१.१.१)।

इसमे सन्देह नही कि, ये सब अपूर्व उपदेश मानवके अभ्युदयके लिये परमावश्यक है–ब्राह्मण-ग्रन्थोकी ये विशेष संस्कृति है। शास्त्रो और पुराणो-में इन्हीका विस्तार है। इनमें विज्ञान-विरुद्ध एक भी उपदेश नही है। पृथ्वी, सूर्य, समुद्र आदिके बारेमे जो ब्राह्मणोंमे मन्तव्य है, वे भी विज्ञान-सम्मत है (काठक-संहिता ३६.७; शतपथ ७.१.१.१३; ऐतरेय ३.४४)।

ब्राह्मण-ग्रन्थ रेखागणित (Geometry) के तो जन्मदाता ही है। ब्राह्मणोमें नाना प्रकारकी वेदिया और चितिया बनानेका विधान है। ये विधान रेखागणितके जनक है। दो अश्र (Squares), चार अश्र (Triangle), द्रोणकार (Trough) वाली वेदियो और चितियों-के निर्माणने रेखागणित-शास्त्रको ही आविष्कृत कर दिया। मूल रूप ब्राह्मणोमे (श० १० २ २ ५, काठकसहिता २१.४ आदि) है; परन्तु विस्तृत विवरण कल्पसूत्रोके शुल्व-सूत्रोमें पाये जाते है। इस तरह रेखा-गणित ब्राह्मणोकी विशेष सस्कृति है।

ब्राह्मणादि जातियोके लिये विशेष मन्तव्य पाये जाते है। कहा गया है कि, 'ब्राह्मणको ब्रह्मवर्चसी वा तेजशाली होना चाहिये'—"तद्ध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति" (शतपथ १ ९.३ १६)। ब्राह्मणके लिये गाने और नाचनेका निषेध है—"ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत्" (गोपथ-ब्राह्मण, पूर्वार्द्ध २.२१)। यज्ञको ही ब्राह्मणोका शस्त्र बताया गया है—"एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि" (ऐतरेय ७ १९)। ब्राह्मणोको मनुष्योका देवता बताया गया है—"अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणा." (षड्विंश १ १)। वेदज्ञाता ब्राह्मणको महान् प्रतापी माना गया है (शतपथ ४ ६ ६ ५)। क्षत्रियको बलि होना लिखा है (ऐतरेय ८ ६)। युद्ध क्षत्रियका बल माना गया है (शतपथ १३ १ ५ ६)। अराजक देशको युद्धके लिये अनुपयुक्त कहा गया है (तैत्तिरीय-ब्रा० १ ५ ९ १)। वैश्यको तो साक्षात् राष्ट्र ही कहा गया है, क्योकि वैश्यके धन कमाने पर ही सारे वर्णोका कार्य चलता है (ऐतरेय ८ २६)। शूद्रको श्रमका रूप बताया गया है (शत० १३.६ २ १०)। शूद्रके लिये यज्ञ करनेका निषेध है (तैत्तिरीय-सहिता ७ १.१.१६)। शूद्रके समीप वेद पढना मना किया गया है (वेदान्तदर्शन १ ३.३८ सूत्रपर शकराचार्योद्धृत ब्राह्मण-वचन)।

ब्राह्मण-ग्रन्थोमे ऐसे पचासो राजाओ और आचार्योके उपदेशप्रद आख्यान उद्धृत हैं, जिनका विस्तार पुराणादिमे किया गया है। परवर्ती साहित्यमे एक एक आख्यानपर एकाधिक ग्रन्थोकी रचना हुई है। वस्तुतः ब्राह्मण-ग्रन्थ आर्य-सस्कृतिके आधार और ज्ञान-विज्ञानके आगार हैं; अतएव राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ब्राह्मण-ग्रन्थोका प्रचार करना आवश्यक और अनिवार्य है।

अष्टम अध्याय

आरण्यक-ग्रन्थ

एकान्त जन-शून्य विपिनमें ब्रह्मचर्यमे निमग्न होकर ऋषियोने जिस गभीर और चिन्ता-पूर्ण विद्याका पाठ किया, उसका नाम "आरण्यक" है। यह प्रधानतया यज्ञ-रहस्य-प्रतिपादक विद्या है। अपने ऐतरेय-ब्राह्मण के भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है—"वनमें रहनेवाले वानप्रस्थ लोग जिन यज्ञादिको करते थे, उनको वतानेवाले ग्रन्थोको आरण्यक कहते है।" ऐतरेयारण्यकके भाष्यमे भी सायणने लिखा है—"वन (अरण्य) में पढाये जानेके योग्य होनेसे इसका नाम आरण्यक है"—"अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते।" आरण्यकोको "रहस्य-ग्रन्थ" भी कहा गया है (गोपथ-ब्राह्मण २ १० और वोधायनधर्मसूत्र-भाष्य २ ८ ३)। परन्तु वोधायन-धर्मसूत्र (३ ७ ७.१६) में आरण्यकको ब्राह्मण भी कहा गया है।

गृहस्थोके यज्ञोका विवरण ब्राह्मण-ग्रन्थोमे है और वानप्रस्थ आश्रममें जीवन वितानेवालोके यज्ञ, महाव्रत, हौत्र आदिका विवरण आरण्यकोमें है। इनमें यज्ञोके आध्यात्मिक रूपका विवेचन है। आधिदैविक रूपका विवरण भी है। ब्राह्मण-ग्रन्थोकी ही तरह आरण्यकोकी वाक्य-रचना भी सरल, सक्षिप्त और क्रिया-वहुल होती है। कर्मकी विवेचना होनेके कारण आरण्यकोको कर्मकाण्ड भी कहा जाता है। परन्तु ये ग्रन्थ सोलहो आने कर्मकाण्ड नही है। उपनिषदोकी ही तरह आरण्यक-ग्रन्थ भी एक ही मूल सत्ता मानते थे, जिसका विकास यह प्रपच है। ऐतरेयारण्यक (३ २. ३ १२) मे स्पष्ट ही लिखा है—"ऋग्वेदी एक ही महती सत्ताकी उपासना "उक्थ" में करते हैं। यजुर्वेदी उसीकी उपासना याज्ञिक अग्निके रूपमें

करते हैं । सामवेदी लोग "महाव्रत" नामक योगमे उसीकी उपासना करते हैं।"

आरण्यकोंमे वर्णाश्रम-धर्मका पूर्ण विकास देखनमे आता है। यज्ञकी दार्शनिक व्याख्या आरण्यकोंमे पायी जाती है—याज्ञिक रहस्योकी यथार्थ मीमासा भी इनमे हैं। आरण्यक यज्ञको विश्वका नियन्ता मानते हैं—उनकी दृष्टिमे वस्तुत जगत् ही यज्ञमय है। यज्ञ चराचरके लिये कल्याणवाही है। देवता-विशेषको लक्ष्य करके द्रव्यका त्याग ही यज्ञ आरण्यक नही मानते। वस्तुतः आरण्यकोंमे सकाम कर्मके प्रति और कर्म-फलके प्रति श्रद्धाका भाव नही दिखायी देता; क्योकि स्वर्ग-क्षय होनेके कारण आत्यन्तिक सुखका जनक कर्म-मार्ग नही माना जा सकता। यही कारण है कि कर्मकी ओरसे लोगोकी रुचि हटकर ज्ञान-मार्गकी ओर हुई। ज्ञान-कर्म-समुच्चय का जो सिद्धान्त उपनिषदोमे पुष्पित है, वह आरण्यकोमे ही अंकुरित हुआ है।

सहिताओ और ब्राह्मणोकी तरह आरण्यक भी ११३० मिलने चाहिये; परन्तु इन दिनो केवल सात ही उपलब्ध है। इनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध ऋग्वेदीय **ऐतरेयारण्यक** है। इसे १८७६ मे सायणभाष्य-सहित सत्यव्रत सामश्रमी ने और १९०९ मे ए० बी० कीथने सम्पादित कर प्रकाशित किया। कहते है, षड्गुरुशिष्यने इसपर "मोक्षप्रदा" नामकी एक टीका लिखी है, जो अबतक अप्रकाशित है। कीथके सस्करणमे अग्रेजी अनुवाद भी है। आरण्यक प्रायः गद्यमे हैं।

ऐतरेय आरण्यकके पांच भाग हैं, जिन्हे आरण्यक ही कहा जाता हैं। प्रथममे ५ अध्याय, द्वितीयमे ७, तृतीयमे २, चतुर्थमे १ और पंचम आरण्यकमे ३ अध्याय हैं—सब १८ अध्याय हैं। हर एक अध्यायमे कई खण्ड हैं।

'गवामयन' सत्रका वर्णन ऐतरेयब्राह्मण (३.१-३८) मे है। इसीमें **'महाव्रत'** का भी एक दिन होता है। इस दिनके प्रातः, मध्यदिन और

साय सवनोका प्रथम आरण्यकमें उल्लेख है। प्रधानतया महाव्रतका ही वर्णन है।

द्वितीय आरण्यके ४ से ६ अध्याय ऐतरेयोपनिषद् है। शेष अध्यायोमें 'उक्थ' आदिका कथन है।

तृतीय आरण्यकमे निर्भुज-सहिता और प्रतृण-सहिताके भेद बताये गये है। स्वर, स्पर्श, ऊष्म वर्णोके भेद भी बताये गये है। ऋषियोका भी उल्लेख है।

चतुर्थमें महानाम्नी ऋचाओका सकलन है।

पचममे महाव्रतके माध्यन्दिन सवनमे पढे जानेवाले "निष्कैवल्य-शस्त्र" का विवरण पाया जाता है।

प्रथम तीन आरण्यकोके प्रधान प्रचारक इतरा-पुत्र ऐतरेय महिदास, चतुर्थके आश्वलायन और पचमके शौनक है।

ऋग्वेदका दूसरा आरण्यक शाङ्खायन है,जिसको कौषीतकि-आरण्यक भी कहा जाता है। इसके दो अध्यायोको १९०० मे वाल्टर फ्राइडलंडरने, ७ से १५ अध्यायोको, अग्रेजी अनुवादके साथ, १९०९ मे कीथने और अन्त को १९२२ में श्रीधर शास्त्री पाठकने सम्पूर्ण शाङखायनको छपाया। इसमे १५ अध्याय है। सब १३७ खण्ड है। इसके तीसरेसे छठे अध्यायो को कौषीतकि-उपनिषद् कहा जाता है। प्रथमके दो अध्यायोको कुछ लोग ब्राह्मणका भाग ही मानते है। इस आरण्यकमे, तैत्तिरीय आरण्यक की तरह ही, शुन शेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, उशीनर, काशी, पाचाल, विदेह आदिका उल्लेख है। इसकी शेष बाते ऐतरेयारण्यककी ही तरह है। इसमे भी महाव्रत आदि कृत्य है। गुणाख्य शाङखायन और उनके शिष्योने इसका प्रचार किया है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणका शेषाश तैत्तिरीय आरण्यक है। यह अत्यन्त उपयोगी आरण्यक है। कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय

आरण्यक अनेकानेक ज्ञातव्य विषयोंसे परिपूर्ण है। इसकोर राजेन्द्रलाल मिश्रने १८७२ मे, सायण-भाष्यके साथ, प्रकाशित किया। यह दो भागोमे है। भट्ट भास्करके भाष्यके साथ तीन भागोमे भी यह छप चुका है। सुना है, इसपर वरदराजका भी एक भाष्य था, जो अप्राप्य है।

इसमे दस भाग वा प्रपाठक है। प्रत्येक प्रपाठकमे कितने ही अनुवाक है। सब १७० अनुवाक है। दसवे प्रपाठकके अनुवाकोकी संख्यामें बडी गड़बड़ है। सायणाचार्यने लिखा है, "१० वे प्रपाठकमे द्रविडपाठमे ६४, आन्ध्र-पाठमे ८०, कर्णाटक-पाठमे ७४ और कुछमे ८९ अनुवाक है।" सायणने पाठान्तर देते हुए आन्ध्र-पाठका ही व्याख्यान किया है।

सातवे प्रपाठकसे लेकर नवम प्रपाठक तकको "तैत्तिरीयोपनिषद्" कहा जाता है, यह पहले भी लिखा गया है।

तैत्तिरीयारण्यकमे काशी, पाचाल, मत्स्य, कुरुक्षेत्र, खाण्डव, अहिल्या, शुनःशेप आदिका वर्णन है। इसमे एक स्थल (१ ८ ८) पर कश्यपको परमात्मा—सर्वदर्शक—कहा गया है। इस (१ ९ २) मे व्यास पाराशर्य का नाम आया है। १ २० १ मे नरकोंका वर्णन है। बौद्ध भिक्षुओके लिये जिस 'श्रमण' शब्दका प्रयोग होता है, वह इस (२ ७.१) मे तपस्वीके अर्थमे आया है। बौद्धोने यहीसे इस शब्दको लिया है। इसके ६.१ में कहा गया है कि "अपने मृत पतिसे धनुष्, सुवर्ण आदि लेकर नारी चिता से चली आयी"—

"धनुर्हस्तादाददाना मृतस्य श्रियै ब्रह्मणे तेजसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुशेवा विश्वाः स्पृधोऽभिजातीर्जयेम॥"

तैत्तिरीयमे ही सर्व-प्रथम यज्ञोपवीतका उल्लेख मिलता है। लिखा है—"यज्ञोपवीत धारण करनेवालेका यज्ञ भली भाति स्वीकार किया जाता है; यज्ञोपवीत-धारी ब्राह्मण जो कुछ अध्ययन करता है, वह यज्ञ ही करता है"—

"प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः। यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्य-धीते यजत एव तत्।" (२.१.१)

इस (१ ३१ १) मे एक ऐसे रथका वणन है, जिसमें एक हजार धुरे है, एक हजार घोडे जुते है और अनेक चक्र है—

"रथ सहस्रबन्धुरं पुरश्चक्र सहस्राश्वम्।"

जलके चार मूल रूप बताये गये है—"चत्वारि वा अपा रूपाणि। मेघो विद्युत् स्तनयित्नुर्वृष्टिः।" (१ २४ १) अर्थात् जलके चार रूप है—मेघ, बिजली, गर्जन और वर्षा। छ प्रकारके जलका उल्लेख है—वर्षा-जल, कूप-जल, तडाग-जल, बहनेवाला (नद्यादिका) जल, पात्र-जल और झरना आदिका जल (१ २४ १–२)।

निस्सन्देह यह अतीव उपयोगी ग्रन्थ है।

कृष्ण यजुर्वेदके चरक-शाखोक्त "बृहदारण्यक" नामके एक आरण्यक का कही-कही उल्लेख मिलता है। इसको लोग "मैत्रायणी-आरण्यक" भी कहते है। कई स्थानोसे जो "मैत्र्युपनिषद्", "मैत्रेयोपनिषद्" आदि नामोसे "मैत्रायण्युपनिषद्" छपी है, उसे ही उक्त "मैत्रायणी-आरण्यक" कहा जाता है। इसमे सात प्रपाठक है। वस्तुत इसमे उपनिषद् और आरण्यक मिले हुए है—अलग-अलग नही है।

इसमें परमात्माको अग्नि और प्राण कहा गया है (६ ९)। "महा-धनुर्धर" और "चक्रवर्ती" सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वध्र्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरणि, अक्षसेन आदि राजाओका इसमे उल्लेख पाया जाता है। ५ वें प्रपाठकसे "कौत्सायनी स्तुति"का प्रारम्भ है।

शुक्ल यजुर्वेदकी दो शाखाएँ उपलब्ध है—माध्यन्दिन और काण्व। दोनोके ब्राह्मण भी उपलब्ध है। एकका नाम है माध्यन्दिन-शतपथ और दूसरेका काण्व-शतपथ। प्रथममें १४ काण्ड है और दूसरेमे १७। पहलेमें

१०० अध्याय हैं और दूसरेमे, कैलेडके मतानुसार, १०४। पहलेमे ४३८ ब्राह्मण हैं और दूसरेमे ४४६। पहलेमे ७६२४ कण्डिकाएँ हैं और दूसरेमें ५८६५। पहलेके शेषांशके ६ अध्याय "बृहदारण्यकोपनिषद्" कहाते हैं और दूसरेके भी। पहलेको "माध्यन्दिन-बृहदारण्यक" और दूसरेको "काण्व-बृहदारण्यक" कहते हैं। पहलेको १८८९ मे ही ओटो बोहट्-लिंग्कने छपाया था और दूसरा अनेक स्थानोसे छपा है। दोनोमे अनेकानेक ब्राह्मण, खण्ड और कण्डिकाएँ है।

दोनोमे उपनिषद् और आरण्यक मिले हुए हैं। दोनोमे ही बीच-बीचमे यज्ञ-रहस्यका थोड़ासा वर्णन करके आत्मज्ञान-तत्त्वका विस्तृत उपदेश दिया गया है। इस तरह उपनिषद्का अधिक कथन होनेसे इनका नाम "बृहदारण्यकोपनिषद्" पड़ गया। उपनिषदोसे आरण्यक-भागको पृथक् करनेकी आवश्यकता है।

दोनो बृहदारण्यकोमे थोडा ही भेद है—पाठान्तर है। याज्ञवल्क्य और जनककी कथा दोनोमे है। गार्गी और मैत्रेयी नामकी ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का अनूठा विवरण भी दोनोमें है।

संन्यासका विधान बहुत सुन्दर मिलता है—

"एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति। एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते। किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म। पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।" (४.४.२२)

अर्थात् "इसी आत्माको जाननेपर मुनि होता है। ब्रह्मलोककी इच्छा करनेवाले सन्यास ग्रहण करते हैं। प्राचीन विद्वान् प्रजाकी इच्छा नही करते और कहते है कि 'हमे प्रजा लेकर क्या करना है, जब कि यह आत्मा और यह लोक ही हमें इष्ट है।' इसीसे ये पुत्र, धन और कीर्त्ति को छोडकर भिक्षा मांगते हैं।"

सामवेदकी जैमिनीय-शाखाके "जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण" को १६२१ मे एच० आर्टलने प्रकाशित किया। इसके चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय अनुवाको और खण्डोमे विभक्त है। इसके चौथे अध्यायके १० वें अनुवाकसे प्रसिद्ध "केनोपनिषद्" है। चार खण्डोमे इसकी समाप्ति हुई है।

इसी "जैमिनियोपनिषद्-ब्राह्मण" को "तलवकार-आरण्यक" कहा जाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—तीनो ही मिले हुए हैं। इसमें अनेक आचार्योके नाम मिलते हैं—अनक सामोका भी वर्णन है। मन्त्रोकी वडी सुन्दर मीमासा की गयी है।

वगानुवाद और सायण-भाष्यके साथ १८७८ मे सत्यव्रत सामश्रमीने "सामवेद-आरण्यक-संहिता" छपायी थी। आर्चिक और उसके अवलम्व पर गाये गये गीत आरण्यक कहाते है। यही "छान्दोग्यारण्यक" कहाता है। परन्तु गेय आरण्यको और इन आरण्यकोमे बहुत ही अन्तर है। दोनो दो वस्तुएँ हैं।

अथर्ववेदका कोई आरण्यक उपलब्ध नही है।

अप्राप्त ग्रन्थोकी वात छोड भी दी जाय, तो भी प्राप्त सहिताओ (मन्त्रभाग), ब्राह्मणो, आरण्यको और उपनिषदोका सूक्ष्मतया अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होगा कि चारोका ऐसा अटूट सम्वन्ध है कि चारोमे चारो सम्मिलित पाये जाते हैं। पहले कहा ही गया है कि ईशावास्योपनिषद् "माध्यन्दिन-सहिता" का अन्तिम अध्याय ही है। तैत्तिरीय-सहिताका शेषाश तैत्तिरीय ब्राह्मण है और तैत्तिरीय ब्राह्मणके अन्तिम भाग तैत्तिरीयारण्यक और तैत्तिरीयोपनिषद् है। मैत्रायणी और काठक सहिताओमें तो अधिक ब्राह्मणादि अवतक सम्मिलित ही हैं। छान्दोग्योपनिषद्में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनो हैं। यही वात वृहदारण्यककी भी है। 'जैमिनीय ब्राह्मण'की वात तो अभी लिखी ही जा चुकी है।

साधारण क्रम यह मालूम पड़ता है कि संहिताका उत्तरांश ब्राह्मण है, ब्राह्मणका शेष आरण्यक है और आरण्यकका शेषांश उपनिषद् है। इस क्रमसे और विशेष क्रमसे भी ज्ञात होता है कि वेद-रूपी एक ही शरीरके सब अंश हैं। सबको लेकर वेद पूर्ण होता है। यही कारण है कि सनातनधर्मी इन मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चारों का वेदत्व और नित्यत्व मानते हैं। जैसे ऋग्वेदके मन्त्र यजुः, साम और अथर्वसंहिताओंमे पाये जाते हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंमे भी पाये जाते हैं। जैसे ऋग्वेदीय ऋचाओ (मन्त्रो) को सामवेदमे गेय बनाया गया है, वैसे ही ब्राह्मणादिमे मन्त्रोका निर्वचन किया गया है। फलतः ये चारो ही वेद हैं और चारोके ही द्रष्टा, स्मारक तथा प्रचारक ऋषि-महर्षि है। आध्यात्मिक अर्थ करनेपर सभी ज्ञानमय है, अद्वैतवादी हैं, आधिदैविक अर्थ करनेपर सभी सकाम और निष्काम यज्ञ-परक है तथा आधिभौतिक अर्थ करनेपर सभीमे इतिहास सम्मिलित है।

निष्पक्ष दृष्टिसे देखनेपर इन चारोमे ये तीनो ही अर्थ यथास्थान उपन्यस्त है और सायण आदि भाष्यकारोने यथास्थान इन तीनो अर्थोको लिखा भी है। तीनो अर्थोको लिखते हुए भी भाष्यकारोने वेदकी नित्यता स्वीकार की है।

नवम अध्याय

उपनिषद्-ग्रन्थ

'उप' शब्दका अर्थ समीप है और 'निषद्' का अर्थ बैठनेवाला है। इस तरह जो परम तत्त्व (ब्रह्म) के समीप पहुँचाकर बैठनेवाला ज्ञान है, उसे उपनिषद् कहते हैं। 'समीप पहुँचाने' का तात्पर्य है ब्रह्ममें विलीन करना और 'बैठनेवाले'का अभिप्राय है सदा स्थिर रहनेवाला। मथितार्थ यह है कि आत्माको ब्रह्म-रूपसे प्रतिष्ठित करनेवाले स्थिर ज्ञानको उपनिषद् कहा जाता है। इसीसे इसका एक नाम 'ब्रह्मविद्या' है। वेदका अन्तिम भाग होनेसे इसे 'वेदान्त' भी कहा गया है। उपनिषद् वैदिक सहिताओ का ही अग है; इसलिये उपनिषद्को वेद भी कहा जाता है। जैसा कि कहा गया है, ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन-सहिताका अन्तिम भाग है और कृष्ण-यजुर्वेदीय श्वेताश्वतर-सहिताका अन्त्य भाग श्वेताश्वतरोपनिषद् है। फलत उपनिषद् वेद और वेदान्त दोनो है। इसे पराविद्या, मोक्षविद्या, ब्रह्म-विद्या, शान्तिविद्या, श्रेष्ठ विद्या और आर्य-सस्कृतिका मूलाधार आदि कितनी ही सज्ञाएँ दी गयी है।

जैसा कि कहा गया है, ऋग्वेदके दो ब्राह्मण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—कौपीतकि वा शाखायन और दूसरा ऐतरेय। कौषीतकि ३० अध्यायोमें विभक्त है। इसमें यज्ञके सारे विवरण पाये जाते है। कुषीतक ऋषि इस ब्राह्मणके उपदेष्टा है। ब्राह्मण-ग्रन्थोके जो भाग अरण्य वा वनमें पढने योग्य है, उन्हे आरण्यक कहा जाता है। 'कौषीतकि-आरण्यक' के सब पन्द्रह अध्याय पाये जाते है, जिनमें तीसरेसे छठे अध्यायोको कौषीतकि-उपनिषद् कहा जाता है। इसे

कौषितकि-ब्राह्मणोपनिषद् भी कहा जाता है। इसके प्रथम अध्यायमें चित्र गार्गायनि नामके क्षत्रिय राजाने उद्दालक आरुणि नामके विद्वान् ब्राह्मणको परलोककी शिक्षा दी है। द्वितीय अध्यायमे प्राणोकी विविध उपासनाएँ, महाप्राण (ब्रह्म) की विवृति, पिता और पुत्रमे स्नेह-सम्बन्ध आदि है। तृतीय अध्यायमे इन्द्रने काशीराज दिवोदासको प्राण और प्रज्ञाके सम्बन्धमे उपदेश दिया है। चतुर्थ अध्यायमे काशीराज अजातशत्रु ने बालाकिको पर ब्रह्मका उपदेश दिया है।

ऐतरेय ब्राह्मणके ४० अध्याय है और सबमे सोमयज्ञोका विस्तृत विवरण है। अन्तिम भागको ऐतरेयारण्यक कहते है, यह अभी कहा गया है।

ऐतरेय आरण्यकके पांच भाग है और एक-एक भागको एक-एक आरण्यक कहा गया है। द्वितीय आरण्यकके ४ से ६ अध्यायोको 'ऐतरेय-उपनिषद्' कहा जाता है। इसके प्रथम अध्यायमे सृष्टि, द्वितीयमे जीव-जन्म और तृतीयमे पर ब्रह्मकी बाते है। परन्तु ऋग्वेदकी कौषीतकि और ऐतरेय शाखाएँ नही मिलती।

सामवेदकी कौथुम-शाखाका ब्राह्मण चालीस भागोका है। प्रथम २५ भागोको ताण्ड्य वा पचविंश-ब्राह्मण कहा जाता है, इसके आगेके ५ भागोको षड्विंश-ब्राह्मण, इससे आगेके दो भागोको मन्त्र-ब्राह्मण और अन्तिम ८ भागोको छान्दोग्योपनिषद् कहा जाता ह। 'ताण्ड्य-ब्राह्मण'मे व्रात्योका विवरण है। नैमिषारण्यके यज्ञ, कुरुक्षेत्र, कोशलराज 'पर आत्मा' तथा विदेहराज निमि साप्यकी भी बाते है। षड्विंश-ब्राह्मणमे प्रायश्चित्त, दुर्दैव, पीडा, शस्यनाश, भूकम्प आदिके निवारणकी बाते है। पचविंश और षड्विंशके सारे यज्ञ श्रौत है। मन्त्र-ब्राह्मणमें गृह्य-यज्ञ अवश्य है। मन्त्र-ब्राह्मणके दो अध्यायो और छान्दोग्योपनिषद्के आठ अध्यायो—सब दस अध्यायोको लोग 'छान्दोग्य-ब्राह्मण' भी कहते है। परन्तु लेखकको यहा अन्तिम आठ अध्यायोसे ही मतलब है। इन्हें ही छान्दोग्योपनिषद् कहा जाता है और यह सामवेदकी तलवकार-शाखाकी उपनिषद् है। इसके

प्रथम और द्वितीय भागो वा प्रपाठकोमे ओंकार, उद्गीथ और सामकी विस्तृत व्याख्या, विवृति तथा उपासना है। तृतीय प्रपाठकमे मधुनाडी, अमृतोपासना, पर ब्रह्मका विवरण आदि है। इसी प्रपाठकमे लिखा है कि 'घोर आगिरस ऋषिसे धर्मोपदेश सुनकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अपनी भूख-प्यास भूल गये थे।' चतुर्थ पाठकमें सत्यकाम जावालिकी प्रसिद्ध कथा है। सत्यकामने प्रकृतिकी कार्य-परम्परा देखकर पर ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया था। जानश्रुति, रैक्व, विविध अग्नियोकी भी बातें है। पचममें श्वेतकेतु आरुणेयने प्रवाहण जैवलि और अश्वपति कैकय नामके राजाओसे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया है। इसमे विभिन्न अग्नियोकी विविध उपासनाएँ भी है। अश्वपतिके साथ औपमन्यव, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, वुडिल, उद्दालक आदिके सवाद भी है। छठेमें उद्दालक आरुणिसे उनके पुत्र श्वेतकेतु आरुणेय ने ब्रह्म-ज्ञानका लाभ किया है। त्रिवृत्करण, सृष्टि आदिकी बाते भी है। सातवेंमे नारदजीने सनत्कुमारसे नाम, वाक्य, मन, सकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, वल, जल, अन्न, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण और ब्रह्मकी शिक्षा पायी है। इसमें सत्य, मति, श्रद्धा, निष्ठा, कृति, सुख, भूमा आदिका भी उपदेश है। आठवे प्रपाठकमे आत्मा, ब्रह्म, प्रजापति आदिका गम्भीर विचार है। इन्द्र और विरोचनकी सुप्रसिद्ध कथा भी इसी भागमें है। इस तरह इस उपनिषद्में अध्यात्मविद्याकी प्राय सारी परम्परा और विवृति पायी जाती है। इसीसे यह उपनिषद् वडी हो पडी है और इसका इतना सम्मान है।

सामवेदकी तलवकार-शाखाको जैमिनीय-सहिता कहा जाता है—ऐसा अनेक वेद-ज्ञाताओका मत है। जैमिनीय-सहिता छप चुकी है। जैमिनीय तलवकार-ब्राह्मणको डब्ल्यू० कैलैंडने प्रकाशित किया है। साथमें डच भाषामें अनुवाद भी है। इसमे भी ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—तीनो ही है। तलवकार-ब्राह्मणके नवम अध्यायको 'तलवकारोपनिषद्', 'ब्राह्मणोपनिषद्' और 'केनोपनिषद्' भी कहा जाता है। सबसे पहले 'केन'

शब्द आनेसे इसका नाम केनोपनिषद् पडा। इसके चार खण्डोमेंसे प्रथम दोमें परब्रह्मका निरूपण है। तृतीय-चतुर्थ खण्डोमे भी ब्रह्मकी ही महिमा है। यही एक स्थलपर लिखा है कि 'ब्रह्म देवोके निकट प्रकट हुए; परन्तु देवोने उन्हे नही पहचाना। अन्तको हैमवती उमाने देवोसे कहा—'ये ही ब्रह्म हैं। इन्हीके कारण तुम लोगोकी इतनी महिमा है।' यह भी कहा गया है कि 'वायु, अग्नि आदि प्राकृत शक्तिया केवल ईश्वरीय शक्तिका विकास है।'

कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय-सहिताका तैत्तिरीय-ब्राह्मण पृथक् छपा है। इस ब्राह्मणका अन्तिम भाग तैत्तिरीय-आरण्यक है। इसके दस प्रपाठकोमेंसे ७ से ९ तकके प्रपाठकोको **तैत्तिरीय उपनिषद्** कहा जाता है। इन तीनो प्रपाठकोके तीन नाम हैं—शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द-वल्ली और भृगुवल्ली। प्रथममे १२, द्वितीयमे ९ और तृतीयमे १० अनुवाक हैं। प्रथम बल्लीमे ओकार, भू, भुव, स्व शब्दोकी पूरी निरुक्ति की गयी है और धार्मिक अनुष्ठानोके सम्बन्धमे उपदेश दिये गये हैं। द्वितीयमे पर ब्रह्मकी बातें हैं। तृतीयमे वरुणने अपने पुत्रको उपदेश दिया है।

कृष्ण यजुर्वेदकी कठ-शाखाकी **कठोपनिषद्** है, जो दो अध्यायो और छः वल्लियोमे विभाजित है। इसमे नचिकेता और यमराजके सवादके रूपमे बडी खूबीसे परम तत्त्वका रहस्य बताया गया है। मृत्यु-मन्दिरमें जाकर नचिकेताने परमात्म-शिक्षा प्राप्त की है। उपदेश इतने मार्मिक हैं कि सारी पुस्तक कण्ठस्थ करने योग्य है।

कृष्ण यजुर्वेदकी अनुपलब्ध श्वेताश्वतर-सहिताका ही एक अश **श्वेताश्वतरोपनिषद्** है, जो बहुत प्रसिद्ध है। इसमें छः अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमे परमात्म-साक्षात्कारका उपाय ध्यान बताया गया है। अगले अध्यायोमे ध्यानकी सिद्धि, प्रार्थनाके प्रकार, ब्रह्ममहिमा, वेदान्त, साख्य, योग आदिकी बाते हैं। भाषा बड़ी सरस है।

शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहिता चालीस अध्यायोमे विभक्त है। अन्तिम अध्यायको **ईशावास्योपनिषद्** कहा जाता है। इसके पहले मन्त्र-

मे "ईशावास्यम्" आनेमे ही इसका यह नाम पडा है। माध्यन्दिनके ३९ अध्यायोमें कर्मकाण्ड है और अन्तिममे इतनी मार्मिकता और स्पष्टतासे ज्ञान-परक ब्रह्म-निरूपण पाया जाता है कि सभी उपनिषदोमें इसे प्रथम स्थान दिया गया है।

शुक्ल यजुर्वेदकी दो शाखाएँ उपलब्ध है—माध्यन्दिन और काण्व। दोनोके ब्राह्मणोका नाम शतपथ है। दोनोके अन्तिम ६ अध्यायोको बृहदारण्यक वा बृहदारण्यकोपनिषद् कहते हैं। दोनोमे ही आरण्यक और उपनिषद्—दोनो मिले हुए है। इसीसे बृहदारण्यकोपनिषद् नाम पडा है। बृहत् महान्‌को कहते हैं। वस्तुत यह उपनिषद् सबसे बडी है। आरण्यक-भागसे उपनिषद्-भाग अधिक है। दोनो विषयोको अलग अलग करके छपानेकी आवश्यकता है।

इसके प्रथम अध्यायमे सृष्टि और उसके कर्त्ताका विचार है। द्वितीय मे गार्ग्य बालाकिने काशीराज अजातशत्रुसे ब्रह्मविद्याका उपदेश लिया है। इसीमे मधुविद्याका उपदेश दिया गया है और प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-सवाद भी इसीमे है। तृतीयमें वर्णन आया है कि राजा जनकने एक बडी विद्वत्परिषद् बुलायी थी, जिसमे कुरु, पाञ्चाल आदिके दिग्गज विद्वान् आये थे, परन्तु सभीको जनक-पुरोहित याज्ञवल्क्यने शास्त्रार्थमे परास्त करके राज-पुरस्कार प्राप्त किया। सभामे परम विदुषी गार्गी वाचक्नवी भी आयी थी। परन्तु उन्हे भी याज्ञवल्क्यने हरा दिया। चतुर्थ अध्यायमे जनक और याज्ञवल्क्यमे ब्रह्मकी आलोचना और याज्ञ-वल्क्यके द्वारा जनकको उपदेश है। इसीमें याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-सवाद है। मैत्रेयीको ब्रह्म-सम्बन्धी उपदेश दिये गये है। पञ्चममे ब्रह्म, प्रजापति, वेद, गायत्री आदिकी बाते हैं। षष्ठ अध्यायमे प्रवाहण जैवलिने उद्दालक आरुणिको ब्रह्मका उपदेश दिया है। अनन्तर उद्दालकने याज्ञ-वल्क्यके पास आकर कहा—"सूखे काठको भी यदि अमृतमय उपदेश दिया जाय, तो उसमेंसे भी टहनिया और हरे पत्ते निकल आवे।"

कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी और काठक संहिताओमे जैसे ब्राह्मण सम्मिलित है, वैसे ही बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदोमे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—तीनो ही सम्मिलित है।

अथर्ववेदकी पैप्पलादशाखाके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र आदि तो नही मिलते, परन्तु **प्रश्नोपनिषद्** नामकी इसकी उपनिषद् मिलती है। इसमे पिप्पलाद ऋषिने सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सौर्यायणी, सत्यकाम और कबन्धी आदि ६ ऋषियोके ६ प्रश्नोके क्रमश उत्तर दिये है · इसलिय इसका नाम प्रश्नोपनिषद् पड गया। सव उत्तर ब्रह्मपरक ही है।

अथर्ववेदकी शौनकशाखाकी उपनिषद् **मुण्डकोपनिषद्** कही जाती है। इसमे तीन मुण्डक है और प्रत्येक मुण्डकमे दो खण्ड है। सबमे ब्रह्मविद्या, जगदुत्पत्ति, अग्निहोत्र, ब्रह्म-स्वरूप, ब्रह्मकी प्राप्ति आदि विषय है।

माण्डूक्योपनिषद् भी अथर्ववेदीय कहाती है—यद्यपि ऋग्वेदकी शाखाओ मे एक माण्डुकेय शाखाका नाम आता है। इसमे सब बारह ही मन्त्र है और सबमे ओंकार, ब्रह्म आदिका रहस्य बताया गया है।

मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषदे अथर्ववेदके किस ब्राह्मण वा आरण्यक की है—इसकी खोज होनी चाहिये। अथर्ववेदका कोई भी आरण्यक उपलब्ध नही है। अथर्ववेदके उपलब्ध एक मात्र शौनक-शाखीय गोपथ-ब्राह्मणमे तो इन दोनो उपनिषदोका पता नही है। परन्तु ये ही नही, अथर्व-वेदके नामपर प्रचलित ऐसी अनेकानेक उपनिषदे है, जिनका अथर्ववेद से कोई खास सम्बन्ध नही दिखाई देता। इस दिशामे विद्वानोको अन्वेषण करना चाहिये।

उपनिषदे तो सब २२० पायी जाती है, परन्तु उपर्युक्त बारह ही विशेष प्रसिद्ध और प्रामाणिक मानी जाती है। ये हिन्दूधर्मकी ज्ञान-काण्डकी मूल पुस्तके है। यही कारण है कि आचार्य शंकरने स्वयं इन सबपर भाष्य लिखा है। इन अद्वैतवादी श्रीशंकराचार्यके शिष्योने भी

इनपर अनेकानेक भाष्य-टीकाएं लिखी है। विशिष्टाद्वैतवादी रामानुजाचार्य, द्वैताद्वैतवादी निम्वार्काचार्य, विशुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य और द्वैतवादी मध्वाचार्यने अथवा इनके शिष्य-प्रशिष्योंने इन १२ उपनिषदोपर भाष्य-टीकाए लिखी है। जिस सम्प्रदायकी टीका इनपर नही होती थी, उसकी प्रतिष्ठा भी नही होती थी। जो सम्प्रदाय समाजमे अपनी प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता स्थापित करना चाहता था, उसे इन १२ उपनिषदोके द्वारा अपने मत वा सम्प्रदायको समर्थित और अनुमोदित करना पडता था। इससे उपनिषदोकी अपूर्व महत्ता सूचित होती है। उपनिषदोकी भाषा इतनी सरस-सुन्दर है और इनके उपदेश इतने भव्य और दिव्य है कि असख्य मनुष्योने इनसे विमल शान्ति प्राप्त की है और वडे वडे मनीषियोने व्रह्मानन्दकी मन्दाकिनीमें गोते लगाये है।

यूरोपके वडे वडे विद्वानोके मतसे भी उपनिषदें ज्ञान, शान्ति, मानव-सस्कृति आदिकी जननी है। वे भी हमारी ही तरह उपनिषदोपर आसक्त है।

वादशाह शाहजहाके पुत्र दाराशिकोह तो उपनिषदोपर इतना मुग्ध हुआ कि उसने कई उपनिपदोका १६५७ ई० में फारसीमें अनुवाद करा डाला। इसी फारसी अनुवादके फ्रेंच अनुवादको देखकर जर्मन विद्वान् शोपेनहरने लिखा है—'सम्पूर्ण विश्वमें उपनिषदोके समान जीवनको ऊचा उठानेवाला कोई भी पाठ्य ग्रन्थ नही है।' आगे इसी विद्वान्ने लिखा है—'औपनिषद सिद्धान्त एक प्रकारसे अपौरुषेय ही है। ये जिनके मस्तिष्ककी उपज है, उन्हें केवल मनुष्य कहना कठिन है।' मैक्समूलर साहवने शोपेनहरका हार्दिक समर्थन किया है। पाल डासन नाम के जर्मन विद्वान्ने उपनिपदोका गहन अध्ययन करके "Philosophy of The Upanishads" नामकी एक पुस्तक लिखी है। आपका मत है कि 'उपनिपदोमें जो दार्शनिक कल्पना है, वह भारतमें तो अद्वितीय है ही; सम्भवत सारे विश्वमें अतुलनीय है।' मैकडानलने कहा है—

'मानवीय चिन्तनाके इतिहासमे पहले पहल वृहदारण्यक उपनिषद्‌मे ही ब्रह्म अथवा पूर्ण तत्त्वको ग्रहण करके उसकी यथार्थ व्यञ्जना हुई है।' फ्रेडरिक श्लेगलने तो इतनी दूर तक कहा है कि 'उपनिषदोके सामने यूरोपीय तत्त्वज्ञान प्रचण्ड मार्त्तण्डके सामने टिमटिमाता 'दिया' है।' इसी प्रकार फ्रेच विद्वान् कजिस, ऐड्रूज हक्स्ले आदि ससारके सम्पूर्ण ज्ञानका मूल उपनिषदोको वता गये हैं।

वस्तुत. उपनिषदोंसे जीवनको एक अपूर्व प्रेरणा मिलती है। उनके मन्त्र प्रगतिशील और जागरूक हैं। उपनिषद् साधारण जन तकको वरावर सतर्क करती रहती है–

"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।"

अर्थात् 'उठो, जागो और वड़ोंके पास जाकर सीखो'–ऐसा ज्ञान प्राप्त करो कि अमर हो जाओ।

दशम अध्याय

उपनिषद् और अद्वैतवाद

"वेदान्तसार" मे सदानन्द योगीन्द्रने लिखा है—

"वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।"

अर्थात् मुख्य और गौडके भेदसे 'वेदान्त' शब्दके दो अर्थ है। वेदका अन्त वेदान्त है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार वेदान्त शब्दका मुख्य अर्थ उपनिषद् है और उपनिषद्के अर्थ-बोधके अनुकूल अथवा उसमें सहायक शारीरक-सूत्र आदि तथा उपनिषदर्थ-संग्राहक भागवतगीता आदि गौण अर्थ है। अत. प्रमुख वेदान्त उपनिषद्को ही जानना चाहिये।

मन्त्रभागीय उपनिषदोमे मन्त्र-स्वर और ब्राह्मण-भागीय उपनिषदोमें ब्राह्मण-स्वर रहते है और इसीके अनुसार इनका अध्ययन भी किया जाता है। आचार्य शकरने ऐसा लिखा है। यही शिष्ट-प्राणाली भी है। प्राय सारे वैदिक साहित्यका अर्थ स्वराधीन होता है। 'स्वरमुक्तिवादी' एक वैदिक सम्प्रदाय भी है।

वेदान्ताचार्योंने आगे चलकर वेदान्तशास्त्रको तीन प्रस्थानोमें विभक्त किया है—श्रुति, स्मृति और न्याय। उपनिषद्भाग श्रुति-प्रस्थान है, भागवतगीता, सनत्सुजात-संहिता आदि स्मृति-प्रस्थान है और ब्रह्मसूत्र आदि न्याय-प्रस्थान है।

वेदका ज्ञानकाण्ड होनेसे उपनिषद्को ब्रह्मविद्या कहा जाता है। ब्रह्म-विद्या ही परा विद्या या श्रेष्ठ विद्या है। उपनिषदोमें जो ब्रह्मविषयक विज्ञान प्रतिपादित किया गया है, वही परा विद्या है। शेष कर्म-विषयक विज्ञान

अपरा विद्या है। इसे कर्म-विद्या भी कहते है। कर्मविद्या तत्काल फल नही देती, कालान्तरमे उसका फल मिलता है। कर्मफल विनाशी भी होता है। इसके विपरीत ब्रह्मविद्या तत्काल फल देती है और यह फल अविनाशी होता है। इसीलिये ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है। यही ब्रह्मविद्या मुक्तिका एकमात्र कारण है। कर्म-विद्या मुक्तिका कारण नही है; ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिमे हेतु अवश्य है। इसीलिये कहा गया है कि 'जो ब्रह्मविद्या अथवा आत्मतत्त्व-ज्ञान नही जानता, वह परमात्माको नही जान सकता'—

"नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।"

'जो वेदका ज्ञाता नही है, वह उस ब्रह्मको नही समझ सकता।' उपनिषद् वेद है, यह पहले ही कहा गया है।

श्रीशकराचार्यके मतसे अद्वैतवाद ही सारी उपनिषदोका तात्पर्य है। एक ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। दृश्यमान जगत् परमार्थ सत्य नही है; सपनेमें देखे गये पदार्थकी तरह मिथ्या है। जीवात्मा और ब्रह्म एक ही है, दो नही। यही उपनिषत्-सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तको एक श्लोकार्द्धमे कहा गया है—

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥"

परन्तु शकराचार्यसे विरुद्ध मत रखनेवाले कहते है कि 'द्वैतवाद ही प्राचीन सिद्धान्त है, अद्वैतवाद तो नवीन सिद्धान्त है, जिसके जन्मदाता शकराचार्य है। इनके पहले अद्वैतवाद था ही नही।' परन्तु बात ऐसी नही है। अद्वैतवाद प्राचीन ही नही, प्राचीनतम वाद है। ऋग्वेदके प्रसिद्ध 'नासदीय सूक्त'मे द्वैतवादका तो नामोल्लेख नही है। छान्दोग्योपनिषद् (६.२ १) और बृहदारण्यकोपनिषद् (४.४ १९) मे स्पष्ट ही अद्वैतवादका वर्णन है। सांख्य-सूत्रो (१ २१—२४) मे अद्वैतवाद वेदान्त-मत माना गया है। न्यायसूत्रके "तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः" सूत्रके भाष्यमे भी अद्वैतवाद वेदान्त-सिद्धान्त स्वीकृत हुआ है। कविवर भवभूतिकी—

"एको रसः करुण एव विवर्तभेदात्।"

तथा—

"ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि विप्रलयः कृतः॥"

—अनेक उक्तियोमें अद्वैतवादका सिद्धान्त उपलब्ध होता है। पुराणोमें तो जहा कही भी वेदान्तका उल्लेख है, वहा अद्वैतवादके सिद्धान्तका ही प्रतिपादन हुआ है। 'सूत-सहिता' और 'योगवासिष्ठ' जैसे प्राचीन ग्रन्थोमे अद्वैतवाद भरा पडा है। 'नैषधचरित' (२१ ८८)) में तो बुद्धको भी 'अद्वयवादी' कहा गया है। शान्तरक्षितके 'तत्त्वसग्रह' (३२८ १२९) मे अद्वैतवादका उल्लेख है। दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने 'आप्तमीमासा' (२४ श्लोक) मे अद्वैतवादकी चर्चा की है। स्थान-सकोचके कारण इस प्रकारकी उक्तियोका यहा अधिक उल्लेख नही किया जा सकता। मुख्य बात यह है कि अद्वैतवाद अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है और अनेक आचार्योंके मतसे तो यह अनादि सिद्धान्त है।

अद्वैतवादके विरोधी अपने पक्षके समर्थनमें कठोपनिषद्का यह मन्त्र उपस्थित करते है—

"ऋत पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति,
पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥"

('इस शरीरमे एक अपने कर्मका फल भोग करता है और दूसरा भोग कराता है। दोनो ही हृदयाकाश और बुद्धिमें प्रविष्ट है। इनमे एक (जीवात्मा) संसारी है, दूसरा (परमात्मा) असंसारी है। इसलिये ब्रह्मज्ञाता और गृहस्थ इन दोनोको छाया और आतप (धूप) के समान विलक्षण कहते है।')

अद्वैतवादके खण्डनमे दूसरा प्रमाण यह (ऋग्वेद १ १६४.१६) दिया जाता है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥"

अर्थात् 'सहचर और सखा दो पक्षी एक वृक्षका आश्रय करके रहते है। उनमेसे एक नानाविध फलका भक्षण करता है और दूसरा कुछ नही खाता, केवल देखता है।'

इस मत्रसे स्पष्ट जाना जाता है कि यह शरीर वृक्ष है और जीवात्मा तथा परमात्मा पक्षी हैं—सुख-दु ख-भोग ही फल-भक्षण है।

द्वैतवादी कहते है कि 'जीवात्मा और परमात्मा एक नही हैं, परस्पर भिन्न है—इस विषयमे उक्त दोनो मन्त्र अकाट्य प्रमाण है। द्वैतवादके समर्थन मे इन मत्रोसे बढकर उत्कष्ट प्रमाण नही मिल सकता—किसी भी उपनिषद् मे इन मत्रोके सामान द्वैतवादका स्पष्ट समर्थन नही है।' अवश्य ही ऊपरसे देखने-सुननेमे ऐसा ही विदित होता है; परन्तु गहराईमे उतर कर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन मत्रोमे न तो द्वैतवादका समर्थन है, न अद्वैतवादका खण्डन ही है। क्यो और कैसे? नीचेकी पंक्तियोको पढ़कर पाठक ही निर्णय करे।

अद्वैतवादी भी द्वैतप्रपचका सर्वांशत अपलाप नही करते; वे भी शास्त्र मानते हैं; गुरु-शिष्य-रूपसे आत्मविद्याका अनुशीलन करते है, सत्त्व-शुद्धिके लिये कर्म करते है और चित्तकी एकाग्रताके लिये उपासना करते हैं। वे उपास्य-उपासक-रूपसे जीव-ब्रह्मका औपाधिक भेद स्वीकार करते हैं और आत्म-साक्षात्कारके लिये योगमार्गका आश्रय ग्रहण करते हैं। वे केवल द्वैत-प्रपचकी सत्यता और पारमार्थिकता को स्वीकार नही करते। वे कहते है—'यह द्वैतप्रपच व्यावहारिक और माया-मय है तथा अद्वैत ही पारमार्थिक सत्य है।' इसलिये अद्वैतवादियोंके मतसे भी उपनिषदोमे द्वैतप्रपचका उल्लेख हो सकता है। परन्तु द्वैत-प्रपच सत्य है, ऐसा उपदेश किसी भी उपनिषद्का नही है। हा, द्वैतप्रपञ्चका माया-

मयत्व उपनिषदोमे अवश्य ही उपदिष्ट है। उपनिपद्का स्पष्ट ही आदेश है–'माया द्वारा परमेश्वर अनेक रूपोमें दृष्ट होते है'–

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।"

कठोपनिषद्के "ऋत पिवन्तौ" मत्रमे आत्माका उपाधि-भेदसे, जीवात्मा और परमात्माके रूपमे, भेद प्रतिपादित किया गया है–जीवात्मा और परमात्मा वस्तुत भिन्न है, यह नही कहा गया है। इस मत्रमे भेदका सत्यता-वोधक कोई भी शब्द नही है। इस मत्रका प्रसग देखनेसे वात स्पष्ट हो जायगी।

मृत्युने नचिकेताको तीन वर देनेका वचन दिया था। इसके अनुसार नचिकेताने प्रथम वरमे पिताकी अनुकूलता मागी और द्वितीय वरमे अग्नि-विद्याके लिये प्रार्थना की। दोनो वरोके मिल जाने पर नचिकेताने पुन प्रार्थना की, 'कृपया मुझे यह समझा दीजिये कि आत्मा देहेन्द्रियोसे भिन्न है कि नही।' मृत्युने अनेक प्रलोभन दिखाकर नचिकेताको इस वर-प्रार्थनासे निवृत्त होनेका अनुरोध किया, परन्तु नचिकेता किसी भी प्रलोभन मे नही आये–उन्होने एक भी नही सुनी। नचिकेताकी नि स्पृहता देखकर मृत्युने उनकी वडी प्रशसा की और 'आत्मज्ञान' होने पर परम पुरुषार्थ सिद्ध हो जाता है, यह भी कहा। नचिकेताने कहा–'आत्माका यथार्थ स्वरूप क्या है?' इसके उत्तरमें मृत्युने आत्माकी देहेन्द्रियभिन्नता वतायी और आत्माके यथार्थ स्वरूपकी व्याख्या की। आत्मा क्योकर अपने यथार्थ स्वरूपको जान सकता है, यह भी मृत्युने वताया। नचिकेताके प्रश्नके उत्तरमें 'ऋत पिवन्तौ' मन्त्र मृत्युकी उक्ति है।

नचिकेताने पूछा था जीवात्माका विषय। तव यमराज वा मृत्यु परमात्माका विषय कैसे कहने लगती? यह तो अप्रासगिक होता। जीवात्माका यथार्थ स्वरूप परमात्माके यथार्थ स्वरूपसे भिन्न नही है, जीवात्मा और परमात्मा एक ही है, केवल उपाधिभेदसे, घटाकाश, मठा-

काश आदिकी तरह, दोनोका भेद मालूम पडता है। जीवात्माका ससारीपन अविद्याकृत है। अविद्याके अभावके कारण परमात्मामे संसारीपन नही है। इन्ही अभिप्रायोसे नचिकेताके जीवात्म-विषयक प्रश्नके उत्तरमे मृत्युने जीवात्मा और परमात्माकी बात कही। नचिकेताका प्रश्न यह है–

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥"

('कोई कहता है, मृत्युके अनन्तर भी देहातिरिक्त आत्माका अस्तित्व रहता है और कोई कहता है, नही। यह भारी सशय है। तुम्हारे उपदेशसे मै इसे जानना चाहता हू। यह मेरा तीसरा वर है।')

इसका उत्तर पानेके पहले ही नचिकेता परमात्मविषयक एक और असगत प्रश्न कैसे कर बैठते? मृत्यु तो इसी प्रश्नको जटिल समझती थी। इसी बीच परमात्मसम्बन्धी एक अन्य महान् विकट प्रश्न कैसे किया जा सकता था? मृत्युने उक्त प्रश्नको ही सुनकर उत्तर देनेमे बड़ी आनाकानी की। मृत्युने स्पष्ट ही कहा–'यह दुर्विज्ञेय है, देवोको भी इस विषयमे सन्देह हो जाता है। इसलिये इसके उत्तरके लिये आग्रह मत करो–दूसरा वर मागो।' इस तरह मृत्युने उत्तर देनेमे बडी आपत्ति की; प्रलोभन तक दिखाकर अन्य वर मागनेको बहुत तरहसे अनुरोध किया। परन्तु नचिकेता जरा भी विचलित नही हुए। उन्होने स्पष्ट ही कहा–"जिस विषयमें देवता भी सन्दिहान है और जो दुर्विज्ञेय है, उस विषयमे तुम्हारे समान न तो कोई उत्तरदाता ही मिलेगा, न इसके बराबर कोई दूसरा वर ही होगा। इसलिये चाहे यह वर कितना भी दुर्विज्ञेय हो, इसके सिवा मै अन्य वर नही माग सकता।'

मृत्युने नचिकेताकी दृढता और लोभशून्यता देखकर उनकी, उनके प्रश्नकी और आत्मतत्त्वज्ञानकी प्रशसा की। अनन्तर नचिकेताने आत्माका परमार्थ-स्वरूप जानना चाहा। आत्माके यथार्थ रूपको जाननेका

अनुरोध करना प्रकारान्तरसे पूर्व प्रश्नका व्याख्यान मात्र है। यह इस प्रकार कि आत्माके देहादि-स्वरूप होने पर मृत्युके पश्चात् आत्माका अस्तित्व नही रह सकता और देहादिसे भिन्न होने पर मरणानन्तर भी आत्माका अस्तित्व रह सकता है। परन्तु नचिकेताकी यथार्थ आत्मस्वरूपकी जिज्ञासा परमात्म-विषयक प्रश्न है, यह कल्पना नितान्त अलीक है; कारण, मृत्यु प्रार्थित वरको 'दुर्विज्ञेय' कह कर उत्तर प्रदान करनेमें ही जब कि आपत्ति करती है, तव नचिकेताका एक अन्य दुर्विज्ञेय प्रश्न कर बैठना असम्भव है–यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। मृत्युने नचिकेताको जिस प्रकार उत्तर दिया है, उसकी सूक्ष्मतया परीक्षा करने पर स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं, भिन्न नही, मृत्युको यही अभिप्रेत है। आगे दिये जानेवाले उत्तरके आरम्भमें मृत्युने कहा है–

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।"
(कठ० १.२.१५)

('जिस पदका प्रतिपादन सारे वेद करते हैं, जिस पद-प्राप्तिका साधन सारी तपस्याएँ है और जिस स्थानकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है, मैं सक्षेपसे वही पद कहता हू। वह हैं ओकार।')

ओकार ईश्वरका नाम और प्रतीक है। श्रुतिका यही मत है। योगी याज्ञवल्क्यने कहा है–

"वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः।"

'प्रणव वा ओकार परमात्माका प्रतिपादक है।' ठीक ऐसा ही योग-दर्शनमें पतञ्जलि ऋषिने भी कहा है–'तस्य वाचकः प्रणवः।' आगे चलकर मृत्युने जीवात्मा और परमात्माकी अभिन्नता दिखायी है। यही उचित उत्तरका क्रम है।

यदि नचिकेताने जीवात्म-विषयक प्रश्नका उत्तर पानेके पहले ही परमात्मविषयक असगत प्रश्न किया होता, तो मृत्युने जीवात्मविषयक उत्तर देनेके बाद परमात्मविषयक उत्तर दिया होता। तब यह कैसे सम्भव था कि पहले ही परमात्म-सम्बन्धी बातें कह दी जाती और पृथक् रूपसे जीवात्माका उल्लेख तक नही होता ?

आगे चलकर तो इसी उपनिषद्मे द्वैतवादका खण्डन भी है—

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥"
(२.१.११)

('शास्त्र और आचार्यके द्वारा सुसंस्कृत मनसे ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इस ब्रह्मभे अणु मात्र भी भेद नही है। जो ब्रह्ममें भेद या नानापन देखता है, वह बार बार मृत्युको प्राप्त होता है।')

कठवल्लीको द्वैतवाद अभीष्ट रहता, तो यहा उसका खण्डन क्यो किया जाता? परस्पर विरोध कैसे उपस्थित होता? इसलिये यह निष्कर्ष निकला कि कठोपनिषद्का प्रतिपाद्य अद्वैतवाद है, द्वैतवाद नही।

ऋग्वेद और मुण्डकोपनिषद्का 'द्वा सुपर्णा' मत्र भी द्वैतवादका प्रतिपादक नही है। यह भी 'ऋत पिबन्तौ' की तरह ही है। 'द्वा सुपर्णा' मत्र जीवात्मा और परमात्माके भेदका 'अकाट्य' प्रमाण तो क्या होगा, साधारण प्रमाण कोटिमे भी नही आता। आश्चर्य है कि कुछ द्वैतवादी धीर-गम्भीर शैलीसे इसपर विचार नही करते।

वस्तुत. यह मन्त्र अन्त करण (सत्त्व) और जीवात्माका प्रतिपादक है। "पैंगि-रहस्य" ब्राह्मणमे इसकी व्याख्या इस तरह की गयी है—

"तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्त्वम् अनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीत्यनश्नन्नन्यो ऽभिपश्यति क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञाविति।"

अर्थात् 'तयोरन्य. पिप्पल स्वाद्वत्ति' से सत्त्व वा अन्त करणका फल-भोक्तृत्व कहा गया है। 'अनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति' से जीवात्मा-को द्रष्टा कहा गया है। इस लिये यह मत्र जीवात्मा और परमात्माका नही–अन्त करण और जीवात्माका प्रतिपादक है।

इसी ब्राह्मणमे आगे चलकर कहा गया है—

"तदेतत्सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यति। अथ यो ऽयं शारीर उपद्रष्टा क्षेत्रज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञाविति।"

('जिसके द्वारा स्वप्न देखा जाता है, उसका नाम सत्त्व वा अन्त करण है। जो 'शारीर' वा जीवात्मा द्रष्टा है, उसका नाम क्षेत्रज्ञ है।') अचेतन अन्त -करणका भोक्तृत्व कैसे सभव है, इसका उत्तर शकराचार्यने यो दिया है—

"नेय श्रुतिरचेतनस्य सत्त्वस्य भोक्तृत्वं वक्ष्यामीति प्रवृत्ता, किन्तर्हि ? चेतनस्य क्षेत्रज्ञस्याभोक्तृत्व ब्रह्मस्वभावतां च वक्ष्यामीति। तदर्थं सुखादि-विक्रियावति सत्त्वे भोक्तृत्वमध्यारोपयति।"

अर्थात् अचेतन अन्त करणका भोक्तृत्व वताना मत्रका उद्देश्य नही है। चेतन क्षेत्रज्ञका अभोक्तृत्व और ब्रह्मस्वभावत्वका प्रतिपादन करना ही मत्रका लक्ष्य है। इसी अभोक्तापन और ब्रह्म की स्वभावताको समझानेके लिये क्षेत्रज्ञके उपाधिभूत और सुखादिक विकारसे युक्त अन्त करणमें भोक्तृत्वका आरोप किया गया है, क्योकि अन्त करण और क्षेत्रज्ञके अविवेकके कारण क्षेत्रज्ञमे कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी कल्पना की जाती है। सुखादिक विकारोसे युक्त सत्त्व (अन्त करण) मे चित्प्रतिविम्व पतित होने पर चित्का भोक्तृत्व मालूम पडता है। फलत. यह अविद्याजन्य है, पारमार्थिक नही।

कदाचित् यहा यह लिखनेकी आवश्यकता नही कि वेदमन्त्रोका यथार्थ अर्थ समझनेके लिये कितनी धीरता, सावधानता और वहुदर्शिताकी आव-श्यकता होती है और इस दिशामे जरा-सी भी त्रुटि कितना वडा अनर्थ कर सकती है।

वेद-वेत्ताओके मतसे जो वाक्य जीवके ब्रह्मभावका बोधक है, वही वाक्य जीव और ब्रह्मके भेदका बोधक मालूम पड जाता है—अर्थका अनर्थ उपस्थित कर देता है। इसीलिये वेदमन्त्रोका रहस्य समझनेवालोने कहा है—

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

'अल्पविद्य (नीम हकीम) से वेद इसलिये डरता है कि यह मुझे मार डालेगा।' वेदज्ञोने और भी कहा है—

"पौर्वापर्यापरामृष्टः शब्दोऽन्यां कुरुते मतिम्।"

'पूर्वापरकी आलोचना नही करनेसे शब्द विपरीत अर्थबोधका कारण होता है।'

एक बात और। बन्ध्या पुत्र, कूर्मरोम, शशशृंग वा गगन-कमलिनी के समान द्वैत-प्रपचको अद्वैतवादी तुच्छ वा अलीक नही कहते। वे केवल इतना ही कहते हैं कि 'जैसे मनुष्यके निद्रादोषके कारण स्वप्नमे देखा गया पदार्थ मिथ्या है, वैसे ही अविद्यारूप दोषके कारण जाग्रदवस्थामे देखा गया पदार्थ भी मिथ्या है। एक मात्र ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है।' ब्रह्मके अतिरिक्त कोई भी पदार्थ 'परमार्थ सत्य' नही है। परन्तु पारमार्थिक सत्ता नही होने पर भी ससारी पदार्थोकी व्यवाहारिक सत्ता और स्वप्नमे देखे पदार्थोकी प्रातिभासिक सत्ता है। सपनेमे देखे गये पदार्थ जैसे स्वप्न-कालमे यथार्थ मालूम पडते है, वैसे ही जागतिक पदार्थ व्यवहार-दशामे यथार्थ ज्ञात होते है। ब्रह्मवादियोने कहा ही है—

"देहात्मप्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात्॥"

अर्थात् 'शरीरमे आत्मबुद्धि वस्तुत मिथ्या है, तो भी देह-भिन्न आत्माके ज्ञानके पहले सत्य विदित होती है। इसी तरह सारी लौकिक वस्तुओके मिथ्या होने पर भी आत्म-निश्चय तक वे सच्ची मालूम पडती है।' 'ज्ञाते द्वैत न विद्यते'—'आत्मतत्त्वज्ञान होने पर द्वैत नही रहता।'

निष्कर्ष यह है कि व्यवहार-दशामे अद्वैतवादी भी जीवेश्वर-भेद, द्वैत-प्रपञ्च तथा परमात्मा और जीवात्माका उपास्य-उपासक-भाव स्वीकार करते हैं। वेदान्तवेत्ताओने ठीक ही कहा है–

"मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
यथेच्छं पिबता द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि॥"

('माया नामकी कामधेनुके दो बछडे हैं–जीव और ईश्वर। ये दोनों इच्छानुसार द्वैतरूप दुग्धका पान करें, परन्तु परमार्थ-तत्त्व तो अद्वैत ही है।')

पारमार्थिक और व्यावहारिक भावोके उदाहरण ससारमें भी देखे जाते है। जिसके साथ वास्तविक आत्मीयता नही है, उसके साथ भी लोग वाध्य होकर आत्मीयके समान व्यवहार करते है। यह केवल व्यावहारिक आत्मीयता है, पारमार्थिक नही। अगले मत्रमे इस वातको वडी स्पष्टतासे कहा गया है–

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति।
यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत्॥"

('जब तक द्वैत रहता है, तब तक एक दूसरेको देखता है और जब सारे पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं, तब कौन किसको देख सकता है?')

मुख्य बात यह है कि अद्वैतवाद और व्यावहारिक द्वैतवाद, दोनो ही वेद-सम्मत हैं। इसलिये उपनिषदोमे उपास्य-उपासक-भावसे परमात्मा और जीवात्माका निर्देश रहना कुछ विचित्र बात नही है। व्यावहारिक द्वैतावस्था माननेके कारण उपनिषदोके द्वैतवादी वाक्योके द्वारा अद्वैतवादका खण्डन नही हो सकता। व्यावहारिक द्वैतावस्था अद्वैतावस्थाकी विरोधिनी हो ही नही सकती।

फलत अद्वैतवादके सम्बन्धमें द्वैतवादियोकी आपत्तिया निर्मूल है और उपनिषदोके अनुसार अद्वैतवाद ही परमार्थ सत्य है। किसी भी उपनिषद्के किसी भी मत्रसे द्वैतवाद 'परमार्थ सत्य' सिद्ध नही होता।

एकादश अध्याय

उपनिषदोंके अनूठे उपदेश

उपनिषदोंका एक नाम ब्रह्म-विद्या है। इसका कारण यह है कि उपनिषदोंका एक मात्र प्रतिपाद्य ब्रह्म है। ब्रह्म क्या है, ब्रह्ममे विश्वका अध्यास क्योकर है, ब्रह्म और जीवात्माका भेद कैसे है, ब्रह्मकी प्राप्ति कैसे होती है, आत्मा, प्रज्ञात्मा और प्रज्ञान क्या है, ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानका रहस्य क्या है आदि बातोका विस्तृत और सूक्ष्म विचार उपनिषदोमे भरा पड़ा है। किसी भी उपनिषद्को देखा जाय, उसमे आदिसे अन्ततक ब्रह्म-विचार ओत-प्रोत है। जहा देखिये, वही ब्रह्म-ज्ञानके उपदेश है—चारों ओर ब्रह्म ही ब्रह्मका रहस्य है। इसीसे उपनिषदोको ब्रह्मविद्याकी सज्ञा दी गयी है। कुछ प्रसिद्ध उपनिषदोके उदाहरण देखिये।

ऋग्वेदीय कौषीतकि-उपनिषद्के चतुर्थ अध्यायमे कहा गया है, 'गार्ग्य बालाकि नामके एक विद्वान् ब्राह्मण थे, जो उशीनर, मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल, काशी और विदेह आदि भारतके पश्चिमसे पूर्वतकके प्रान्तोका पर्यटन करते थे। एक वार वे काशी आकर वहाके राजा अजातशत्रुसे बोले—'मै आज तुमको पर ब्रह्मका विवरण बताऊँगा।' इसपर महाराजने कहा—'इसके लिये मै तुम्हे एक हजार गाये दूगा। मेरी तो धारणा है कि महाराजा जनक ही ब्रह्मवादियोके जनक-स्वरूप है, इसीलिये प्राय. सभी ब्रह्मवादी जनकके पास ही जाते है।'

इसके अनन्तर बालाकिने कहना प्रारम्भ किया—'सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, छाया, प्रतिध्वनि, शब्द, स्वप्न, दक्षिण और वाम चक्षु आदिकी उपाधियोसे युक्त जो आत्मा है, वही ब्रह्म

है।' परन्तु अजातशत्रुने प्रत्येक उपाधिका खण्डन करते हुए कहा—'नही, जो सूर्य, चन्द्र आदिका बनानेवाला है, उसीको जानना चाहिये—"**य एतेषां पुरुषाणां कर्त्ता, यस्य वै तत्कर्म स वै वेदितव्य इति।**"

अनन्तर बालाकि समित्काष्ठ लेकर और राजाके पास आकर बोले—'मै शिष्य होकर आपसे ब्रह्मोपदेश लेना चाहता हूँ।' राजाने उत्तर दिया—'क्षत्रिय ब्राह्मणको शिष्य बनावे—यह बात उलटी है। मै विना शिष्य बनाये ही तुम्हे यह विषय समझा देता हूँ।' यह कहकर राजाने एक सोये हुए मनुष्यको जगाकर बालाकिसे पूछा—'इस मनुष्यका चैतन्य कहा चला गया था और अब कहासे आ गया?' एक विनम्र शिष्यकी तरह बालाकि मौन रहे।

राजाने कहना प्रारम्भ किया—'स्वप्न-शून्य निद्राके समय हृदयकी 'हिता' नामक हजारो शिराओमे चेतन पुरुष अवस्थान करता है—मन और सारी ज्ञानेन्द्रिया भी उसके साथ एकीभाव धारण करती है। जब मनुष्य जाग जाता है, तब अग्निके स्फुलिंगकी तरह सारी ज्ञानेन्द्रिया, सारे प्राण, सारी दिव्य शक्तिया अपने-अपने स्थानोपर निकल पड़ती है। जैसे काठमें आग व्याप्त है, उसी तरह प्रज्ञात्मा भी शरीर, लोमो और नखोतकमें अनुप्रविष्ट है। जैसे धनीके पीछे सब लोग चलते है, वैसे ही सारी प्राण-चेष्टाएँ भी प्रज्ञात्माके साथ चलती है। इसी प्रज्ञात्मा वा आत्माको न जाननेके कारण ही इन्द्र असुरोके द्वारा पराजित हुए थे। जो इस ज्ञानको प्राप्त करता है, वह सारे पापोसे छूटकर सब भूतोका श्रेष्ठत्व, साम्राज्य और आधिपत्य प्राप्त करता है—"**एवं विद्वान् सर्वान् पाप्मनोऽपहत्य सर्वेषां च भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति।**"

ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषद्के तीसरे अध्यायमे प्रश्न किया गया है कि 'चक्षु आदि इन्द्रिया आत्मा है अथवा अन्त करण आत्मा है?' इसके उत्तरमें कहा गया है कि 'ब्रह्मा, इन्द्र आदि समस्त देवता, पच महाभूत, स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज आदि स्थावर-जगम जितने जीव है, उन सबका

नेता प्रज्ञान है, सब प्रज्ञानमे ही प्रतिष्ठित है। सारा ब्रह्माण्ड प्रज्ञानमें ही स्थित है और सारे ब्रह्माण्डका नेता प्रज्ञान ही है। फलतः बहिरिन्द्रिय, अन्तरिन्द्रिय, इन्द्रिय-वृत्ति-समूह और सारे पदार्थोंमे सद्भावसे देदीप्यमान. और सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त प्रज्ञान ही ब्रह्म है। इसी प्रज्ञानका ज्ञान प्राप्त कर वामदेव आदि अमर हुए थे।'

यहा यह ध्यान देनेकी बात है कि कही ब्रह्मका 'तटस्थ लक्षण' कहा गया है और कही 'स्वरूप लक्षण'।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् बडासा ग्रन्थ है। उसमे अध्यात्मवादके एकसे एक रत्न भरे पडे है। उसके तीसरे प्रपाठकके चौदहवे खण्डके चार मत्रोमें कहा गया है—'यह सारा जगत् ब्रह्म है। यह ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुआ है, ब्रह्ममे ही विलीन होगा और ब्रह्ममे ही अवस्थित है। सयत होकर उसकी उपासना करनी चाहिये। पुरुष कर्ममय है। यहा जैसा जो कर्म करता है, परलोकमे वैसा ही फल वह पाता है। इसलिये धर्म करना चाहिये'— **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति। स क्रतुं कुर्वीत।"** इस एक ही मन्त्रमे सारे ब्रह्मवाद, निखिल कर्मवाद और धर्माचरणका रहस्य निहित है।

दूसरे मन्त्रका अर्थ है—'ब्रह्म मनोमय है, उसका शरीर प्रज्ञा है। ब्रह्म चैतन्य-स्वरूप, सत्यसंकल्प, आकाशकी तरह सूक्ष्म, नीरूप और सर्वगत है। वह सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध और सर्वरस है। यह सारा विश्व ब्रह्ममें अभिव्याप्त है। ब्रह्मके कोई इन्द्रिय नही है। वह निःस्पृह है।'

तीसरे मन्त्रका तात्पर्य है—'यह आत्मा मेरे हृदयमें विराजमान है। यह सर्षप (सरसो) आदिसे भी सूक्ष्म है। जो आत्मा मेरे हृदयमे विराजमान है, वह पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और इस लोकत्रयके समुदायसे भी बडा है।'

चौथे मन्त्रमे शाण्डिल्य ऋषिकी अपरोक्षानुभूति है–'जो सर्वकर्मा, सर्वकाम आदि आत्मा है, वह मेरे हृदयमें विराजमान है और आरब्ध कर्म-फल-भोगके अनन्तर मैं शरीर-त्यागके बाद इसी आत्मा (ब्रह्म)में मिल जाऊँगा।' हृदयमे ऐसा दृढ विश्वास रहनेपर ब्रह्म-लीन होगा ही होगा, इसमें कोई सन्देह नही।

इसी अध्यायके सोलहवें खण्डमें ११६ वर्षोंकी आयुकी बात कही गयी है। इसमे भी ब्रह्मके दोनो लक्षण कहे गये है।

सामवेदीय केनोपनिषद् छोटी उपनिषद् होनेपर भी मणियोका खजाना है, इसीलिये आचार्य शकरने इसपर द्विविध भाष्य लिखनेकी आवश्यकता समझी। शिष्य और आचार्यके प्रश्नोत्तर-रूपमे जो इस उपनिषद्‌के प्रथम खण्डमें मन्त्र कहे गये है, वे अनमोल हैं। प्रथम खण्डके तीसरे मन्त्रमे कहा गया है–

'चक्षु उसको (ब्रह्मको) नही देख सकता, वाक्य उसका वर्णन नही कर सकता तथा मन उसका अनुभव नही कर सकता। हम उसको नही जानते; दूसरेको उसका कैसे उपदेश दिया जाय, यह भी हम नही जानते। फिर भी जिन प्राचीन पुरुषोने उसके सम्बन्धमे शिक्षा दी है, उनसे सुना है कि 'ब्रह्म सभी विदित पदार्थोंसे पृथक् है और सारे अविदित पदार्थोंसे ऊपर है।'

इसके अगले मन्त्रमे आचार्यने कहा है–'जो वचनके द्वारा प्रकाश नही पाता, अपितु जिससे वाक्यका ही प्रकाश होता है, उसे ही तुम ब्रह्म जानो। ससारमे दूसरे जिस किसीकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नही है।'

सरल, स्वच्छ और निष्कपट भाषामे कितनी बडी बात, कितनी खूबी से, कही गयी है, यह देखकर आश्चर्य होता है!

द्वितीय खण्डके प्रथम मन्त्रका अर्थ देखिये–

'यदि तुम समझते हो कि मैंने ब्रह्मको भली भांति जान लिया है, तब तुमने निश्चय ही ब्रह्मका स्वरूप थोडासा ही जाना है। यदि तुम देवोमेसे

किसीको ब्रह्म-स्वरूप जाने हुए हो, तो निश्चय ही तुमने ब्रह्मका थोड़ा ही स्वरूप समझा है।'

ठीक ही है, ब्रह्मके समान अप्रतर्क्य विषयमे अभिमान और अहकार की आवश्यकता नही है। इसी खण्डका चौथा मन्त्र इस आशयका है–

'प्रत्येक व्यक्तिके बोध-स्वरूप, अवभासमान और प्रत्यक्ष आत्म-स्वरूप ही ब्रह्म है। ऐसा ज्ञान ही ब्रह्म-ज्ञान है। ऐसा आत्म-(ब्रह्म)-ज्ञान होनेपर ही अमरता प्राप्त होती है। आत्म-विद्याके प्रभावसे ही आत्मप्रत्यक्षानुभव की शक्ति मिलती है।'

ऐसे ही अनूठे उपदेश इस उपनिषद्मे है। सारी पुस्तक मुखाग्र करने योग्य है।

कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तिरीयोपनिषद् तो हिन्दू सस्कृति और शिष्टाचारका गढ ही है। इसकी प्रथम वल्लीके ग्यारहवे अनुवाकका प्रथम मन्त्र उपदेशामृतसे भरा हुआ है। वेद-शिक्षा देकर आचार्य शिष्यको अनुशासित करते है–

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। × × × × सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। × × × स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

('सत्य बोलना। धर्म करना। कभी भी ज्ञानोपार्जनसे विरत नही होना। कभी भी सत्यसे दूर नही जाना। धर्म-पालनसे कभी भी नही भागना। वेदाध्ययन और वेद-प्रचारसे कभी भी असावधान नही होना।') इसका अगला मन्त्र है–

"देवपितृ-कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।"

('देवो और पितरोके सन्तोषकारी कार्यसे कभी निवृत्त नही होना।

माता-पिताको पूजनीय देवता जानना। आचार्य और अतिथिको भी उपास्य देवता जानना। प्रशसनीय कर्म ही करना, अन्य नही।') इसके अगले मन्त्रका अर्थ देखिये–

'हमसे श्रेष्ठ जो ब्राह्मण आचार्य है, उनको आसन देकर सम्मान करना। श्रद्धाके साथ देना, श्रद्धा-शून्य होकर नही। सहर्ष, सलज्ज, सभय और ससदाचार देना। धर्म-भीरु ब्राह्मणोने जो किया है, उसीके अनुरूप तुम भी करना।' चौथा इस तात्पर्यका मन्त्र है–

'यही आदेश और यही उपदेश है। यही वेदोपनिषद् है और यही अनुशासन है। इसके अनुसार ही अनुष्ठान और आचरण करना।'

कृष्ण यजुर्वेदकी कठोपनिषद्के प्रथमाध्यायकी प्रथम वल्लीसे विदित होता है कि वाजश्रवस नामके राजाने यज्ञ करके अपना सर्वस्व दान कर दिया था। उन्हीके पुत्र नचिकेता और मृत्युके बीच कथोपकथन ही इसका प्रधान विषय है। इस कथोपकथनमें जीवन और मरणकी बडी-बडी समस्याएँ हल की गयी है।

द्वितीय वल्लीके ५ वें मन्त्रमे यमराज नचिकेतासे कहते है–

'अविद्यामे पडे हुए मूढ व्यक्ति अपनेको धीर और पण्डित समझकर, अन्धके द्वारा लाये गये अन्धेकी तरह, चारो ओर उलटी चाल चलते है।' इसके आगे यम कहते है–

'धन-मदमें प्रमत्त मूढ बालकके पास परलोक-प्राप्तिका उपदेश काम नही करता। 'इस लोकके सिवा परलोक नही है', ऐसा जो समझता है, वह वार-वार मेरे आधीन आता है।'

'साधारण मनुष्यकी शिक्षासे तो वहुत चिन्तनके द्वारा भी परमात्माको नही जाना जा सकता। इसलिये असाधारण आचार्यसे ही शिक्षा लेनी चाहिये। कारण यह है कि परमात्मा अणुसे भी सूक्ष्म और तर्कसे भी अतीत है।'

'उस दुर्दशनीय, निगूढ, प्रच्छन्न, गुहामें छिपे हुए, गह्वरमे स्थित और पुरातन आत्माको, अध्यात्म-योगके द्वारा, परमात्मा जान लेनेपर, बुद्धिमान् पुरुष हर्ष और शोकसे छूट जाता है।'

'आत्मा जन्म और मृत्युसे रहित है। यह मेधावी है। यह किसीसे उत्पन्न नही है। इससे साक्षात् अन्य पदार्थ भी नही उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीरके नष्ट होनेपर भी यह विनष्ट नही होता।'

'दर्पणकी तरह आत्मामे परमात्माको देखा जाता है।' (२.३.५)।

इस तरह आत्मा, ब्रह्म आदिके सम्बन्धमे एकसे एक अनूठे उपदेश है। मन्त्र भी बडे सरस, सुन्दर और सरल हैं। ये अनायास कण्ठाग्र हो सकते हैं।

कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतरोपनिषद्के प्रथमाध्यायके १५ वे और १६ वे मन्त्रोके अर्थोपर विशेष ध्यान देने योग्य है—

'जैसे तिलको पेरनेसे तेल और दधिको मथनेसे मक्खन पाया जाता है अथवा नहर खोदनेसे पानी और अरणि-काष्ठके सघर्षणसे आग पायी जाती है, वैसे ही सत्य और तपस्याके द्वारा खोज करनेपर अपनी आत्मामें ही परमात्माको पाया जाता है।'

'जैसे दूधमे मक्खन व्याप्त है, वैसे ही विश्वमे परमात्मा व्याप्त है। आत्म-विद्या (उपनिषद्) और तपस्या ही उसको जाननेके उपाय है। वही उपनिषदुक्त परब्रह्म है।'

उपनिषदुक्त आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म वा पर ब्रह्ममे नामका ही भेद है। अनेक आचार्य अमुक्त आत्माको जीवात्मा और मुक्त आत्माको परमात्मा मानते है। वे निर्वचनीयको ईश्वर और अनिर्वचनीयको ब्रह्म वा पर ब्रह्म मानते है। परन्तु उपनिषदोमे, अनेक स्थलोपर, अद्वैतवादियोके मतानुसार, आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म एकार्थवाची है। इस सूक्ष्म भेदको

ध्यानमे रखकर ही उपनिषदोका स्वाध्याय करना चाहिये। अनेक अद्वैत-वादी चेतनको नही, चेतनाको वा ज्ञातृत्वको ही ब्रह्म मानते है। कुछ लोग अव्यक्त परमात्माको ब्रह्म कहते है। उपनिपदोके मतसे प्रधानत वेदश्रवण, श्रुत विषयके मनन और उसके निदिध्यासन वा वार-वार ध्यान करनेसे ब्रह्म-ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्ल यजुर्वेदकी ईशोपनिषद्मे १८ मन्त्र है और सवके सव अनूठे है। कुछ नमूने ये है—

'इस विश्वमे जो कुछ सञ्चरणशील है, जगम है, सो सव ईश्वर (परमात्मा) के द्वारा व्याप्त है। मोह-ममता छोडकर भोग करो (जीवन-चक्र चलाओ। किसी भी विपयमे 'मेरापन' मत रखो, क्योकि यही दु खका कारण है)। किसीके धनका लोभ मत करो।'

'इस कर्म-भूमिमे कर्म करते ही करते सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करो।'

'परमात्मा चलनेपर भी निश्चल है, वह दूर भी है, पास भी है। वह सवके अन्तरमे भी है और सवके वाहर भी व्याप्त है।'

'जो मनुष्य सारे प्राणियोको अपनेमे देखता है और अपनेको सवमें देखता है, उसके लिये कुछ गुप्त नही।' (वह आत्म-ज्ञाता हो जाता है।)

'जिस ज्ञानीके पास सारे प्राणी 'अपने' है, उस एकत्व-दर्शीके लिये मोह और शोक कुछ नही है।'

इन उपर्युक्त मन्त्रोमे सारा वेदान्त-दर्शन भरा पडा है।

शुक्ल यजुर्वेदकी वृहदारण्यकोपनिषद् उपनिपदोमे सवसे वडी है। इसीसे इसका नाम 'वृहत्' है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिपद्—तीनो ही मिले हुए है। इन्हे पृथक् पृथक् करनेकी अत्यावश्यकता है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है।

इस उपनिपद्के तृतीय अध्यायके 'प्रथम ब्राह्मण' से जाना जाता है कि राजा जनकने एक वडा यज्ञ किया था, जिसमे कुरु, पाचाल आदि

देशोके विद्वान् ब्राह्मण आये थे। राजाकी यह जाननेकी प्रवल इच्छा हुई कि इनमे सबसे बड़ा वेदज्ञ कौन है ? राजाने एक हजार गायोके शृ गो (सीगो) मे सोना मंढ़वाकर ब्राह्मणोसे कहा कि 'जो आप लोगोमे सवसे बड़ा वेदज्ञ (ब्रह्मज्ञाता) हो, वह इन हजार गायोंको अपने घर ले जाय।' दूसरे तो चुप रहे, परन्तु याज्ञबल्क्यने अपने एक शिष्यसे स्वर्ण-मण्डित शृंगवाली गायोको अपने घरपर भिजवा दिया। इसपर विद्वानोमे शास्त्रार्थ छिड गया, किन्तु याज्ञबल्क्यने सबको परास्त कर दिया। ब्रह्म-ज्ञानिनी वाचक्नवी गार्गीसे भी याज्ञबल्क्यका शास्त्रार्थ हुआ, परन्तु गार्गी भी पराजित हो गयी। इस अध्यायके आठवे 'ब्राह्मण' मे यह कथा समाप्त हुई है, जो पढने योग्य है।

चतुर्थ अध्यायके पाचवे 'ब्राह्मण'मे कहा गया है कि 'याज्ञबल्क्य ऋषिकी दो स्त्रिया थी– मैत्रेयी और कात्यायनी। कात्यायनी तो साधारण ही स्त्री थी, परन्तु मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। एक बार घर-बार छोडकर परिव्राजक बननेकी याज्ञबल्क्यकी इच्छा हुई। उन्होने मैत्रेयीसे कहा– 'मै परिव्राजक बनना चाहता हूँ, इसलिये कात्यायनीके साथ तुम्हारे हिस्से का धन बाट देना चाहता हूँ।'

इसपर मैत्रेयीने उत्तर दिया–'भगवन्, यदि धन-धान्यपूर्ण समूची धरित्री ही मुझे मिल जाय, तो क्या मै अमर हो जाऊँगी ?' याज्ञबल्क्यने कहा–'नही, अमरता तो नही मिल सकती। हा, धनियोकी तरह तुम्हारा जीवन अवश्य हो जायगा।' मैत्रेयीने कहा–'जिसे पाकर मै अमर नही बनूगी, उसे लेकर क्या लाभ ? भगवन्, अमरत्व-प्राप्तिका उपाय बताइये।'

इसके अनन्तर याज्ञबल्क्यने जो कहा, वह अनुपम है। एकसे एक उत्तम उदाहरण देकर याज्ञबल्क्यने ब्रह्म-विवेचन किया है। अन्तको याज्ञ-बल्क्यने कहा–

'जिस समय सर्वत्र व्याप्त परमात्माका ज्ञान हो जाता है, उस समय कौन किसको देखता, सुनता, छूता वा अभिवादन करता है (सब तो एक

ही हैं) ? जिसकी सत्तासे ही सारा विश्व जाना जाता है, उसको कैसे समझा जाय ? 'यह नही, यह नही,' इस तरह कहते-कहते जो शेष बच जाता है, वही ब्रह्म है। वह अगृह्य है; क्योकि उसका ग्रहण नही किया जा सकता, वह अशीर्य है, क्योकि उसका क्षय नही होता, वह असंग है; क्योकि उसका संग नही हो सकता। वह किसीको पीडा नही देता, किसीपर क्रुद्ध नहीं होता। वह सबका बाहर-भीतर जानता है। उस सर्व-विज्ञाताको कैसे जाना जाय ? मैत्रेयी, उसीकी शिक्षासे अमरता प्राप्त होती है।'

इतना उपदेश देकर याज्ञवल्क्य परिव्रजन कर गये।

अथर्ववेदकी पैप्पलाद-शाखाकी प्रश्नोपनिषद्में छ ब्रह्मपरायण ऋषियोंके छः प्रश्न हैं और इन छहो प्रश्नोके उत्तर पिप्पलाद ऋषिने दिये हैं। ये छहो उत्तर दिव्य और भव्य हैं। ये उत्तर अध्यात्मवादके प्राण हैं। इनका जितना ही अध्ययन कीजिये, उतनी ही ज्ञान-ज्योति दमकती जायगी। कुछ उदाहरण देखिये—

'जो लोग प्रजापतिके नियमोका पालन करते है, उन्हें पुत्र, कन्या प्राप्त होते हैं और जो लोग सत्य, तपस्या और ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उन्हीके लिये ब्रह्म-लोक है।'

'जिनमें कपट, मिथ्या व्यवहार और माया नही है, उन्हीके लिये यह विशुद्ध ब्रह्मलोक है।'

'आत्मासे ही प्राण उत्पन्न है। जैसे छाया देहका अवलम्बन करके फैलती है, वैसे ही प्राण भी आत्मावलम्बनसे रहता है।'

'यह जो विज्ञानात्मा पुरुष देखता है, छूता है, सुनता है, सूंघता है, रसास्वाद करता है, मनन करता है तथा जो बोद्धा और कर्त्ता है, वह अक्षय परमात्मामें प्रतिष्ठित है।'

'जो व्यक्ति ओंकार (अ,उ,म) के द्वारा परम पुरुषका ध्यान करता है, वह तेजोमय सूर्य-लोक प्राप्त करता है।'

ऐसे ही एकसे एक अपूर्व उपदेश है।

अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्मे पहले ही ब्रह्मविद्याकी परम्परा बतायी गयी है। कहा गया है–

'विश्वके कर्त्ता और पालयिता ब्रह्मा देवोमे प्रथम ब्रह्मज्ञानी हुए थे। उन्होने सर्व-विद्याधार ब्रह्म-विद्या अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वाको बतायी, अथर्वा ने अगिरको वह विद्या सिखायी, अगिरने भारद्वाजको वह विद्या दी और भारद्वाजने अगिरस् वा अगिराको सिखायी। अगिरासे यह विद्या शौनक ऋषिको मिली।'

शौनकके प्रश्न करनेपर अगिराने कहा–

'दो विद्याओका जानना आवश्यक है, एक परा और दूसरी अपरा।'

'चारो वेद और वेदांग अपरा विद्या है; परा विद्या वह है, जिससे क्षय-शून्य ब्रह्म जाना जाता है।'

'जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है और जिसका तप ज्ञानमय है, उसी पर ब्रह्म से आत्मा और अन्न एवम् नाम और रूप उत्पन्न हुए है।'

आगे कहा गया है–

'अविद्यामे फँसे ज्ञान-शून्य व्यक्ति समझते है कि हम कृतार्थ हो गये। परन्तु कर्म-फलमें आसक्ति होनेके कारण ये लोग मुक्ति नही पाते।'

'जैसे प्रदीप्त अग्निसे (अग्नि-स्वरूप) विस्फुलिंग चारो ओर निकलते है, वैसे ही अक्षर ब्रह्मसे विविध जीव उत्पन्न होते और उसीमे पुन. विलीन होते हैं।' "**सत्यमेव जयते नानृतम्**", **नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:**" आदि अद्भुत उपदेश इसी उपनिषद्के है। इसमें एक स्थल (तृतीय मुण्डक, द्वितीय खण्ड, १० म मन्त्र) पर यह भी कहा गया है कि 'सन्यासी ही ब्रह्म-विद्याके अधिकारी है।'

अथर्ववेदकी माण्डूक्योपनिषद्में १२ ही मन्त्र है और सबके सब अनमोल है। इसके द्वितीय मन्त्रमे ही कहा गया है–'आत्मा और ब्रह्म अभिन्न हैं।' आगे कहा है–

'आत्मा सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और समस्त विश्वका कारण है; क्योंकि इससे ही सारे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और इसमें ही सारे प्राणी विलीन होते हैं।'

'ओंकारके द्वारा इस आत्माका ज्ञान होता है।'

इस प्रकार सभी उपनिषदें सदाचारका आदेश देती हैं, संस्कृतिका रहस्य समझाती हैं, सद्गुणको आवश्यक मानती हैं, त्याग और तपस्याकी महिमा बताती हैं तथा ब्रह्म-ज्ञान और मुक्तिके अनूठे उपदेश देती हैं। परन्तु इनका मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या है।

द्वादश अध्याय

कल्पसूत्र

'कल्प' शब्दके कितने ही अर्थ है–विधि, नियम, न्याय आदि। थोड़े अक्षरोवाले, साररूप और निर्दोष वाक्यका नाम सूत्र है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विधियो, नियमो अथवा न्यायोके जो सक्षिप्त, सारवान् और दोष-शून्य वाक्य-समूह है, उनका नाम कल्प-सूत्र है। कल्प-सूत्रोको वेदांग कहा जाता है। मतलब यह कि कल्पसूत्र वेदोके अश या हिस्से है।

कल्प-सूत्रोकी आधार-शिला कर्म-काण्ड है और हिन्दू-धर्मके सारे कर्म, सब सस्कार, निखिल अनुष्ठान और समूचे रीति-रस्म प्रायः कल्प-सूत्रोसे ही उत्पन्न है। इसलिये प्राचीन हिन्दू-जीवनके समस्त नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निष्काम कर्म, सारी क्रियाएँ, सारी सस्कृति और अशेष अनुष्ठान समझनेके लिये एकमात्र अवलम्ब ये सूत्र है।

धर्मानुष्ठानोमे मानस वृत्तियोको सलग्न करना तथा धार्मिक विधियों और नियमोमे व्यक्तियो और समाजका जीवन सयत करना इन सूत्रोका खास उद्देश्य है। और सचमुच नियमबद्ध और सयत करके इन सूत्रोने हिन्दू जीवन और समाजको पावन बनानेमे बड़ी सहायता की है।

कल्पसत्र तीन तरहके होते है–श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। वैदिक संहिताओमे कहे गये यज्ञादि-विषयक विधान और विवरण देनेवाले सूत्रोको श्रौतसूत्र कहा जाता है। गृहस्थके जन्मसे लेकर मृत्यु तकके समस्त कर्त्तव्यो और अनुष्ठानोका जिनमे वर्णन है, उन्हे गृह्यसूत्र नाम दिया गया है। विभिन्न पारमार्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कर्त्तव्यो,

आश्रमो, विविध जातियोके कर्तव्यो, विवाह, उत्तराधिकार आदि आदिका जिनमें विवरण है, उनकी सज्ञा धर्मसूत्र है। पातञ्जल महाभाष्य (पस्पशाह्निक) में लिखा है—ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ९ शाखाए है अर्थात् सब मिलाकर चारो वेदोकी ११३० शाखाए है, परन्तु इन दिनो हमारी इतनी दयानीय दशा है कि इन शाखाओके पूरे नाम तक नही मिलते। यह बात पहले भी लिखी गयी है। प्राचीन साहित्यसे पता चलता है कि जितनी शाखाए थी, उतनी ही संहिताएँ थी, उतने ही ब्राह्मण और आरण्यक थे, उतनी ही उपनिषदें थी और उतने ही कल्पसूत्र भी थे, परन्तु आजकल इनमेसे कोई भी पूरे-का-पूरा नही मिलता। किसी शाखाकी सहिता मिलती है, किसीकी नही; किसीका केवल ब्राह्मण-ग्रन्थ मिलता है, तो किसीका कल्पसूत्र मात्र। आश्वलायन-शाखावालोकी अपनी कोई सहिता नही मिलती—उनके कल्पसूत्र मिलते है। वे शाकल-सहिताको ही अपनी सहिता मानते और ऐतरेय शाखावालोके ब्राह्मणो, आरण्यको और उपनिषदोसे ही अपने काम चलाते है। शौनकके "चरण-व्यूह"मे चरकशाखाको विशिष्ट स्थान दिया गया है; परन्तु न इस शाखाकी सहिता या ब्राह्मण ही मिलता है, न इसकी उपनिषदें आदि ही उपलब्ध है। काठक-शाखाकी संहिता तो मिलती है; परन्तु ब्राह्मण, आरण्यक नही। मैत्रायणी और राणायणीकी भी यही बात है। अथर्ववेदकी पैपलाद-शाखाकी तो केवल प्रश्नोपनिषद् ही मिलती है, यह बात पहले भी कही गयी है। संक्षेपमें यह समझिये कि जैसे न्याय और वैशेषिक दर्शन तो मिलते है; परन्तु उनके सम्प्रदाय नही मिलते तथा सौर और गाणपत्य सम्प्रदाय तो मिलते है; परन्तु उनके दर्शनशास्त्र नही मिलते। ठीक इसी तरह किसीकी केवल शाखा ही मिलती है, किसीका ब्राह्मण और किसीकी केवल सज्ञा भर मिलती है और किसीका तो नाम तक नही मिलता! कल्पसूत्र भी तो शाखाओंके अनुसार ११३० उपलब्ध होने चाहिये; परन्तु इन दिनों प्रायः ४० पाये जाते है।

चारो वेदोकी जो सब मिलाकर ११ संहिताएं है (शाखाए) छपी है, वह प्राय: यूरोपीयोकी कृपासे। लाखो रुपये खर्च कर यूरोपीयोने ही यूरोपके विविध देशोमें इन सहिताओको पहले छापा है। भारतवर्षमे जो संहिताए छापी गयी है, उनमेसे कइयोके पाठ विश्वसनीय नही है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और डा० रघुवीरने जो सहिताएँ छपायी है, वे मूल मात्र है। प० जयदेव शर्माने सानुवाद संहिताएँ छपायी है।

श्रौत या वैदिक यज्ञ चौदह प्रकारके है—सात हविर्यज्ञ और सात सोम यज्ञ। अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुबन्ध और सौत्रामणि—ये सातो चरु-पुरोडाश द्वारा हविसे संपन्न होते है; इसलिये ये हविर्यज्ञ कहाते है। अग्निष्टोम, अन्त्यग्निप्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्यामको सोमयज्ञ कहा जाता है। इन सातोमे सोमरसका प्राधान्य रहता है।

कई सहिताओ और आश्वलायन, लाट्यायन आदि श्रौत सूत्रोमे इन चौदहो यज्ञोका विस्तृत विवरण मिलता है। इसमे सन्देह नही कि इन दिनों इन यज्ञोका प्रचार नही है। गृह्य-सूत्रोके यज्ञ नित्य कर्म अर्थात् आवश्यक कर्तव्य माने जाते है; इसलिये उन्हे पाक या प्रधान यज्ञ भी कहा जाता है। पाक यज्ञोंमेसे कुछ तो ज्यो-के-त्यो हिन्दू-समाजमे प्रचलित है और कुछ रूपान्तरित होकर।

गृह्यसूत्रकारोने सात प्रकारके गृह्य या पाक यज्ञ माने है। पितृ-यज्ञ या पितृ-श्राद्ध। यह सभी हिन्दुओमे मूल रूपमे ही प्रचलित है। पार्वण यज्ञ अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याके दिन किया जानेवाला यज्ञ। इस समय भी यथावत् किया जाता है। अष्टकायज्ञ। यह अवश्य ही बहुत रूपान्तर प्राप्त कर चुका है। श्रावणी यज्ञ। यह अब तक प्रचलित है। आश्वयुजी यज्ञ अर्थात् आश्विन मासमे किया जानेवाला यज्ञ, जो कोजागरा लक्ष्मी-पूजाका रूप धारण कर चुका है। आग्रहायणी यज्ञ। यह अगहनमे किया जानेवाला

यज्ञ नवान्नके रूपमें अनुकल्प बन चुका है। चैत्री यज्ञ अर्थात् चैत्रमें किया जानेवाला यज्ञ, जो बिलकुल दूसरा रूप धारण कर चुका है ।

चौंदह श्रौत यज्ञो और सात पाकयज्ञोके सिवा धर्म-सूत्रो और गृह्य-सूत्रोमे इन पाच महायज्ञोका भी वर्णन मिलता है—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृ-यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ। हवनको देवयज्ञ, बलि-रूपमें अन्न आदि दान करनेको भूतयज्ञ, पिण्डदान और तर्पणको पितृयज्ञ, वेदोके अध्ययन, अध्या-पन अथवा मत्र-पाठको ब्रह्म-यज्ञ और अतिथिको अन्न आदि देनेको मनुष्य-यज्ञ कहा जाता है। ये पाचो महायज्ञ भी अब तक ज्यो-के-त्यों प्रचलित हैं।

उक्त सूत्रोमें इन सस्कारोका बहुत सुन्दर विवरण है—गर्भाधान, पुसवन, अर्थात् पुत्रजन्मानुष्ठान, सीमन्तोन्नयन अर्थात् गर्भवती स्त्रीका केश-विन्यास, जातकर्म अर्थात् सन्तान होने पर आवश्यकीय अनुष्ठान, नामकरण, निष्क्रामण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन, वेदाध्ययनके समय महा-नाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत, गोदानव्रत, समावर्तन अर्थात् पठनके अन्तमे स्नानविशेष, विवाह, अन्त्येष्टि अर्थात् मृतसस्कार। ये सोलहों सस्कार भी प्राय प्रचलित है।

इस प्रकार १४ श्रौत यज्ञ, ७ पाक यज्ञ, ५ महायज्ञ और १६ सस्कार मिलकर ४२ कर्म हमारे लिये कल्पसूत्रकारोने बताये हैं। सूत्रोमें इन बयालीसोका विस्तृत विवरण पढने पर अपने पूर्वजोकी सारी जीवनलीला दर्पणकी तरह दिखाई देने लगती है।

सूत्रकारोंने ४२ कर्म बताये हैं, परन्तु साथ ही सूत्रकार ऋषियोंने सत्य, सद्गुण और सदाचारपर भी बहुत जोर दिया है। धर्म-सूत्रकार गौतम चत्वारिंशत्-कर्मवादी है—उन्होने अन्त्येष्टि और निष्क्रामणको सस्कार नहीं माना है—सोलहमें १४ ही सस्कार माने हैं। उन्होने गौतम-धर्मसूत्र (८-२० २५) मे लिखा है—'जो ४० सस्कारोसे तो युक्त है, परन्तु सदगुणसे शून्य है; वे न तो ब्रह्मलोक जा सकेंगे, न ब्रह्मको पा सकेंगे। हा, जो नित्य

और नैमित्तिक यज्ञोको करते है और काम्य कर्मोके लिये कोई चेष्ट नही करते अथवा चेष्टा करनेमे असमर्थ है, वे भी सद्‌गुणो (सत्य, सदाचार आदि) से युक्त होनेपर ब्रह्मलोकको जा सकेंगे और ब्रह्मलोक भी पा सकेंगे।' इसी तरह - वसिष्ठधर्मसूत्र (६ ३) मे भी कहा गया है–'जैसे चिडियोके बच्चे पख हो जाने पर घोसलेको छोडकर चले जाते है, वैसे ही वेद और वेदाग भी सद्‌गुण-शून्य मनुष्यका त्याग कर देते है।' इन वचनोसे मालूम होता है कि सत्य और सदाचारको हमारे सूत्रकारोने कितना महत्त्व दिया है--एक तरहसे उन्होने सत्य और सदाचारको हिन्दू-धर्मकी भित्ति ही माना है। हमको उनसे यह महती शिक्षा मिलती है। जैसे ऋग्वेदके ऐतरेय और कौषीतकि नामके दो ब्राह्मण अत्यन्त प्रसिद्ध है, वैसे ही इसके आश्वलायन और शाखायन नामके दो कल्पसूत्र भी अतीव विख्यात है। **आश्वलायन-श्रौत-सूत्रमे** १२ अध्याय है और प्रत्येक अध्याय वैदिक यज्ञोके विवरणसे पूर्ण है। कहा जाता है कि आश्वलायन ऋषि शौनक ऋषिके शिष्य थे और ऐतरेय-आरण्यकके अन्तिम दो अध्याय गुरु और शिष्यने मिलकर बनाये थे। ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यकमे जो वैदिक यज्ञ विस्तृत रूपसे विवृत किये गये है, सक्षेपमे उन्हीके विधान आदिका निर्देश करना इस श्रौतसूत्रका उद्देश्य है। इसपर गार्ग्य नारायणिकी सस्कृत-वृत्ति है। इस सूत्रको सम्पादित कर श्रीराजेन्द्रलाल मित्रने १८६४-७४ ईस्वीमें "वाइ-ब्लोथिका इडिका" ग्रन्थमाला (कलकत्ता) से प्रकाशित किया था।

आश्वलायन-गृह्यसूत्र चार अध्यायोमे विभक्त है। प्रथम अध्यायमे विवाह, पार्वण, पशुयज्ञ, चैत्ययज्ञ, गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, गोदानकर्म, उपनयन और ब्रह्मचर्य आश्रम-की विवृति है। द्वितीयमे श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रहायणी, अष्टका, गृह-निर्माण और गृहप्रवेशका विवरण है। इन यज्ञोको प्रतिदिन सम्पन्न करके हमारे पूर्वज अन्न-जल ग्रहण करते थे और इन दिनो भी कुछ लोग ऐसा ही करते है। इसी अध्यायमे ऋग्वेदके विभिन्न मडलोके ऋषियोके नाम पाये

जाते है। इसके अतिरिक्त सुमन्त, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल तथा सूत्रो, भाप्यो और महाभारतके प्रणेताओके भी नाम पाये जाते हैं। इससे सूचित होता है कि १२०० वी० सी० के पहले ही महाभारत, विविध कल्पसूत्र और उनपर भाप्य भी वन गये थे। प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री-चिन्तामणि विनायक वैद्यके मतसे इस गृह्यसूत्रका रचनाकाल ईसासे १२०० वर्प पहले है। परन्तु यह मत सदिग्ध है। हमारी समझमें इसका रचनाकाल इससे भी प्राचीन है। वार्षिक अध्ययनके प्रारम्भमें जो कर्म किया जाता था, उसे अध्यायोपाकरण कहा जाता था। इसका भी इसी अध्यायमें वर्णन है। आपद् और युद्धके कालके कर्मोका भी विवरण है। चतुर्थ अध्यायमे अन्त्येष्टि और श्राद्धका वर्णन है।

आश्वलायन-गृह्यसूत्रपर गार्ग्य नारायणि, कुमारिल भट्ट और हरदत्त मिश्रकी वृत्ति, कारिका और व्याख्या है। ए० एफ० स्टेन्सलरने दो भागोमे सुसम्पादित कर इसे प्रकाशित किया है।

शांखायन-श्रौतसूत्र अठारह अध्यायोमे विभाजित है। दर्शपूर्णमास आदि वैदिक यज्ञोका इसमे भी विवरण है, साथ ही वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध आदि विशाल यज्ञोकी विस्तृत विवृति भी है इस सूत्र-ग्रन्थपर अनृतकृत सस्कृत-भाष्य है। गोविन्दकी टीका भी इसपर है। यह भी 'वाइव्लोथिका इडिका' में छपा है। हिलेब्रान्तने भी इस श्रौत-सूत्रका एक सुन्दर सस्करण निकाला है।

शाखायन-गृह्यसूत्र ६ अध्यायोमें पूर्ण हुआ है। प्रथम अध्यायमे पार्वण, विवाह, गर्भाधान, पुसवन, गर्भरक्षण, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण और गोदान-कर्मका विवरण है। द्वितीयमें उपनयन और ब्रह्मचर्य आश्रमका वर्णन है। तृतीयमे स्नान, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश, वृपोत्सर्ग, आग्रहायणी और अष्टकाका विवरण है। चतुर्थमे श्राद्ध, अध्यायोपाकरण, श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रहायणी और चैत्रीका उल्लेख है। पञ्चम और षष्ठ अध्यायोमे कुछ प्रायश्चित्तोका वर्णन है।

वहुत लोगोका मत है कि **वसिष्ठधर्मसूत्र** ऋग्वेदका ही धर्म-सूत्र है। इसके टीकाकार गोविन्द स्वामीका भी ऐसा ही मत है। यह तीस अध्यायोमे विभक्त है। प्रथममे साधारण विधि, आर्यावर्तकी सीमा, पञ्चमहापातक और विवाह-पद्धतियोका वर्णन है। द्वितीयमे विविध जातियोके कर्तव्य-का निर्देश है। तृतीयमे वेदपाठकी आवश्यकता और चतुर्थमें अशुद्धियोका विचार है। चौथे अध्यायमे सूत्रकारने मनुके अनेक वचनोको उद्धृत किया है, जिससे विदित होता है कि अत्यन्त प्राचीन कालमे कोई मनु-सूत्र भी था, जिसके आधारपर ही वर्तमान मनुस्मृति वनी है। पाचवेमे स्त्रियोका कर्तव्य, छठेमे सदाचार, सातवेमे व्रह्मचर्य, आठवेमे गृहस्थधर्म, नौवेमे वानप्रस्थ-धर्म और दसवेमे भिक्षु-धर्म वर्णित है। ग्यारहवेमे अतिथि-सेवा, श्राद्ध और उपनयनकी वाते है। वारहवेमे स्नातक-धर्म, तेरहवेमे वेदपाठ और चौदहवेमे खाद्य-विचार विवृत है। पद्रहवेमे दत्तक-पुत्र-ग्रहण, सोलहवेमे राजकीय-विधि और सत्रहवेमे उत्तराधिकारका वर्णन है। अठारहवें में चाण्डाल, वैण, अन्त्यावसायी, राभक, पुल्कस, सूत, अम्वष्ठ, उग्र, निषाद, पारशव आदि दस मिश्र या मिली हुई जातियोका विवरण है। उन्नीसवेमे राजधर्मकी विवृति है। वीसवेसे अठाईसवे तकमे प्रायश्चित्त और उनतीस-तीस अध्यायोमे दान-दक्षिणाका विवरण है।

रामेश्वरकी संस्कृत-व्याख्या और उमानन्दकी पद्धतिके साथ दो भागोमे एक **परशुराम-कल्पसूत्र** भी वम्वईमे छपा है। इसे भी ऋग्वेदीय कल्पसूत्र कहा जाता है।

कृष्ण यजुर्वेदके ग्रन्थ और अन्य सभी वेदोसे अधिक मिलते है। इसकी संहिता, व्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र, प्रातिशाख्य आदि प्रायः सव मिलते है। इस वेदकी मैत्रायणी-शाखाका **मानव-धर्म-सूत्र** पाया जाता है। इसे जे० एम० गिल्डनरने प्रकाशित किया है। एफ० क्राउएरने भी **मानवश्रौत-सूत्रका** संस्करण निकाला है। **मानवगृह्यसूत्र** अष्टावक्रकृत भाष्यके साथ 'गायकवाड़ संस्कृत सिरीज'मे

छपा है। प० भीमसेन शर्माने भी हिन्दी-भाष्य करके इसे छपाया है। इसके अतिरिक्त बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, काठक आदि कितने ही सूत्रग्रन्थ इस वेदके मिले है।

बौधायन-श्रौतसूत्र उन्नीस प्रश्नोमे पूर्ण हुआ है। **बौधायन-गृह्यसूत्र** और **बौधायन-धर्मसूत्रमे** चार-चार प्रश्न या खण्ड है। बौधायन कल्पसूत्रोमें कर्मान्तसूत्र, द्वैधसूत्र, शुल्वसूत्र (यज्ञवेदी-निर्माणके लिये रेखागणितके नियम) आदि भी पाये जाते है। बौधायनने लिखा है—'अवन्ती, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिण, उपावृत, सिन्धु और सौवीरके निवासी मिश्र जाति है।' इससे विदित होता है कि बौधायनके समय १२५० ईसा पूर्वमें इन प्रदेशोमे अनार्य भी रहते थे। आगे चलकर लिखा गया है—'जिन्होने आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, वग, कलिंग आदिका भ्रमण किया, उन्हे 'पुनस्तोम' और 'सर्व-, पृष्ठा' यज्ञ करने पडे। इससे मालूम पडता है कि आर्य लोग इन प्रदेशोको हीन समझते थे।

बौधायन-श्रौतसूत्रको सम्पादित कर डब्ल्यू० कैलेंडने प्रकाशित किया है। इसमें सब १४ भाग है। यह 'बाइब्लोथिका इडिका'मे छपा है। बौधा-धर्मसूत्रके प्रथम प्रश्नमे ब्रह्मचर्य-विवरण, शुद्धाशुद्ध-विचार, मिश्र-जाति-वर्णन, राजकीय विधि और आठ तरहके विवाहोकी बातें है। द्वितीय प्रश्न-मे प्रायश्चित्त, उत्तराधिकार तथा स्त्री-धर्म, गृहस्थधर्म, चार आश्रम और श्राद्धका विवरण है। तृतीयमे वैखानस आदिके कर्तव्य और चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्तोका वर्णन है। चतुर्थमे काम्य-सिद्धि आदि विवृत है। गोविन्द स्वामीके भाष्यके साथ यह 'गवर्नमेंट ओरियटल लाइब्रेरी सस्कृत सिरीज'मे छपा है। उक्त सिरीजमे ही बौधायनगृह्यसूत्र भी छपा है।

आपस्तम्बके भी सारे कल्पसूत्र पाये जाते है। आपस्तम्ब आन्ध्रमे उत्पन्न हुए थे। द्रविड और तैलग ब्राह्मण भी अपनेको आपस्तम्बशाखी और अपनी सहिताको तैत्तिरीय-सहिता कहते है। आपस्तम्बका कल्पसूत्र तीस प्रश्नोमे परिपूर्ण हुआ है। प्रथम चौबीस प्रश्न श्रौतसूत्र है, पचीसवा

प्रश्न परिभापा है, छब्बीसवां और सत्ताईसवां प्रश्न गृह्यसूत्र है। अट्ठाईसवा और उनतीसवा प्रश्न धर्म-सूत्र है और तीसवा शुल्व-सूत्र है। **आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रको** सुसम्पादित कर आर० गार्वेने दो भागोमे प्रकाशित किया है। डब्ल्यू० कैलेडने अनेक टीका-टिप्पणियोके साथ इसका जर्मन अनुवाद निकाला है। **आपस्तम्बगृह्यसूत्रमे** ब्रह्मचर्य द्वारा शास्त्र-शिक्षा, गृहनिर्माण, मासिक श्राद्ध, विवाह आदि संस्कार तथा श्रावणी, अष्टका आदिका विवरण है। यह ग्रन्थ 'काशी-संस्कृत-सिरीज'मे छपा है। हरदत्त मिश्र और सुदर्शनाचार्यकी व्याख्या भी इसमे है। परिशिष्ट और टिप्पणियोके साथ इसे वडी शुद्धतासे एम० विंटर्नित्जने भी छपाया है। **आपस्तम्ब-धर्म-सूत्रके** प्रथम प्रश्नमे ब्रह्मचर्य, शास्त्र-शिक्षा, खाद्य विचार और प्रायश्चित्तकी वाते है। 'गवर्नमेंट ओरियटल हिन्दू सिरीज'मे 'उज्ज्वला' नामक व्याख्याके साथ यह धर्मसूत्र दो भागोमे छपा है। 'गवर्नमेंट ओरियटल लाइब्रेरी संस्कृत सिरीज'मे भी यह छपा है। इसी सिरीजमे कपर्दि स्वामीके भाष्य और हरदत्ताचार्यकी व्याख्याके साथ '**आपस्तम्ब-परिभाषा-सूत्र**' छपा है। यूरोपमे डच भाषामे इस वेदका **पितृमेध - सूत्र** भी छपा है। **वाधूल-सूत्रको** भी कैलेडने छपाया है।

हिरण्यकेशी आपस्तम्बके पीछेके पुरुष है। हिरण्यकेशीके कल्पसूत्रोकी रचना आपस्तम्बके कल्पसूत्रोको सामने रखकर की गयी है। हिरण्यकेशीका दूसरा नाम सत्याषाढ है। 'आनन्दाश्रम-संस्कृत-ग्रन्थावली'मे छ भागोमे वैजयन्ती, ज्योत्स्ना और चन्द्रिका नामकी व्याख्याओके साथ **हिरण्यकेशी-श्रौत-सूत्र** छपा है। **हिरण्यकेशी-गृह्यसूत्रको** मातृदत्तकी व्याख्या और परिशिष्टके साथ जे० कीर्स्टेने छापा है। जे० डब्ल्यू० सोलोमनने सुसम्पादित करके **भारद्वाज-गृह्यसूत्रको** छापा है। इसमे शब्दानुक्रमणिका भी है। भारद्वाज-कल्पसूत्र भी तैत्तिरीय शाखाका है। **मैत्रायणी-शाखाका वाराह-गृह्यसूत्र** 'गायकवाड संस्कृत सिरीज'मे छपा है। कठशाखाका **काठक-गृह्यसूत्र** डब्ल्यू० कैलेडने प्रकाशित किया है। इसी वेदका देवपाल कृत भाष्यके

साथ लौगाक्षि-गृह्यसूत्र छपा है। वैखानस-गृह्यसूत्रको भी कैलेडने छपाया है।

शुक्ल यजुर्वेदके (माध्यन्दिन और काण्व, दोनोके) दो कल्पसूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—कात्यायन-श्रौतसूत्र और पारस्कर-गृह्यसूत्र। कात्यायनश्रौत-सूत्रके अठारह अध्याय इस वेदके शतपथ-ब्राह्मणके नौ काण्डोके क्रमानुवर्ती है। अवशिष्ट अध्याय सौत्रामणि, अश्वमेध, नरमेध, सर्वमेध आदिके विवरणोसे पूर्ण है। व्रात्योके विवरणमे मगधके ब्रह्मबन्धुओका उल्लेख है। ब्रह्मण्यानुष्ठानसे शून्य अधम ब्राह्मणोको ब्रह्मबन्धु कहा गया है। कात्यायन-श्रौतसूत्रको कर्काचार्यके भाष्यके साथ १३ खण्डोमे 'चौखम्भा संस्कृत सिरीज'में प्रकाशित किया गया है। इसके कई संस्करण छप चुके है।

पारस्कर-गृह्यसूत्र नौ खण्डोमे पूर्ण हुआ है। प्रथममें विवाह, गर्भा-धान आदि संस्कारोका विवरण है। द्वितीयमें कृषि-प्रारम्भ, विद्या-शिक्षा, श्रावणी आदिका विवेचन है। तृतीयमे गृह-निर्माण, वृषोत्सर्ग, श्राद्ध आदि-का वर्णन है। अन्य गृह्य सूत्रोकी तरह ही इसके भी अन्यान्य काण्डोका विवरण है। यह गृह्यसूत्र 'काशी संस्कृत-सिरीज'मे कर्कोपाध्याय, जयराम, गदाधर, हरिहर और विश्वनाथकी टीकाओके साथ छपा है। इसमें परिशिष्ट-कण्डिका, शौचसूत्र, स्नानसूत्र, श्राद्धसूत्र और भोजनसूत्र भी सम्मिलित है। इस वेदका कात्यायन-प्रणीत शुल्वसूत्र भी सी० मूलर द्वारा छपा है।

सामवेदकी दो शाखाओके दो श्रौतसूत्र अत्यन्त विख्यात है—कौथुम-शाखाका लाट्यायन-श्रौतसूत्र या मशक-श्रौतसूत्र और राणायणीय शाखा का द्राह्यायण-श्रौतसूत्र। दोनोमे वैदिक यज्ञोका खूब सुन्दर विश्लेषण और विवरण है। लाट्यायन-श्रौतसूत्र 'बाइब्लोथिका इंडिका'मे छपा है। इसपर अग्निस्वामीका भाष्य है। द्राह्यायणको धन्विन्की व्याख्याके साथ जे० एम० रूटरने सुसम्पादित कर प्रकाशित किया है। रुद्रस्कन्दकी वृत्तिके साथ द्राह्यायण-गृह्यसूत्र भी छपा है।

सामवेद (कौथुमशाखा) का **गोभिल-गृह्यसूत्र** चार प्रपाठकोमे विभक्त है। प्रथम प्रपाठकमे साधारण विधि, ब्रह्मयज्ञ, दर्शपूर्णमास आदिका विवरण है। द्वितीयमे विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण, उपनयन आदि विवृत है। तृतीयमे ब्रह्मचर्य, गोपालन, गोयज्ञ, अश्वयज्ञ, श्रावणी आदिका वर्णन है। चतुर्थमे विविध अन्वष्टका, काम्य सिद्धियोंके उपयोगी कर्म, गृहनिर्माण आदिकी विवृति है। यह भी 'वाइब्लोथिका इडिका'मे छपा है। महामहोपाध्याय प० चन्द्रकान्त तर्कालंकारका भाष्य भी इसपर है। सत्यव्रत सामश्रमी महोदयने इसका वगलामे अनुवाद किया है। उक्त तर्कालंकारजीने एक **गोभिल-परिशिष्ट** भी छपाया है। राणायणीय शाखाका **खदिर-गृह्यसूत्र** है, जो रुद्र स्कन्दकी टीकाके साथ 'गवर्नमेट ओरियटल लाइब्रेरी सस्कृतसिरीज'मे छपा है। सामवेदके **पञ्चविधसूत्र**को अग्रेजी टीकाके साथ कैलेडने छपाया है। इसका **निदान-सूत्र** कलकत्तेमे छपा है। इसका **क्षुद्रसूत्र** भी छप चुका है।

सामवेदकी जैमिनीय शाखाके **जैमिनीय-श्रौतसूत्र**को डच भाषामे टिप्पणियो और परिशिष्टके साथ सम्पादित करके डी० गास्ट्राने छापा है। **जैमिनीय-गृह्यसूत्र**को सुबोधिनी टीका, टिप्पणियो और लम्बी भूमिकाके साथ डब्ल्यू० कैलेडने छापा है। कैलेडने ही सामवेदका एक **आर्षेय-कल्पसूत्र** भी, टिप्पणियोके साथ, छापा है।

सामवेदका **गौतमधर्म-सूत्र** अत्यन्त विख्यात है। यह अट्ठाईस अध्यायों मे पूर्ण हुआ है। प्रथम और द्वितीय अध्यायोमे उपनयन और ब्रह्मचर्य, तृतीयमे भिक्षु (सन्यासी) और वैखानस (वानप्रस्थ) का धर्म और चतुर्थ तथा पञ्चम अध्यायोमे गृहस्थका धर्म विवृत है। इस प्रसगमे गौतमने इन आठ प्रकारके विवाहोका उल्लेख किया है—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। प्रथमके चार उत्तम है और अन्तके चार अधम है। पञ्चम अध्यायमे अठारह प्रकारकी मिली हुई जातियोका या मिश्र जातियो का उल्लेख है। षष्ठमे अभिवादन, सप्तममें आपत्कालीन वृत्ति-समूह

और अप्टममे चालीस सस्कारोका उल्लेख है। नवममे स्नातक-धर्म, दशममें विभिन्न-जाति-धर्म, एकादशमे राज-धर्म, द्वादशमे राजकीय विधि, त्रयोदशमे विचार और साक्ष्यग्रहण, चतुर्दशमे अशुद्धि-विचार, पञ्चदशमें श्राद्ध-नियम, पोडशमे वेदपाठ, सप्तदशमे खाद्यविचार और अष्टादशमें स्त्री-विवाह आदि है। उन्नीससे सत्ताईस अध्यायोमे प्रायश्चित्त-विवरण है। अठाईसवेंमे उत्तराधिकारका विचार है। मस्करीभाष्यके साथ यह सूत्र-ग्रन्थ 'गवर्नमेट ओरियटल लाइब्रेरी सस्कृत सिरीज'में छपा है।

अथर्ववेदका वैतान-श्रौतसूत्र जर्मन अनुवादके साथ डब्ल्यू० कैलेड द्वारा सुसम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है। स्व० चिन्तामणि विनायक वैद्यके मतसे इसका निर्माणकाल २००० ईसा पूर्व है। इस तरह उप-लब्ध कल्पसूत्रोमें यह प्राचीनतम है। इस वेदके सुप्रसिद्ध कौशिक-गृह्यसूत्र-को, दो टीकाओसे युक्त, मारिस ब्लूमफील्डने बडी शुद्धता और सुन्दरताके साथ प्रकाशित किया है। किसी-किसीके मतसे वैखानस-गृह्यसूत्र भी इसी वेदकी शौनकशाखाका है। इस वेदकी पैप्पलाद-शाखाका कोई भी कल्पसूत्र उपलब्ध नही है।

अब तक जितने कल्पसूत्रोका उल्लेख हो चुका है, उनके अतिरिक्त भी कुछ कल्पसूत्र पाये जाते है, परन्तु उनकी प्रामाणिकतामे सन्देह है। इसी-लिये उनका यहा उल्लेख नही किया गया है। उल्लिखित कल्पसूत्रोपर अनेकानेक खण्डित और अखण्डित भाष्य-टीकाए भी मिलती है, परन्तु अधिकाश हस्तलिखित और अप्रकाशित दशामें ब्रिटिश म्युजियम (लदन), नेशनल लाइब्रेरी (कलकत्ता), भाडारकर ओरियटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (पूना) तथा देश-विदेशकी विभिन्न लाइब्रेरियोमे पडी है। वैदिक साहित्यके अनेकानेक बहुमूल्य ग्रन्थ भी पडे है। यदि उन्हे छापे, तो यूरोपीय विद्वान् ही, हम हिन्दुओको तो कुछ भी परवा नही।

वैदिक सहिताओका अर्थ, तत्त्व और रहस्य समझनेके लिये जैसे ब्राह्मण, आरण्यक प्रातिशाख्य, निरुक्त, निघण्टु, मीमासा, बृहद्देवता, अनुक्रमणी,

शिक्षा, चरणव्यूह आदिका अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही, वल्कि कही कही उनसे भी अधिक आवश्यक कल्पसूत्रोका पठन है। श्रौतसूत्रोसे यज्ञ-रहस्य समझनेमे आश्चर्यजनक सहायता मिलती है। गृह्यसूत्रोसे स्थल-विशेषमे अद्भुत साहाय्य प्राप्त होता है। प्राचीन हिन्दू जीवन, प्राचीन हिन्दू समाज और प्राचीन हिन्दूधर्म समझनेके लिये तो ये सूत्र अद्वितीय है ही। धार्मिक नियमोंमे अपना और अपने समाजका जीवन संयत कौर उन्नत करनेके लिये तथा नि.श्रेयसकी प्राप्तिके लिये ये सूत्र अनूठे है।

यहा यह भी ध्यान देनेकी बात है कि मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, वसिप्ठस्मृति, परागरस्मृति आदि वीसो प्रसिद्ध स्मृतियोंकी उत्पत्ति और रचना इन्ही कल्पसूत्रोसे हुई है। समस्त हिन्दू-सस्कारो, राजधर्मो, व्यवहार-दर्शनो, दाम्पत्य-धर्मो, दाय-भागो, संकर-जाति-विवरणों और प्रायश्चित्तो के आधार भी ये ही कल्पसूत्र है। इनके विना प्राचीन नियमो और प्रथाओ का समझना दुरूह, कठिन, जटिल और विकट है। इसलिये इनका स्वाध्याय करना प्रत्येक हिन्दूके लिये आवश्यक और अनिवार्य है।*

---

* शौनकके चरण-व्यूहके महीदासके भाष्यमें लिखा है–'कृष्णा और गोदावरीके तटोपर आन्ध्रदेशमें आश्वलायनी शाखा, आपस्तम्बी शाखा और हिरण्यकेशी शाखा प्रचलित है, गुजरातमे शांखायनी शाखा और मैत्रायणी शाखा प्रचलित है तथा अंग, वंग, कलिंगमें माध्यन्दिनी शाखा और कौथुम शाखा प्रचलित हैं।' परन्तु इन दिनों प्रधानतया महाराष्ट्रमें ऋग्वेदकी शाकल-शाखा, गुजरात और दक्षिणमें कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रा-यणी शाखा, दक्षिण तैलंग और द्राविड़मे कृष्ण यजुर्वेदकी आपस्तम्बी या

तैत्तिरीय शाखा, उत्तर भारत, मिथिला और महाराष्ट्रमें शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखा, दाक्षिणात्यमें इसी वेदकी काण्वशाखा, गुजरात और बगालमें सामवेदकी कौथुमशाखा, दक्षिणमें (सेतुबन्ध रामेश्वरमें) साम-वेदकी राणायणी शाखा, कर्णाटकमें सामवेदकी जैमिनीय शाखा और गुजरात (नागर ब्राह्मणो) में अथर्ववेदकी शौनक शाखा प्रचलित है। काठक-शाखावाले ब्राह्मण काश्मीरमें तथा इतस्तत पाये जाते है। पैप्पलाद-शाखी ब्राह्मण देशमें बहुत कम पाये जाते है। जहा जो शाखा प्रचलित है, वहा उसी शाखाके कल्पसूत्रोके अनुसार सारे श्रौत, स्मार्त कार्य और सस्कार आदि होते है; इसलिये विभिन्न प्रदेशोके ऐसे कार्यों और सस्कारो में भेद दिखाई देते है। किंतु ये भेद साधारणसे ही होते है।

त्रयोदश अध्याय

कल्पसूत्रोंके आदेश

जैसा कि कहा गया है, साक्षात् वेदोमे कथित यज्ञादि-विपयक विधि-विधानोको बतानेवाले कल्पसूत्रोको श्रौतसूत्र, गृहस्थके कार्योको सम्पन्न करनेके लिये चिर कालसे स्थापित वा समय-समयपर स्थापित अग्निके द्वारा करणीय यज्ञादि-विषयक सूत्रोको गृह्यसूत्र और विभिन्न पारमार्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कर्त्तव्योको वतानेवाले सूत्रोको धर्मसूत्र कहा जाता है।

अवतक प्राय चालीस कल्पसूत्र छप चुके हैं। इनमेसे आश्वलायन-श्रौतसूत्र, आश्वलायन-गृह्यसूत्र, गोभिल-गृह्यसूत्र और गौतमधर्म-सूत्र से ही कुछ अवश्य ज्ञातव्य विषयोके नमूने, हिन्दू सस्कृति और प्राचीन अनुष्ठानोकी परम्परा समझनेके लिये, यहा दिये जाते हैं।

ऋग्वेदकी आश्वलायन-शाखा तो नही मिलती, परन्तु उसके श्रौत और गृह्य सूत्र अत्यन्त विख्यात है। श्रौतसूत्रमे १२ अध्याय हैं। ऐतरेय-ब्राह्मण और आरण्यक-ग्रन्थोमे जो सब श्रौत यज्ञ विस्तृत रूपसे कहे गये हैं, उन्हीका विधान आदि सक्षेपसे कहना इस आश्वलायनश्रौतसूत्रका उद्देश्य है।

प्रथम सूत्रमे सूत्रकारने कहा है—'निवित्, प्रैष, पुरोरुक्, कुन्ताप, बालखिल्य, महानाम्नी आदि मन्त्रो, ऐतरेय-ब्राह्मणारण्यकादि तथा शाकल, वाष्कल सहिताओके श्रौताग्नि द्वारा करणीय अग्निहोत्र आदि यज्ञोकी प्रयोग-विधि कहूँगा।' अगले सूत्रमे कहा गया है—'श्रौताग्नि ग्रहण

करनेवाला अर्थात् नित्याग्निहोत्री (आहिताग्नि) पुरुष ही इन यज्ञोको करनेका अधिकारी है।'

इष्टि-यज्ञोके आदर्श दर्श और पूर्णमास यज्ञ है। इसलिये प्रथम इन्ही (अमावास्या और पूर्णमासीमे सम्पादनीय) यज्ञोका विधान बताया गया है। कहा गया है—'यजमानके द्वारा आमन्त्रित ऋग्वेदीय ऋत्विक् (पुरोहित) हवि तैयार करनेके लिये आहवनीय (जिस अग्निकुण्डमे चरु, पुरोडाश आदि प्रस्तुत किये जाते है) वेदीके उत्तर पूर्वाभिमुख बैठकर और यज्ञोपवीती होकर आचमन करे।'

प्रत्येक दैवकार्यमे यज्ञोपवीती और पितृ-कार्यमे प्राचीनावीती होना आवश्यक है। अन्य समयोमे निवीती रहनेकी विधि है। बाये कन्धेसे दक्षिण पार्श्वमे यज्ञसूत्र (जनेऊ)धारण करनेको यज्ञोपवीती, दाहिने कन्धेसे वाम पार्श्वमे यज्ञसूत्र पहननेको प्राचीनावीती और कण्ठमे मालाकी तरह पहननेको निवीती कहा जाता है। आश्वलायनने चौथे सूत्रमे 'यज्ञोपवीती' की बात लिखी है। अवश्य ही आजकल निवीती बहुत ही कम दिखाई देते है।

लिखा है, 'आचमनके अनन्तर उत्कर (वेदीकी धूलि रखनेके स्थान) को पूर्व और प्रणीता (हविष्का पाक करनेवाले मन्त्रपूत जलके पात्र) को पश्चिम करके बीचमे विहार-भूमि (अग्निकुण्डके निर्माण-स्थान) की प्रदक्षिणा करे।' जिस यज्ञमे प्रणीताकी आवश्यकता नही है, उसमे यज्ञीय इन्धनकी लकडिया रखनेकी विधि है। उसमे उत्कर और इन्धनके बीच प्रदक्षिणा करनी चाहिये। उत्तर वेदीके निर्माणके लिये जिस स्थानसे मिट्टी ली जाती है, उस गड्ढेको 'चात्वाल' कहा जाता है। 'वरुणप्रघास' और 'पशुयाग' आदिमे प्रणीताकी आवश्यकता नही होती। उनमे चात्वालको ही पश्चिम करके उत्कर और चात्वालके बीचोबीच विहारभूमिकी प्रदक्षिणा की जाती है। उस प्रदक्षिणा-पथको तीर्थ कहते है। तीर्थकी प्रदक्षिणा करना होताका प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य है।'

इस श्रौतसूत्रका दसवा सूत्र है–"**यज्ञोपवीतशौचे च।**" अर्थात् 'यज्ञ करने-करानेवाले समस्त व्यक्तियोका यज्ञोपवीती होना और आचमनादिके द्वारा अगशुद्धि करना अत्यावश्यक है।'

'जिस समय विहारभूमिमे कोई कार्य हो रहा है, उस समय विहारभूमि को पीठ नही दिखानी चाहिये।'

'जहा कही मस्तक, अगुलि आदिका नाम आया है, वहा सबका दक्षिण भाग ही समझना चाहिये। जो अग–आख, कान आदि दो है, उनमेसे दाहिने को ही समझना चाहिये।'

'दान करना चाहिये'–ऐसी जहा विधि है, वहा यजमानके लिये विधान समझना चाहिये। अन्यत्र होताके लिये ही विधान, उपदेश समझने चाहिये। अध्वर्यु आदिके लिये जहा उपदेश है, वहा तो उनका स्पष्ट ही नामोल्लेख है।'

'प्रायश्चित्त-प्रकरणमे अथवा होम और जप करनेके समय जो विधि है, वह ब्रह्माके लिये है।'

'सूत्र-ग्रन्थोंमे जहा-कही मन्त्रका प्रथम चरण लिखा गया है, वहा समस्त मन्त्र पढना चाहिये।'

'जहां आधी ऋचाका उल्लेख है, वहा उस ऋचाके साथ समस्त सूक्त समझना चाहिये।'

'एक पादसे कुछ अधिक जहा ऋचा लिखी है, वहा 'तृच' वा तीन ऋचाओको समझना चाहिये।'

'जप (पाठ), अनुमन्त्रण (अर्थ-स्मरणके साथ पाठ), अभिमन्त्रण (सशोध्य द्रव्यादिकी ओर देखकर अर्थ-स्मरणके साथ पाठ), आप्यायन (जल-स्पर्श कर-करके अर्थ-स्मरणके साथ पाठ) और उपस्थान (विनम्र भावसे अर्थ-स्मरणके साथ पाठ) जहा कही विहित है, वहा-वहा सब स्थलो मे मन्त्रोका उपाशु-प्रयोग (अशब्द उच्चारण अर्थात् नि शब्द जीभ चलाकर पाठ करना) जानना चाहिये।'

'मन्त्र-पाठ (अर्थ-स्मरणके साथ उच्च स्वरसे पाठ्य)के साथ ही सार अनुष्ठान करने चाहिये।'

'साधारण विधिसे विशेष विधि वलिष्ठ है।'

'पूर्वोक्त 'तीर्थ'की प्रदक्षिणा करनेके बाद वेदीकी उत्तर श्रोणी (वेदीके पश्चिमके दोनो कोनो) के ऊपर दाहिना पैर उठाकर और गुल्फ को समभावसे रखकर पादाग्र द्वारा, वेदीपर बिछाये हुए, कशोको लाघे और दोनो हाथोकी अँगुलियोको (एक हाथकी अँगुलियोके भीतर दूसरे हाथकी अँगुलियोको घुसाकर) अपने हृदय या गोदमे रखते हुए तथा अन्त-रिक्षका निरीक्षण करते हुए होता बैठे।' 'यही वेदीकी उत्तर श्रोणी ही होताका कर्म-स्थान है।' 'सारे कार्योमे होताको यही बैठना पडता है।'

'अध्वर्यु (यज्ञका विधिवत् सम्पादन करनेवाले) के द्वारा आदेश पानेपर ही होता सामिधेनी (अग्नि जलानेके लिये पठनीय मन्त्र) आदिका जप करे।'

'होम करनेके समय वाये हाथकी अँगुलियोको फैलाकर हृदय वा गोदमें रखना चाहिये।'

आश्वलायन-श्रौतसूत्रके प्रथमाध्यायके प्राय २७ सूत्रोका भावानुवाद ऊपर दिया गया है। इससे श्रौत यज्ञोका आभास मिल सकता है।

अव आश्वलायन ऋषिके गृह्यसूत्रका प्रसग देखिये। यह चार अध्यायोमे विभाजित है। गृह्यसूत्रोके यज्ञ नित्य कर्म है अर्थात् अवश्य करणीय है। इसीलिये इन्हें पाक यज्ञ वा प्रधान यज्ञ कहा जाता है। ये यज्ञ, कुछ मूल रूपमे और कुछ रूपान्तरित होकर, अव तक प्रचलित है।

आश्वलायन-गृह्यसूत्रके तृतीय अध्यायकी प्रथमा कण्डिकाके तीन सूत्रोमे देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञके लक्षण और स्वरूप वताकर चौथे सूत्रमे कहा गया है—

"तानेतान् यज्ञानहरहः कुर्वीत।"

अर्थात् 'इन पाचो यज्ञोको प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।'

इसके चतुर्थ अध्यायकी चतुर्थी कण्डिकामे नित्य अग्निहोत्री (आहिताग्नि) की अन्त्येष्टि-क्रियाका विषय पढने योग्य है। लिखा है-'पित्रादि के शवकी क्रियाके अधिकारी पुत्रादि पुरोहितको बुलाकर कहे, 'आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्निको एक साथ प्रज्वलित कीजिये।' 'यदि मृतकको आहवनीय अग्नि पहले स्पर्श करे, तो समझना चाहिये कि उसे स्वर्ग मिला, वह वही समृद्ध होगा। उसके पुत्रादि भी इस ससारमे समृद्ध होगे।'

'यदि मृतकको पहले गार्हपत्याग्नि स्पर्श करे, तो समझना चाहिये कि उसे अन्तरिक्ष मिला, वह वही फूले-फलेगा और उसके पुत्रादि भी ससारमे वैभव पावेगे।'

'यदि दक्षिणाग्नि पहले स्पर्श करे, तो जानना चाहिये कि उसे मनुष्य-लोक मिला, वह वही अभ्युदय करेगा और उसके पुत्रादि भी ऐश्वर्य प्राप्त करेगे।'

'यदि एक साथ ही तीनो अग्नि शवको स्पर्श करे, तो समझना चाहिये कि वह मुक्त हो जायगा।'

विवाहमे व्यवहृत अग्नि सदा घरमे रखा जाता था। उसे गार्हपत्याग्नि कहा गया है। स्थालीपाक, मोहनभोग आदि जिसमे बनते थे, वह दक्षिणाग्नि है। अग्निहोत्र-यज्ञाग्निको आहवनीयाग्नि कहा गया है।

चिता प्रज्वलित हो जानेपर पढना चाहिये-"**प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वेभिः**" (ऋग्वेद १० १४.७) अर्थात् 'जिस मार्गसे पूर्वज गये है, उसी मार्गसे तुम भी जाओ।'

'जिसकी मृत देहका ऐसा सत्कार होता है, उसकी आत्मा धूमके साथ ही स्वर्ग जाती है।'

चिता जल जानेपर पुत्रादि और अन्य शववाहक "**इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्**" (ऋग्वेद १० १८.३) अर्थात् 'ये जीवित मनुष्य मृतकके पास

से लौट रहे हैं'—पढते हुए, चिताको वायें हाथ छोडकर तथा पीछे न देखते हुए घरकी ओर प्रस्थान करे।'

'अनन्तर स्वच्छ जलाशयमें स्नान करके मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए सव लोग जलाञ्जलि दे। इसके अनन्तर नये वस्त्र पहने। परन्तु सूर्यास्तके वाद नक्षत्र-दर्शन होनेपर ही घरमें प्रवेश करे।' 'मृत-सस्कार रात्रिमे होनेपर सूर्योदयके वाद घरमें प्रवेश करे।'

इसके अनन्तर सप्तमी और अप्टमी कण्डिकाओमे विस्तृत श्राद्ध-विधि है। जिज्ञासुओको वही देखना चाहिये। गृहस्थोको यह सारा प्रकरण ध्यानसे पढना चाहिये। यहा यह भी ध्यान देनेकी वात है कि प्रत्येक रुद्-गृहस्थको आहिताग्नि होना अनिवार्य वताया गया है। पहले प्रत्येक गृहस्थ आहिताग्नि होता भी था—अव भी कुछ ऐसे पुण्यात्मा मिलते है।

सामवेदकी कौथुमशाखाका गोभिल-गृह्यसूत्र चार प्रपाठकोमें विभक्त है। इसके द्वितीय प्रपाठकके प्रथम, द्वितीय और तृतीय खण्डोके कुछ सूत्रोमे विवाह-सस्कारका वडा ही मार्मिक विवेचन है। इससे वैदिक रीति के विवाह-विधानकी झलक दिखाई देती है।

द्वितीय प्रपाठकके प्रथम खण्डके १२ वें सूत्रसे प्राप्त प्रसग चलता है। कहा गया है, 'पाणि-ग्रहण करनेके लिये पहले घरमें अग्नि-स्थापन करना चाहिये।' 'अनन्तर कोई कन्याका आत्मीय, जिस तालाबका जल कभी नही सूखता, उसके जलसे कलशको भरकर और कपड़ेसे ढककर तथा स्वय वाक्सयत होकर अग्निके सम्मुख रखे। अनन्तर प्रदक्षिणा करनेके बाद अग्निके दाहिने उत्तराभिमुख बैठे। एक दूसरा मनुप्य भी इसी तरह हाथमे लकडी लेकर बैठेगा। अग्निके पीछे शमीपत्रके साथ चार अगुली ऊँचा भुना धान्य (लावा) और एक लोढा रखा जाना चाहिये। पश्चात् कन्याको सिरतक नहला देना चाहिये। स्नानके अनन्तर भावी पति **'या अकृन्तन्'** (मन्त्र-ब्राह्मण ५) और **'परिधत्त धत्त वाससा '** (म०

ब्रा० ६) मन्त्र पढ़कर कन्याको अखण्ड वस्त्र परिधान करावे। पुन. भावी पति कन्याको वस्त्राच्छादित और यज्ञोपवीतिनी करके तथा सामने लाकर **'सोमोऽददत्'** (म० ब्रा० ७) मन्त्र पढे (**'यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत्'**)। अनन्तर अग्निके पीछे रखे हुए चटाई आदि किसी आसनको कन्या के पैरसे चलाकर अग्निके पास फैलाये गये कुशोतक लिवा लावे। कन्यासे **'प्र मे'** (म० ब्रा० ८) मन्त्रका पाठ करावे। यदि कन्या मन्त्रपाठ करना न जानती हो, तो भावी पति **'प्रास्या'** (म० ब्रा० ९) मन्त्रका स्वयं पाठ करे।'

—पैरसे लायी गयी चटाईके पूर्वी कोनेपर वैठे हुए पतिके दाहिने कन्या वैठे। कन्या अपने दाहिने हाथसे वरका दाहिना कन्धा स्पर्श करे और वर कन्याके कल्याणके लिये **'अग्निरेतु प्रथमः'** (म० ब्रा० १०-१५) आदि छ मन्त्रोका पाठ करते हुए अलग-अलग तीन वार हवन करे। अन्तको 'भूर्भुव स्व.' मन्त्रसे चतुर्थ होम करे।'

इस तरह इस गृह्यसूत्रके द्वितीय प्रपाठकके द्वितीय खण्डके १७ सूत्रो तथा तृतीय खण्डके १२ सूत्रोमे विवाह-मण्डपकी सारी विधिया और विधान कहे गये हैं। आर्यजीवनमे विवाह-सस्कार सबसे बड़ा सस्कार है। विवाह-मण्डपमे पद-पदपर प्रतापी और शक्तिशाली मन्त्रोका पाठ करके इस सस्कारको प्रबल और पावन वना दिया गया है। यह पूरा प्रकरण वार-वार पढने योग्य है। इसमे कन्याको यज्ञोपवीत पहनानेकी वात है; मन्त्र-पाठकी वात भी है। कुछ लोगोका मत है कि असाधारण कन्याओ के लिये ही ये दोनो विधिया है—साधारणके लिये नही।

सातवे खण्डमे 'जात-कर्म' सस्कारका कथन है। कहा गया है—'जिस समय सूतिका-गृहमे दाई आदि वोल उठे—'कुमारने जन्म लिया', उसी समय पिता कहेगा, 'नाभि-सलग्न नाड़ीको काटकर और स्तन्य-पान कराकर इसकी रक्षा करनेकी अभिलाषा करो।' 'चावल और जौको पीसकर उसे

अपने अँगूठे और अनामिकासे बच्चेकी जीभपर लगा देना चाहिये। साथ ही मन्त्र-ब्राह्मणके (१ ५ ८) मन्त्रोको पढते भी जाना चाहिये। अनन्तर मन्त्र-ब्राह्मणके १ ५ ९ और छन्द आर्चिकके २ २ ३ ७ मन्त्रोको पढते हुए अँगूठे और अनामिकासे वा स्वर्णकी शलाका (सीक) के अग्र भागसे जीभपर घी लगा देना चाहिये।' 'दस राततक जननाशौच रहता है।'

आठवें खण्डमे निष्क्रामण-सस्कारका विधान है। यह जन्मसे तीसरे शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको विहित है। इसी खण्डमें नामकरण-विधि भी है। जन्मतिथिसे दसवे वा सौवे वा एक वर्ष बीत जानेपर ग्यारहवें दिन नामकरण करनेकी विधि है। नामका पहला अक्षर घोष हो वा अन्तस्थ हो, अन्त्य वर्ण दीर्घ हो या विसर्ग हो, किसका नाम सम हो और किसका विषम—इन बातोका भी विचार किया गया है। इसी खण्डमे अपनी प्रत्येक जयन्तीमे देवार्चनका विधान है। नवम खण्डमे चूडाकरण है और दसवेंमे उपनयन-सस्कार है।

चूडाकरणमें वसिष्ठ गोत्रवालोको 'पचचूड' छोडकर, कुण्डपायी कुलवालोको 'चूडात्रय, छोडकर और कौथुमशाखावालोको शिखाके साथ ही मुण्डन करानेका आदेश है। इन सस्कारोको करानेवाले पुरोहित को प्रत्येक सस्कारमे एक गौ देनेकी आज्ञा है।

वेदाध्ययनके लिये गुरुके समीप कुमारको ले जानेको उपनयन कहा जाता है। उपनयनका अर्थ यज्ञोपवीत समझना ठीक नही।

'जिस दिन गर्भ रहा, उस दिनसे आठवे वर्षमें ब्राह्मण-बालकका, ग्यारहवे वर्षमे क्षत्रियका और बारहवेंमें वैश्यका उपनयन करना चाहिये। यदि नियत समयके भीतर उपनयन नही किया जा सके, तो सोलह वर्षतक ब्राह्मण कुमारका, बाईस वर्षतक क्षत्रियका और चौबीस वर्षतक वैश्यका उपनयन हो सकता है, 'यदि इन वर्षोंके भीतर उपनयन नही कराया जा सका, तो तीनो जातियोके बालकोको गायत्री मन्त्र लेनेका, वेदाध्ययनका, यज्ञ करनेका और विवाह करनेका अधिकार ही विनष्ट हो जाता है।'

किस जातिके बालकका किस वस्तुका वस्त्र, कैसा उत्तरीय चर्म, करधन (कटि-बन्धनी) और दण्ड हो, इसकी भी विधि बतायी गयी है।

अनेकानेक कृत्योके अनन्तर और गायत्री-उपदेशके पहले यज्ञोपवीत-धारणका विधान है। यद्यपि सूत्रकारोने यज्ञोपवीतके सम्बन्धमे इस प्रसग मे कुछ नही लिखा है, परन्तु उपनयन होते ही बालकके लिये प्रात-सायं हवन करनेका विधान है और विना यज्ञोपवीती बने दैव-कार्य करनेका अधिकार ही नही प्राप्त होता, ऐसा सूत्रकारोका मत है; इसलिये गायत्री-उपदेशके पहले ही यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।*

'उपनयनके पश्चात् तीन दिनोतक नमक नही खाना चाहिये।'

'इस सस्कारके लिये भी दक्षिणा गौ है।'

उपनयन यथाविधि तो नही, परन्तु कुछ रूपान्तर प्राप्त करके प्रचलित है। गुरुकुल-वास और वेदाध्ययनके लिये तो बहुत ही कम उपनयन होता है; किन्तु जनेऊ पहननेके लिये विवाहके पहले किसी तरह उपनयंन करा दिया जाता है। गृह्यसूत्रके अनुसार ही यह सस्कार होता है, परन्तु वेद-शाखाओके अनुसार विविध गृह्यसूत्र विभिन्न व्यक्तियोको मान्य है, इसलिये देशके अनेक प्रान्तोमे उपनयन-सस्कारमे भेद दिखाई देता है। सभी वेद-शाखियोके लिये न तो एक ही गृह्यसूत्र मान्य है, न सभी गृह्यसूत्रोका एकसा विधान ही है। पुरोहितोमे वेदाध्ययनके अभाव और अशिक्षाके कारण भी उपनयन-सस्कार बहुत कुछ विकृत और अशुद्ध हो पड़ा है।

---

* तैत्तिरीयारण्यक (२.११)में लिखा है--"प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः। यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्।" (यज्ञोपवीतीका यज्ञ भली भांति स्वीकार किया जाता है। जो कुछ यज्ञोपवीती पढ़ता है, वह यज्ञ ही करता है।)]

सामवेदकी गौतम-सहिता तो अब नही मिल रही है, परन्तु उसका गौतमधर्म सूत्र अतीव प्रसिद्ध है। उसमें अठाईस अध्याय है। तीसरे अध्यायमे आश्रमधर्म, चौथेमे मिश्रित जातियो, आठवेमें चालीस सस्कारो और ग्यारहवेमें राजधर्मका विवरण है।

तृतीय अध्यायके प्रथम सूत्रसे मालूम होता है कि 'किसी-किसी आचार्यके मतसे वेदाध्ययनके अनन्तर मनुष्य किसी भी एक ही आश्रममें जीवन भर रह सकता है।'

दूसरे सूत्रमे बताया गया है कि 'ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वैखानस और भिक्षु नामके चार आश्रमवाले है।' 'इन सबका जन्म-स्थान गृहस्थ ही है, क्योकि अन्य तीन सन्तान नही उत्पन्न करते।'

'वेदाध्ययनकी समाप्ति तक ब्रह्मचारीको गुरुके आधीन रहना चाहिये।' 'गुरुदेवका कार्य कर लेनेके बाद वेद-पाठ करना चाहिये।' 'यदि गुरुका कोई कार्य न रहे, तो गुरु-पुत्रका कार्य करे।' 'गुरु-पुत्रका कोई कार्य न रहे, तो अपनेसे ज्येष्ठ ब्रह्मचारीका कार्य करे अथवा अग्निका कार्य करे।' 'जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी शुद्ध आचरणके द्वारा ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते है।'

११ वे सूत्रसे सन्यासीके कर्त्तव्योकी विवृति है। कहा गया है–'भिक्षु (सन्यासी) को सर्वथा सम्पत्ति-शून्य होना चाहिये'–"**अनिचयो भिक्षुः।**" 'उसको ऊद्र्ध्वरेता होना चाहिये।' 'वर्षाकालमे उसे एक स्थानपर रहना चाहिये।' 'जिस घरके लोग भोजन नही कर चुके हो, वही भिक्षा लेनी चाहिये।' 'उसे सब तरहकी विलास-वासनाको छोड देना चाहिये।' 'उसे, वचन, नेत्र और कर्मको सयत रखना चाहिये।' 'गुप्तागोको ढकनेके लिये केवल कौपीन पहनना चाहिये।' 'किसी-किसी मतसे गेरुएमे रँगकर केवल एक वस्त्र धारण करना चाहिये'–"**प्रहीणमेके निर्णिज्य।**" 'वृक्ष वा धान्य आदिसे जो अश स्वय गिर चुका है, उसे ही सन्यासी व्यवहारमें ले आवे। अपने पेटके लिये स्वय कुछ न तोडे।' 'वर्षाकालके अतिरिक्त सन्यासी दो रात एक ग्राममे न रहे।' 'भिक्षु पूरा मुण्डन करा डाले वा केवल शिखा रखे'–"**मुण्ड. शिखी वा**" 'पर्यटनके समय अपने पैरसे अन्नादिके बीज

नष्ट न करे।' 'हिसक और कृपालुको बराबर समझे।' 'अपने स्वार्थके लिये किसी भी कार्यको न करे।'

सन्यासके इन नियमोका पालन पहले भली भाति किया जाता था। पहलेके बौद्ध भिक्षु (बौद्ध पुरोहित) भी ब्राह्मण-भिक्षुओकी देखा-देखी इन नियमोका कड़ाईसे पालन करते थे। बौद्धोको देखकर शाम, मिश्र, ग्रीस और यूरोपके विभिन्न देशोमे भी भिक्षु होकर लोग सयत और तपस्वी जीवन बिताते थे। ब्राह्मण-भिक्षुओके आश्रमोको देखकर बौद्ध-विहार बने और उनकी नकलपर ईसाई बिहार(Monastry)बने। तात्पर्य यह है कि हमारे यहा सन्यासियोका जीवन इतना त्यागमय और आदर्श था कि ससारने उनकी नकल की। परन्तु **"ते हि नो दिवसा गताः"** (हमारे वे दिन चले गये)! अब तो गृहस्थसे भी बढकर कितने ही सन्यासी विलासी बनने लगे, लाखो रुपये बटोरने लगे, महल बनाने लगे, सत्रह तरहकी पोशाके पहनने लगे, गद्दी बाधने लगे! ऐसे लोगोने हिन्दूजातिसे त्याग और तपस्याकी महिमा ही मिटा डाली!

२६ वे सूत्रसे वैखानस (वानप्रस्थ) के कर्त्तव्योका उल्लेख है। कहा गया है—'वानप्रस्थ वनमे फल-मूल खाकर तपस्या करे।' 'साय-प्रात होम करे।' 'ग्राम्य अन्न आदिका भोजन न करे।'

तैत्तिरीय-सहिता (५ २ ५ ५) से पता चलता है कि सात प्रकारके ग्राम्य अन्न और सात प्रकारके आरण्य अन्न है। तिल, उडद, चावल, जौ, गेहूँ, चीनी धान (अणु) और प्रियगु (श्यामा लता) आदि सात ग्राम्य अन्न है तथा वेणु, श्यामाक, नीवार, जर्त्तिल, गवेधुका, मर्कटका और गार्मुत आदि सात अरण्यके अन्न है। मतलव यह कि जितने अन्न ग्रामोमे उत्पन्न होते है, उन्हे छोडकर जगलमे होनेवाले अन्नोको ही वैखानस खाय।

'वानप्रस्थ पंचमहायज्ञ प्रतिदिन करे।' 'योग्य अतिथिकी सेवा करे।' 'जोती हुई भूमिपर नही रहे।' 'वानप्रस्थ कभी गावमे न जाय।' 'जटा

धारण करे और चिथडा (वस्त्र-खण्ड) वा पशु-चर्म धारण करे।'

'यदि किसी एक ही आश्रममें रहना हो, तो वेदाध्ययनके अनन्तर गृहस्थाश्रममे ही रहना अच्छा है, क्योकि वेदमे गृहस्थाश्रमका ही प्रत्यक्ष विधान है।'

सक्षेपमें ये वैंखानसके कर्त्तव्य है। पहले ऐसे आदर्श वैखानस अनेक होते थे। ग्रीक आदिकोने ऐसे भारतीय वानप्रस्थोका अपने ग्रन्थोमे उल्लेख किया है। आदर्श सन्यासियोकी तरह इन दिनो आदर्श वानप्रस्थ भी नही के बराबर मिलते है।

आठवें अध्यायमें ब्राह्मण और राजाका स्वरूप, लक्षण आदि कह कर चालीस सस्कारोका विवरण बताया गया है। कहा गया है-'ससारमे बहुश्रुत ब्राह्मण और राजा, ये दो धृत-व्रत है।' 'सारे मनुष्य और पशु-पक्षी इन्हीके वशमे रहते है।' 'प्रजाका रक्षण, जातियोकी विशुद्धता और धर्मानुष्ठान इन्हीके हाथमें है।' 'बहुश्रुत वही है, जो वेद-वेदागके ज्ञाता है और जो लोकाचारसे अभिज्ञ है, जो उत्तर-प्रत्युत्तर-रूप वैदिक विचारशास्त्र और वैदिक इतिहास, पुराणमें निपुण है, जो उक्त शास्त्रोका सम्मान करते और शास्त्रीय विधानके अनुसार जीवन विताते है, जो चालीस सस्कारोसे सुसस्कृत है, 'जो ब्राह्मणोचित छ कर्मोमे लीन है,' 'जो (राजा) द्विजोचित तीन कर्मोमे तत्पर है,' 'जो सामयिक आचार बतानेवाले कल्पसूत्रो और स्मृतियोमे कथित कर्त्तव्योसे शिक्षित है।"

इसी गौतमधर्मसूत्र (१० १ २) मे कहा गया है कि अध्ययन, यजन और दान-ये तीन कर्म तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-तीनो द्विजातियोके लिये है, परन्तु अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह-ये तीन केवल ब्राह्मणके लिये है। इस तरह ब्राह्मणके छ कर्म है।

इन छ कर्मो से युक्त और उक्त लक्षणोसे समन्वित ब्राह्मणको अदण्ड्य बताया गया है। लिखा है-'बहुश्रुत ब्राह्मण अवध्य, अबन्ध्य, अदण्ड्य, अबहिष्कार्य, अपरिवाद्य (अनिन्द्य) और अपरिहार्य है।'

सुप्रसिद्ध ४२ सस्कारोमेसे निष्क्रामण और अन्त्येष्टिको गौतम सस्कार नही मानते, इसलिये इनके मतसे ४० ही सस्कार है। इनका यह भी मत है कि चालीस सस्कारोमेसे गर्भाधानादि चतुर्दश सस्कार, पच महायज्ञ और सप्त पाकयज्ञ (सव छब्बीस) गृह्य और नित्य कर्म है। इन नित्य कर्मों (आवश्यक कर्त्तव्यो) को करनेवाला यदि 'दया, क्षमा, द्वेष-शून्यता, आयास-हीनता, मंगल, अकृपणता और अस्पृहता आदि आठ गुणोसे सम्पन्न है, तो वह ब्रह्मके सायुज्य और सालोक्यको प्राप्त करता है—भले ही वह श्रौतसूत्रोके सात सोमयज्ञों और सात हविर्यज्ञोको न करता हो।'

गौतमधर्मसूत्रके एकादश अध्यायमे राजधर्मका वर्णन है। लिखा है—"**राजा सर्वस्येष्टो ब्राह्मणवर्जम् ।**" अर्थात् 'ब्राह्मणको छोडकर राजा सबका अधिपति है।' 'राजाको साधुकारी और साधुवादी होना चाहिये।' 'उसे तीनो वेद और न्याय-शास्त्रका पण्डित होना चाहिये।' 'उसे शुचि, जितेन्द्रिय, गुणी सभासदोसे युक्त और उपाय-सम्पन्न रहना चाहिये।' 'सारी प्रजाके प्रति उसे समदर्शी होना चाहिये।' 'वह प्रजाका हित-साधन करे।' 'ब्राह्मणके सिवा राजा सबसे ऊपर वैठे।' 'प्रजाको राजाका सम्मान करना चाहिये।' 'राजा वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मकी रक्षा करे।' 'राजा धर्म-पतितोको धर्ममे स्थित करे।' 'राजा विद्या, सत्कुल, वक्तृत्व, रूप, वय और शीलसे सम्पन्न ब्राह्मणको पुरोहित वनावे।' 'पुरोहितकी आज्ञासे धर्मानुष्ठान करे।' 'तभी वह समृद्धि प्राप्त करेगा।' 'राजा ज्योतिषियो की बात माने।' 'क्योकि ज्योतिर्विद्याके ऊपर ही योग-क्षेम निर्भर करते है।' 'वेद, धर्मशास्त्र, सामयिक आचार और पुराणके अनुसार राजा न्याय करे।' 'वेदके अनुकूल देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्मको भी राजा प्रमाण माने।' 'कृषक, वणिक्, पशुपालक, सूद लेनेवाले और शिल्पी लोग पचायत के द्वारा विचार करे।' 'राजाको अपना निर्णय वतानेपर राजा धर्मानुसार व्यवस्था दे।'

आगे कहा गया है—'यथार्थ निर्णयके लिये तर्क बढिया उपाय है'—"न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपाय ।" 'तर्कके द्वारा प्रकृत अवस्था समझकर सिद्धान्त करना चाहिये।' 'परस्पर-विरोधी प्रमाण मिलनेपर वेद-त्रयके पारगामी वृद्ध ब्राह्मणसे अपना कर्त्तव्य समझकर राजाको सिद्धान्त करना चाहिये।' 'राजाको ऐसा करनेसे ही इष्टकी प्राप्ति होगी।' 'वेदका भी निर्देश है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर ही देवो, पितरो और मनुष्योका पालन-पोषण करते है।' 'दम धातुसे दण्ड शब्द बना है (निरुक्त २ १ ४), इसलिये राजाको दुष्टोका दमन भी करना चाहिये।' 'विभिन्न वर्णो और आश्रमोका कर्त्तव्य पालन करके लोग परलोक जाते है और वहा कर्म-फल-भोगके अनन्तर शेष कर्म-फल-भोगके लिये यथायोग्य देश, जाति, कुल, रूप, आयु, विद्या, सम्पत्ति, सुख और मेधाकी प्राप्तिके निमित्त मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करते है।' 'कर्त्तव्य-हीन विनष्ट हो जाते है।' 'राजा और आचार्य ही उन्हे धर्ममे स्थित कर विनाशसे बचाते है।' 'इसलिये राजा और आचार्य की निन्दा नही करनी चाहिये।'

यदि कल्पसूत्रोके उपर्युक्त अनुपम आदेशोके अनुसार हम कर्मानुष्ठान करे, धर्माचरण करे, कर्त्तव्य-परायण हो और सद्गुण-सम्पन्न बने, तो राम-राज्यके आनेमे कितनी देर लगे ?

चतुर्दश अध्याय

निघण्टु और निरुक्त

अधिकाश विद्वानोका मत है कि "प्रजापति कश्यपने वेदोके अनेकार्थक, एकार्थक और दुरूह शब्दोका सग्रह किया। सग्रहका नाम इसलिये 'निघण्टु' पड़ा कि निघण्टु वेदोका निगमन वा बोध कराता है। परन्तु जैसे निर्घण्ट शब्द सूचीपत्रके अर्थमे रूढ है, वैसे ही निघण्टु शब्द वैदिक कोषके अर्थमे।

जिस निघण्टुपर यास्कने 'निरुक्त' लिखा है, उसे सभी वेदज्ञाता, महाभारतके प्रमाणानुसार, कश्यप-कृत मानते है; परन्तु स्वा० दयानन्द सरस्वती उसे यास्क-प्रणीत बताते है। यही मत श्रीभगवद्दत्तजीका भी है, जो प्रसिद्ध आर्यसमाजी वेदज्ञ है। भगवद्दत्तजी लाहौरमे छपे एक "आथर्वण-परिशिष्ट"को भी कौत्सव्य-कृत निघण्टु मानते है। सुना है, भगवद्दत्तजी ने एक तीसरे निघण्टुको पूनाके "पाठक-स्मारक-ग्रन्थ"मे छपवाया है। इसे वे शाकपूणि-रचित मानते है। उनकी यह भी धारणा है कि जिन निरुक्तकारो और आचार्योका उल्लेख यास्कने अपने निरुक्तमे किया है, वे सब निघण्टुकार भी थे। इस तरह १५-२० निघण्टुओकी रचनाका उन्होने अनुमान लगाया है, परन्तु प्रचलित एक ही है, जिसपर यास्कने निरुक्त लिखा है।

इस निघण्टुमे तीन काण्ड और पाच अध्याय है। पहले तीन अध्याय नैघण्टुक-काण्ड, चौथा नैगम काण्ड और पाचवा दैवतकाण्ड कहाते है। इस निघण्टुपर देवराज यज्वाकी टीका है। इस निघण्टुके लघु और बृहत् दो पाठ है।

प्रयुक्त होता है। यह रूढ अर्थ है। निघण्टुमे वेदोके कठिन शब्दोंकी एक क्रम-बद्ध तालिका है और निरुक्तमे इन शब्दोकी व्युत्पत्ति दिखायी गयी है। यास्कके मतसे सभी शब्द धातुओसे उत्पन्न हुए है। शब्द-व्युत्पत्ति दिखाकर इस मतको यास्कने परिपुष्ट किया है। निरुक्तके सम्बन्धमे कहा गया है–

"वर्णागमो वर्ण-विपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण-विकार-नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।"

अर्थात् निरुक्तके पाच कार्य है–वर्णागम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और धात्वर्थ-सम्बन्ध। ये पाचो बाते व्याकरणमे है, इसलिये निरुक्तको व्याकरण कहा जाता है। कई वेदज्ञ कहते है, प्रातिशाख्योमे वैदिक व्याकरणकी जो त्रुटिया रह गयी है, उन्हे दूर करनेके लिये निरुक्त-शास्त्रकी रचना करनी पडी।

यद्यपि निघण्टुमे अनेकार्थक शब्दोको समानार्थक शब्दोसे पृथक् करके दिखाया गया है, परन्तु कौन शब्द किस अर्थमे प्रचलित था, तत्कालीन विद्वान् क्योकर किसी शब्दको किसी विशिष्ट अर्थमे लेते थे, अमुक शब्दकी प्रवृत्ति अमुक अर्थमे क्यो और कैसे हुई, इन बातोका रहस्य निघण्टुमे नही बताया गया है। अन्तिम दो अध्यायोमे तो केवल पदोकी गणना है। कैसे प्रत्येक शब्दसे क्या आशय ग्रहण करना चाहिये, इसका कुछ पता नही है। परन्तु यास्कने जो निरुक्त नामसे इसकी व्याख्या की है, उससे वेदार्थ समझनेमे अद्भुत सहायता मिलती है। यद्यपि निरुक्तमे भी इतना स्पष्ट नही किया गया है कि पशु-वाचक गौ शब्द पृथिवी-वाचक कैसे और कहा-कहा हुआ, तो भी निरुक्त वैदिक विज्ञानका भाण्डार गिना जाता है।

यास्कके निरुक्तमे बारह अध्याय है। परिशिष्ट रूपमे दो अध्याय और है। सायणके मतसे ये १२ ही यास्ककृत है। इसके दो पाठ है–गुर्जर-

आवश्यक है। जो भली भाति व्याकरण नही जानता, वह निरुक्तका पण्डित नही हो सकता। इसीलिये यास्कने "**नावैयाकरणाय**" लिखा है। जिसने व्याकरण और निरुक्तका अच्छी तरह अध्ययन किया है, वही पूर्ण वैयाकरण हो सकता है।

निरुक्त एक वेदाग है, ग्रन्थ-विशेप नही, परन्तु यास्कके निरुक्तके अतिरिक्त अन्य निरुक्त अप्रसिद्ध है, इसलिये निरुक्त कहनेसे यास्कके निरुक्तका ही बोध होता है। यद्यपि निरुक्तसे निघण्टु भिन्न है—दोनो दो वस्तुएँ है, परन्तु दोनोके साथ-साथ रहनेके कारण सायणाचार्यने निघण्टु को ही निरुक्त कहा है और लाक्षणिक रूपसे उसकी व्याख्याको भी निरुक्त कहा है।

निरुक्तके प्रारम्भमे यास्कने महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी है, जिसमे निघण्टु-निरुक्त-निर्माणकी प्रयोजनीयता, वेद-विद्रोहियोकी बातोका खडन, पद-विभाग और निर्वचनकी रीति, अर्थ-हीन-वेद-पाठसे हानि आदि बातो को लिखा है। भूमिकाके पश्चात् 'गौ' से लेकर '**देवपत्न्य**' तक निघण्टुके सारे शब्दोकी व्याख्या की गयी है। जिस भाषा-विज्ञानका आविष्कार अभी हालमे यूरोपमे हुआ है, उसका आधार निरुक्त ही है, जिसकी रचना हजारो वर्षोकी है। वस्तुत निरुक्तमे व्याकरण और भाषाविज्ञानकी प्रधानता है, परन्तु इसमे साहित्य, विज्ञान, समाजशास्त्र आदिकी भी बाते है।

वेदमे इन्द्र और वृत्रका जो युद्ध-वर्णन है, वह ऐतिहासिक है; परन्तु निरुक्तकार एक विलक्षण अर्थ करते है। यास्क कहते है,—"**तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्ष-कर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति।**"

अर्थात् 'यह वृत्र कौन है? निरुक्तकार कहते है कि यह मेघ है और ऐतिहासिक कहते है कि त्वाष्ट्र असुरका नाम वृत्र है। जल और तेजके मेलसे वृष्टि होती है, उसीका उपमा-रूपसे युद्ध-वर्णन किया गया है।'

निरुक्तकार कहते है कि कही इन्द्रकी वृत्रासुरसे लडाई हुई होगी, इसे हम अस्वीकार नही करते, परन्तु वेदमे इन्द्र-वृत्र-युद्धके वहाने वैज्ञानिक वर्षाका वर्णन है। तात्पर्य यह है कि यहा अप्रस्तुत प्रशसा (अन्योक्ति) अलकार है।

यास्कने 'गौ' शब्दका एक अर्थ 'किरण' किया है। वही उन्होने यह भी कहा है कि "**अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, तदनेनोपेक्षितव्यम्—आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।**" अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमा मे प्रकाश पहुँचाती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश जाता है।' दुर्गाचार्यने इसकी व्याख्या की है कि 'चन्द्रमा जलमय है, सूर्य तेजसे ही वह प्रकाशित होता है।' आज कलके विज्ञानवेत्ता भी कुछ ऐसा ही कहते है।

निरुक्तमे उपमा आदि अलकार तो है ही—उपमावाचक शब्दोका भी विचार है—"**अग्निरिति रूपोपमा हिरण्यरूपः सः।**" "**वदिति सिद्धोपमा—ब्राह्मणवद् वृषलवत्।**"

एक स्थानपर लिखा है—"लुप्तोपमाको ही अर्थोपमा कहा जाता है, क्योकि शब्दके विना अर्थानुसन्धानसे ही यह जानी जाती है। किसीकी प्रशसा करते है, तो उसे लोग सिंह, व्याघ्र कहते है और निन्दा करनी होती है तो उसे कुत्ता, कौवा कहते है—यद्यपि कोई मनुष्य न तो सिंह-वाघ ही हो सकता है, न कुत्ता-कौवा ही"—"**अथ लुप्तोपमान्यर्थोपमान्याचक्षते—सिंहो व्याघ्र इति पूजायाम्, श्वा काक इति कुत्सायाम्।**" यहा निरुक्तकारने सादृश्यमूला अतिशयोक्तिको लुप्तोपमा कहा है।

इस प्रकार निरुक्तकारने अनेकानेक वैज्ञानिक और साहित्यिक विषयो का उल्लेख किया है।

वैदिक शब्दोमें अधिकाशका निर्वचन करके यास्कने स्पष्ट अर्थ कर दिया है। वहुतसे ऐसे शब्द है, जिनका अर्थ 'ढूढ-ढाढ' कर धात्वर्थसे वा विकृत रूपसे वा वाक्यमें स्थान देखकर अथवा जिन-जिन वाक्योमें उनका

प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया गया है। तो भी वैदिक सहिताओमे कुछ ऐसे शब्द है, जिनका अर्थ किया तो गया है, परन्तु सदिग्ध है। ऐसे शब्दोका निश्चित अर्थ निकालनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे शब्दोके सदिग्ध अर्थ होनेके कई कारण है—१ इन शब्दोके सम्बन्धकी सम्प्रदाय-परम्पराका सर्वथा लुप्त हो जाना, २ इनका कम प्रयोग होना तथा ३ जिन प्रसगोमे ये पाये जाते है, उनसे इनके ठीक अर्थका पता न चलना। अशुद्ध पाठोके कारण भी अर्थ-निश्चयतामे बाधा पडती है। यद्यपि पदपाठ, अनुक्रमणी, निघण्टु और भाष्य-टीकाओके रूपोमे विशेष सतर्कता की गयी, ताकि पद-पाठ ज्योके त्यो रहे, परन्तु वेद-मन्त्रोको सुन-सुनकर कण्ठस्थ करनेवालो और लिखनेवालोकी त्रुटियोके कारण अनेक पाठान्तर हो गये है।

अनेक पाश्चात्त्य और उनके अनुयायी वेदज्ञोका विचार है कि 'ग्रीक, लैटिन, प्राकृत आदि भाषाओका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके अनन्तर ही वेदार्थका ठीक पता लगता है। जैसे लैटिन भाषामे Domus शब्दका अर्थ गृह है और वेदमे भी 'दम' शब्दका अर्थ गृह है। जो व्यक्ति केवल सस्कृत ही जानता है, लैटिन नही जानता, वह 'दम:'का अर्थ 'गृहम्' नही कर सकता।' ऐसे ही ग्रीक भाषामे कमल (Kamare = कैमेर) शब्दका अर्थ कर्णद्वार है और वेदमे गर्भ-द्वार। क्या केवल सस्कृतज्ञ कमलका अर्थ कभी गर्भद्वार कर सकता है?'

परन्तु ऐसे सज्जनोको यह जानकर आश्चर्य करना चाहिये कि वेदके निरुक्तकार-टीकाकारोने दम'का अर्थ गृह और कमलका गर्भ-द्वार ही किया है! यही सम्प्रदाय परम्परा-प्राप्त अर्थ है। अन्य प्राचीन भाषाओसे वेदार्थ करनेमे सहायता मिले भी तो प्राचीन वैदिक सम्प्रदायोका परम्परा-प्राप्त ज्ञान प्राप्त किये विना यह सहायता बहुत काम नही दे सकेगी। यास्कके पहले वेदार्थ-ज्ञाता सम्प्रदायोकी परम्परा अक्षुण्ण थी; इसलिये

वेदार्थ करनेमें सरलता थी। यास्कके समय यह परम्परा टट चली थी, इसलिये कठिनता और जटिलता उत्पन्न हो गयी।

स्थान-भेदके अनुसार, प्राकृतिक दृश्योके आधारपर, निरुक्तकारने तीन देव-वर्ग बनाये—पृथिवी-स्थान,अन्तरिक्ष-स्थान और द्यु-स्थानके। पृथिवी के देव अग्नि, अन्तरिक्षके इन्द्र (वा वायु) और द्युके सूर्य माने गये हैं। परन्तु जैसे परस्पर सम्बद्ध होनेके कारण पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु एक ही है, वैसे ही तत्तत्कर्मानुसार तीन नामोसे पुकारे जानेपर भी तीनो देव एक ही हैं—**"तासां महाभाग्यात् एकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।"** दूसरा उदाहरण यास्कने दिया है—**"नरराष्ट्रमिव।"** अर्थात् व्यक्ति-रूपसे भिन्न होते हुए भी जैसे असख्य मनुष्य राष्ट्र-रूपसे एक ही है, वैसे ही प्रकृतिस्थ दृश्योके विविध रूपोमे प्रकट और प्रकाशित होनेपर भी इनमे एक ही परमात्माका निवास है—**"एको देव सर्वभूतेषु गूढ़।"** इस तरह भासमान भेदमे वास्तविक अभेद और भासमान अनेकत्वमे वास्तविक एकता है। इसीलिये निरुक्तकारने लिखा है—**"एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति।"** अर्थात् एक ही आत्मा (परमात्मा) के सब दूसरे देवता विभिन्न अग है। इन्ही परमात्माको याज्ञिको और ब्राह्मण-ग्रन्थोने 'प्रजापति' कहा है। सभी देवता प्रजापतिकी विशिष्ट शक्ति माने गये है। ठीक ही है। गुलाबको चाहे जिस नामसे पुकारिये, उसमे सुगन्ध तो रहेगी ही—गुलाबपन तो रहेगा ही।

निरुक्त (१ २०) से जाना जाता है कि 'ऋषियोने वैदिक मन्त्रोका साक्षात्कार और आविष्कार किया था। इनके अनन्तर 'श्रुतर्षि' हुए, जिन्होने सुन-सुनकर मन्त्रोकी व्याख्या की।' यह स्वाभाविक है कि वार-वार सुनी-सुनायी बातें बहुत कुछ भूल जाती है। सुनने-सुनानेके कारण ही सहिताओमे पाठान्तर हो गये है, शाखाओके कितने ही नाम अशुद्ध हो पडे है, शाखा-प्रवचन-कर्त्ताओ और कल्पसूत्र-कर्त्ताओके नाम एकमे मिल गये है और एक ही मन्त्रकी कई प्रकारकी व्याख्याएँ हो गयी है। ऋग्वेद

(४ ५८ ३) के एक मन्त्रमे महादेव शब्द आया है–"महादेवो मर्त्या आविवेश।" इस महादेव शब्दके कई तरहके अर्थ किये गये है। किसीने महादेव को यज्ञ वताया है, किसीने सूर्य कहा है और किसीने शब्द लिखा है।

इसी तरह ऋग्वेदके १ १६४.४५ मन्त्रकी व्याख्या निरुक्त-परिशिष्ट (१३ ६) और सायणके अनुसार सात तरहकी की गयी है! यास्क (१२.१) के अनुसार "अश्विनौ" शब्दके चार प्रकारके अर्थ है–स्वर्ग-मर्त्य, दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा और दो धर्मात्मा !

यहा यह उत्तर नही हो सकता कि मन्त्रका साक्षात्कार करनेवाले ऋषियोके ध्यानमे ये परस्पर-विरुद्ध सभी अर्थ थे। उनका तात्पर्य तो किसी एक ही अर्थसे होगा। वादरायणको व्रह्मसूत्रकी एक ही व्याख्या अभीष्ट होगी–चाहे वह द्वैतवादी हो, अद्वैतवादी हो, विशुद्धाद्वैतवादी हो वा विशिष्टाद्वैतवादी हो। यह नही कहा जा सकता कि उन्होने सभी वादोको अभीष्ट माना था वा सभीका समन्वय चाहा था।

इस अर्थ-विविधता और सारी गडबड़ीके कारण है वेदार्थ सुनने-सुनाने वाले और वैदिक साहित्यके लिपि-कर्त्ता वा लेखक। यह वात पहले भी कही गयी है।

यह सब होनेपर भी अधिकाश मन्त्रोकी व्याख्या सर्व-सम्मत है–कुछ ही मन्त्रो और शब्दोके बारेमे सन्देह है। इस सन्देहको दूर करनेके उपाय हैं ब्राह्मण-ग्रन्थो, आरण्यको, उपनिषदो, कल्पसूत्रो और निरुक्त आदि वेदागोका गम्भीर अध्ययन, टीकाओंका स्वाध्याय तथा प्रकरण, प्रसंग और वेदार्थ करनेवाले प्राचीन-सम्प्रदाय-परम्परा-प्राप्त आधार। इस रीतिसे हम सत्य अर्थको समझनेमे समर्थ हो सकते हैं। इस दिशामे स्मृतियो, वेद-भाष्यकारो और पुराणादिसे भी सहायता मिल सकती हैं। सबका मन्थन करनेपर तात्त्विक अर्थ स्पष्ट हो जायगा। परन्तु अधिकाश मन्त्रोके अर्थके लिये सर्वाधिक सहायक निरुक्त है। वस्तुत. सारे सस्कृत-

साहित्यका मूल वेद है, इसलिये सभीमे कुछ न कुछ परम्परा-प्राप्त वेदार्थ है। परम्परा-प्राप्त अर्थ और भावको छोडकर शाब्दिक अर्थका अनुसरण करना खतरनाक है। इसलिये वेदार्थ करनेमे पद-पदपर सावधानीसे काम लेना चाहिये।

सारे वेदाग, स्मृति, पुराण आदिका निर्माण वहुत करके वैदिक साहित्य के ही आधारपर हुआ है, इसलिये इनकी अनेक वाते वेदोसे मिलती है। शिव, विष्णु, इन्द्र, सूर्य आदिका जैसा विवरण पुराणादिमे है, वहुत कुछ वैसा ही वेदोमे भी है। शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन) के ३ ६१ मे पुराणोके अनुसार ही शिवजीका वर्णन है। मन्त्रमे हाथीकी छाल (कृत्ति), पिनाक, पर्वत, निवास-स्थान आदि सवका उल्लेख है। ऐसे ही वर्णनोको देखकर देशी-विदेशी वेद-ज्ञाता वेदोमे इतिहास मानते हैं। निरुक्तने भी अनेक वार इतिहासका उल्लेख किया है। निरुक्त (२ ४) मे यास्कने इषितसेन, शन्तनु, देवापि आदिका महाभारतके अनुसार ही इतिहास लिखा है। इसी तरह पिजवन-पुत्र सुदास्, कौशिक विश्वामित्र आदिका भी विवरण यास्कने दिया है। निरुक्तके ३ ३ में यास्कने प्रस्कण्वको "कण्वस्य पुत्रः" लिखा है। ४ ३ मे लिखा है–"च्यवन ऋषिर्भवति।" ६.३ में कहा है–"भार्म्यश्वो भृम्यश्वस्य पुत्र।" इसी तरह "सन्तपन्ति माम्" मन्त्रका अर्थ लिखनेके वाद यास्कने, सायणकी ही तरह, लिखा है–"कुएँ मे गिरे हुए त्रित ऋषिको इस सूक्तका ज्ञान हुआ।" इसी "सन्तपन्ति" मन्त्रके नीचे यास्काचार्यने लिखा है–

"तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्र ऋङ्मिश्र गाथा-मिश्रं भवति।"

अर्थात् 'इतिहासो, ऋचाओ और गाथाओसे युक्त वेद है।'

इस प्रकार निरुक्तके अनेक स्थलोको देखनेसे विदित होता है कि यास्क वेदमें इतिहास मानते थे। निरुक्त भरमें एकाध ही स्थल ऐसा है, जहा ऐतिहासिकोसे निरुक्तकारका मत-भेद है। जैसे "प्रतिष्ठन्ती नाम"

(२.५) मन्त्रमे आया हुआ वृत्र शब्द। वृत्रका अर्थ निरुक्तके मतसे मेघ है और ऐतिहासिकोके मतसे असुर। इसके सिवा अन्य स्थलोमे यास्क इतिहास मानते है। सनातनधर्मी भी वेदमे इतिहास मानते है। अधिक लोग इतिहाससे अर्थवादका तात्पर्य समझते है। अर्थात् 'वैदिक क्रियाओ और आदेशोकी ओर साधारण जनको आकृष्ट करनेके लिये (कथा-व्याजसे) प्रफुल्लित और पुष्पित भाषामे ये सब बाते कही गयी है--वस्तुतः वेदमे अनित्य इतिहास नही है। फलत ऐसे लेखोसे वेदकी अनित्यताकी कल्पना नही की जा सकती।'

पञ्चदश अध्याय

अनुक्रमणी और वेदांग

अर्थात् ऋग्वेदकी रक्षाके लिये शौनकने ये दस ग्रन्थ बनाये—१आर्षानुक्रमणी, २ छन्दोऽनुक्रमणी, ३ देवतानुक्रमणी, ४ अनुवाकानुक्रमणी, ५ सूक्तानुक्रमणी, ६ ऋग्विधान, ७ पाद-विधान, ८ बृहद्देवता, ९ प्रातिशाख्य और शौनकस्मृति। ये दसो ग्रन्थ छप चुके है।

आर्षानुक्रमणी कलकत्तेमे छपी है। इसमे दस मण्डल है। छोटी-सी पुस्तक है। इसमे ऋग्वेदके मन्त्र-क्रमसे ऋग्वेदीय दसो मण्डलोके मन्त्र-द्रष्टा ऋषियो और उनकी वंशावलीका विवरण है। कृष्ण-यजुर्वेदीय चारायणीय शाखाका एक "मन्त्रार्षाध्याय" भी छपा है, जो चारायणीय शाखाकी आर्षानुक्रमणी है। सामवेदीय "क्षुद्रसूक्त" (आर्षेयकल्प) मे तो रागो और लयोकी बाते है। यह सामवेदीय श्रौतसूत्र है। "**छन्दोऽनुक्रमणी**"मे भी दस ही मण्डल है। ऋग्वेदके समस्त छन्दोका इसमे क्रमश. विवरण है। "**देवतानुक्रमणी**"मे ऋग्वेदके मन्त्र-क्रमसे देवोका विशद विचार है। "**अनुवाकानुक्रमणी**"मे केवल ३९ श्लोक है। इसके अनुसार ऋग्वेदकी ऋक्सख्या१०५८० है। इसके मतसे ऋग्वेदकी "शैशिरीय शाखा" (कुछ लोग "शाकलशाखा"को ही शैशिरीय कहते है) मे ८५ अनुवाक, १०१७ सूक्त, २००६ वर्ग और १०४१७ मन्त्र है। शौनकके प्रसिद्ध शिष्य कात्यायनने अपने "अष्टादश परिशिष्टो"मे एक "अनुवाकाध्याय-परिशिष्ट" भी लिखा है, जिसमे अनुवाकानुक्रमणीके समान ही अनुवाक-विवरण है। **सूक्तानुक्रमणी**मे ऋग्वेदके सूक्तोका विवेचन है। "**ऋग्विधान**"मे ९९ श्लोक है। इसमे सूक्त, वर्ग, पाद, मन्त्र आदिके जपके फल लिखे है। "आद्याग्निपुराण"मे चारो वेदोके विधान है। "यजुर्वेद-विधान"मे ८४, "सामवेद-विधान"मे २४ और "अथर्ववेद-विधान"मे २५ श्लोक है। सबमे एक ही शैलीकी बाते है। "**पाद-विधान**"मे ऋग्वेदीय शब्दोकी सूची है। कृष्ण यजुर्वेदकी एक "**पदानुक्रमणी**" भी छपी है, जिसमे तैत्तिरीय सहिताकी शब्द-सूची है। आठ अध्यायोमे "**बृहद्देवता**" समाप्त हुई है, जिसमे ऋग्वेदीय देवोका विस्तृत विवरण है। "**ऋक्प्राति-शाख्य**"

का एक नाम "पार्षद-सूत्र" भी है। इसपर उवटका भाष्य, है। यह ३ अध्यायो और १८ पटलोमें पूर्ण हुआ है। यह ऋग्वेदका व्याकरण है। उवटके "मातृमोदभाष्य"के साथ आठ अध्यायोमे "शुक्लयजु प्रातिशाख्य" छपा है। यह कात्यायन-कृत है। ४ अध्यायोमे शौनकका "अथर्वप्रातिशाख्य" प्रकाशित है। त्रिरत्न-भाष्यके साथ "तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य" २४ अध्यायोमे छपा है, जिसके कर्त्ताका पता नही चलता। महर्षि "पुष्पर्षि" का एक "पुष्पसूत्र" पाया जाता है, जो सामवेदका प्रातिशाख्य है। इसमे विशेषत गान-विचार है। इसमे दस प्रपाठक और ११ कण्डिकाएँ है। एक और भी सूत्र-निबद्ध "अथर्व-प्रातिशाख्य" पाया जाता है। ये सब वैदिक व्याकरण है। शौनककी स्मृति भी छप चुकी है।

"यजुर्वेद-मजरी" टीका (कालनाथ-कृत) के साथ ७ अध्यायोमें "शुक्लयजुर्विधान" प्रकाशित हो चुका है। यह महर्षि कात्यायनका बनाया है। इसमे मन्त्र-पाठके लाभ बताये गये है। किन मन्त्रोके पाठोसे मारण, मोहन, वशीकरण आदि सिद्ध होते है—यह सब कुछ बताया गया है। शौनक के छपे "ऋग्विधान"मे भी कुछ ऐसी बाते है।

इनमेसे अधिकाश ग्रन्थ बगालकी "एशियाटिक सोसाइटी"ने छापे है—यूरोपीयोने भी छापे है। स्थान-सकोचके कारण सबके नाम, सवत् आदि नही दिये गये।

अनुक्रमणियोमे सबसे बडी है ऋषि कात्यायनकी "ऋक्सर्वानुक्रमणी"। उवट-भाष्य और महाराष्ट्रके षड्गुरशिष्यकी "वेदार्थदीपिका" नामकी वृत्तिके साथ १८९६ में ए० ए० मैकडानलने इसे छपाया। इसमें टिप्पनिया भी है। प्राय सभी अनुक्रमणियोके विषयोका सक्षिप्त वर्णन है। अथर्ववेदकी "बृहत्सर्वानुक्रमणी" भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अथर्ववेदके ऋषि, देवता, छन्द आदिके विस्तृत क्रम बताये गये है। परन्तु १९ काण्डो का ही विवरण है। २० के काण्डका विवरण आश्वलायनीय "अनुक्रमणी" में आया है। इसके रचयिता शौनक है। इसमे ११ पटल (खण्ड) है।

कात्यायनका "शुक्लयजुःसर्वानुक्रम-सूत्र" ५ अध्यायोमे प्रकाशित किया गया है। इसपर याज्ञिक अनन्तदेवका सुन्दर भाष्य है। महर्षि यास्ककी एक कृष्णयजुर्वेदीय "याजुषसर्वानुक्रमणी" है, जिसपर अनन्तदेव और शौरीके भाष्य हैं। कात्यायनकी सर्वानुक्रमणीके समान ही इनमे सर्व-प्रथम छन्दोका वर्णन है। कात्यायनके उक्त सूत्रमे शुक्ल यजुर्वेद और यास्ककी अनुक्रमणीमे कृष्ण यजुर्वेदके ऋषि, देवता, छन्द आदिका विवरण पाया जाता है।

एक "काण्डानुक्रमणी" भी मिलती है, जिसमे तैत्तिरीयसंहिताके काण्डोका विचार है। वेंकट माधवकी एक "माधवीयानुक्रमणी" उपलब्ध है, जिसमे ऋग्वेदीय अनुक्रमणीकी मुख्य बाते है। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-छोटी अनुक्रमणियोके नाम पाये जाते है, जिनका अधिक महत्व नही है।

शौनकके "चरण-व्यूह-परिशिष्ट"मे ५ कण्डिकाएँ हैं. महिदासकी वृत्ति भी है। इसके अनुसार अथर्ववेदकी "शौनक-संहिता"मे १२००० मन्त्र हैं। परन्तु इन दिनो उतने मन्त्र नही पाये जाते। इसमे विशेषतया मन्त्र आदिका विवेचन है। अथर्ववेदकी 'पञ्चपटलिका" लक्षण-ग्रन्थ है। इसमे अथर्वके बीसो काण्डोके मन्त्रो, सूक्तो और पाठोके क्रम लक्षण, विवरण आदि हैं। इसके मतानुसार शौनक-संहितामे तीन भाग और अठारह काण्ड थे। १म भागमें १ से ७, २ यमें ८ से ११ और ३ य काण्ड में १२ से १८ काण्ड थे। ८ से ११ तक "क्षुद्र-सूक्त" थे। परन्तु यहाँ भी इसी "शौनक-संहिता"मे २० ही काण्ड पाये जाते हैं। सम्भव है, "पञ्च-पटलिका"-कारके समय १८ ही काण्ड उपलब्ध रहे हों। यह [illegible] है।

शौनकका ऋग्वेदीय "उपलेख-सूत्र" आठ वर्गोमे विभक्त है। इस ग्रन्थमे शिक्षा पदो और मन्त्रोका क्रम है। चार प्रपाठकोमें सामवेदीय "उपग्रन्थ-सूत्र" प्रसिद्ध है, जिसमे 'स्तोम-विचार' है। सामवेदका "पंचविध-

सूत्र" भी प्राप्य है। इस ग्रन्थमें दो प्रपाठक, चार पटल, सात खण्ड और आठ सूत्र है। केवल स्वर-विचार है। "जटादि-विकृति-लक्षण"के छपे भी बहुत दिन हो गये, जिसमे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ, घन आदिके पाठोके कारण मन्त्रोके विकारोका उल्लेख है। यह आचार्य व्याडिका बनाया हुआ है। प्रीतिकर त्रिवेदीने **"साम-प्रकाशन"** बनाया है, जिसमे सामवेदीय गानोका वैज्ञानिक विवेचन है।

इसी तरह कात्यायनके "प्रतिज्ञासूत्र-परिशिष्ट" (३ काण्ड), "भाषिकपरिशिष्टसूत्र" (३ काण्ड) और "अष्टादश परिशिष्ट" आदि, गौतम, बौधायन और हिरण्यकेशीके "पितृमेधसूत्र", आपस्तम्बके "यज्ञ-परिभाषासूत्र" (१६० सूत्र), वररुचिके "निरुक्त-समुच्चय", जयन्तके "स्वराकुश", कृष्णयजुर्वेदके "एकाग्निकाण्ड", अथर्व-परिशिष्ट तथा सामवेदीय "निदानश्रौतसूत्र" (१० प्रपाठक, पतञ्जलिकृत), काठको के "बह्वृच-गृह्य" आदि समस्त ग्रन्थोसे वेदार्थ समझनेमें एवम् ऋषि, छन्द, देवता, मन्त्र, स्वर, गान आदिका ज्ञान प्राप्त करनेमें बडी सहायता मिलती है।

वेदार्थ समझने और वेदोका सविशेष विवरण बतानेमें वेदाग-ग्रन्थ भी बडी सहायता करते है। वेदाग छ है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष। 'इनमें शिक्षा वेदकी नासिका है, कल्प हाथ, व्याकरण मुख, निरुक्त श्रोत्र, छन्द पैर और ज्यौतिष नेत्र है। इसीलिये वेद-शरीरके ये अग कहाते है। साग वेद जाननेवालेको मुक्तिकी प्राप्ति होती है' ("पाणिनीय शिक्षा", ४१-४२)। यो तो ऋग्वेदका आयुर्वेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गन्धर्ववेद और अथर्ववेदका भास्कर्य-वेद उपवेद है, तो भी इनसे वेदार्थ और वेद-रहस्य समझनेमे प्रत्यक्ष सहायता नही मिलती। परन्तु वेदागोसे प्रत्यक्ष और मूल्यवान् साहाय्य प्राप्त होता है।

वेद-पाठमें स्वरोका बडा महत्त्व है। स्वरोमें अशुद्धि होनेपर अर्थका अनर्थ हो जाता है। इसलिये स्वर-ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध उच्चारण करनेके

लिये शिक्षा-शास्त्रकी रचना हुई। प्रत्येक वेदकी अलग-अलग शिक्षा-पुस्तकें थी; किन्तु इन दिनो, अन्य वैदिक ग्रन्थोकी तरह ही, बहुत ही कम उपलब्ध है। शुक्ल यजुर्वेदकी "याज्ञवल्क्य-शिक्षा" और सामवेदकी "नारद-शिक्षा" प्रकाशित हो चुकी है। अथर्ववेदकी "माण्डूकी शिक्षा" भी, उवट-भाष्यके साथ, छप चुकी है। ऋग्वेदका कोई विशिष्ट शिक्षा-ग्रन्थ नही है, उसके लिये "पाणिनीय शिक्षा" ही साधन है।

सभी वैदिक मन्त्र छन्दोमे है, इसलिये छन्दोका ज्ञान प्राप्त किये बिना शुद्ध उच्चारण नही हो सकता। इसीलिये छन्दोविद्याकी अवतारणा हुई। शौनकके "ऋक्प्रातिशाख्य"के अन्तमे छन्दोपर यथेष्ट विचार किया गया है। "छन्दोऽनुक्रमणी" आदि कई अनुक्रमणियोमे भी छन्दो-विचार है। यो तो "छन्द-सारसग्रह", "छन्दोऽनुशासन", "प्राकृत-पैंगल", "वाणीभूषण". "वृत्तमणिकोष', "वृत्तरत्नाकर", वृत्तालंकार", "छन्दोमजरी", "श्रुतबोध" आदि अनेक छन्दोग्रन्थ छप चुके है; परन्तु पिंगल नामक आचार्यका "पिंगल" ग्रन्थ ही सर्वाधिक उपयोगी है। इसमे भी अन्य ग्रन्थोकी तरह लौकिक छन्दोका वर्णन है; परन्तु वैदिक छन्दोका वर्णन भी यथेष्ट है।

वेदके प्रधान प्रतिपाद्य यज्ञोसे 'ज्योतिष'का विशिष्ट सम्बन्ध है। "आचार्य-ज्योतिष' (३६ श्लोक) मे कहा गया है—"यज्ञके लिये वेदोका अवतरण है और कालके उपयुक्त सन्निवेशमे यज्ञोका सम्बन्ध है। इसीलिये ज्योतिषको 'काल-विधायक-शास्त्र' कहा जाता है। फलत. ज्योतिष जानने-वाला ही यज्ञ-ज्ञाता है।" वैदिक ज्योतिषके प्रधान आचार्य "लगध" है। लगधके "वेदाङ्ग-ज्योतिष"के दो ग्रन्थ पाये जाते है—एक ऋग्वेदीय, दूसरा यजुर्वेदीय। पहलेमे ३६ श्लोक है, दूसरेमे ४३। इनपर "सोमाकर"की प्राचीन टीका और म० म० प० सुधाकर द्विवेदीका "सुधाकर-भाष्य" है।

कल्पसूत्रोमेसे "शुल्बसूत्र" भी ज्योतिषकी ही बातोका विवरण देते है। शुल्बका अर्थ है "नापनेकी डोर"। इनसे वेदियोका नापना, इनके

षोडश अध्याय

प्रातिशाख्य

सस्कृत-भाषामे सवसे प्रसिद्ध व्याकरण पाणिनीय व्याकरण है। यह आठ अध्यायोमे विभक्त है, इसलिये इसका नाम "अष्टाध्यायी" है। पाणिनि मुनिके पहले गार्ग्य, भारद्वाज, स्फोटायन, शाकटायन आदि वैयाकरण थे। इन्होने भी व्याकरण बनाये थे। पाणिनिने इनके नामोका उल्लेख किया है। परन्तु इनके व्याकरण अव नही मिलते ; इसलिये नही कहा जा सकता कि इन्होने वैदिक शब्दोकी व्युत्पत्ति की थी या नही।

पाणिनिने लौकिक संस्कृतका ही व्याकरण लिखा है, वैदिकका नही। अष्टाध्यायीमे मुख्य रूपसे सस्कृत-भाषाके रूपो और प्रयोगोका व्युत्थान और सकलन है। इन्हीका मथन कर नियम बनाये गये है। इसमे सन्देह नही कि पाणिनिका "स्वरवैदिकी"का सकलन वैदिक व्याकरणके लिये ही है ; परन्तु यह पूर्ण नही, अधूरा है। वैदिक भाषाके अनेक रूपो और प्रयोगोको "व्यत्ययो बहुलम्", "बहुलं छन्दसि" कहकर छोड दिया गया है। सारस्वत व्याकरणने तो पाणिनिके वरावर भी नही किया है--वैदिक भागको छोड ही दिया है! यह भी एक कारण है कि वेदाध्ययनकी परिपाटी लुप्त हो रही है।

वस्तुत वैदिक व्याकरणकी नीव ब्राह्मण-ग्रन्थोमे ही पड़ी। इनमे ही पहले पहल वैदिक शब्दोका निर्वचन किया गया है। कल्पसूत्रोमे भी वैदिक शब्दोका निर्वचन किया गया है। फलत. ये दोनो ही वैदिक व्याकरणके आधार है। इन्हीके आधारपर ऋषियोने वेदकी प्रत्येक शाखाके लिये एक-एक व्याकरण लिखा। फलत. वैदिक व्याकरणका नाम

"प्रातिशाख्य" पड गया। वेदोकी ११३० शाखाओके ११३० प्रातिशाख्य प्राप्त होने चाहिये , परन्तु ये उतने भी नही मिलते, जितनी शाखाए और ब्राह्मण मिलते है। इन दिनो केवल ६ प्रामाणिक प्रातिशाख्य उपलब्ध है।

पाणिनिकी ही तरह प्रातिशाख्योके वर्णनका क्रम है , विषय-प्रवेश भी कुछ पाणिनिकी तरह ही है। हा, पाणिनिकी तरह इनमे प्रत्येक शब्द और धातुका "साधन" नही है। स्वर-सम्बन्धी बातें विशद रूपमें है। शाब्दिक सिद्धियोपर तो अत्यन्त सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। निर्भुज और प्रतृण सहिताओके उच्चारणोमे जो कठिनाई उत्पन्न होती है, उसे लक्ष्य कर प्रातिशाख्योने ऐसे सूत्र बनाये है, जिनसे उच्चारण सुख-पूर्वक हो सकें। छन्द भी इनके वर्णनीय विषयोमें है। विभिन्न शाखाओमें प्रचलित रूप, लक्षण आदिका नियमबद्ध वर्णन प्रातिशाख्योमे पाया जाता है, परन्तु प्रातिशाख्योमें सुव्यवस्थित सारी व्याकरण-प्रक्रिया नही है। अपनी अपनी शाखाकी विलक्षणता तथा सहिता-पाठ, पद-पाठ, क्रम-पाठ, जटा-पाठ आदिके द्वारा पावन वेद-पाठको सुरक्षित रखना ही प्रातिशाख्योका प्रधान लक्ष्य हैं। प्राचीन समयमे इन पाठोके कितने ही आचार्य और सम्प्रदाय थे। तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमे ऐसे २२ आचार्योके नाम मिलते है।

मुख्य बात यह है कि वैदिक भाषा अत्यन्त प्रचलित नही रही, इसलिये वैदिक व्याकरणकी गभीर और सूक्ष्म बातोकी ओर ध्यान नही दिया गया। सन्धियोकी विविध सञ्ज्ञाओ, कृत्रिम नामो और प्रत्याहारो तथा सूत्रोकी वैज्ञानिक रचनाका अभाव सिद्ध करता है कि प्रातिशाख्योमें वेद-व्याकरणका बाल्य काल ही है। प्रातिशाख्योमे शब्द-व्युत्पत्तिका ही नही , शब्द-रचना और निर्वचन-शैलीका भी प्राय. अभाव ही है। यही कारण है कि बहुतसे वैदिक शब्दोका प्रयोग ही जाता रहा और अनेक शब्दो-के अर्थ भी परिवर्त्तित हो गये। अनेक शब्द अज्ञेय हो रहे। इसका इतनी दूर तक दुष्परिणाम हुआ कि मन्त्रोको निरर्थक—"अनर्थका हि मन्त्राः"—

कहनेवाला एक कौत्स-सम्प्रदाय ही उत्पन्न हो गया! वेद-पाठपर ही लोग इतने मुग्ध हो गये कि अर्थकी महिमाको ही भूल गये—मानने लगे कि मन्त्र अर्थ-बोधके लिये नही, यज्ञोमे यथाविधि उच्चारणके लिये है! यही कारण है कि जर्भरी, तुर्फरी, फरफरीका, आलिगी, विलिगी, तैमात, तावुवम् आदि अनेकानेक शब्दोका कदाचित् ठीक अर्थ-बोध नही होता। यद्यपि वेदभाष्यकार सायणाचार्यने इन शब्दोका अर्थ किया है; परन्तु ऐसा अर्थ सदेहसे परे नही है। जिन शब्दोका अर्थ-बोध नही होता, उनका परिगणन भी निघण्टु, निरुक्त आदिमे है। प्राचीन ग्रन्थोके अनुसार प्रातिशाख्योके ये प्रतिपाद्य विषय है—१ वर्ण-समाम्नाय—स्वर-व्यञ्जनोकी गणना और उनके उच्चारण आदिके नियम। २ सन्धि—अच्, हल्, विसर्ग आदि। ३ प्रगृह्य-सज्ञा, पद-विभागके नियम (अवग्रह) और इनके अपवादसूत्र। ४ उदात्त—अनुदात्त शब्दोकी गणना, स्वरितके भेद और आख्यात-स्वर। ५ सहिता-पाठ—पद-पाठमे भेदप्रदर्शक नियम—सत्व, षत्व, दीर्घ आदिका विवरण। ६ अथर्व-प्रातिशाख्यमे सहिता-पाठ और क्रम-पाठके भी नियम बताये गये है और तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमे इन तीनोके अतिरिक्त जटा-पाठके नियमोका भी उल्लेख है। ७ साम-प्रातिशाख्यमे सामवेदकी विभिन्न प्रकारकी गीतियोमे प्रश्लेप, विश्लेष, वृद्ध, अवृद्ध, गत, अगत, उच्च, नीच, क्रुष्ट, अक्रुष्ट, संक्रुष्ट आदि उच्चारण-कृत भेदोका भी वर्णन पाया जाता है।

प्रातिशाख्योके स्वाध्यायसे ज्ञात होता है कि इनका लक्ष्य सम्पूर्ण वैदिक व्याकरणकी प्रक्रियाको उपस्थित करना नही है। वस्तुत ये वाङ्मय परिवर्तन, सन्धि आदि और स्वर, ध्वनि आदिके प्रतिपादक शास्त्र है। अपनी शाखाओकी विलक्षणताकी ओर इनका विशेष झुकाव है।

उपलब्ध ६ प्रातिशाख्योमे पहला "ऋक्प्रातिशाख्य" है, जिसका नाम "पार्षद-सूत्र" भी है। इसे महर्षि शौनकने बनाया है। ३ अध्यायो और १८ पटलोमे इसकी छन्दोबद्ध रचना है। इसे मैक्समूलरने नागराक्षरोमे, जर्मन टिप्पनियोंके साथ, १८६९ में और ए० रेग्नियरने फ्रेंचमे, तीन भागो-

में, १८५९ मे प्रकाशित किया है। उवटके भाष्यके साथ १९०३ में भी एक सस्करण निकला है। युगलकिशोर शर्माने १९०३ मे, हिन्दी-अनुवादके साथ, इसे छपाया। डा० मगलदेव शास्त्रीने इसकी विस्तृत प्रस्तावना छपायी है। दूसरा **"शुक्लयजु.प्रातिशाख्य"** आठ अध्यायोमे कात्यायनने बनाया है। उवटके भाष्यके साथ यह छ खण्डोमे काशीसे प्रकाशित हुआ है। महर्षि पुष्पके द्वारा **"साम-प्रातिशाख्य"** निर्मित है, इसीलिये इसका एक नाम **"पुष्प-सूत्र"** भी है। इसपर सायण-भाष्य छप चुका है। जर्मन अनुवादके साथ आर० साइमनने भी १९०८ मे इसे छपाया। स्व० म० म० पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविडने भी साम-प्रातिशाख्य प्रकाशित किया है। इस प्रातिशाख्यपर अजातशत्रुका भाष्य है। **"अथर्व-प्रातिशाख्य"** (सूत्र-निबद्ध) को प्रसिद्ध वेदज्ञ प० विश्वबन्धु शास्त्रीने कई हस्तलेखोको देखकर सम्पादित और प्रकाशित किया है। अमेरिकाके डब्ल्यू०डी० ह्विटनेने अग्रेजी अनुवादके साथ अथर्व-प्रातिशाख्य (**चतुरध्यायी**) को प्रकाशित किया है। कृष्ण यजुर्वेदका **"तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य"** २४ अध्यायोमे है। इसके कर्त्ताका कुछ पता नही चलता। इसको भी ह्विटनेने "त्रिरत्नभाष्य"के साथ १८७२ मे छपाया। सोमयार्य और गोपाल यज्वाकी व्याख्याओ के साथ सामशास्त्रीने भी इसे प्रकाशित किया है। 'पदक्रमसदन' भाष्यके साथ यह मद्रासमें भी छपा है।

वैदिक भाषा और सस्कृत भाषामें बडी विभिन्नता है। सस्कृतमें जिस शब्दका जो अर्थ है, वही वैदिक भाषामे नही है। सस्कृतमें "न" का अर्थ 'नही' है, परन्तु ऋग्वेदमे "न" का अर्थ "इव" अर्थात् सदृश है। सस्कृतमे घृणाका अर्थ 'नफरत' है और ऋग्वेदमें दया भी है। इस तरह सैकडो शब्द ऐसे हैं, जिनका अर्थ सस्कृतमे और है तथा वेदमे और ही है।

इसी प्रकार लौकिक और वैदिक व्याकरणोमें भी भेद है। लौकिक सस्कृतमें अकारान्त पुंलिग शब्दोके प्रथमा बहुवचनमे जहा अस् वा जस् प्रत्यय जोडनेसे देवा, रामा रूप बनते है, वहा वैदिक भाषामे असस् प्रत्यय

जोडकर देवास , रामास. रूप भी बनते है। अकारान्त शब्दोके तृतीया बहु-वचनमे देवै , रामै. रूप बनते है और वेदमे देवेभि , रामेभि. भी होते है। वेदमे प्रथमा द्विवचनमे 'आ' प्रत्यय लगाकर मित्रावरुणा, अश्विना आदि रूप भी बनते है और सस्कृतमे 'औ' प्रत्यय लगाकर मित्रावरुणौ, अश्विनौ रूप ही होते है। इकारान्त स्त्रीलिग शब्दोके तृतीया एकवचनमे, वेदमे, 'ई' प्रत्यय लगता है—सुष्टुती। सस्कृतमे सुष्टुत्या होगा। अनेक स्थानोमे सप्तमीके एकवचनमे कोई प्रत्यय नही लगता—परमे व्योमन्। सस्कृतमें व्योमनि वा व्योम्नि प्रयोग होता है। अकारान्त नपु सक शब्दोका बहुवचन 'आनि' और 'आ' प्रत्ययोको जोडनेसे बनता है—विश्वानि अद्भुता। सस्कृतमे "विश्वानि अद्भुतानि" होगा। क्रियापदोमे उत्तम पुरुषके बहु-वचनके (वर्त्तमान काल) रूप 'मसि' प्रत्ययके योगसे बनते है—मिनीमसि आदि। सस्कृतमे 'मिनीमः' होगा। आज्ञावाचक लोट् लकारके मध्यम पुरुप बहुवचनमे चार प्रत्यय लगते है—त, तन तात्, थन्। रूप ऐसे बनते है—शृणोत, सुनोतन, कृणुतात्, यतिष्ठन्। 'लिये' अर्थमे सस्कृतमे 'तुमुन्' का प्रयोग होता है—कर्तुम् (करनेके लिये) ; गन्तुम् (जानेके लिये)। किन्तु वेदमे इस अर्थमे कई प्रत्यय लगते है—से, वसे, असे, कसे, अध्यै, शध्यै आदि आठ-दस। जीवसे (जीवितुम्), कर्त्तवे (कर्तुम्), दातवै (दातुम्), पिवध्यै (पातुम्) आदि। वेदमे आज्ञा और सम्भावनाके अर्थमे लेट् लकार होता है, जो संस्कृतमे नही होता। उदाहरण है—"आयूंषि तारिषत्" (हमारी आयुको बढाओ)। सस्कृतमे 'तारय' होगा। इस प्रकार वैदिक और लौकिक (सस्कृत) भाषाओके व्याकरणोमे बड़ा भेद है और इस भेदका पता "प्रातिशाख्यो"को देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है।

वैदिक भाषामे संहिता (मंत्र-भाग), ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् है। वैदिक भाषाकी वाक्य-रचना सरल, सक्षिप्त और क्रिया-बहुल होती है। उक्त चारोमे यही बात है। प्रातिशाख्य, निरुक्त, अनुक्रमणी आदिमे अधिक संस्कृत और वैदिक भाषाका कम प्रयोग हुआ है।

वैदिक स्वरोको नियम-बद्ध करनेके लिये तो प्रातिशाख्य प्रधान है। ऋक्प्रातिशाख्यमे छन्दोका भी यथेष्ट विवरण है। छन्दोका पूरा ज्ञान प्राप्त किये विना मन्त्रोका ठीक उच्चारण नहीं हो सकता; क्योकि वेद-मन्त्र छन्दोमे है। ठीक मन्त्रोच्चारण नही होनेसे मन्त्रोका ठीक अर्थ भी नही लग सकता। छन्दो-विवरण देना इसीलिये प्रातिशाख्य-कारने उचित समझा। वेदमे गायत्री, जगती, बृहती आदि छन्द है और संस्कृतमे वंशस्थ, उपजाति, मालिनी आदि है।

सप्तदश अध्याय

बृहद्देवता

प्रसिद्ध यूरोपीय वेदाभ्यासी ए० ए० मैकडानलने १९०४ मे टिप्पनियों के साथ "बृहद्देवता" को प्रकाशित किया। प्रत्येक वेद-शाखाकी एक-एक बृहद्देवता थी; परन्तु इन दिनो यही एक पुस्तक मिलती है। भारतके अधिकाश वेद-विज्ञाताओके मतसे इसमे दो शाखाओका सम्मिश्रण है। यह ऋग्वेदीय बृहद्देवता तो है; किन्तु यह केवल शाकल-शाखाकी नही है; क्योकि शाकल-संहिताके कई सूक्तोके देवता "बृहद्देवता"में नही कहे गये है—इन सूक्तोंका उल्लेख ही नही है। इसके सिवा बृहद्देवतामे ऐसे ३७ सूक्तोका उल्लेख है, जो शाकल-सहितामें नही है। बृहद्देवतामें ऋग्वेद १०.१०३ सूक्तके पश्चात् "ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्" मन्त्रसे आरम्भ होनेवाला "नाकुल-सूक्त" न तो शाकल-शाखा में है, न वाष्कल-सहितामें—सर्वानुक्रमणीमे भी नही है। इसी तरह बृहद्देवता (३.११८–११९) मे जो लिखा है कि "ऋग्वेद १७३ सूक्तके पश्चात् दस अश्विसूक्त है, जिनकी १ ली ऋचा "'शश्वद्धि वाम्" आदि है; पश्चात् सौपर्ण-सूक्त है। इसके आगे "उपप्रयन्तः' आदि अग्निदेव-सम्बन्धी ६ सूक्त है।" परन्तु यह क्रम न तो शाकलमें है, न वाष्कलमें। "शश्वद्धि वाम्" मन्त्र न तो आश्वलायन-श्रोतसूत्रमे है, न शाखायन-श्रौत-सूत्रमे। इसलिये अनेक वेदज्ञोका अनुमान है कि प्रकाशित बृहद्देवता प्रधा-नतया ऋग्वेदकी माण्डुकेय-शाखाकी है। ऐसी बात हो, तो भी शाकल-सहिताके अधिकाश देवोका ज्ञान इस बृहद्देवतासे हो जाता है।

किसी-किसीके मतसे बृहद्देवता और निरुक्त-वार्त्तिक एक ही हैं—बृहद्देवताको ही निरुक्त-वार्त्तिक कहा गया है; क्योंकि दोनोंके अनेक श्लोक परस्पर मिलते हैं। निरुक्त-भाष्यकार दुर्गाचार्य और स्व० वैजनाथ काशीनाथ राजवाडेने जो निरुक्तवार्त्तिकके उदाहरण दिये हैं, वे इस बृहद्देवतामें मिलते हैं। परन्तु कुछ उदाहरणोंको देखकर ही दोनोंको एक नहीं माना जा सकता। सम्भव है, एकने दूसरेसे ये उदाहरण लिये हों। दोनों दो स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इस बृहद्देवताके कर्त्ता शौनक ऋषि हैं। इसमें आधुनिक संस्कृत-पुस्तकोंकी तरह अध्यायों और श्लोकोंका क्रम है। ऐसा होते हुए भी ऐतिहासिक लोग बृहद्देवताका रचना-काल ४०० बी० सी० (ईसासे पहले) बताते हैं, परन्तु वस्तुतः यह ग्रन्थ अतीव प्राचीन है। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें बृहद्देवताका उल्लेख है।

अर्थात् इन्द्रदेव-सम्बन्धी रहस्यमयी महानाम्नी ऋचाओको जो जपता है, वह सहस्र युग-पर्यन्त रहनेवाले ब्रह्माके दिनको प्राप्त होता है।

बृहद्देवतामें अनेक ऋषियो और आचार्योंके मत उद्धृत है। आचार्य औपमन्यवका मत एक वार उद्धृत है। गार्ग्यका नाम बृहद्देवता (१.२६) मे आया है। शाकपूणिका मत तो बृहद्देवतामे सात बार आया है। लम्बे-लम्बे उद्धरण भी है। रथीतरका मत तीन बार आया है। अनेक विद्वान् शाकपूणिको ही रथीतर मानते हैं। बृहद्देवतामे यास्कका मत तो १९ बार उद्धृत है। निरुक्तका लघुपाठ (गुर्जर-पाठ) ही बृहद्देवता (२४ और ७.१०) मे आया है।

बृहद्देवतामे दैवत-वादके अतिरिक्त प्रसंगतः अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कही गयी हैं—अनेक उपयोगी आख्यान भी आये हैं। १म अध्याय, श्लोक ३४ से ४७ मे ३१ प्रकारके मन्त्रज्ञाता "मन्त्रवित्" कहे गये है। ३१ प्रकार की गिनती भी वहा की गयी है। इसके ८.१२९ में कहा गया है कि 'जो ऋषि नही है, उसके मन्त्र प्रत्यक्ष नही हो सकते—"न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्।" ऋषि ही मन्त्रोके प्रत्यक्षकर्त्ता है।

बृहद्देवतामें मधुक, श्वेतकेतु, गालव, यास्क, गार्ग्य, रथीतर और शौनकके मत ही प्रधानतया प्रदर्शित है। एक स्थल (अध्याय १, श्लोक २४) पर लिखा है—

"नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणाः कवयश्च ये।
मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते॥"

अर्थात् निरुक्तकार, मधुक, श्वेतकेतु और गालव आदि पुराने कवि मानते हैं कि नौ बातोंसे नाम होता है।

इन सबका विवरण बृहद्देवतामे देखने योग्य है।

बृहद्देवतामें इस बातपर विचार किया गया है कि देवताओंका नाम किस-किस कारणसे किया जाता है। प्रत्येक मन्त्रके देवताको जानना भी बृहद्देवता अनिवार्य बताती है। कहा गया है—

"अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवत्वं योगमेव च।
योऽध्यापयेत् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः॥"

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको जाने विना जो मन्त्र पढ़ाता वा जपता है, वह पापी है।

इन चारोमें दैवत-ज्ञान तो परमावश्यक है। वेदार्थ करनेकी कुंजी यही ज्ञान है। प्रारम्भमे ही वृहद्देवता कहती है—

"वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणा तदर्थमवगच्छति॥"

अर्थात् प्रयत्न करके प्रत्येक मन्त्रके देवताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; क्योकि दैवत ज्ञान प्राप्त करनेवाला पुरुष वेदार्थ समझता है। इसीलिये वृहद्देवता-कर्त्ताने प्रथम श्लोकमे ही कहा है—

"मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।"

अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ऋषियोको नमस्कार करके मै आम्नाय वा वेद-सरणिके क्रमसे सूक्त आदिके देवता कहूँगा।

किस मन्त्रके कौन देवता है, इस सम्बन्धमे वेदाचार्योमे मत-भेद भी है। एक ही देवता विविध रूपोमें वताये गये है। बृहद्देवताके २य अध्यायके १३५–१३६ श्लोकोमे कहा गया है—

"सरस्वतीति द्विविधं ऋक्षु सर्वासु सा स्तुता॥ १३५॥
नदीवद्देवतावच्च तत्राचार्यस्तु शौनकः।
नदीवन्निगमाः षट् ते सप्तमो नेत्युवाच ह॥ १३६॥"

तात्पर्य यह कि सारी ऋचाओमें सरस्वती दो प्रकारसे स्तुत है—नदी की तरह और देवताकी तरह। शौनकके मतसे नदीकी तरह कही गयी सरस्वतीके ६ ही मन्त्र है, ७ वा नही। वेदाचार्योंके मतभेदोको देखिये—

"इलस्पतिं शाकपूणिः पर्जन्याग्नी तु गालवः।" ५.३९

अर्थात् शाकपूणि ऋग्वेद ५.४२ १४ मन्त्रके देवता इलस्पतिको तथा गालव पर्जन्य और अग्निको मानते हैं।

"पौष्णौ प्रेति प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः।
ऐन्द्रमेवाथ पूर्वं तु गालवः पौष्णमुत्तरम्॥" ६.४३

आशय यह कि शाकटायनके मतसे ऋग्वेद ८.४.१५ से १८ प्रगाथ ऋचाओके देवता पूषा है तथा गालवकी रायसे १५–१६ के देवता इन्द्र हैं–१७-१८ के ही पूषा हैं।

"सावित्रमेके मन्यन्ते महो अग्ने स्तवं परम्।
आचार्या शौनको यास्को गालवश्चोत्तमामृचाम्॥" ७.३८

अर्थात् कई ऋषि ऋग्वेद १० ३६ १२–१४ के देवता सविताको मानते हैं; किन्तु शौनक, यास्क और गालव अन्तिम ऋचाके ही देवता सविताको मानते हैं।

"सोमप्रधानामेतां तु क्रौष्टुकिर्मन्यते स्तुतिम्॥" ४.१३७

तात्पर्य यह कि क्रौष्टुकिके मतसे ऋग्वेद ४.२८ मे सोमकी स्तुति है। दूसरोके मतसे ऐसी बात नही है।

"पराश्चतस्रो यत्रेति इन्द्रोलूखलयोः स्तुतिः।
मन्येते यास्क-कात्थक्याविन्द्रस्येति तु भागुरिः॥" ३. १०

अर्थात् यास्क और कात्थक्यके मतसे ऋग्वेद १.२८.१–४ तकमे इन्द्र और उलूखलकी स्तुति है; परन्तु भागुरिके मतसे इन्द्रकी स्तुति है।

वैदिक देवताओका क्या स्वरूप है, इसपर अनेक ग्रथोने अनेक प्रकारसे विचार किया है। इनमे मुख्य है बृहद्देवता और निरुक्तका दैवत-काण्ड। निरुक्तकारने तीन मुख्य देवता माने है–पृथिवी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु या इन्द्र और द्युस्थानीय सूर्य। अन्य सभी देवताओ को गौण मानकर इन तीनोके साथ ही सम्बन्ध प्रदर्शित कर दिया गया है। परन्तु बृहद्देवता और निरुक्तमे वस्तुतः एक महादेवता (परमात्मा) को ही मुख्य माना गया है। परमात्माके एक होते हुए भी अनेक रूपोमें उनकी स्तुति की गयी है। एक ही आत्माके अन्य देवता

भिन्न-भिन्न अग है। एक ही प्रकृतिकी तत्तत्पदार्थ-रूपसे अनेकताको लेकर ऋषि लोग इनकी बहुरूपोमें स्तुति करते है, यद्यपि वस्तुत यह एक-अखण्ड- है।

इस तरह एक नही अनेक उदाहरण देकर यास्कने उसी बातको सिद्ध किया है, जिसको ऋग्वेदके "एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" मे कहा गया है। देवोके इस एकत्व-वादको वृहद्देवताने भी माना है। वृहद्देवताका मत है कि मुर्दे (शव) के भी आखें है, परन्तु वह इसलिये नही देख सकता कि उसका चेतनाधिष्ठान नही है। जबतक जड नेत्रका अधिष्ठाता चेतन रहता है, तबतक वह भली भाति देखता है। जड पदार्थमें स्वय कर्त्तृत्व-शक्ति नही है, इसलिये उसका अधिष्ठाता चेतन माना गया है। इस तरह अनेक जड पदार्थोके अनेक अधिष्ठाता चेतन (देवता) माने गये है। परन्तु समुदाय रूपसे सब एक ही है। एक ही अग्निके अनेक स्फुलिगोकी तरह एक ही परमात्माकी सब (देव-गण) विभूतियां है। मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायमे भी इसी बातको मनुजीने बताया है। वस्तुत वेदोमें जो ३३ देवोका उल्लेख है, वे सब परमात्माके ही अग है-

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः।"

यह बात अवश्य है कि जिस मन्त्रमें जिसका कथन प्रधानतया किया गया है, उस मन्त्रका वही देवता कहा गया है। जिनका यह मत है कि जिस मन्त्रका जो देवता माना गया है, उस मन्त्रमें उसी देवताके समान दिव्य शक्ति है, वह भी ठीक है। इन मतोसे देवोके एकत्ववादमें कोई त्रुटि नही आती। अनेक मन्त्रोमें अग्नि, इन्द्र आदिकी इस तरह स्तुति की गयी है, जिस तरह परमात्माकी की जाती है। परमात्माके अनेक नाम है, इसलिये वह विविध नामोसे वैदिक मन्त्रोमें स्तुत किये गये है। वस्तुतः सभी नामोसे परमात्माकी ही पुकार लगायी गयी है-

"तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते।" -सायणाचार्य

वेदोका आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले तो सभी देव-नामोंको ईश्वरके नाम बताते ही हैं।

"दि मिस्टीरियस कुण्डलिनी" और "भगवद्गीता—ऐन एक्स्प्रोजीशन" नामक पुस्तकोके रचयिता डा० वी० जी० रेलेने "द वैदिक गाड्स" नामकी एक पुस्तक लिखी हैं। डा० रेलेका मन्तव्य है कि "वैदिक ऋपियोने बाह्य विश्वका पूर्ण और शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ऋषियों ने शरीर-विज्ञानपर जब विचार करना शुरू किया, तब उन्होंने अपनी पूर्व-परिचित दैवत संज्ञाओंका व्यवहार, आलकारिक दृष्टिसे, शरीर-विज्ञानमें भी करना प्रारम्भ किया। फलतः ये दैवत संज्ञाएँ (नाम) द्व्यर्थक और नानार्थक है। इनको शरीर-विज्ञानके पारिभाषिक शब्दोंकी भाति भी समझा जा सकता है।"

अनेक वैदिक नानार्थक शब्दोकी निरुक्ति यास्कने भी की हैं। रेलेके मतसे सभी देव-नाम नानार्थक—कमसे कम द्व्यर्थक है। बाह्य अर्थोंमे जिन शब्दोंकी प्रवृत्ति थी, वे ही शरीरके विभिन्न स्थानोको बतानेके लिये प्रयुक्त होने लगे। रेले कहते है—"वैदिक देवता प्रायः ज्ञान-तन्तु-संस्थानके विविध भाग है।" रेलेने अपनी उक्त पुस्तकमे १ त्वष्टा, २ ऋभु, ३ सविता, ४ अश्विनौ, ५ मरुत्, ६ पर्जन्य, ७ उषा, ८ विष्णु, ९ रुद्र, १० पूषा, ११ सूर्य, १२ अग्नि, १३ इन्द्र, १४ अदिति—आदित्य, १५ बृहस्पति (ब्रह्मणस्पति), १६ सोम, १७ वरुण-मित्र और १८ अप्—आपः आदि प्रसिद्ध वैदिक देवताओके सम्बन्धमे विचार किया है।

डा० रेलेका दावा है कि "सम्पूर्ण वैदिक देवता और उनके कार्य हमारे मस्तिष्क-संस्थानके विभिन्न कार्योंके ही द्योतक है।" डा० रेलेकी यह भी प्रतिज्ञा है कि "वैदिक ऋपियोने बहुत-सी ऐसी बातोंका पता लगा लिया था, जो वर्तमान समयमे आधुनिक विज्ञानकी सहायतासे पुनः जानी जा सकी है—बहुतसी ऐसी बातोका भी उन्हे ज्ञान था, जिनका ज्ञान अभी वर्तमान युगमें हमें प्राप्त करना है।"

डा० रेलेकी शब्दार्थ-शैली केवल वैज्ञानिक है। उन्होने वैदिक व्याकरण, कोश, निरुक्त तथा सम्प्रदायकी चिन्ता नही की है। रेलेके अर्थ वैदिक मर्यादा और परम्पराके विपरीत है। नही कहा जा सकता, वैदिक विद्वान् इन अर्थोंको कहातक ग्रहण करेंगे। परन्तु इसमें सन्देह नही कि ये अर्थ मनोरजनके साधन अवश्य है। वैदिक देवताओका रहस्य बतानेवाले तो बृहद्देवताके ही विवरण है। देवता-वादपर सर्वोत्तम ग्रन्थ बृहद्देवता ही है।

अष्टादश अध्याय

यज्ञरहस्य

जैन-बौद्धोमे अहिसा, ईसाइयोमे दया, सिखोमे भक्ति और इस्लाम मे नमाजकी जो प्रतिष्ठा और महत्त्व है, वही वैदिक धर्ममें यज्ञके लिये है। वेदधर्मका प्राण और आत्मा यज्ञ है। यज्ञ-रूप नीवपर ही धर्म-रूप इमारत खडी है। अथर्ववेदका तो मत है कि "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि ।" अर्थात् ससारका उत्पत्ति-स्थान यह यज्ञ ही है। ऋग्वेदमे भी स्पष्ट ही लिखा है, 'यज्ञसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है' (१० ९० ८—९)। पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०.९०.१६) कहता है कि "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।" अर्थात् ध्यान-यज्ञसे देवोने यज्ञ-पुरुषकी पूजा की। यज्ञ ही प्रथम वा मुख्य धर्म है। शतपथ (१.७.४ ५) इसीलिये उद्घोष करता है कि "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।" अर्थात् सबसे श्रेष्ठ कार्य यज्ञ है। शतपथने यज्ञको ईश्वरका रूप भी माना है—"प्रजापतिर्वै यज्ञः", "विष्णुर्वै यज्ञः" आदि आदि। ऋग्वेदने (१० ९०.६) इस बातको और भी मार्मिक शैलीमे कहा है—"तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुष जातमग्रत ।" आशय यह है कि तपस्वियोने यज्ञ-पुरुषको हृदयमे प्रबुद्ध किया।

इस तरह यज्ञको ईश्वर और धर्मका साक्षात् प्रतीक कहा गया है। यही कारण है कि वेदसे लेकर तन्त्रतक यज्ञकी महिमा गाते है और प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक सत्कर्मको आजतक 'यज्ञ' कहता आया है। यज्ञ ईश्वर-रूप हो वा धर्मरूप हो, वह चराचरका रक्षक है। धर्मका भी लक्षण है सरक्षण करना। धारण वा रक्षण करनेसे ही उसका नाम धर्म पड़ा—"धारणात् धर्ममित्याहुः ।" (महाभारत)

इस श्रेष्ठ धर्म (यज्ञ) का वैदिक साहित्यमे बडा विस्तार है। यज्ञके सम्बन्धमें कितने ही ग्रन्थ भी छप चुके है। इनमें महर्षि आपस्तम्बका "यज्ञपरिभाषासूत्र" बडे महत्त्वका ग्रन्थ है। यज्ञ-रहस्य समझनेकी इच्छा रखनेवालेको इसे अवश्य पढना चाहिये। परन्तु यह अतीव सक्षिप्त है। यज्ञके विशाल स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो विविध ब्राह्मण-ग्रन्थ देखने चाहिये। स्थानाभावके कारण यहा भी सक्षिप्त बातें ही लिखी जायगी।

यज्ञ शब्दका वाच्यार्थ है स्वार्थ-त्याग-पूर्वक पूजन करना। महात्मा गाधीने यज्ञका अर्थ परोपकार किया है। अनेक सज्जनोने यही अर्थ माना है। परन्तु सूक्ष्म विचार करनेपर इसके व्यापक अर्थका पता चलता है। वस्तुत "श्रेष्ठ धर्म"के अर्थमें यज्ञ शब्द योग-रूढसा है।

वैदिक यज्ञ दो प्रकारके होते है। एक श्रौत और दूसरा गृह्य। प्रथम श्रेणीके यज्ञोका विवरण श्रौतसूत्रोमे है और द्वितीय श्रेणीके यज्ञोका वर्णन गृह्यसूत्रोमें है। यथाविधि दीक्षित होनेपर ही श्रौत यज्ञका अधिकारी मनुष्य होता है, परन्तु केवल उपनीत होनेपर ही गृह्य-यज्ञका अधिकारी मनुष्य हो जाता है।

श्रौतयज्ञके दो भेद है—'सोम-सस्था' और 'हवि-सस्था'। गृह्य-यज्ञको 'पाकसस्था' भी कहा जाता है। इस तरह तीन प्रकारके यज्ञ होते है। इन तीनोके भी सात-सात भेद है। इनमेंसे सप्त सोमसस्थाका वर्णन आश्वलायन-श्रौतसूत्र (६ ११ और १९ ९ २७) तथा कात्यायन-श्रौत-सूत्र (१२ ३ १९०) मे आया है। अन्य स्थानोमें इन सबका वर्णन है। परन्तु गोपथब्राह्मण (पूर्व भाग ५ २३) में इन इक्कीसोका विवरण एकत्र पाया जाता है।

सप्त सोमसस्थामें ये सात यज्ञ है—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडशी, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र और ७ आप्तोर्याम। सप्त

हवि.सस्थामे ये सात हैं–१ अग्न्याधेय, २ अग्निहोत्र, ३ दर्श, ४ पौर्णमास, ५ आग्रयण, ६ चातुर्मास्य और ७ पशुवन्ध। सप्त पाकसंस्थामे ये सात यज्ञ है–१ सायंहोम, २ प्रातर्होम, ३ स्थालीपाक, ४ नवयज्ञ, ५ वैश्वदेव, ६ पितृयज्ञ और ७ अष्टका। लाट्यायन-श्रौत सूत्र (५.४.१०) में दर्श और पौर्णमासको एक ही यज्ञ मानकर "सौत्रामणि" यज्ञको भी सप्त हवि सस्थाके अन्तर्गत गिनाया गया है। सोमसस्थाको 'सोमयज्ञ', 'क्रतु', 'ज्योतिष्टोम', 'सुत्या' आदि भी कहा जाता है और हवि.सस्थाको 'हवि-र्यज्ञ' भी कहते हैं। १२ दिनोके यज्ञको 'क्रतु' और ६ महीनो वा वर्षोमे होनेवाले यज्ञको 'सत्र' भी कहा जाता है। सवत्सरसत्र, गवामयन, स्वर्ग-सत्र, अश्वमेध आदि 'सत्र' कहाते हैं। कही-कही इन तीनों संस्थाओको 'सोम', 'इष्टि' और 'हौत्र' भी कहा गया है। सोमसस्थाको सोम, हविः-संस्थाको इष्टि और पाकसंस्थाको हौत्र कहा गया है। गोमेध, अश्वमेध आदि सव सोमसंस्थाके अन्तर्गत हैं। ताण्ड्यमहाब्राह्मणमे कहा गया है कि एक दिनमें होनेवाला यज्ञ 'एकाह', कई दिनोंमे होनेवाला 'अहीन' और दीर्घ-कालमे होनेवाला यज्ञ 'सत्र' कहाता है। चातुर्मास्यके अन्तर्गत ही वलि-वैश्वदेव (वैश्वदेव नही), वरुणप्रघास और साकमेध है। पशुबन्धको 'निरूढपशुबन्ध' और 'इष्टि' भी कहा जाता है। 'इष्टि'के कई भेद है–आयुष्कामेष्टि, पुत्रेष्टि, पवित्रेष्टि, वर्षकामेष्टि, प्राजापत्येष्टि, वैश्वानरेष्टि, नवशस्येष्टि, ऋक्षेष्टि, गोष्पतीष्टि आदि। पशु-साध्य यज्ञोको 'पशु-याग' कहा जाता है। अथर्व-परिशिष्ट (५.१) मे 'पशुयाग' का अनुकल्प 'पिष्ट पशु' विहित है। 'पिष्ट पशु' आटेके बनाये 'पिण्ड'को कहा जाता है। मनुस्मृति (५.३७) मे 'घृतपशु' का भी उल्लेख है। परन्तु कई मतों में यह उल्लेख यज्ञार्थ नही है।

कौन-कौन जातियां यज्ञाधिकारिणी हैं, किन वेद-मन्त्रोसे कौन-कौन यज्ञ किये जाते हैं, किस यज्ञमे किस (तीव्र, मध्यम और मन्द्र) स्वरमे मन्त्र पढे जाते हैं, किसमे मनोजप किया जाता है आदिका विचार "यज्ञ-

परिभाषासूत्र" के २३ सूत्रोतक किया गया है। २४ वे सूत्रमे कहा गया है कि ऋत्विक् (यज्ञ कराने) का एकमात्र अधिकार ब्राह्मणको ही है। हा, यज्ञ करनेका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनोको है।

सोमयज्ञके 'अहीन' और 'एकाह' यज्ञोमे षोडश ऋत्विक् दीक्षित होते है। इनमे होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा प्रधान है। मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत होताके, प्रतिप्रस्थाता, नेता (नेष्टा) और उन्नेता अध्वर्युके, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य उद्गाताके तथा ब्राह्मणाच्छसी, आग्नीध्र और पोता ब्रह्माके सहकारी है। इनके सिवा एक गृहपति भी रहता है। ये सत्रह व्यक्ति दीक्षित होते है (आश्वलायन-श्रौतसूत्र ४ १)। ऐतरेय-ब्राह्मण (७ १ १) के मतसे यज्ञ-विशेषमे आत्रेय, सदस्य, उपगाता और शमिता आदि भी वृत होते है।

जिन यज्ञोमे त्रिविध अग्निकी स्थापना की जाती है, उन्हे सोमसस्था कहते है। तीन अग्नि ये है—गार्हपत्य, दक्षिण और आहवनीय। प्रथमको पिता, द्वितीयको पुत्र और तृतीयको पौत्र भी कहा गया है (आश्वलायन श्रौतसूत्र २.२ और ४)। इन तीनोका विशेष विवरण शतपथ (१ ९ २ ४), कात्यायन-श्रौतसूत्र (२ ७ २९ और ५ ८ ६), छान्दोग्योपनिषद् (२ २४ ११ और ४ १३ १) तथा मनुस्मृति (२३ २३१) आदिमें देखने योग्य है।

मुसलमानोमे जो स्थान चादका और ईसाइयोमे जो स्थान क्रासका है, वही स्थान हिन्दुओमे अग्निका है। आर्य अग्निको प्रकाशक, तेजस्वी और ज्योति स्वरूप मानते थे। प्रकाश, तेज और ज्योति पानेकी इच्छा रखनेवालेको अखण्ड अग्नि प्रज्वलित रखना चाहिये। आर्य लोग सदा ऐसा करते चले आये। विवाहमे व्यवहृत अग्निको घरमे लाकर प्रज्वलित रखा जाता था। इसे ही गार्हपत्याग्नि वा विवाहाग्नि कहा जाता है। दक्षिणाग्नि वह है, जिसमे दक्षिणाके लिये हलुआ, मोहनभोग आदि बनते थे और यज्ञाहुतियोके लिये स्थालीपाक भी बनते थे। इसका नाम कात्या-

यन-श्रौतसूत्र (२ ५ २७) ने अन्वाहार्य-पचन रखा है। अग्निहोत्रादि यज्ञाग्निको आहवनीयाग्नि कहा जाता है। गार्हपत्याग्नि पिता इसलिये है कि इससे भी दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्निको लिया जाता है। दक्षिणाग्निसे भी आहवनीयाग्निको लिया जाता है। इसीलिये दक्षिणाग्नि पुत्र और आहवनीयाग्नि पौत्र है। अरणि-मन्थनसे भी दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्निको उत्पन्न किया जाता है। गार्हपत्याग्निको कभी बुझने नही दिया जाता था। इसीसे मृत-दाहाग्निको भी लिया जाता था। यास्क ने गार्हपत्याग्निको वनस्पति-अग्नि, दक्षिणाग्निको शमिता और आहवनीयाग्निको देवाग्नि भी लिखा है।

प्रत्येक यज्ञमे गोघृतका ही व्यवहार करना लिखा है। प्रत्येक यज्ञमें अध्वर्युको साधारण कर्त्ता माना गया है। यज्ञके अनेकानेक पात्र होते है, परन्तु होम मात्रमें 'जुहू'का ही व्यवहार लिखा है। इसके अभावमें 'स्रुव'का उपयोग उचित है। जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाले है, उनकी मृत्यु हो जानेपर उनकी चितापर समस्त यज्ञीय पात्र रखकर जलानेकी विधि है। पात्रोको प्रतिदिन उष्ण जलसे प्रक्षालित करनेकी विधि भी है। सहिताओ और ब्राह्मण-ग्रन्थोके अनुसार समस्त यज्ञोका सम्पादन करना चाहिये'—"**मन्त्रब्राह्मणे यज्ञस्य प्रमाणम्**" (यज्ञ-परिभाषा-सूत्र ३३)। यज्ञपरिभाषासूत्रके ३४ वें सूत्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि "मन्त्र और ब्राह्मण—दोनो ही वेद है"—"**मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।**" जिन वाक्योसे अग्निष्टोम आदि कर्मोका विधान किया गया है, उन समस्त वैदिक वाक्योको 'ब्राह्मण' माना गया है। जैसे 'कृत्तिका नक्षत्रमे अग्निका आधान करना चाहिये' (शतपथ १ १ २ १)।

इन विधान-वाक्योंका वर्णन करनेवाले वाक्योको 'अर्थवाद' कहा गया है—जैसे 'कृत्तिकामें अग्न्याधान (अग्नि-स्थापन) करनेवाला 'ब्रह्मवर्चस्' प्राप्त करता है' (शतपथ १.१ २ २)। अर्थवादके चार भेद है—निन्दा, प्रशंसा, परकृति और पुराकल्प। निन्दा यह है—'आत्महत्या करनेवाला

नरक जाता है।' प्रशसा—'अश्वमेध यज्ञ करनेवाला ब्रह्महत्यासे छूट जाता है।' परकृति—'चरकाध्वर्यु शाखावाले 'पृषदाज्य' (दधिमिश्रित घृत) से हवन करते है।' पुराकल्प—'प्रजापतिने इच्छा की कि मै बहुत हो जाऊँ।' ये चारो प्रकारके वचन 'अर्थवाद' है और ब्राह्मण-ग्रन्थोमे अर्थवाद बहुत है। अर्थवादकी ही तरह ब्राह्मण-ग्रन्थोमे मन्त्र भी बहुत है—जैसे ताण्ड्य-ब्राह्मण और छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथमके दोनो अध्यायोमें है। इसी तरह सहिताओमे भी बहुत ब्राह्मण-वचन पाये जाते है।

मीमासाकारने अर्थवादके तीन भेद किये है—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थानुवाद। भूतार्थानुवादके सात भेद फिर कहे गये हैं—स्तुत्यर्थवाद, फलार्थवाद, सिद्धार्थवाद, निन्दार्थवाद, परकृति, पुराकल्प और मन्त्र। कही-कही हेतु, निर्वचन, सशय आदिको भी अर्थवाद कहा गया है। वैदिक साहित्यमे अर्थवादके बहुत प्रसग आये है, इसीलिये यहा थोडीसी चर्चा की गयी। अर्थवादका पूरा ज्ञान प्राप्त किये विना मन्त्रो और ब्राह्मणोके अर्थके अनर्थ कर दिये जाते है—यज्ञ-रहस्य समझनेमें भी बाधा होती है, इसलिये अर्थवादका सागोपाग ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

यज्ञ-कार्यमे अनध्याय नही होता। 'प्रत्येक देव-कार्यको पूर्व वा उत्तर मुख करके और यज्ञोपवीती होकर करना चाहिये।' (यज्ञपरिभाषासूत्र ६३)। यज्ञोपवीती बायें कन्धेके आधारपर जनेऊ पहननेको कहा जाता है और प्राचीनावीती दाहिने कन्धेके आश्रयसे जनेऊ पहननेको कहा जाता है। दक्षिणाभिमुख और प्राचीनावीती होकर पितृ-कार्य करना चाहिये (य० प० सू० ६४)। अमावस्याके दिन दर्शयाग और पूर्णमासीके दिन पौर्णमास-यज्ञ करना चाहिये (य० प० सू० ६७)। 'जहा-जहा 'तुष्णीम्' विधि है, वहा-वहा छोडकर अग्निमें घृत, हवि. आदि जो कुछ दिया जाता है, सो सब 'स्वाहा' कहकर देना चाहिये' (य० प० सू० ९०)। 'सपत्नीक यज्ञ करनेकी जहा विधि है, वहा अपत्नीक यज्ञ नही किया जा सकता,

जहां आहवनीयाग्नि प्रतिनिधि लिखा है, वहा गार्हपत्याग्निको प्रतिनिधि नही किया जा सकता। अग्निका प्रतिनिधि सूर्य नही हो सकता, एक मन्त्र का प्रतिनिधि दूसरा मन्त्र नही हो सकता, प्रयाजादि कर्मोके प्रतिनिधि प्रोक्षणादि नही हो सकते और यज्ञमे निषिद्ध मसूड़, चना और कोदो आदि याग-द्रव्यके प्रतिनिधि नही हो सकते' (य० प० सू० १३९)। मतलब यह कि जहा जैसा विधान है, वहा वैसा ही होना चाहिये; विहितके स्थान पर अविहितसे काम नही चल सकता।

यज्ञपरिभाषासूत्रमे केवल १६० सूत्र है। यज्ञ-विवरण पढनेवालोको ये सारे सूत्र देखने चाहिये। यहा स्थानाभावके कारण अधिक उल्लेख नही किया जा सकता। इन सूत्रोमे दो ही सूत्र ऐसे है, जिनमे सुराधार, कुम्भी, मास-पाक करनेके शूल और चर्वी पकानेके 'कडाहा' (वपा-श्रपणी) का उल्लेख है। सूत्रोंमें कहा गया है कि 'एकजातीय पशुओके लिये ये वस्तुएँ एक-एक ही होनी चाहिये' (सूत्र १५४ और १५५)। श्रीसत्यव्रत सामश्रमीके मतसे वैदिक साहित्यके इन ग्रन्थोमे कुम्भीका उल्लेख है—वाजसनेय-संहिता १९.१६ २७ और ८७; अथर्ववेद-सहिता ९ ५.५ और ५.६ १७, ११ ३ ११; १२ २.५१ और १२ ३ २३; तैत्तिरीय-सहिता ३.२.८.४ और ५, शतपथ-ब्राह्मण १.१ २.१, १.९.१.३; १.५.३.१६; आश्वलायनगृह्यसूत्र ४ ५; कौशिकसूत्र ६ ६१, लाट्यायन-श्रौतसूत्र ३.४ और १४, कात्यायन-श्रौतसूत्र १९ ३ २०। शूलका उल्लेख इन ग्रन्थोंमे है—शतपथ-ब्राह्मण ११ ४ २ ४; ११ ७ १.२; ११.७ ४ ३; आश्वलायनगृह्यसूत्र १ ११.१२; कात्यायन-श्रौतसूत्र ६ ७ १४, ८.८.३२; २० ७ २७, छान्दोग्योपनिषद् ७.१५ ३। वपाश्रपणीका उल्लेख इनमें है—शतपथ-ब्राह्मण ३ ६.३ १०, ३ ८.२ १७ और २८, तैत्तिरीयसहिता ६ ३ ८.२, कात्यायन-श्रौतसूत्र ६ ५ ७ और २६। इन उल्लेखो से तो मालूम होता है कि कदाचित् यज्ञोमे पशुओकी बलि होती थी। परन्तु इसके उत्तर चार प्रकारसे दिये जाते है—

(१) आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले तो इनका उल्लेख ही नही मानते; वे इन शब्दोके अर्थ और करते है।

(२) पशु-यागोमे अनुकल्पका (पशुओके स्थानपर दूसरी वस्तुओका) बहुत विधान है, इसलिये आटेके पिण्ड आदिसे ही काम चलाया जाता है, पशु-बलिकी आवश्यकता ही नही समझी जाती।

(३) कुछ लोग कहते है कि 'अन्य युगोके लिये भले ही विधान हो, परन्तु कलिमे, यज्ञोमें, पशु-बलि निषिद्ध है।'

(४) अनेक सज्जन यह भी उत्तर देते है कि 'पहले भी कुछ निम्न कोटिके अधिकारी थे। ऐसे ही तामस लोगोके लिये पशु-बलिकी विधि है, अन्य लोगोके लिये नही।'

पाठक विचार कर देखे कि कौन उत्तर कहातक उपयुक्त है। लेखक के मतसे ये चारो उत्तर यथा-स्थल ठीक हो सकते है।

श्रीमद्भागवतगीताको सस्कृत-साहित्यका अमूल्य रत्न माना जाता है, परन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् स्व० चिन्तामणि विनायक वैद्यने अपने "सस्कृत-साहित्यके इतिहास" ("वैदिक काल") मे गीताको वैदिक साहित्यका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना है। कितने ही अन्य विद्वान् भी ऐसा ही मानते है। इसलिये यज्ञके सम्बन्धमें गीताका अभिमत जान लेना प्रासगिक ही है। गीतामे यज्ञके अर्थ परोपकार, श्रेष्ठ धर्म, उत्तम कर्म आदि है। महात्मा गाधीकी ही तरह लो० बाल गगाधर तिलकने भी यज्ञका अर्थ परोपकार किया है।

यो तो गीतामें यज्ञ शब्दकी बहुत चर्चा आयी है, परन्तु कुछ विस्तृत उल्लेख ३ रे, ४ थे, १७ वे और १८ वे अध्यायोमें है। भगवान्ने सबसे पहले घोषणा की है—"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽय कर्मबन्धन" (गीता ३.९)। अर्थात् 'यज्ञके लिये जो कर्म किये जाते है, उनके अतिरिक्त अन्य कर्मोसे लोक बँधा हुआ है'। तात्पर्य यह है कि यज्ञ-कर्म मुक्ति देनेवाले

हैं और अन्य कर्म बन्धन डालनेवाले हैं। इस घोषणाके अनन्तर भगवान्‌ने ६ श्लोकोमे यज्ञकी प्रकृति और प्रक्रिया बतायी है।

कहा गया है–'यज्ञके साथ प्रजाको उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्माने कहा–'यज्ञके द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो। यह तुम्हे इच्छित फल दे। तुम यज्ञके द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हे सन्तुष्ट करते रहे। इस प्रकार परस्पर सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम कल्याण प्राप्त करो। यज्ञसे सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हे इच्छित भोग देगे। उन्हीका दिया हुआ उन्हे वापस न देकर जो केवल स्वय उपभोग करता है, वह सचमुच चोर है। यज्ञ करके शेष वचे हुए भागको ग्रहण करनेवाले सज्जन सब पापोसे मुक्त हो जाते है। परन्तु यज्ञ न करके केवल अपने ही लिये जो अन्न पकाते है, वे लोग पाप भक्षण करते है। प्राणियोकी उत्पत्ति अन्नसे होती है, अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, वर्षा यज्ञसे उत्पन्न होती है और कर्मसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है। कर्मकी उत्पत्ति प्रकृतिसे हुई है और प्रकृति परमेश्वरसे उत्पन्न हुई है। इसलिये सर्व-व्यापक ब्रह्म सदा यज्ञमे विद्यमान रहते है। इस प्रकार जगत्‌की रक्षाके लिये चलाये हुए यज्ञ-चक्रको जो आगे नही चलाता, उसकी आयु पाप-रूप है। देवोको न देकर स्वय उपभोग करनेवालेका जीवन व्यर्थ है' (गीता ३ १०–१५)।

कई ग्रन्थोकी बाते भगवान्‌ने इन ६ श्लोकोमे कह दी हैं। इनसे ज्ञात होता है कि यज्ञ करना और देवोको सन्तुष्ट करना हर एकके लिये अनिवार्य है, यज्ञ न करनेवाला चोर और पापी है, यज्ञसे ही परम्परया जीवोकी उत्पत्ति और प्राण-रक्षा होती है, यज्ञमे साक्षात् परमात्मा विराजते है और यज्ञ न करनेवालेका जीवन व्यर्थ है।

वस्तुत यज्ञ करना प्रभुकी सेवा करना है। भगवान्‌ने स्पष्ट ही कहा है–'श्रद्धाके साथ अन्य देवोके भक्त वनकर जो लोग यजन करते है, वे भी मेरा ही यजन करते है, क्योकि मै ही सारे यज्ञीय पदार्थोका भोक्ता और स्वामी हूँ' (९ २४–२५)। १७ वे अध्याय (२३) मे तो

ओंकारसे यज्ञकी उत्पत्ति बतायी गयी है। १८ वे अध्याय (५) मे यज्ञको पवित्रता-कारक और अनिवार्य कर्म बताया गया है।

१७ वे अध्याय (११–१३ श्लोक) मे भगवान्ने सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंके लक्षण भी बताये हैं। कहा गया है–'फलाशा छोड़कर और कर्त्तव्य समझकर, शास्त्रीय विधिके अनुसार, शान्त चित्तसे, जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है। फलकी इच्छासे और ऐश्वर्य दिखाने के लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह राजस है। शास्त्र-विधि-रहित, अन्नदान-विहीन, विना मन्त्रोंका, विना दक्षिणाका, श्रद्धा-शून्य यज्ञ तामस यज्ञ है।' यज्ञाभिलाषियोंको ये श्लोक कण्ठस्थ कर लेने चाहिये।

गीताके ४ र्थ अध्याय (२४–३३) मे भी यज्ञकी कुछ विशेष चर्चा है। कहा गया है–'यज्ञमे अर्पण (हवन-क्रिया) ब्रह्म है, हवि (अर्पण-द्रव्य) ब्रह्म है और ब्रह्मरूपी अग्निमे हवन करनेवाला भी ब्रह्म है। इस प्रकार यज्ञ-कर्मके साथ जिसने मेल साधा है, वह ब्रह्मको ही पाता है। कोई-कोई कर्मयोगी (ब्रह्म-यज्ञके बदले) देवोद्देश्यसे यज्ञ किया करते है। किन्तु अन्य ज्ञानी पुरुष ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञसे ही यज्ञका यजन करते है अर्थात् ब्रह्ममें ज्ञान द्वारा एकीभावसे स्थित होते है। कितने ही श्रवणादि इन्द्रियो का सयम-रूप यज्ञ करते है और कुछ लोग इन्द्रिय-रूप अग्निमें शब्द आदि विषयोका हवन करते है। कितने ही इन्द्रियो और प्राणोके कर्मोको ज्ञान-दीपकसे प्रज्वलित आत्म-सयम-रूप योगकी अग्निमे हवन किया करते है। इस प्रकार कोई यज्ञार्थ द्रव्य देते है, कोई तप करते है, कितने ही अष्टाग योग साधनेवाले होते है, कितने ही स्वाध्याय-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ करते है। ये सब कठिन-व्रतधारी प्रयत्नशील याज्ञिक है। प्राणायाममें तत्पर होकर प्राण और अपानकी गतिको रोककर, कोई प्राण-वायुका अपानमे हवन किया करते है और कोई अपान वायुका प्राणमे हवन किया करते है। कुछ लोग आहारका सयम करके प्राणोमे ही प्राणोका होम किया करते है। यज्ञोके द्वारा अपने पापोको क्षीण करनेवाले ये सब यज्ञको जाननेवाले

है। यज्ञसे बचे हुए अमृतको खानेवाले लोग सनातन ब्रह्मको पाते है। यज्ञ न करनेवालेके लिये यह ससार ही नही है, तो परलोक तो हो ही कहासे सकता है ? इस प्रकार वेदमे अनेक प्रकारके यज्ञोका वर्णन हुआ है। सबको कर्मसे उत्पन्न जान। इस प्रकार सबको जानकर तू मोक्ष पावेगा। द्रव्य-यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है।' 'सब प्रकारके सम्पूर्ण कर्मोका अन्त ज्ञानमे होता है।' 'यज्ञके लिये कर्म करनेवालेके सारे बन्धन छूट जाते है' (४२३)।

इस प्रकार भगवान्ने ब्रह्म-यज्ञ, देव-यज्ञ, सयम-यज्ञ, योग-यज्ञ, द्रव्य-यज्ञ, तपो-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ आदि कितने ही यज्ञोको बताया है और सवका वेदमे उल्लेख भी बताया है। साथ ही यज्ञोके द्वारा पापो का नष्ट होना और कर्म-वन्धनसे छूटना भी कहा है। यज्ञोच्छिष्टको अमृत वताकर उसका भक्षण करनेवालेके लिये ब्रह्म-प्राप्ति भी बतायी है। यह भी कहा है कि काय-मनो-बुद्धि आदिके सयमके विना यज्ञ नही हो सकता और यज्ञके विना मोक्ष नही प्राप्त हो सकता। म० गाधीने भी अपने "अनासक्ति-योग"मे लिखा है—'यज्ञ विना मोक्ष नही होता' (४. ३२)। अन्तको भगवान्ने ज्ञान-यज्ञको श्रेष्ठ कहा है। प्रायः यही बात १८ वे अध्याय (७०) मे भी कही गयी है। यह ठीक ही है; क्योकि ज्ञान-शून्य परोपकार भी किसी कामका नही होता। ज्ञान-रहित दान भी हानि-कारक हो सकता है। कोई भी कर्म तभी सुन्दर, शुद्ध और उपयुक्त होता है, जब उसके साथ ज्ञानका मेल हो। अज्ञानी तो यज्ञाधिकारी भी नही हो सकता और यज्ञ-रहित मनुष्यका जीवन ही व्यर्थ है।

पहले कहा गया है कि प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको अनुष्ठित होनेके कारण 'दर्शपौर्णमास' नाम पडा। इस यज्ञमे उपवास करके यजमान दम्पतीको संयम-पूर्वक रात वितानी पडती है। दूसरे दिन यज्ञानुष्ठान होता है। अमावास्याके दिन अग्निके लिये पुरोडाश, इन्द्रके लिये दधि और पुन इन्द्रके लिये दुग्धका त्याग किया जाता है। ये तीनो तीन याग

कहाते हैं। पूर्णिमाको पहला अग्नि-सम्बन्धी अष्टाकपालवाला पुरोडाश-याग, दूसरा अग्नि और सोमके लिये आज्य द्रव्यवाला उपांशु-याग और पुनः तीसरा अग्नि और सोमके लिये एकादश कपालवाला पुरोडाश-याग किया जाता है। इस प्रकार दर्शपौर्णमास यज्ञमें सब छः याग होते हैं।

वाजसनेय-माध्यन्दिनके प्रथम दो अध्याय दर्शपौर्णमास यज्ञकी विधियोंमें ही विनियुक्त हैं। जैसे संहिताओंमें माध्यन्दिनकी प्रसिद्धि है, वैसे ही यज्ञोंमें दर्शपौर्णमासकी।

सभी यज्ञोंमें अनुष्ठान-विधि बड़ी विस्तृत होती है। अनेक यज्ञोंकी अनेक अनुष्ठान-विधियां भी हैं। नमूनेकी तरह यहां दर्शपौर्णमासकी अनुष्ठान-विधि लिखी जाती है। अनेक यज्ञोंमें तो कुछ घटा-बढ़ाकर यही अनुष्ठान-विधि प्रयुक्त की जाती है।

१ अग्नि-उद्धरण—गार्हपत्याग्निसे आहवनीयाग्नि और दक्षिणाग्निका पृथक् किया जाना।

२. अग्नि-अन्वाधान—तीनों अग्नियोंमें छः-छः समिधाओंका दिया जाना।

३. ब्रह्म-वरण—यजमानके द्वारा ऋत्विक्‌का वरण।

४. प्रणीता-प्रणयन—चमसमें जल भरकर निर्दिष्ट स्थानमें रखना।

५. परिस्तरण—अग्निके चारों ओर कुशाच्छादन।

६ पात्रासादन—यज्ञीय पात्रोंको यथास्थान रखना।

७ शूर्पाग्निहोत्रहवणीका प्रतपन।

८ शकटसे हवि ग्रहण करना।

९ पवित्रीकरण।

१०. पात्रहवि-प्रोक्षण—हविष्य और पात्रोंका मार्जन।

११. फलीकरण—तण्डुलसे कणोंको दूर कर शोधन करना।

१२ कपालोपधान—दो अंगुल ऊँचे किनारेवाले मिट्टीके पात्र कपाल कहे जाते हैं। इन्हें यथास्थान रखना।

१३. उपसर्जनीका अधिश्रयण—पिष्ट-सयवनके लिये तप्त जलका नाम उपसर्जनी है। इसे नीचे रखना।

१४ वेदीकरण।

१५ स्तम्बयजु॰-हरण—मन्त्रसे कुशको छिन्न कर रखना।

१६. स्रुवा, जुहू, उपभृत् और ध्रुवाआदि काष्ठ-निर्मित यज्ञ-पात्रोंका समार्जन।

१७. पत्नीसनहन—मूजकी रज्जुसे पत्नीकी करधनी बनाना।

१८. इध्म, वेदी और बर्हिकाका प्रोक्षण।

१९. प्रस्तर-ग्रहण—कुशमुष्टिको प्रस्तर कहा जाता है।

२०. वेदिकास्तरण—वेदीपर कुशाच्छादन करना।

२१ परिधि-परिधान—वेदीके चारो ओर परिधि बनाना।

२२. इध्मका आधान।

२३ विधृति-स्थापन।

२४. जुहू आदिको वेदीपर रखना।

२५. पञ्चदश-सामिधेनी-अनुवचन।

२६. अग्नि-संमार्जन।

२७. आधार—अग्निके एक छोरसे दूसरे छोरतक आज्यकी धाराका प्रक्षेप करना।

२८ होतृ-वरण।

२९ पञ्च प्रयाज (पाच प्रकृष्ट याग)।

३०. आज्य-भाग (अग्नि और सोमदेवताके निमित्त)।

३१. प्रधान याग—प्रधान देवताके लिये याग।

३२ स्विष्टकृत् (प्रधान यागको शोभित करनेवाली याग-विधि)।

३३. प्राशित्रावदान—ब्रह्माके भागको प्राशित्र कहते हैं। उसका ग्रहण।

३४. इडावदान आदि।

३५. अन्वाहार्य-दक्षिणा (ऋत्विक्का खाद्य ओदन अन्वाहार्य कहाता है)।

एकोनविंश अध्याय

जैमिनीय मीमांसा और वेद

पुराण-कर्त्ता बादरायण व्यासके शिष्य जैमिनिकी बनायी **"पूर्वमीमांसा"** को पाचवा शास्त्र मानकर लौकिक साहित्यमे गिना जाता है, परन्तु इसमे वेदकी नित्यता, प्रामाणिकता और वैदिक यज्ञोका इतना विशद विचार है कि इसे वैदिक साहित्यका ही ग्रन्थ समझना उचित होगा। वस्तुत. पूर्व मीमासाका परिचय दिये विना वैदिक साहित्यका परिचय पूर्ण और सागो-पाग नही कहा जा सकता।

यह दर्शनशास्त्र न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग और उत्तरमीमासा (वेदान्तदर्शन) से बडा है। इसमे बारह अध्याय, अडतालीस पाद तथा एक हजार अधिकरण और हजारसे कुछ कम सूत्र है। कोई अधिकरण एक ही सूत्रमे है, कोई दो, तीन, चार वा इससे भी अधिक सूत्रोमे है और किसी-किसी सूत्रमे दो-तीन अधिकरण भी है। अधिकरण विचारको कहा जाता है।

इसके कई नाम है—द्वादशलक्षणी, पूर्वमीमासा, पूर्वकाण्ड, कर्ममीमासा, कर्म-काण्ड, यज्ञविद्या, अध्वरमीमासा, धर्ममीमासा आदि। बारह अध्यायोमे विभक्त होनेके कारण द्वादशलक्षणी नाम पडा। कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डमे वेद विभक्त है और कर्मकाण्डात्मक वेदका विशेष विचार रहनेके कारण इसके नाम पूर्वमीमासा, पूर्वकाण्ड, कर्ममीमासा, कर्मकाण्ड आदि पडे। यज्ञका अत्यधिक विचार रहनेके कारण इसके नाम यज्ञविद्या और अध्वरमीमासा रखे गये। धर्म-निरूपण

ही इस शास्त्रका प्रधान उद्देश्य है,"। इसलिये इसका एक नाम धर्ममीमासा भी हुआ। मीमासा शब्दका अर्थ निर्णय है।

इसके प्रथम अध्यायमे धर्मज्ञानका प्रयोजन, धर्मलक्षण, धर्ममें प्रमाण, वेदोक्त क्रियाएँ क्योकर धर्म है, आदिका विचार है। द्वितीय अध्यायमे याग-यज्ञकी विविधता कही गयी है। तृतीयमे इन बातोका निरूपण है कि किस यज्ञका कौन अग है तथा कौन अग प्रधान और कौन अप्रधान है। चतुर्थमे याज्ञिकके गुण कहे गये है और जो यज्ञ जिस शैलीसे सम्पादित किया जाता है, उसका विवेचन है। पाचवेमें यज्ञादि कर्मोका क्रम-निर्णय है। छठेमे अधिकारि-निर्वाचन है। सातवेमे 'अतिदेश' वाक्योका विवेचन है। 'अमुक कर्म अमुक कर्मकी तरह करना चाहिये'—ऐसे वाक्योको अति-देश कहा जाता है। आठवेमे 'विशेपातिदेश' वाक्योकी मीमासा है। नौवेमे उह-विचार है। मन्त्रादिमे अप्राप्त पदार्थकी उत्प्रेक्षा वा उल्लेखको 'उह' कहा जाता है। उहका विचार कहा करना चाहिये, कहा नही, यही 'उह-विचार' का उद्देश्य है। लिखित द्रव्यके अभावमे प्रतिनिधि-द्रव्यके द्वारा कार्य करने और 'अतिदेश'—विधानके कार्य करनेके समय 'उह-विचार' का सिद्धान्त लागू होता है। मधुके अभावमे गुड देनेकी व्यवस्था है। परन्तु गुड देनेके समय "मधुवाता ऋतायते" मन्त्रका पाठ करना चाहिये कि नही, यह सशय होता है। 'उह-विचार' का सिद्धान्त है कि 'इस मन्त्रका अविकल पाठ होना चाहिये।' दसवेमे 'बाध'-निर्णय है। कहा किस मन्त्र, किस द्रव्य और किस क्रियाका परित्याग करना चाहिये, इसका निश्चय करना 'बाध'—विचारका उद्देश्य है। ग्यारहवेंमे 'तन्त्रता'का विचार है। जहा एक कर्त्ताको अनेक कर्म करने होते है, वहा एक कर्मके अनुष्ठानसे अन्य कर्मका फल सिद्ध होता है, इसका निर्णय 'तन्त्रता'-विचारका उद्देश्य है। जैसे स्नान करना प्रत्येक क्रियाका अग है, परन्तु कर्त्ताको यदि एक दिनमें पाच कर्म करने है, तो एक ही बार स्नान करना होगा और इसीसे अन्य स्नानोका फल प्राप्त हो जायगा—बार-बार स्नान करनेकी आवश्यकता

नही पडेगी। बारहवेमें प्रसंग-निर्णय है। एक बातको लक्ष्य करके कार्य करनेपर यदि अन्य फल सिद्ध होता है, तो उसको प्रसग-सिद्ध कहा जाता है। जैसे आम्र-फलके लिये वृक्षको रोपा जाता है; परन्तु छाया प्रसंगतः मिल जाती है। किसी यज्ञके लिये पुरोडाश (पिसान) तैयार करनेपर अग-यज्ञके लिये उसे नही तैयार करना होगा, क्योकि अग-यागका पुरोडाश प्रसग-सिद्ध है।

इस विषय-सूचीसे स्पष्ट विदित होता है कि मीमासादर्शन वैदिक साहित्यकी बातोसे भरा पडा है।

मीमासाकारके मतसे मन्त्र वह है, जो अनुष्ठानके समयमे उपयुक्त अनुष्ठेय अर्थका वोध कराता है। कई आचार्योके मतसे 'चिर कालसे कहे जानेवाले मन्त्र मात्र मन्त्र है।' मन्त्रावशिष्ट वाक्योको ब्राह्मण कहा गया है। परन्तु वेदके ये ही दो भाग नही है—इतिहास, पुराण, कल्प, नाराशसी, गाथा आदि भाग भी है। प्राचीन घटनाएँ बतानेवाला वेदाश इतिहास है, पूर्वावस्थाको बतानेवाला वेदाश पुराण कहाता है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य बतानेवाले वेद-भागको कल्प कहते है, मनुष्य-वृत्तान्त-बोधक सन्दर्भको नाराशसी कहा जाता है और प्रशसा तथा गाने योग्य सन्दर्भको गाथा कहते है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे वेद-भाग है।

इन सारे भागोको पुनः जैमिनिने चार भागोमे बाटा है—विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय। इन्हीके द्वारा धर्म, धर्म-जनक यज्ञ, दान, होम आदि कर्मोंके स्वरूप और अनुष्ठान बताये गये है। मीमासाका पहला सूत्र है—"**अथातो धर्म-जिज्ञासा।**" आशय यह है कि विचार द्वारा धर्म-तत्त्व जानना आवश्यक कर्त्तव्य है। धर्म क्या है? इसका उत्तर जैमिनिने दिया है—"**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।**" अर्थात् जिसके ज्ञापक वा बोधक विधिवाक्य है और जो श्रेयस्कर और इष्ट है, वही धर्म है। आशय यह है कि विधि-वोधक और श्रेयस्कर क्रिया-कलाप (यज्ञ, दान, होम आदि) धर्म

है। मीमासा-भाष्यकार शवर स्वामीने धर्मपर विशद विचार किया है। एक तो यहा स्थान-सकोच है, दूसरे ऐसी प्रगाढ और पाण्डित्य-पूर्ण शैली में भाष्यकारने विचार किया है कि हिन्दीमे उसका अनुवाद होना तो दूर रहे, छायानुवाद होनेमे भी सन्देह है।

जैमिनि कहते है—'अर्थके साथ शब्दका जो सम्बन्ध है, वह औत्पत्तिक नित्य है—कृत्रिम वा साकेतिक नही है। वह तो स्वाभाविक है। इसलिये विधि-वाक्योत्पन्न ज्ञान अवाधित और सत्य है। वेद-शब्द अज्ञात विषयो का ज्ञान कराते है, इसलिये स्थायी प्रमाण है। उच्चारणके पहले शब्द अव्यक्त रहता है, उच्चारणसे व्यक्त होता है—शब्द सदा रहता ही है, उत्पन्न नही किया जाता। उच्चारणके अनन्तर भी शब्द रहता है—अवश्य ही अव्यक्त हो जाता है—विनष्ट नही होता। "शब्द करो" का तात्पर्य शब्द बनाना नही है, ध्वनि करना है। शब्द तो नित्य रूपसे रहता ही है, हा, ध्वनिके द्वारा अभिव्यक्त अवश्य किया जाता है। जैसे नित्य-स्थित सूर्यको एक ही समय, अनेक स्थानोमे, अनेक मनुष्य देखते है, वैसे ही नित्य-स्थित वर्णात्मक शब्दको भी एक ही समय, अनेक स्थानोमे, अनेक मानव सुनते और वोलते है। प्रत्येक वर्ण स्वतन्त्र है, कोई किसीकी विकृति नही है। फलत किसी वर्णके वदले किसी वर्णका आना (जैसे व्याकरणमे 'इ'के स्थानमे 'य'का आना) विकृति नही है। शब्द वटता-घटता भी नही, ध्वनि ही वढती-घटती है। शब्द तो ज्योका त्यो रहता है। ध्वनिके द्वारा केवल दूसरोको वताया जाता है। शब्दके अनित्य रहनेपर उसे अभिव्यक्त करनेके लिये कोई ध्वनि भी नही करता; क्योकि नित्य और अव्यक्त की ही अभिव्यक्ति होती है—अनित्यकी नहीं। कोई भी नही कहता कि "आठ वार शब्द वनाओ।" सब यही कहते है कि "आठ वार शब्दका उच्चारण करो।' यह अनादि-काल-सिद्ध व्यवहार शब्दकी स्पष्ट ही नित्यता वताता है। इसके सिवा शब्दका उपादान-कारण भी कोई नही है। ध्वनिसे अभिव्यक्त शब्द ध्वनिसे भिन्न है। ध्वनि अभिव्यञ्जक है और शब्द अभिव्यञ्ज-

नीय। ध्वनिका ही उपादान कारण वायु है, शब्दका नही। इसलिये शब्द नित्य है। कई शास्त्रोका भी ऐसा ही मत है।

मनुष्यके भ्रम, प्रमाद, इन्द्रिय-दोष, विप्रलिप्सा आदिके कारण मनुष्य-कल्पित वाक्य अप्रमाण है, परन्तु अपौरुषेय वैदिक वाक्योमे कोई दोष नही है, इसलिये वे प्रमाण और स्वत सिद्ध है। शाकल-सहिता, शौनक-सहिता, पैप्पलाद-सहिता आदि शब्दोके कारण शाकल, शौनक और पैप्पलाद सहिता-ओके कर्त्ता नही है, केवल प्रचारक है। वेद-कर्त्ता तो कोई है ही नही।

मीमांसाके मतसे वेदोक्त यज्ञ, दान, होम आदि ही धर्म है—ये ही एक विशेष सामर्थ्य उत्पन्न करते है। इसीके द्वारा अनुष्ठान करनेवालेको स्वर्गा-दिकी प्राप्ति होती है। इसी सामर्थ्यको मीमासामे 'अपूर्व' कहा जाता है और अन्य शास्त्रोमे इसीको अदृष्ट, पुण्य आदि कहते है। कोई कोई मीमासक अपूर्व-शक्तिको ही 'धर्म' कहते है—यज्ञ-कियाको धर्म कहना उपचार मात्र बताते है। यह धर्म योगज ज्ञानके बलसे योगियोके लिये प्रत्यक्ष है। यहा मीमासाकोने बडा विस्तृत शास्त्रार्थ उठाया है; परन्तु निष्कर्ष यही है। मीमासक यज्ञोत्पन्न 'अपूर्व'-से ही मोक्षकी प्राप्ति भी मानते है।

'अपौरुषेय' के दो भेद है—सिद्धार्थ और विधायक। जो सिद्धवस्तु-विषयक ज्ञान उत्पन्न करता है, वह सिद्धार्थ है। जैसे 'यह आपका पुत्र है।' जो वाक्य कुछ करनेको कहता है, वह विधायक है। जैसे "स्वर्गाभिलाषी यज्ञ करे।" विधायक वाक्य भी द्विविध होते है—उपदेश और अतिदेश। 'इसे इस तरह करे', यह उपदेश है और 'अमुक कार्यके समान अमुक कार्य करे', यह अतिदेश है।

मीमासकोके मतसे केवल शब्द ही नित्य नही, शब्द-शब्दार्थ और वाक्य-वाक्यार्थका बोध्य-बोधक सम्बन्ध भी नित्य है। यह भी स्वाभाविक है, साकेतिक वा कृत्रिम नही है। शब्द नाम है, अर्थ नामी है, शब्द संज्ञा है, अर्थ सज्ञी है, शब्द बोधक है, अर्थ बोध्य है। यह सम्बन्ध किसीका बनाया हुआ नही है, अनादिपरम्परागत है। ध्वन्यारूढ वर्ण, पद, वाक्य सुननेके अनन्तर

श्रोताके अन्त करणमे जो अर्थ-प्रत्यायक ज्ञानमय वर्ण, पद, वाक्य उदित होते है, प्रस्फुरित होते है, वे ही प्रस्फुरित, अमूर्त्त पदार्थ "स्फोट" है। "स्फोट" निराकार वर्ण, पद, वाक्यकी प्रतिच्छाया है अथवा "स्फोट" ही अनादि-निधन और वर्ण, पद, वाक्य नामोका नामी (नामवाला) है। शब्द असख्य है, अर्थ भी असख्य है। ब्रह्मा वा कोई भी एक व्यक्ति शब्दो, अर्थो वा उनके सम्बन्धोका कर्त्ता नही है—ब्रह्मा द्वारा वेद-निर्माणका कोई प्रमाण भी नही है।

वेदका विधि-भाग अज्ञात तत्त्वोका विज्ञापक है, इसलिये वह स्वत प्रमाण है। विधि-पोषक वाक्य वा विधिके साथ मेल खानेवाले वेद-वाक्य भी प्रमाण है।

स्वत प्रमाण वेद चार भागोमे विभक्त है, यह बात पहले भी कही गयी है। ये चारो ये है—विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेय। जो कर्त्तव्य अन्य किसी प्रमाण वा वाक्यमें नही पाया जाता, वह विधि है। जैसे "स्वर्गा-भिलाषी यज्ञ करे" वाक्य अन्य किसी प्रमाण वा वाक्य-राशिमें नही पाया जाता। जो जीवकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारण प्राप्त है वा शास्त्र-प्राप्त है, उसे नियम कहा जाता है। यह भी विधिका एक भेद है। जैसे एकादशीके उपवासके बाद द्वादशीको 'पारण' (भक्षण) करे।' यह नियम स्वाभाविक इच्छा और शास्त्र, दोनोसे प्राप्त है। परिसख्या भी विधिका एक भेद है। जो वाक्यमे पाया जाता है तथा प्रमाणान्तर और वाक्यान्तरमे भी पाया जाता है, वह परिसख्या है। जैसे "पाच पचनखके अतिरिक्त अन्य जीव अभक्ष्य है।" साही, गोधा, कूर्म आदि पाच जीव पच्चनख है। यहा इच्छा और शास्त्र, दोनोसे ही "पञ्चनख-भक्षण" प्राप्त है। यही परिसख्या है। किसी-किसी मीमासकने विधिका अर्थ भावना (उत्पादन) किया है और किसी-किसीने नियोग। इन दोनोको लेकर भी आधुनिक मीमासकोने बडा विचार किया है। परन्तु मुख्य बात यह समझिये कि सबमें विधि और उसके भेदोके रूप "कुर्यात्, क्रियेत, कर्त्तव्य, यजेत"

आदि हैं अर्थात् "करे" है। सभी तरहके विधि-वाक्य कार्य वा कर्तव्यमें प्रवृत्ति जनमाते हैं।

विधिके अन्य चार भेद भी देखे जाते है—उत्पत्ति,विनियोग, अधिकार और प्रयोग। कर्त्तव्यकार्यका जो बोधक है,वह उत्पत्ति-विधि है। जैसे "**अग्नि-होत्रं जुहोति**" वाक्य केवल अग्निहोत्र नामक कर्मका विधान करता है, अन्य कुछ नही। अग-कर्मका जो विधायक है, वह विनियोग-विधि है। जैसे "**दध्ना जुहोति**"मे दधि-होम अग्निहोत्र यज्ञका अग है। जो फल-बोधक है, वह अधिकार-विधि है। जैसे "**स्वर्गकामो यजेत**"। इस विधिसे ज्ञात होता है कि यज्ञकर्त्ता स्वर्गफलभागी है। जो इन तीनो विधियोका सम्मेलन है, उसे प्रयोग-विधि कहा जाता है। जिस पद्धतिसे साग-प्रधान यज्ञादि कर्म किये जाते हैं, वह प्रयोग-विधिके द्वारा जानी जाती है।

कर्मानुष्ठान दो प्रकारके होते है—अग और प्रधान। जो दूसरेके लिये होता है, वह अग है और जो दूसरेके लिये नही होता, वह प्रधान है। अग प्रधानका सहायक है और प्रधान स्वय फल-जनक है। जैसे "दुर्गा-पूजन" प्रधान है और स्नान, आचमन, सकल्प आदि उसकी अग-क्रियाएँ हैं।

अग द्विविध है—सिद्ध-रूप और क्रिया-रूप। द्रव्य, संख्या आदि सिद्ध-रूप हैं और शेष क्रिया-रूप हैं।

क्रिया-रूप अगके दो भेद है—सन्निपत्योपकारक और आरादुपकारक। द्रव्यादि (सिद्ध-रूप अग) के उद्देश्यसे जिस क्रियाका विधान है, वह सन्नि-पत्योपकारक है। "**ब्रीहीनवहन्ति**", "**सोममभिषुणोति**" आदि वाक्योमें ब्रीहि (धान्य) और सोम द्रव्योको कूटने और चुलाने (अभिषव) की क्रियाओका विधान है। जहा द्रव्यादिका उद्देश नही दिखाई देता; परन्तु क्रियाका विधान है, वहां आरादुपकारक अग होता है। सन्निपत्योपकारक कर्म प्रधान कर्मके उपकारक है और प्रधान कर्म उपकरणीय है। यह उपकारक-उपकरणीय-भाव वाक्य-गम्य है, प्रमाणान्तर-गम्य नही है।

आरादुपकारक कर्मके साथ प्रधान कर्मके जो उपकारक-उपकार्य-भाव हैं, उन्हे प्रकरणानुसार देखना चाहिये।

विधिकी प्रशसा और निषेधकी निन्दा करनेवाले वाक्योको अर्थवाद कहा जाता है—"**विहितकार्ये प्ररोचना निषिद्धकार्ये निवर्त्तना अर्थवादः।**" अर्थवादके तीन भेद हैं—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद। प्रमाण-विरुद्ध अर्थ कहनेवाला वाक्य गुणवाद कहाता है। जैसे "**आदित्यो यूप.**" वाक्यमें 'यूप ही आदित्य है' अर्थ प्रत्यक्ष-विरुद्ध है, इसलिये समझना होगा कि यह उक्ति गुण-समानताके कारण है। जैसे सूर्य दिनको प्रकट करके यज्ञका उपकार करते है, वैसे ही यूप (एक तरहका स्तम्भ) भी पशु-बन्धनका आश्रय होनेके कारण यागोपकारक है। प्रमाण-सिद्ध अर्थ कहनेवाला वाक्य 'अनुवाद' कहाता है। जैसे "**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता।**" वायु क्षिप्रगामी हैं, यह अर्थ प्रमाण-सिद्ध है। जो प्रत्यक्ष-प्रमाण विरुद्ध नही है और अज्ञात वा अप्राप्त अर्थका बोध कराता है, वह भूतार्थवाद है। जैसे "**इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छन्**"। यह सन्दर्भ महाभारत आदिमे प्रसिद्ध है, इसलिये प्रमाण-विरुद्ध नही है और अप्राप्त अर्थका बोध भी कराता है।

वस्तुत अर्थवादवाले वाक्योका यथाश्रुत आक्षरिक अर्थ ग्राह्य नहीं होता। गुणवाद और अनुवाद वाक्योका अक्षरार्थ प्रमाण नही होता, किन्तु भूतार्थवादका प्रामाण्य तो स्वीकृत है।

अर्थवाद वाक्योमे जो फलका उल्लेख रहता है, वह केवल प्रलोभन है और जो निन्दा रहती है, वह केवल भयका प्रदर्शन है। जैसे आरोग्याभिलापी पिता अपने रोगी पुत्रको प्रलोभन दिखाकर तिक्त भोजन कराता है, वैसे ही शास्त्र भी फलका लोभ दिखाकर मनुष्योको सन्मार्गपर आरूढ कराता है और भय दिखाकर बुरे कर्मोसे बचाता है। रोगी पुत्र मिठाईके लोभसे तिक्त भोजन करता है, परन्तु पिता उसे मिठाई नही देता। वैसे ही शास्त्र भी स्वोक्त फल नही देता। जैसे पिताकी इच्छा पुत्रको नीरोग देखनेकी रहती है, वैसे ही शास्त्र चाहता है कि मनुष्य ऐहिक और पारत्रिक

उन्नयन करे। पिताके प्रलोभनसे पुत्र तिक्त (तीखा) भक्षण करनेपर केवल नीरोगिता पाता है, अन्य मिष्ठान्न नही, वैसे ही शास्त्रके प्रलोभन दिखानेसे मनुष्य शास्त्रानुसार चलकर ऐहिक और पारत्रिक अभ्युदय मात्र पाता है, अन्य फल नही। अर्थवाद वाक्योका यही रहस्य है। अर्थ-वादके और भी कई भेद है। सबका उल्लेख आवश्यक नही है।

अनुष्ठान-सम्बन्धी द्रव्य, देवता आदिके स्मरणके निमित्त प्रकाशक वाक्योको मन्त्र कहा जाता है। ऋक्, यजु, साम आदि कई प्रकारके मन्त्र होते है। अनुष्ठानके समय अनुष्ठेय पदार्थके स्मरणके लिये मन्त्रोकी आवृत्ति करनी पडती है। मन्त्रोकी आवृत्ति (पाठ) से द्रव्य, देवता आदिका और क्रम-विशेषका स्मरण होता है, इससे आत्मामे अदृष्ट उत्पन्न होता है। प्रयोग-विधिके साथ एकता स्थापित करके ही मन्त्रोका प्रामाण्य माना गया है, स्वतन्त्र रूपसे नही। जिस विषयका जो मन्त्र है, उसका उच्चारण उसीके साथ होना चाहिये। वैदिक कार्यमे वैदिक मन्त्र, पौराणिक कार्यमे पौराणिक मन्त्र और तान्त्रिक कार्यमे तान्त्रिक मन्त्र पढने चाहिये। जहा विषय-विशेषके मन्त्र नही मिलते, वहा देवताका नाम ही प्रणम्य और मन्त्र है। इसीलिये पूजा आदिके समय "**अमुकदेवतायै नमः**" मन्त्र प्रचलित है। वैदिक मन्त्रोमे स्वर-चिन्ह रहते है।

"**उद्भिदा यजेत**", "**विश्वजिता यजेत**", "**गोमेधेन यजेत**" "**अश्वे-मेधेन यजेत**" आदि वाक्योमे जो उद्भिद्, विश्वजित्, गोमेध, अश्वमेध आदि शब्द है, वे "नामधेय" है अर्थात् विशेष-विशेष यज्ञोके नाम है। ऐसे वाक्य विधि, अर्थवाद वा मन्त्र नही है, केवल नाम है। ये सब नाम विधि-अशमे अवस्थित यज्ञादिके साथ अभेद अन्वय प्राप्त करते है। वेदो और वैदिक साहित्यके सम्बन्धमे महर्षि जैमिनिके जो मत है, उन्हे, अतीव सक्षेपमे, अवतक लिखा गया। जैमिनीय मीमासाने वेदोके ऊपर जो प्रकाश डाला है, वह अमूल्य है। इस दर्शनके अभावमे अनेक वेद-विषय सदिग्ध ही रहते। इस दिशामे इतना महत्त्वपूर्ण कार्य किसी भी

हिन्दू दर्शन-शास्त्रने नही किया है। इसीलिये इसको प्रतिष्ठित नाम दिया गया है "धर्म-मीमासा"। इसे विधिवत् पढे विना कोई भी वेद-विज्ञाता नही हो सकता।

मीमासाके प्रधान प्रतिपाद्य वैदिक विषय है; किन्तु प्रसगत शरीर, मन, इन्द्रिय, जीव, ईश्वर, ब्रह्म, मूल-तत्त्व, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, सुख दु ख, प्रमाण, प्रमेय, सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि आदिका भी, दार्शनिक दृष्टिकोणसे, विचार किया गया है। परन्तु ये सव विषय इस पुस्तकके वाहरके है, इसलिये इनकी यहा चर्चा करना प्रसग-रहित समझा गया।

इस दर्शनका प्रकाशन, नाना स्थानोसे, विविध भाषाओमें हुआ है। नवीन मीमासकोने मीमासा-दर्शनका विराट् विस्तार भी कर डाला है।

विंश अध्याय

वेदव्याख्याता और परम्परा-प्राप्त वेदार्थ

जैसा कि पहले लिखा गया है, निरुक्तकार यास्कने वेदार्थके सम्वन्ध मे अनेक प्राचीन आचार्योके मत दिये है। इनमे एक मत कौत्सका है। उनका कहना है–"**अनर्थका हि मन्त्राः।**" अर्थात् 'मन्त्र अर्थ-हीन होते है।' परन्तु जिन वैदिक शब्दोसे अर्थका बोध नही होता, उनका परिगणन तो विशेष रूपसे निघटुमे किया ही गया है। इसलिये कौत्सका यहां इतना ही आशय है कि वैदिक मन्त्र केवल अर्थ-वोधके लिये ही नही है, यज्ञोमें उच्चारणके लिये भी है। यास्कने कौत्सको उत्तर दिया है–"**अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्।**" अर्थात् लौकिक सस्कृतमे प्रयुक्त शब्द वेदोमे है; इसलिये वे अर्थवान् है, अनर्थक नही। वेदोके मन्त्र-पाठपर मुग्ध होकर अनेक आचार्यो की धारणा होने लगी थी कि 'यज्ञार्थ ही मन्त्र है।' यही कारण है कि अव तक वेदोके जितने प्राचीन भाष्यकार हुए है, सबने प्राय याज्ञिक (आधिदैविक) अर्थका ही अनुधावन किया है। तो भी अधिक आचार्य यह भी मानते है कि 'जो वेदार्थ नही जानता, वह सूखा काठ है।'

पहले कहा ही गया है कि 'वेदोके कितने ही ऐसे शव्द है, जिनका अर्थ बिलकुल अज्ञात है, कुछ शब्द ऐसे है, जिनका अर्थ ढूढ-ढांढकर धात्वर्थसे या विकृत रूपसे या वाक्यमे स्थान देखकर अथवा जिन वाक्योमे उनका प्रयोग हुआ है, उनकी तुलना करके निश्चित किया जा सकता है। किन्तु वैदिक शव्दोका एक ऐसा वडा समुदाय है, जिनका अर्थ यास्कके '**शब्दसामान्यात्**'के अनुसार निश्चित रूपसे ज्ञात होता है वा जिनका अर्थ निर्वचनके अनुसार किया जा सकता है।

बहुतसे ऐसे वैदिक शब्द हैं, जिनका अर्थ सम्प्रदाय वा परम्परासे प्राप्त है। परम्परा-प्राप्त अर्थ अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है।'

मन्त्रार्थ करते समय इन सारी बातोपर ध्यान रखना चाहिये। यदि ध्यान रखा जाय, तो यथार्थ मन्त्रार्थ समझनेमे कठिनाई नही होगी।

कविका काम कविता कर लेनेके बाद समाप्त हो जाता है, उसके लिये आवश्यक नही कि वह अपनी कविताका अर्थ भी कर दे। अर्थ करनेवाले नाना रुचिके व्यक्ति होते है और अपनी अपनी रुचिके अनुसार विविध अर्थ कर डालते है। यदि कवि अपनी कविताका अर्थ भी लिख दे, तो लिपिकारोकी अज्ञता, अल्पज्ञता, प्रमाद, पक्षपात आदिके कारण हजारो वर्ष बाद लिखा हुआ अर्थ विलुप्त-सा हो जाता है और नाना प्रकारके विकृत अर्थ सामने आ जाते हैं। यदि कवि अपनी कविताका अर्थ किसीको समझा दे, तो समझनेवाला दूसरेसे कहेगा, दूसरा तीसरेसे और तीसरा चौथेसे—इस तरह समझाया हुआ अर्थ हजारो मुखो और मस्तिष्कोसे छनकर विकृत हो जाता है। ये ही सब कारण है कि **पद, क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ, घन** (विकृतवल्ली १.५) आदिमे आबद्ध करनेपर भी लिपिकारोके प्रमाद आदिके कारण बहुतसे वैदिक ग्रन्थोमे पाठान्तर हो गये। एक ही मन्त्र, दो-एक शब्द इधर-उधर करके, दुबारा लिखा गया तथा अनेक मन्त्र और शब्द ऐसे विकृत हो पडे, जिनका शुद्ध पाठ और अर्थबोध दुरूह तथा निगूढ हो रहे।

इसमे सन्देह नही कि कोई भी ग्रन्थकार अपने सारे ग्रन्थको श्लेषालकारका जामा नही पहना सकता। अपने ग्रन्थका वह एक ही अर्थ, एक ही प्रतिपाद्य रखता है। यह कोई नही कह सकता कि सूत्रकारको ब्रह्मसूत्रकी अद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदिकी सभी व्याख्याएँ अभीष्ट थी। उन्हे तो केवल एक ही वाद अभीष्ट रहा होगा, वह चाहे

जो रहा हो । इसी प्रकार मन्त्र-प्रणेता ऋषिको भी एक ही अर्थ अभीष्ट होगा; परन्तु व्याख्याताओने सीधे अथवा परपरागत प्रसगके अनुकूल कल्पनाके अनुसार अथवा अभीष्ट अभिमतको प्रामाणिकता देनेके हेतु मनमाने-अर्थ कर डाले। ऋग्वेद (४ ५८ ३) के एक मन्त्रको नमूनेके तौरपर लीजिये—

"चत्वारि शृङगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ।"

सायणने इसका एक अर्थ किया है—'महादेव यज्ञ है । यज्ञकी चार सीगे है चार वेद । उसके तीन पैर है प्रात सवन, माध्यन्दिन सवन और साय सवन। दो हवन (ब्रह्मोदन और प्रवर्ग्य) दो सिर है। सात हाथ गायत्री आदि सात छन्द है। मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प—तीन तरहसे वह बधा है। वह अभीष्ट-वर्षक है। अतीव शब्द करता है। वह महान् देव (यज्ञ) मर्त्यो के बीच प्रवेश करता है।'

तैत्तिरीय ब्राह्मणके अनुसार सूर्यकी गतिका सम्बन्ध तीनो वेदोसे होनेके कारण इसका दूसरा अर्थ सूर्यपर किया गया है। 'सूर्यकी चार सीगे चार दिशाए है। उनके तीन पैर तीन वेद है। दो सिर है, दिन और रात। सात किरणे, सात हाथ है। वह ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त अथवा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक—तीन तरहसे बधे है।'

महर्षि पतञ्जलिने इस मन्त्रका एक तीसरा ही अर्थ किया है। उनका महादेव 'शब्द' है। चार सीगे चार शब्द-भेद है—नाम, आख्या, उपसर्ग और निपात। तीन पैर तीन काल है—भूत, वर्त्तमान और भविष्य। दो सिर है दो प्रकारकी भाषाए—नित्य और कार्य। सात हाथ है सात विभक्तिया। हृदय, कण्ठ और मुखसे वह महादेव (शब्द) बधा है।

इसी प्रकार ऋग्वेदके १.१६४ के ४५ वे मन्त्रकी, निरुक्त-परिशिष्ट (१३ ९), सायण और पतञ्जलिने, सात प्रकारसे, व्याख्याए की है!

नमूनेकी तरह यहा दो मन्त्रोकी ही वात कही गयी। ऐसे सैकडो शब्द और मन्त्र है, जिनकी व्याख्याएँ वेद-व्याख्याताओने नाना प्रकारसे की है। परन्तु यह कहनेका कोई भी साहस नही कर सकता कि ये सभी व्याख्याए मन्त्रकर्त्ताको अभीष्ट थी। -

इसमें सन्देह नही कि अधिकाश मन्त्रोके अर्थ असन्दिग्ध है। ब्राह्मण-ग्रन्थ, निरुक्त, प्रातिशाख्यकी सहायतासे बहुत कुछ मन्त्रार्थ मौलिक रूपमे सुरक्षित है। अवश्य ही अनेक मन्त्रोके बारेमे सन्देह है। यास्कने तीन ऐसे साधन वताये है, जिनसे मन्त्रोका अर्थ जाना जा सकता है। वे है—१ आचार्योसे परम्परया सुना हुआ ज्ञान अर्थात् इस प्रकारके सुने हुए ज्ञानके ग्रन्थ, २ तर्क और ३ गम्भीर मनन। वस्तुत मन्त्र ऋषियोके विश्व-विषयक, मननके उद्‌गार है। तर्कसे तात्पर्य है वेदान्तसूत्र आदिसे। वेदान्तसूत्रके शारीरक-भाष्यमें शंकराचार्यने अनेक मत्रोका अर्थ-निर्णय इन्ही साधनोसे किया भी है।

वात यह है कि जैसे भाषा-विज्ञानियोके द्वारा वैदिक और अवैदिक (ग्रीक, लैटिन आदि) भाषाओका एक ही उद्‌गम-स्थान माना जाता है, वैसे ही क्या, उससे भी अधिक वैदिक साहित्य और पीछे के सस्कृत-साहित्यका एक ही मूल-स्थान है। यही कारण है कि 'अमरकोष' रटनेवाला छात्र वेदमे प्रयुक्त होनेवाले शब्दोको गिना जाता है। आप उससे पूछिये, वह अग्निके अर्थमे वैश्वानर, जातवेदस्, तनूनपात् और आशुशुक्षणि जैसे वैदिक शब्द वता जायगा। उसे यह परम्परा-गत वैदिक अर्थ प्राप्त है।

वृहदारण्यकोपनिषद् (४. ४. ७) और कठोपनिषद् (४. १४) मे कहा गया है—

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्यो अमृतो भवत्यथ ब्रह्म समश्नुते ॥"

(जब इसके हृदयमे स्थित सारी कामनाएँ छट जाती है, तब मरणशील मनुष्य अमर होकर ब्रह्मको प्राप्त करता है।)

इस मन्त्रकी परम्परा-प्राप्त व्याख्या गीता (२ ७१) मे है—

"विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाश्चरति नि.स्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥"

(जो मनुष्य सभी कामनाओ, ममता और अहकारको छोडकर निःस्पृह भावसे आचरण करता है, वही शान्ति पाता है।)

ईशोपनिषद्का एक मन्त्र है—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥"

(कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीनेकी इच्छा करो। इस प्रकारसे ही तुम्हारी सिद्धि होगी, अन्यथा नही। कर्म मनुष्यमे लिप्त नही होता।) यह मन्त्र शुक्ल यजुर्वेदके चालीसवे अध्यायमे भी है। समूचे कर्मतत्त्व-के साथ इसकी परम्परा-प्राप्त व्याख्या स्मृति (भागवत गीता) मे है—

"न मा कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥"

(कर्म मुझे लिप्त नही करते और कर्म-फलमे मेरी इच्छा भी नहीं रहती। मुझे ऐसा जाननेवाला कर्म-बन्धनमे नही बँधता।)

वेद और संस्कृत-साहित्यको लेकर यहा अधिक लिखनेका स्थल नहीं है। मुख्य बात इतनी ही है कि स्मृतिशास्त्र, पुराण आदि परम्परा-प्राप्त अर्थोके भाण्डार है और वेदार्थ करनेमे इनसे यथेष्ट सहायता ली जानी चाहिये।

दुर्भाग्यसे विदेशी और कुछ एतद्देशीय विद्वान् परम्परा-प्राप्त अर्थ-को चिन्ता नही करते और भाषा-विज्ञानको ही मुख्य मानते है। इसी-लिये वे कभी-कभी घोर अनर्थ कर डालते है। कई ब्राह्मणो और तैत्तिरीय-

उपनिषद्में श्रद्धादेव शब्द आया है, जिसका अर्थ भाष्यकारोंने श्रद्धालु किया है। सायणने तैत्तिरीय-सहिता (७.१ ८ २) में इसका अर्थ किया है–'श्रद्धा है देवता जिसकी, वह।' यही परम्परागत अर्थ है, परन्तु परम्परासे दूर भागनेवाले एगलिंग साहबने इसका अर्थ **देवभीरु** (God-fearing) कर मारा है!

छान्दोग्योपनिषद् (४.१७.१०) मे एक वाक्य है–

"ब्रह्मैव ऋत्विक् कुरूनश्वाभिरक्षति।" यूरोपीयोमे शब्दाचार्य और भाषा-विज्ञानाचार्य माने जानेवाले तथा "संस्कृत-जर्मन-महाकोष" ("पीटर्सबर्ग लेक्सिकन") के लेखक राथ (रोठराचार्य) और वोट्लिंग्कने 'अश्वा' शब्दका अर्थ किया है, 'न' = समान, 'श्वा' = कुत्ता अर्थात् 'कुत्तेकी तरह (कुत्तेके समान)।' वस्तुत यह 'अश्वा' तृतीया एकवचन है, जिसका अर्थ है घोडेके द्वारा।

इसी प्रकार चीनी, मंगोलियन, तिब्बती, संस्कृत आदि कितनी ही भाषाओंके विद्वान् Rahder ने 'दशभूमिक सुत्त'के प्रसिद्ध बौद्ध शब्द 'ब्रह्मविहार'का अर्थ किया है "Brahma-hall"! इसका अर्थ है मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावनासे उत्पन्न मनकी अत्युत्कृष्ट शान्त अवस्था।

ब्रिटिश म्युजियमके डा० एल० डी० बर्नेटने अपने गीता-अनुवादमे 'हृषीकेश'का अर्थ किया है 'खडे खडे बालोवाले' और 'गुडाकेश'का 'लट-वाले बालोवाले!' परन्तु हृषी-केशका अर्थ है जितेन्द्रिय और गुडाकेश-का निद्रा-जित्।

फलत परम्परागत अर्थको छोड देनेसे बडे अनर्थ और खतरेकी सम्भावना है। केवल यौगिक अर्थके पीछे पडनेवाले धोखा खा सकते हैं। 'गौ'का यौगिक अर्थ है चलनेवाला। परन्तु चलनेवाले मनुष्यको 'गौ' कहना धोखा खाना है। किसी मनुष्यको गौ कहने पर वह युद्ध ठान बैठेगा! इसीसे कहा गया है–'रूढिर्योगाद् बलीयसी'

(यौगिक अर्थसे रूढ़, प्रचलित और स्वीकृत अर्थ बलवत्तर है)। इसलिये वाच्यार्थ, व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ, शाब्दिकार्थ और यौगिकार्थ करते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिये ।

सायणाचार्यने समस्त वैदिक और संस्कृत साहित्यको सामने रखकर और अनेक पण्डितोंके साथ परम्पराप्राप्त अर्थोंकी पूरी छान-बीन कर वेद-भाष्य लिखा है। इसीलिये इस ग्रन्थमे अधिकतया सायण-भाष्य का अनुगमन किया गया है। ऐसे स्थान विरल है, जहा सायणसे मतभेद है। अपना मतभेद भी प्राय. उन्ही मन्त्रार्थोमे है, जहां सायणने शब्द, वाक्य और मन्त्रके कई अर्थ कर दिये हैं। कई अर्थोमेसे अधिकतर परम्पराप्राप्त अर्थको ही इस ग्रन्थमे ग्रहण किया गया है।

एकविंश अध्याय

वेद और भूगोल

संस्कृत-साहित्यके अन्यान्य ग्रन्थो (पुराणादि) की तरह यद्यपि वैदिक साहित्यमे समुद्रो, देशो, पर्वतो और नदियोका क्रम-बद्ध विवरण नही है, तथापि सबका सूक्ष्म विवरण अवश्य पाया जाता है। इनसे सिद्ध होता है कि आर्य लोग भूगोल-विद्याके आदि ज्ञाता थे। आगेकी पङ्क्तियोसे यह बात सिद्ध होती है।

समुद्र

पृथिवीमे अपेक्षाकृत स्थायी वस्तु समुद्र है। ऋग्वेदमे ही अनेक समुद्रोका विवरण पाया जाता है। ऋग्वेद (३ ३३) के दूसरे और तीसरे मन्त्रोका यह तात्पर्य है कि शुतुद्री (सतलज) और विपाश् (व्यास) नामकी दो नदिया, रथियोकी तरह, समुद्रमे गिरती है। यह पजावमे दक्षिणका समुद्र था। जहा आजकल राजपूताना है, वही यह समुद्र था। भूगर्भविद्याकी खोजे बतलाती है कि प्राचीन कालमे राजपूताना समुद्रके गर्भमे था। यह समुद्र अरवली पर्वतके दक्षिण और पूर्व भागो तक फैला हुआ था। जैसा कि पहले कहा गया है, Imperial Gazetteer of India के प्रथम भागको देखनेसे विदित होता है कि भूगर्भवेत्ताओने इसका नाम राजपूताना समुद्र (Rajputana Sea) रखा है। आज भी राजपूतानेके गर्भमे खारे जलकी झीले (साभर आदि) और नमककी तहे इस बातको बताती है कि किसी समय इस प्रदेशको समुद्रकी लहरे प्लावित करती थी।

ऋग्वेदके १० म मण्डलके १३६ वे सूक्तके ५ वे मन्त्रसे ज्ञात होता है कि पजावके पूर्व और पश्चिममे दो समुद्र वर्तमान थे। मन्त्र यह है—

"वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥"

अर्थात् 'मुनि वायु-मार्ग घूमनेके लिये अश्वरूप है। वे वायुके सहचर है। देवता उन्हे पानेकी इच्छा करते है। वह पूर्व और पश्चिम-के दोनो समुद्रोंमे निवास करते है।'

पश्चिम समुद्र तो अव तक है; परन्तु पूर्वी समुद्र लुप्त हो गया है। यह 'पूर्वी समुद्र' वगालकी खाडी नही था, पजावसे पूर्व समस्त गागेय प्रदेश (उत्तार भारतके साथ) था।

परन्तु ऋग्वेदके दो मन्त्रो (९ ३३ ६ और १० ४७ २) मे चार समुद्रोका भी उल्लेख पाया जाता है। वे मन्त्र ये है–

"राय समुद्राश्चतुरोऽस्मभ्य सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिण"

अर्थात् 'सोम, धन-सम्वन्धी चारो समुद्रोको चारो दिशाओसे हमारे पास ले आओ और असीम अभिलाषाओको भी ले आओ।'

'चारो समुद्रोको'का अर्थ है 'चारो समुद्रोसे युक्त भूखण्डके स्वामित्वको।'

दूसरा मन्त्र है–

"स्वायुधं स्ववसं सुनीथ चतुःसमुद्रं धरुण रयीणाम्।
चर्कृत्य शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्र वृषण रयिं दा ॥"

अर्थात् 'इन्द्र, तुम्हे हम शोभन अस्त्र और शोभन रक्षणवाले, सुन्दर नेत्रवाले, चारो समुद्रोको जलसे परिपूर्ण करनेवाले, धन-धारक, बार-वार स्तुत्य और दुखोके निवारक जानते है। इन्द्र, तुम हमें विलक्षण और वर्पक धन दो।'

यह चौथा समुद्र कौन था ? "Encyclopedia Britanica" (प्रथम भाग) से विदित होता है कि एशियामे, वल्ख और फारसके उत्तर, एक विशाल समुद्र था, जिसका नाम भूगर्भवत्ताओने 'एशियाई मेडीटरेनियन' (एशियाई भूमध्य सागर) रखा था। यह

इतना विशाल था कि इसका उत्तरमे आर्कटिक महासागरसे सम्बन्ध था। इसके पास ही वर्त्तमान यूरोपीय भूमध्य सागर था। पहले कहा जा चुका है कि एशियाके भूमध्य सागरका तल ऊँचा था और यूरोप वालेका नीचा। फलत पृथिवीके परिवर्त्तनोंने जब बासफरसके मार्गको बना दिया, तब एशियाई समुद्रका पानी यूरोपीय समुद्रमें पहुँच गया और एशियाका समुद्र विनष्ट हो गया। भूगर्भशास्त्रियोंका मत है कि अब इसके अंश मात्र, झीलोंके रूपोंमे, सूखकर रह गये है, जिन्हें इन दिनों कृष्ण-ह्रद् (Black Sea), काश्यप-ह्रद् (Caspean Sea), अराल-ह्रद् (Sea of Aral) और बल्काश-ह्रद् (Lake Balkash) कहा जाता है। ये चारो स्वतन्त्र रूपसे अवस्थित हैं। इन्हींको ऋग्वेदका 'उत्तर समुद्र' कहा जाता है।

कहा गया है कि आर्य लोग इन चारो समुद्रोंमे घूम-घूमकर व्यापार करते थे (ऋग्वेद १.५६.२)। एक बार तुग्र नामके राजर्पिने अपने पुत्र भुज्युको, शत्रु-जयके लिये, सेनाके साथ नावोंमे समुद्र-स्थित द्वीपमे भेजा था। भुज्यु डूबने लगा था, जिसे अश्विनीकुमारोंने अपनी 'अन्तरिक्ष' तक जानेवाली नौकासे जाकर बचाया था। यह नौका ऐसी थी कि इसमें जल पैठ ही नहीं सकता था।

मन्त्र यों है—

"तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवा अवाहा।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभि ॥"

—ऋग्वेद १.११६.३

यद्यपि समुद्र-यात्राका उल्लेख अन्य स्थानों (१.४८.३, ४.५५.६) में भी है, परन्तु ऋग्वेद (७.८८.३) मे एक ऐसा सुन्दर मन्त्र है, जिसे यहा उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं किया जा सकता—

"आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्रयत्-समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥"

अर्थात् 'जिस समय मैं (वसिष्ठ) और वरुण, दोनो नावपर चढे थे, जिस समय समुद्रके बीचमे नावको हमने भली भाति सचालित किया था और जिस समय जलके ऊपर नावपर हम थे, उस समय शोभाके लिये नौका-रूपी झूलेपर हमने सुखसे क्रीडा की थी।'

इस तरह समुद्रोपर आर्योका अखण्ड राज्य था। परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी इन दिनो राजपूताना सागर, गागेय प्रदेशस्थ सागर और फारसके उत्तरीय सागरका कही ठीक स्वरूप नही है।

अथर्ववेद (१९.३८.२) में समुद्रोत्पन्न वस्तुओका और (४ १० मे) समुद्रोत्पन्न मुक्ता (शख-कृशन) का उल्लेख है। दो समुद्रोका वर्णन अथर्ववेद (११ ५ ६) मे भी है। शतपथ-ब्राह्मण (१.६.३ ११) में दो, पूर्व और पश्चिम, सागरोका उल्लेख है।

यहा यह बात भी ध्यानमे रखनेकी है कि भूकम्प आदिके कारण कभी समुद्र सूख जाते थे, कभी पर्वत समतल हो जाते थे और कभी नदिया अपनी धाराएं बदल देती थी। इस तरह कभी कभी ये सब स्थानान्तरित भी हो जाते थे। कदाचित् इसीलिये इन्द्रके द्वारा पृथ्वी और पर्वतोका दृढ करना लिखा है (१.६२.५; २.१२.२ आदि)।

पर्वत

पर्वतका एक नाम भूधर है, जिसका अर्थ होता है 'पृथ्वी-धारक'। इसका इतना ही मतलब है कि पृथ्वीपर पर्वत स्थिर वस्तु है। वैदिक साहित्यमे पर्वतका नाम बहुत बार आया है। रूपकके रूपमें कही-कही बादलोको भी पर्वत कहा गया है।

मैत्रायणी-सहिता (१.१०.१३) और काठक-संहिता (३६ ७) में कहा गया है कि पूर्व कालमे पर्वतोके पख होते थे, जिससे अपनी इच्छाके अनुसार पर्वत कही भी जाकर उतर सकते थे। इससे अव्यवस्था हो जाती थी; इसीलिये इन्द्रने पर्वतोके पंखोको काट डाला। परन्तु यह वर्षाके रूपकसे बनी हुई कवि-कल्पना है—भूगोलकी अज्ञानजन्य कल्पना नही।

पर्वतोसे नदिया निकली, ऐसा भी उल्लेख बहुत है। निविड कान्तारमें रहनेवाले सिंहका भी उल्लेख है। परन्तु पर्वतोके अधिक नाम नही पाये जाते। हिमालय शब्दसे हिमालयका भी नाम नही आया है। जहा-कही हिमालयका उल्लेख अभीष्ट हुआ, वहा 'हिमवत्' शब्द आया है। हिमालयकी लम्बाई-चौडाई कही भी नही लिखी है।

ऋग्वेद-सहिता (१० ३४ १) मे मूजवत् पर्वतका नाम आया है। अन्तमे मौजवत शब्द है, जिसको सायणने सोमका विशेषण बताया है और अर्थ लिखा है, मूजवत् पर्वतपर उत्पन्न सोमलता। यास्कने भी यही अर्थ किया है (निरुक्त ९ ८)। अथर्ववेद (५ २२) और तैत्तिरीय-महिता (१ ८ ६ २) से ज्ञात होता है कि मूजवान् पर्वत गान्धार वा बाहलीक प्रदेशकी तरफ, उत्तरा-खडमे, था। यजुर्वेदके तृतीय अध्यायमे मूजवान् या मूजवत्का उल्लेख है। कदाचित् आर्य-निवासकी उत्तरी सीमा यही पर्वत था। कुछ लोग मूजवान्को कैलास पर्वत भी कहते हैं। महाभारत (१४ ८ १) मे लिखा है—

"गिरेर्हिमवत पृष्ठे मुञ्जवान् नाम पर्वत ।
तप्यते तत्र भगवान् तपो नित्यमुमापति ॥"

इससे भी उक्त मतका समर्थन होता है। जो हो, परन्तु यह निस्सन्दिग्ध है कि भारतका उत्तर-प्रदेशस्थ पर्वत मूजवान् था।

हिमालयमे त्रिककुद् वा त्रिककुभ् नामके एक त्रिकूट पर्वतका उल्लेख आया है। यहासे एक विशेष प्रकारका अजन आता था। यह वितस्ता वा झेलम नदीके उद्गम-स्थानसे उत्तर था। कदाचित् इससे भी उत्तर मूजवान् था।

तैत्तिरीय-आरण्यक (१ ३१) मे इन तीन पर्वतोके नाम आये है—'सुदर्शन, क्रौञ्च और मैनाग'। क्रौञ्च और मैनाग (मैनाक) के नाम तो पुराणोमे पाये जाते है, परन्तु सुदर्शनका पता नही। कुछ लोग मेरुको ही सुदर्शन मानते है; क्योकि परवर्ती सस्कृत-साहित्यमें मेरुका पर्याय-

वाची सुदर्शन आया है। उक्त आरण्यकमे कहा गया है कि इन तीनो पर्वतोमे कुवेर वा कुवेर-पुत्रका नगर है।

इसी आरण्यक (१७) मे महामेरुका नाम आया है। कहा गया है कि इस पर्वतको कश्यप नामका आठवा सूर्य कभी छोडता नही। इससे सूचित होता है कि यहा महामेरुसे सुमेरु (North Pole) समझना चाहिये।

कुछ लोगोके मतसे ऋग्वेद (१.३५ ८) में तीन मरुस्थलोका उल्लेख है, परन्तु ये मरुस्थल कहा थे, यह जाननेका कोई उपाय नही है।

सिन्धु-प्रदेशके दक्षिणमे समुद्र-तटपर एक मरुस्थलका उल्लेख भी ऋग्वेदमे है (१० ६३ १५)। इस स्थलकी वालुकाराशिने उड-उडकर कितने ही स्थानोको अनुर्वर और वालुकामय बना डाला था।

नदियाँ

आर्य लोग नदियोके वडे भक्त थे। वे नदियोके तटोपर रहना वहुत पसन्द करते थे। ऋग्वेदमे अनेकानेक नदियोका विवरण आया है। अनेक नदियोके नाम तो ज्योके त्यो है, परन्तु कुछके नाम वदल गये है। आर्य लोग ज्यो ज्यो आगे वढते गये, त्यो त्यो उन्हे नयी नयी नदिया और नये-नये देश मिलते गये। औपनिवेशिकोकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार नयी नदियो और नये देशोको आर्य वे ही नाम देते गये, जो आर्योंके पुराने देशो और नदियोके नाम थे।

जैसे इंगलैंडके यार्क शहरके नामपर अमेरिकामे एक शहरका नाम 'न्यूयार्क' रखा गया और इगलैंडके वेल्सके अनुकरणपर आस्ट्रेलियामे एक प्रदेशका नाम 'न्यू साउथ वेल्स' रखा गया; वैसे ही मथुराकी नकलपर दक्षिण भारतमे 'मदुरा' रखा गया और पंजावकी इरावती नदीकी नकलपर वर्माकी एक नदीका नाम इरावती रखा गया। इसी तरह वैदिक यमुना, सरयू और गोमतीसे भिन्न; परन्तु इन्ही नामोको धारण करनेवाली आधुनिक नदियां पायी जाती है।

नदियोका प्रवाह भी एक-सा नही रहता। ईसाके पहले १ म शताब्दीमे वक्षु (Oxus) नदी कास्पियन सागरमे गिरती थी, परन्तु इन दिनो अराल सागरमे पहुँचती है। अरबोंकी भारतपर चढाईके समय हकरा वा वाहिन्दा नामकी एक वडी नदी पजावके दक्षिणमे वहती थी, परन्तु इन दिनो वह अपने पुराने सूखे हुए मार्गोको लेकर यो ही पडी है। दरभगा जिलेकी कमला नदीकी धारा तो अभी हालमे ही बदली है। जिस समय सिन्धका 'मोहन जो दडो' शहर वना था, उस समय उसके पास ही सिन्धु नदी वहती थी; परन्तु अव वह कई मील दूर हट गयी है। सभी देशोकी जलवायु धीरे-धीरे वदलती है, जिससे वर्षामे परिवर्तन होता है। इस कारण भी नदियोकी धारा वदल जाती है। इसलिये यह जोर देकर नही कहा जा सकता कि वैदिक साहित्यमे जो नदी-स्थान निर्दिष्ट है, वे ही अव तक है वा नदियोके नाम-रूप भी वे ही है।

ऋग्वेदमे "सप्त सिन्धव" और "सप्त स्रवत" शब्द कई वार आये है, जिनका अर्थ है 'सात नदिया'। परन्तु पजावमें या कही भी ऐसी सात नदियोके नाम नही पाये जाते। दक्षिण भारतकी नर्मदा, गोदावरी और कावेरी नदियोके नाम वैदिक साहित्यमे नही आये है, इसलिये जल-शुद्धिवाले श्लोककी सात नदिया * यहा विवक्षित नही है। फलत अनुमान होता है कि 'सब नदी' के अर्थमे ही 'सात नदियो'का प्रयोग हुआ है। हो सकता है कि आर्योके आदिनिवासके पास 'सात नदिया' रही हो और 'सब नदी' के अर्थमे 'सात नदी' कहनेका उन्हे अभ्यास हो गया हो।

---

* "गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु ॥"

ऋग्वेदके १०म मण्डलके ७५वे सूक्तका नाम 'नदीसूक्त' है। इसमे जगती छन्दमें ९ मन्त्र है और इसके ऋषि है प्रियमेध-पुत्र सिन्धुक्षित्। इस सूक्तमे अनेक नदियोके नाम पाये जाते है। इसके पाचवे मन्त्रमे सिन्धुके पूर्वी तटकी नदियोके नाम क्रमशः आये है और छठे मन्त्रमे सिन्धु तथा उसकी पश्चिम सीमावाली नदियोके नाम है। वैदिक साहित्यमे इन नदियोके नाम पाये जाते है—

अशुमती, अञ्जसी, अनितभा, असिक्नी, आपया, आर्जीकीया, कुभा, कुलिशी, क्रुमु, गगा, गोमती, जह्नावी, तृष्टामा, दृषद्वती, परुष्णी, मरुद्वृधा, मेहत्नू, यमुना, यव्यावती, रथस्या, रसा, वरणावती, वितस्ता, विपाश्, विवाली, वीरपत्नी, शिफा, शुतुद्री, श्वेत्या, सदानीरा, सरयू वा सरयु, सरस्वती, सिन्धु, सुदामा, सुवास्तु, सुषोमा, सुसर्त्तु और हरियूपीया। अव इनका विवरण देखना चाहिये।

१. **अंशुमती**—ऋग्वेद (८. ९५.१४) मे इसका नाम आया है। इसके तटपर महाशक्तिशाली कृष्ण नामका असुर रहता था। वह इन्द्रका परम शत्रु था। उसको युद्धमे इन्द्रने मार दिया था, जिसका उल्लख इसके अगले १५वे मन्त्रमे किया गया है। अशुमती कहा वहती थी, इसका ठीक पता नही चलता।

२. **अञ्जसी**—ऋग्वेद (१. १०४. ४) मे कुलिशी और वीरपत्नी नदियोके नामोके साथ इसका नाम आया है। इसके तटपर कुयव नामका असुर रहता था। कदाचित् यह पश्चिमोत्तार सीमा प्रातकी नदी है।

३. **अनितभा**—ऋग्वेद (५ ५३. ९) में रसा, कुभा, सरस्वती और सरयुके साथ अनितभाका नाम आया है। यह सिन्धकी कोई पश्चिमी सहायक नदी है।

४. **असिक्नी**—ऋग्वेद (१०. ७५. ५) मे गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री आदिके साथ ही इसका नाम आया है। यास्कके मतसे

(निरुक्त ९. २६) यह वर्तमान चिनाव वा चन्द्रभागा नदी है। ऋग्वेद के ८. २८.२५ मे सिन्धु और समुद्रोके साथ इसका उल्लेख है। वहा लिखा है कि इसके तटपर रोगापहारी बडी-बडी जडी—बूटियाँ होती थी। ग्रीक (यूनानी) इस नदीको "अकेसिनेस्" कहते थे।

५. आपया—ऋग्वेद (३. २३. ४) में सिन्धु और दृषद्वतीके साथ इसका नाम आया है। महाभारत (३. ८३. ६८) का मत है कि यह कुरुक्षेत्रकी एक नदी है।

६. आर्जीकीया—ऋग्वेदके नदीसूक्त (१०. ७५. ५) मे ९ नदियो के नामोके साथ इसका नाम आया है। यास्कके मतमे (निरुक्त ९. २६) यह विपाश् (व्यास) नदीका ही एक नाम है। कहा जाता है कि यास्कके पहले इसका नाम "उरुञ्जिरा" था।

७. कुभा—ऋग्वेदके ५ ५३ ९ और १० ७५. ६ में अनेक नदियोके साथ इसका नाम आया है। यूनानी इसे कोफेन कहते थे। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। इसका वर्तमान नाम 'काबुल' नदी है।

८ कुलिशी—ऋग्वेद(१. १०४. ३)मे अञ्जसी और वीरपत्नी नदियो के साथ इसका नाम आया है। यह बाह्लीक प्रदेशकी कोई नदी होगी।

९. क्रुमु—ऋग्वेद (५.५३.९.१०.७५.६) में कई नदियोके नामोके साथ इसका नाम आया है। इसका वर्तमान नाम कुर्रम नदी है।

१०. गंगा—ऋग्वेद १०.७५.५ मे गंगाका, कई नदियोके साथ, नाम आया है। ६.४५.३१ मे "उरु कक्षो न गाङ्ग्यः" शब्द आये हैं। इनका तात्पर्य यह है कि 'गंगाके ऊँचे तटकी तरह ऊँचे स्थान पर बृबु अवस्थित हुए।' बृबु शिल्पकलाचार्य थे। 'नीतिमञ्जरी' और मनुस्मृतिमे भी बृबुकी बातें हैं। जैमिनीय-ब्राह्मण (३.१८३),

शतपथ-ब्राह्मण (१३. ५४.११) और तैत्तिरीय आरण्यक (२. १०) मे भी गगाका उल्लेख है ।

११. **गोमती**–अनेक नदियोंके साथ १०.७५.६ मे गोमतीका नाम आया है। ऋग्वेदके ५.६१.१९ मे भी इसका उल्लेख है। राजा रथवीति इसीके तटपर रहते थे। श्यावाश्व ऋषिके पिता अर्च-नानाने रथवीतिके लिये सोमयाग कराया था और इन्ही राजा की कन्यासे अपना विवाह भी किया था। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। अब यह गोमती नही रही। इसका नाम गोमल है और यह अफगानिस्तानकी नदी है।

१२. **जह्नावी**–ऋग्वेद (३.५८.६) मे जह्नावी शब्द आया है। सायणने इसका अर्थ 'जह्नु-कुलजा' किया है। कुछके मतसे यह भी कोई नदी है। यह गगा तो नही है। सिन्धुके पश्चिम, पाचकोटाके पूर्व और बुनार प्रदेशके उत्तरमे, जह्नावी प्रदेश है। इसे उक्त मन्त्रमें **'पुराणमोक'** (पुराना घर) भी कहा गया है। कदाचित् जह्नावी यही वहती थी। ठीक पता नही चलता।

१३. **तृष्टामा**–ऋग्वेद (१०.७५.६) मे इसका नाम आया है। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। चित्रालमे पूर्वकी ओर बहती है।

१४. **दृषद्वती**–ऋग्वेद (३.२३.४) मे आपया और सरस्वतीके साथ इसका नाम आया है। कहा जाता है कि ऋग्वेद (१०.५३.८) मे अश्मन्वती नदीका जो नाम आया है, वह इसी नदीका है। कुछ लोग यह भी कहते है कि राजपूतानेकी वालुका-राशिमे विलुप्त 'घघ्घर' नदीका ही नाम दृषद्वती है। कईका मत है कि सरस्वतीके दक्षिणमे यह नदी वहती थी। मनुस्मृति (२.७) मे कहा गया है कि 'सरस्वती और दृषद्वती देवनदिया हैं; इनके बीच देव-निर्मित देश ब्रह्मावर्त है'–

"सरस्वती-दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देव-निर्मित देशं ब्रह्मावर्त्त प्रचक्षते ॥"

ताण्डयमहाब्राह्मण (२५. १०. १४-१५ और २५.१३.२–४) मे भी इसका उल्लेख है ।

१५. परुष्णी—ऋग्वेद ५ ५२.६; ७.१८. ८-६, १०.७५.५ आदिमें इसका उल्लेख है । शत्रुओंने इसके तटको भ्रष्ट किया था । इन्द्रकी कृपासे सुदास राजाने इसके तटको ठीक किया था । पजावकी इरावती वा वर्तमान रावीका नाम परुष्णी है । निरुक्त (६. २६) का भी यही मत है ।

१६. मरुद्वधा—ऋग्वेद (१०.७५.५) में इसका नाम चिनाव (असिक्नी) और झेलम (वितस्ता) के बीच आया है । इसलिये इसे चिनावकी पश्चिमवाली 'मरुवर्दवन' नामकी सहायक नदी माना जाता है । अरल स्टाइनका भी यही मत है ।

१७. मेहत्नू—ऋग्वेद (१०.७५ ६) देखनेसे ज्ञात होता है कि यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है ।

१८. यमुना—ऋग्वेद (५.५२ १७,) ७ ८.१६ और १०.७५ ५ मे इसका नाम आया है । हार्पकिसके मतसे रावीका नाम यमुना है । कोई चिनावको यमुना वताता है, कोई झेलमको । परन्तु इन मतोका कोई भी आधार नही है । यह वर्त्तमान यमुना ही है । अथर्व-सहिता (४.६.१०), ऐतरेय-ब्राह्मण (८.२३), शतपथ-ब्राह्मण (१३.५.४.११), ताण्डयमहाब्राह्मण (६.४.१०, २५ १०.२३, २५.१३.४), जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२८३), आपस्तम्बीय एकाग्निकाण्ड (२.११.१२) आदिमे भी यमुनाका विवरण आया है ।

१६. यव्यावती—ऋग्वेदके ६.२७.६ में लिखा है कि यव्यावतीके तटपर वरशिख असुरके एक सौ तीस पुत्र मारे गये थे । ताण्डयमहा-ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है (२५ ७.२) । ऋग्वेदके उक्त मन्त्रके

पहलेके ५ वें मन्त्रमें हरियूपीया नदीका नाम आया है। सायणके मतमें यव्यावती और हरियूपीया एक ही नदीके नाम हैं। यह नदी कहां थी, इस बातका ठीक पता नहीं चलता। कदाचित् यह कोई पंजाबी नदी थी।

२०. रयस्या—जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२३५) में इसका नाम तो आया है; परन्तु स्थानका पता नहीं लगता।

२१. रसा—ऋग्वेदके १.११२.१२; ५.५३.९; १०.७५.६ तथा जैमिनीय-ब्राह्मणके २.४४० में इसका विवरण मिलता है। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी मानी जाती है। पारसी लोग इसे 'रहा' कहा करते थे। कुछ लोगोंके मतसे यह अफगानिस्तान और बिलोचिस्तानके उत्तरमें प्रवाहित होनेवाली नदी है। इसे खुरासानकी नदी भी कहा जाता है।

२२. वरणावती—अथर्ववेद (४.७.१) में इसका नाम मिलता है। सायणके मतमें यह एक औषध है। कुछ लोग इसे काशीकी वरुणा वा वरणा नदी कहते हैं।

२३. वितस्ता—ऋग्वेद (१०.७५.५) में अनेक नदियोंके नामोंके साथ इसका नाम आया है। कश्मीरमें इसे अबतक 'व्यथ' कहा जाता है। यूनानी इसका नाम 'हीदास्पेस' रख गये हैं। यह वर्त्तमान झेलम नदी है। आश्चर्य है कि यास्कने (९.२६ में) इसका स्पष्ट परिचय नहीं दिया है।

२४. विपाश्—ऋग्वेदके ४.३०.११ में कहा गया है कि 'इन्द्रके द्वारा विचूर्णित उषा देवीका 'शकट' विपाशा नदीके तटपर गिर पड़ा।' ३.३३ के १ म और ३ य मन्त्रोंमें सतद्रु (शुतुद्री) के साथ विपाश्का उल्लेख है। एक तरहसे सारे ३३ वें सूक्तमें विपाश्का वर्णन है। सायणाचार्यने लिखा है कि 'राजा पिजवनके पुत्र सुदासके पुरोहित विश्वामित्र एक बार पौरोहित्य कर्ममें बहुतसा धन लेकर व्यास

(विपाश्) और सतलजके सगम-स्थलपर पहुचे। विश्वामित्रने अगाध-गभीर नदियोकी प्रथम तीन मन्त्रोसे स्तुति की। पीछे नदियोने जल घटाकर उन्हें पार जानेकी अनुमति दी।' इस तरह सारे सूक्तमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपककी भरमार है। गोपथ-ब्राह्मण (१.२७) में भी इसका नाम आया है। यह वर्तमान व्यास नदी है। अरबोके भारताक्रमणके समय यह नदी 'हकरा' पहुचती थी।

२५. विबाली—ऋग्वेदके ४.३०.१२ में यह कोई अपरिज्ञात नदी है।

२६. वीरपत्नी—कुलिशी नदीके साथ ऋग्वेदके १.१०४ ३में इसका उल्लेख है। कदाचित् यह बाह्लीक प्रदेशकी एक नदी है।

२७ शिफा—ऋग्वेद (१ १०४ ३) में इसका उल्लेख है। किसीके मतसे शिफा समुद्रका नाम भी हो सकता है। इसके स्थानका ठीक पता नही चलता।

२८ शुतुद्री—ऋग्वेदके ३ ३३ १ और १० ७५ ५ मे इसका नाम और विवरण है। यह वर्त्तमान सतलज नदी है। अरबोके हमलेके समय यह नदी व्याससे न मिलकर सीधे हकराको जाती थी।

२९ श्वेत्या—ऋग्वेद (१०.७५.६) की यह नदी सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी थी। डेरा इस्माइल खा जिलेमे यह 'अर्जुनी' नामसे प्रसिद्ध है।

३० सदानीरा—शतपथब्राह्मण (१४ १ १४) आदिमे इसका उल्लेख है। शतपथके विवरणसे ज्ञात होता है कि कोसल और विदेह प्रदेशोकी सीमा यही नदी थी। इसके वर्त्तमान नामके सम्बन्धमें बडा विवाद है। जर्मन वेद-ज्ञाता वेबरने इसका नाम गण्डकी बताया है। परन्तु कदाचित् वर्त्तमान विदेह और कोसल वैदिक विदेह-कोसलसे भिन्न है। इस लिये सम्भवत सदानीरा गण्डकी नही हो सकती। कुछ

लोगोंके मतसे सदानीराका ही नाम करतोया है। परन्तु करतोया उत्तर बगालकी नदी है और विदेह (दरभंगा जिला आदि) के पूर्वमें है, पश्चिममे नही। इसलिये कोषकारोका यह लिखना ठीक नही कि करतोया और सदानीरा एक ही नदीका नाम है। इसके निश्चित स्थानका पता नही।

३१. सरयू वा सरयु–ऋग्वेद (४.३०.१८) मे लिखा है कि 'सरयू नदीके पारमें रहनेवाले अर्ण और चित्ररथ राजाओका इन्द्रने बध किया था।' ऋग्वेद (५.५३.६) में रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु, सिन्धु आदिके साथ भी सरयु (सरयू नही) का नाम आया है। इससे तो विदित होता है कि यह कोई पश्चिमी नदी है। इसी वेदके १० ६४.९ मे सिन्धु और सरस्वतीके साथ सरयूका उल्लेख है। पारसियोकी "अवस्ता"मे 'हरोयु' नामकी एक नदीका नाम आया है, जो कि वर्त्तमान 'हरिरुद्' (वा हरीरुद) नदी है। कुछ लोग कहते हैं कि सरयू और हरिरुद् एक ही है। अनेक लोगोके मतसे यह वर्त्तमान सरयू ही है,प्ररन्तु ऋग्वेदमें न तो गगासे पूर्व किसी नदीका नाम ही है, न उन दिनो अवध तक आर्यों के आनेका कदाचित् कोई प्रमाण ही मिलता है।

३२. सरस्वती–ऋग्वेदके अनेकानेक स्थलोमे सरस्वतीका विवरण है। कमसे कम ३५ स्थानोंमें तो सरस्वतीका स्पष्ट उल्लेख है। इसके तटपर कितने ही यज्ञ और युद्ध हुए थे। अनेक मन्त्रोमे सरस्वतीको बडी ही दिव्य स्तुति की गयी है। ऋग्वेदके २.४१.१६ मे सरस्वतीको मातृगण, नदियो और देवोमे श्रेष्ठ कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आर्योकी दृष्टिमें गगासे भी बढकर सरस्वती नदी थी। तैत्तिरीय-सहिता (७ २.१.४), अथर्वसंहिता (६.३०.१), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (२ ४.८.७), मन्त्रब्राह्मण (२.१.१६), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५.१०.१ और १६), जैमिनीय-ब्राह्मण (२.२९७ और ३.१२०), ऐतरेय-ब्राह्मण (२.१९), शांखायन-ब्राह्मण (१२.३) और शतपथ-ब्राह्मण (१.४.१.

१४) आदिमें भी सरस्वतीकी बडी महिमा गायी गयी है। कुछ लोग कहते हैं कि कई मन्त्रोमें सिन्धुके लिये ही सरस्वती शब्द आया है। परन्तु इस विषयमें कोई ठोस प्रमाण नही है। मैकडानल और कीथके मतसे भी ऋग्वेदमे सरस्वती शव्द सर्वत्र सरस्वतीके लिये ही आया है। अनेक का मत है कि कुरुक्षेत्रकी सरस्वती ही वैदिक सरस्वती है। यह इन दिनो पटियाला राज्यमे विलुप्त हो चुकी है।

किन्तु पुराणवादियोके विश्वासानुसार सरस्वती पृथ्वीके भीतर ही भीतर आकर प्रयागमें गगा और यमुनाके साथ मिल गयी है। इन्ही तीनोका नाम त्रिवेणी है। ताड्य-महाब्राह्मणमें सरस्वतीके लुप्त होनेके स्थानका और जैमिनीय-ब्राह्मणमें पुन. बाहर निकलनेके स्थानका उल्लेख है। पहले पहल क्षीण धारामे सरस्वती बहती थी, इस बातका भी उल्लेख जैमिनीय-ब्राह्मणमें है। ऐतरेय-ब्राह्मणसे विदित होता है कि सरस्वतीसे कुछ दूरपर मरुदेश (Desert) था। इसलिये यह बात भी निराधार नही कि राजपूतानेकी मरुभूमि बीकानेर (विनशन) में सरस्वती विलुप्त हुई है। इसका उत्पत्ति-स्थान मीरपुर पर्वत माना गया है। सरस्वतीके उत्पत्ति-स्थानपर तुषार-क्षेत्र (Glacial lake) था। यही तुषार-क्षेत्र पसीज कर सरस्वतीको पुष्ट करता था। इस तुषार-क्षेत्रको ऋवेदमे "सरस्वान्" कहा गया है। ऋग्वेद (३.२३.४) मे सरस्वती और दृषद्वतीके वीचकी भूमिको 'उत्तम स्थान' कहा गया है। कुछ लोगोकी धारणा है कि कभी सरस्वती सिंधुके साथ मिलकर पश्चिम समुद्रमें गिरती थी। परन्तु ऋग्वेदमें इसका कोई प्रमाण नही। हा, देवतावाची सरस्वती शव्द भी कही-कही अवश्य आया है। सरस्वतीके लुप्त होनेके दो स्थान—वीकानेर और पटियाला माने जाते है।

३३ सिन्धु—ऋग्वेदके अनेक स्थानोमें सिन्धु शव्द आया है। अथर्ववेद (६ २४ १, ७ ४५ १, १२ १ ३ और १४.१ ४३), माध्यन्दिन

संहिता (८.५६ १), जैमिनीय-ब्राह्मण (३.२३७) आदिमें भी सिन्धु शब्द आया है। सिन्धु शब्द कही समुद्रके लिये, कही नदीके लिये और कही खास नदीके लिये भी आया है। निस्सन्देह अधिकाश स्थानोमे वर्त्तमान सिन्धु नदी ही वैदिक सिन्धु है। आर्य लोग सिन्धुके बड़े ही भक्त थे। अनेक स्थानोमे सिन्धुका बड़ा विमल वर्णन किया गया है।

सिन्धु नदीको ईरानी (पारसी) लोग "हिन्दू" कहते थे। कहते हैं कि इसीलिये सिन्धुके पार रहनेवाले हिन्दू कहलाये और इस देशका नाम हिन्दुस्थान पड़ा। अमेरिकाके लोग तो इस देशमें रहनेवाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सबको हिन्दू कहते हैं। ग्रीक सिन्धु-को "इन्दस्" कहते थे। इसी इन्दस् वा इंडस्से इंडिया शब्द बना है।

सिन्धुके तटपर अच्छे घोड़े होते थे। इसीलिये संस्कृतमे घोडेका एक नाम सैन्धव हो गया। बृहदारण्यकोपनिषद् (२.४.१२ और ४.५. १३) मे नमकके लिये भी सैन्धव शब्द आया है। अथर्वसहिता (१६. ३८.२)* मे सैन्धव गुग्गुलूका नाम आया है।

सिन्धुके घोड़े बिक्रीके लिये बाहर भेजे जाते थे। वहा सूती और ऊनी कपड़े भी होते थे। सिन्धुतटपर बकरो और भेडोके लोमसे सुन्दर कपडे, शाल और कम्बल तैयार किये जाते थे। हिमालय और बाह्लीक (वल्ख-बुखारा-हिरात) से सिन्धु प्रदेशमें स्वर्ण, मणि, रत्न आदि बेचनेके लिये लाये जाते थे। सिन्धुसे मोती निकाले जाते थे। सिन्धुतटपर फूलोकी अधिकताके कारण मधु (शहद) भी बहुत होता था। सिन्धु-तटोपर समृद्ध जनपद थे, धनाधिपति और राजा-महाराजा भी बहुत रहा करते थे।

---

* जहां-जहां केवल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शब्दआये हैं, वहां-वहा शाकल, माध्यन्दिन, कौथुम और शौनक संहिताओको समझना चाहिये।

३४ सुदामा–ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२२.१८.७) मे एक सुदामन् (सुदामा) नदीका नाम आया है, जिसके तटपर एक यज्ञका होना लिखा है। पता नही, यह कौन नदी थी।

३५ सुवास्तु–यास्काचार्यने लिखा है (निरुक्त ४.२ ७) कि सुवास्तु नदीका नाम है। इसके तटपर (तुग्व) तीर्थ था। यास्कने ऋग्वेदके जिस मन्त्र-खण्डको उद्धृत करके यह अपना मत दिया है, वह इस तरह है–"सुवास्त्वा अधितुग्वनि।" यह सिन्धुकी सहायक नदी कुभाकी सहायिका है। यह अफगानिस्तानकी वर्त्तमान स्वात् नदी है। यूनानियोने इसे "सोआस्तस्" लिखा है।

३६ सुषोमा–ऋग्वेद (१० ७५.५) मे इसका नाम आया है। यह सिन्धुकी पूर्वी सहायक नदी है। मेगास्थनीजने इसे सोयानस् (सोआमस्) लिखा है। इसका वर्त्तमान नाम सोहान है।

३७ सुसर्त्तु–ऋग्वेदके नदी-सूक्त (१० ७५.६)में इसका नाम आया है। यह सिन्धुकी पश्चिमी सहायक नदी है। कुछ सज्जनोकी रायसे स्वात्का ही नाम सुसर्त्तु है।

३८ हरियूपीया–ऋग्वेद (६ २७ ५)मे इसका नाम आया है। कहा गया है कि 'इन्द्रने चायमान राजाके अभ्यवर्ती नामक पुत्रको धन देनेके लिये वरशिखके पुत्रो और वरशिखके गोत्रोत्पन्न वृचीवान्के पुत्रोको मार डाला था।' ऋग्वेदके जर्मन अनुवादक लुड्विग्ने लिखा है कि हरियूपीया नगरीका नाम है। सायणके मतसे यव्यावती और हरियूपीया एक ही नदीका नाम है। हिलेब्राट्ड् (हिलेब्रान्त)के मतसे यह कुर्रमकी सहायक नदी इर्याब या इलिआब है। कुछ लोग कहते है कि यह हिरात (अफगानिस्तान) की हरिरुद् नदी है। हार्पाकिसके मतसे यह सरयूका नाम है। इस तरह यहा "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना"की उक्ति खूब चरितार्थ हो रही है।

इस प्रकार वैदिक साहित्यमें पजाब, कुरुक्षेत्र, सिन्धु, राजपूताना, अफगानिस्तान आदि की नदियोके नाम आये है। आर्य-सस्कृतिके केन्द्र सिन्धु और सरस्वतीके तट तथा, कुरुक्षेत्र आदि थे। दक्षिण और पूर्व भारतका उल्लेख तो वैदिक साहित्यमे नगण्य है।

देश अथवा प्रदेश

समुद्र, पर्वत और नदी प्राकृतिक वस्तुएँ है। इनके सम्बन्धमे मन्त्र-सहिताओ, ब्राह्मण-ग्रन्थो, आरण्यको और उपनिषदोमे जो कुछ लिखा गया है, वह पाठकोके सामने उपस्थित किया जा चुका। अब यह देखना है कि मनुष्य-कृत देश, प्रदेश और नगरके सम्बन्धमें वैदिक साहित्यका क्या अभिमत है। वैदिक और लौकिक सस्कृतमे जाति-वाचक शब्द अधिक आये है, जिनसे जातियो और उनके रहनेके स्थानोका अर्थ एक साथ ही निकलता है। ऐसे शब्द सदा बहुवचनमे आते है। ऐसे शब्दोको जनपद-वाची कहा जाता है। आर्य जिस ओर जाते थे, अपने पुराने प्रिय नामोंके अनुसार गन्तव्य स्थानोके भी नाम रख डालते थे। इसलिये स्थानोका निर्णय करनेमे कठिनाई होती है।

पूर्व आदि दिशाओंमे रहनेवालोके लिये वैदिक साहित्यमे प्राच्य, उदीच्य, अपाच्य आदि शब्दोका प्रयोग हुआ है। ऐतरेयब्राह्मण (८.१४) मे, ऐन्द्र-महाभिषेकके प्रसगमे, प्राच्य प्रभृति देशोमें, राज्याभिषेकका उल्लेख है। कहा गया है कि पूर्वमे रहनेवालों (प्राच्यो) के राजाका अभिषेक साम्राज्यके लिये होता है, दक्षिणमे सात्वतोके राजाका अभि-षेक होता है भौज्यके लिये, पश्चिममे नीच्य (निम्नस्थ ?) और अपाच्य (पश्चिममे रहनेवाले) लोगोके राजाका अभिषेक होता है स्वराज्यके लिये। उत्तर कुरुओ और उत्तर मद्रोके राजाका अभिषेक वैराज्यके लिये होता है तथा "ध्रुवमध्यम दिशा"के कुरु-पचालोके राजाका अभिषेक राज्यके लिये होता है।

संस्कृत-साहित्यके सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण पाणिनि वर्त्तमान अटक जिलेके पास जनमे थे। उधर संस्कृतका अत्यधिक प्रचार था; इसलिये ब्राह्मण-ग्रन्थोका मत है कि उदीच्यो (उत्तर दिशामें रहनेवालो) की बोली बडी शुद्ध थी (शतपथब्राह्मण ३.२.३.१५; ११.४.१.१; शाखायन-ब्राह्मण ७ ६, गोपथब्राह्मण १.३.६)। प्राच्योका उल्लेख भी शतपथब्राह्मण (१.७ ३ ८; १३.८.१ ५; १३ ८ २.१) में है।

वैदिक साहित्यमे ये जनपदवाची नाम आये हैं—अग, अध्र, कम्बोज, काशी, कीकट, कुरु, उत्तरकुरु, कोसल, गन्धारि, चेदि, नैषिध, पञ्चाल, पारावत, पुण्ड्र, वह्लीक, वाह्लीक, । भरत, मगध, मत्स्य, मद्र, उत्तर मद्र, महावृष, वंग, विदेह, विदर्भ आदि। प्रत्येकका विवरण इस प्रकार मिलता है—

१. अंग—अथर्ववेदसहिता (५ २२ १४) मे गन्धारि और मगधों तथा गोपथब्राह्मण (२.९) में मगधोके साथ अगोका उल्लेख है। वैदिक अगदेश कहा था, इसका पता तो ऐतिहासिकोको नही है, परन्तु उनका अनुमान है कि चूकि गोपथब्राह्मण बहुत पीछेकी रचना है; इसलिये उस समय तक कदाचित् अग लोग बिहार पहुँच चुके थे। इस तरह अथर्ववेदके अग अन्धकारमे है और गोपथब्राह्मणके समयके अग कुछ प्रकाशमें है। परन्तु अनुमानके सिवा आधार कुछ नही है। राजा कर्ण अगदेशाधिपति थे। मुंगेर—भागलपुरके जिलोको अग-देश माना गया है।

२. अन्ध्र—इन दिनो मद्रासका उत्तरी भाग आन्ध्र कहाता है। ऐतरेय-ब्राह्मण (७ १८) का कहना है कि विश्वामित्रने जब अजीगर्त्तके पुत्र शुन -शेपको अपने ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें ग्रहण किया, तब उनके पुत्रोने इस प्रबन्धको अस्वीकृत कर दिया। इसपर विश्वामित्रने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया और उनके सब पुत्र अन्ध्र, पुण्ड्र शबर, पुलिन्द, मूतिब आदि

उपान्तवासी दस्युजातियोमें परिणत हो गये। ऐतिहासिक कालमें अन्ध्र-लोग दक्षिणापथवासी हो रहे।

३. कम्बोज—मद्रगार आचार्यके शिष्य काम्बोज औपमन्यव थे। वंशब्राह्मणमे ऐसा लेख है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि कम्बोज लोग भारतके पश्चिमोत्तरके रहनेवाले थे।

४. **काशी वा काश्य**—कोसलो और विदेहोके साथ काश्य (काशी) लोगोका नाम आता है; परन्तु वर्त्तमान काशी और वैदिक काशी एक ही थे, इसका कोई ठोस प्रमाण नही पाया जाता। वैदिक काश्य पंजावसे मध्यदेश तक तो आ चुके थे; परन्तु वर्त्तमान काशी पहुंचनेका कोई पता नही मिलता। हो सकता है कि काश्य लोग अपना नाम लिये यहा आये हों और वही नाम वर्त्तमान काशीका रख दिया हो।

काशी वा काश्य लोगोका उल्लेख इन ग्रन्थोमे है—अथर्ववेदसंहिता (पैप्पलाद-शाखा ५.२२ १४), शतपथब्राह्मण (१३.५.४.१९), जैमि-नीयब्राह्मण (२.३.२९), बृहदारण्यकोपनिषद् (२.१.१, ३.८.२), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१), गोपथब्राह्मण (१.२.९) इत्यादि।

५. कीकट—ऋग्वेद (३.५३.१४) कहता है—

"किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।"

अर्थात् 'इन्द्र, अनार्योके निवास-योग्य देशोंमे कीकट लोगोके वीच तुम्हारे लिये गाये क्या करेगी ? न तो वे सोमके साथ मिलाने योग्य दुग्ध देती है और न वे दुग्ध द्वारा पात्रोको ही पूर्ण करती है।'

इससे और निरुक्त (६.२२) से विदित होता है कि कीकट देश अनार्यदेश था, जहां दुर्दशा-ग्रस्ता बहुतसी गायें रहती थी। कोष-कारोने दक्षिण मगध, वा पूरे मगधको कीकट लिखा है; परन्तु ऋग्वेदीय कीकट प्रदेश विहारसे वहुत दूर, व्यास और सतलजके दक्षिण पार, था।

६. कुरु—ऋग्वेद (१०.३३.४) में त्रसदस्युके पुत्र राजा कुरुश्रवणका नाम आया है, जो 'श्रेष्ठ दाता' बताये गये है। कुछ लोगोका अनुमान है कि कुरु और पूरु (पुराणोंके पुरु) एक ही थे। दोनो ही भरत-वशीय थे। ब्राह्मण-ग्रन्थोमें कुरुओका बार बार उल्लेख है। कुरुओका देश धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र था।

७. उत्तर कुरु—ऐतरेयब्राह्मण (८ १४) से पता चलता है कि हिमालयके उत्तरको लोग उत्तर कुरु कहते थे। उत्तर कुरुओका देश भी "देवक्षेत्र" था (ऐतरेयब्राह्मण ८ २३)।

८ कोसल—शतपथब्राह्मण (१.४.१.१७, १३.५.४.४), जैमिनीय-ब्राह्मण (२.३२६) और प्रश्नोपनिषद् (६.१) आदिमें जहा कही कोसलोका नाम आया है, विदेहोके साथ ही आया है। ऐतिहासिकोकी राय है कि पश्चिममें ही कही कोसलो और विदेहोके देश थे। वर्त्तमान कोसल (अवध आदि) और विदेह (मिथिला आदि) तक वैदिक आर्य नही पहुँचे थे; इसलिये वर्त्तमान कोसल और विदेहसे वैदिक कोसल और विदेह भिन्न थे। वैदिक कोसल और विदेहकी नकलपर ही वर्त्तमान कोसल और विदेहके नाम रखे गये।

९ गन्धार वा गन्धारि—ऋग्वेद (१.१२६.७) का मन्त्र-खण्ड है—

"सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।"

आशय यह कि 'मै गन्धारि देशकी भेंडोकी तरह लोम-पूर्णा हूँ।'

इससे ज्ञात होता है कि गन्धारि देशमे अच्छी पशमवाली भेंड़ें रहती थी। अथर्वसहिता (५.२२ १४) और छान्दोग्योपनिषद् (६.१४.१) में भी ये नाम आये है। गन्धार और गन्धारि एक ही है। यही वर्त्तमान कन्दाहार है।

१० चेदि—चेदि-देशाधिपति शिशुपाल था। परन्तु वेदका चेदि शिशुपालवाला चेदि देश नही है। ऋग्वेद (८.५.३७ और ३९) मे चेदिवशीय कशु राजाका वर्णन है। कशु महादानी थे। एक बार उन्होने

एक सौ ऊँट और एक हजार गायें दान दी थी। ३९ वें मन्त्रमें यह भी कहा गया है कि 'जिस मार्गसे चेदि लोग जाते हैं, उस मार्गसे दूसरा नही जा सकता।' कदाचित् निविड़ कान्तारमे चैदि-देश था।

११. नैषिध—दक्षिणी राजा नड़ नैषि कहे गये है (शतपथब्राह्मण २.३ २.१ और २)। नैषिधो और बादके नैषधोंका भी निवास दक्षिणकी तरफ ही था। चारो वेदोकी संहिताओमे नैषिध वा नैषधका नाम नही है। कहा नही जा सकता कि किस देशसे दक्षिणका तात्पर्य शतपथका है।

१२. पंचाल—ब्राह्मण-ग्रन्थोमे कुरुओके साथ पंचालोका वार-वार नाम आया है। कुरुओसे पूर्वकी ओर पचाल था।

१३. पारावत—ऋग्वेद और ताण्ड्य-महाब्राह्मणमे पारावतोकी चर्चा है। परन्तु इनके देशका कुछ पता नही चलता। कुछ लोग कहते है कि यह शब्द दूरके रहनेवालोके लिये सामान्य रूपसे आया है।

१४. पुण्ड्र—सस्कृत-साहित्यमे पुण्ड्र और पौण्ड्रवर्द्धन नाम विहारके लिये आये है। परन्तु ऐतरेयब्राह्मण (७.१८) आदिमे अन्ध्रोके साथ ही पुण्ड्रोका नाम आता है। कदाचित् वैदिक अन्ध्र और पुण्ड्र पास-पास थे।

१५. वहि्लक—शतपथब्राह्मण (१ २.९ ३) मे एक पुरुषका नाम 'वहि्लक-प्रतीपीय' है। अथर्ववेद-संहिता (५.२२.५, ७ और ९) से विदित होता है कि वहि्लक लोग उत्तरके रहनेवाले थे। कदाचित् ह्लिक, वह्लीक और वर्त्तमान वल्ख अभिन्न वा एक ही है।

१६. वाहीक—ये पहले पश्चिमोत्तर सीमाके निवासी थे। बादमें पंजाबमें आ बसे। शतपथ-ब्राह्मण (१.७.३ ८) मे वाहीकोका उल्लेख है।

१७. भरत—वैदिक साहित्यमें सबसे प्रसिद्ध वग भरतोंका है। वेद में सर्वत्र भरतोंका नाम और विवरण पाये जाते है। परन्तु भरतोका

निवास-स्थान एक स्थानपर नही था। ऋग्वेद (७. १८. ५) में भरतवशीय राजा सुदास रावी नदीके तटवासी ज्ञात होते हैं। इसी वेदके ३. ३३. ११–१२ मन्त्रोंमें भरतोको व्यास और सतलजके उस पार जाते हम पाते है। ३.२३ ४ में भरतोको सरस्वती और दृषद्वतीके पास देखा जाता है। जैमिनीयब्राह्मण (३ २३७) से विदित होता है कि भरत सिन्धुतीर-निवासी थे। वस्तुत आर्योमें भरत लोग महान् शक्तिशाली थे। इसीसे सारे देशका नाम भारत पड़ा। सारे देशमें भरतोकी अबाध गति थी।

१८. मगध—ऋग्वेदमें तो मगधोंका कही नाम तक नही है। यजुर्वेद की माध्यन्दिन-सहिता (३०.३२) में वेश्या, जुआडी आदिके साथ मगधोका नाम आया है। ये गाते-बजाते भी थे, इसलिये काफी वदनाम थे। वैदिक साहित्यमें तो मगध वदनाम है ही, स्मृतियोमें भी ये नीची निगाहसे देखे गये हैं—

> "अग-वंग-कलिगेषु सौराष्ट्र-मगधेषु च।
> तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः सस्कारमर्हति ॥"

अर्थात् 'अग (मुगेर-भागलपुर), वग (वगाल), कलिंग (उडीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड़) और मगध (पटना, गया आदि) में तीर्थ-यात्राके विना जानेसे फिरसे उपनयनादि सस्कार करके शुद्ध होना पडता है।'

ऋग्वेद (३ ५३ १४) में कीकट शब्द आया है, जिसका अर्थ मगध भी किया जाता है। परन्तु इसी मन्त्रमें इसे अनार्य-भूमि भी कहा गया है। जो हो, परन्तु इसमे सन्देह नही कि वैदिक मगधसे वर्त्तमान मगध दूर पर ही होना चाहिये। अथर्ववेद (५ २२.१४), वाजसनेय-मान्ध्यन्दिन-सहिता (३०.५ २२) और तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३.४.१.१) में मगधोका उल्लेख है।

१९. मत्स्य–ऋग्वेदमें तो नही; परन्तु शतपथ-ब्राह्मण (१३.५.४.९), गोपथब्राह्मण (१.२.९), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१) आदिमें मत्स्योका उल्लेख है। कहा जाता है कि मत्स्य-पूर्ण समुद्र रहनेके कारण जयपुर (राजपूताना) आदिको मत्स्यदेश माना गया है। परन्तु वैदिक मत्स्य और आधुनिक मत्स्य दो थे या एक ही, यह जाननेका कोई भी उपाय नही है।

२०. मद्र–बृहदारण्यकोपनिषद् (३.३.१; ३ ७.१) में मद्रोका उल्लेख है। हिमालयकी ओर कही इनका देश वा प्रदेश था।

२१. उत्तर मद्र–ऐतरेय-ब्राह्मणके मतसे उत्तर मद्रोंका निवास हिमालयके उत्तरमें था।

२२. महावृष–अथर्ववेदसहिता (५.२२.४.५,८), जैमिनीयब्राह्मण (१ २३४), जैमिनीय-उपनिषद्ब्राह्मण (३.४०.२); छान्दोग्योपनिषद् (४.२.५) आदिमे महावृषोका उल्लेख है। ये भी उत्तरापथवासी थे।

२३. वंग–वंगोका उल्लेख ऐतरेय-आरण्यक (२.१.१) में है। वहा "वङ्गावगधा." पाठ है। कहा जाता है कि "वङगमगधाः" के लिये यह भ्रान्त पाठ है। मगधोंके साथ वङ्गो वा वङ्गियो (वंगालियो) का उल्लेख होनेसे वङ्ग भी अनार्य-निवास ही विदित होता है। स्मृतिकारोने भी ऐसा ही माना है। वैदिक साहित्यमे वगोंका और उल्लेख नही है। ऐतिहासिक तो ऐतरेयारण्यकको आधुनिक ग्रन्थ मानते हैं। जो हो, अब तो वङ्ग और वर्त्तमान वगाल एक ही माने जाते हैं।

२४. विदेह–इनका उल्लेख 'विदेघ' शब्दसे भी है। इनका सभी स्थलोपर कोसलोके साथ ही उल्लेख है। इससे इतना तो मालूम पडता है कि दोनो पास ही पास रहते होंगे। थे पश्चिममे ही कही रहते थे। शतपथ-ब्राह्मण (१.४.१.१०), ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५.

१०.१७), कौषीतकि-उपनिषद् (४.१) तथा बृहदारण्यकोपनिषद्के कई स्थानोपर इनका उल्लेख है।

२५. विदर्भ—वर्त्तमान वरारको विदर्भ कहा जाता है; परन्तु वैदिक विदर्भोका विदर्भ इससे कितनी दूरपर था, इसका पता नही। केवल जैमिनीय-ब्राह्मण (२.४४२) में इस शब्दका उल्लेख है।

वैदिक नगर आदि

इन जनपदवाची (जाति और देशको एक साथ बतानेवाले) शब्दोके अतिरिक्त नगरो और स्थान-विशेषको बतानेवाले शब्द भी वैदिक साहित्य में आये है, जिनसे अनेक महत्त्व-पूर्ण स्थानोका परिज्ञान हो जाता है। उनका विवरण पढ़िये।

१. काम्पिल—कदाचित् काम्पिल पचाल देशकी राजधानी था। तैत्तिरीय-सहिता (७ ४ १९ १), मैत्रायणी-सहिता (३.१२.२०), काठक-सहिता (आश्वमेधिक ४.८), माध्यन्दिन-सहिता (२३.१८), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३ ९.६), शतपथ-ब्राह्मण (१३ २ ८.३) आदिमे इसका नाम आया है।

२. कारपशव—यह यमुनाका कोई तीरवर्ती स्थान था। इसका उल्लेख ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५.१०.२३) मे है।

३. कारोटी—यही 'तुर कावषेय'ने अग्नि-चयन किया था। शतपथ-ब्राह्मण (९.५.२.१५) मे इसका उल्लेख आया है। यह कोई अज्ञात स्थान है।

४. कुरुक्षेत्र—ब्राह्मणो और उपनिषदोमें कुरुक्षेत्रका बार-बार उल्लेख है। यह 'देव-पूजाकी पुण्य-भूमि और सारे प्राणियोका उत्पत्ति-स्थान' भी बताया गया है—"यदनु देवानां देवयजनं तदनु सर्वेषा भूतानां ब्रह्म-सदनम्।" इसीलिये अनेक विद्वानोने कुरुक्षेत्रको आर्यो और प्राणियोका आदि उत्पत्ति-स्थान कहा है। कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदीके पास ही आदिम आर्य-निवास था। इस सिद्धान्तके विरुद्ध कोई अखण्डनीय

युक्ति भी नही है । जे० बी० हाल्डेनके मतसे भी मानवोत्पत्तिका स्थान यही है ।

५. कौशाम्बी—शतपथ-ब्राह्मण (१२. २ २. १३) और गोपथ-ब्राह्मण (१. २. २४) मे कौशाम्बेय शब्द आया है । हरि स्वामीके मतानुसार इसका अर्थ है कौशाम्बीका निवासी । पीछेके संस्कृत-साहित्यमे कौशाम्बीको मगधके वत्सराजकी राजधानी बताया गया है । पता नही, वैदिक कौशाम्बी कहा थी ।

६. तूर्घ्न—कुरुक्षेत्रके उत्तरी भागका नाम तूर्घ्न था । तैत्तिरीय आरण्यक (५ १. १) मे इसका नाम आया है ।

७. त्रिप्लक्ष—दृषद्वतीके लुप्त होनेका स्थान । यह यमुनाके पास ही था । ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५. १३. ४) मे इसका उल्लेख है ।

८. नाड़पित्—शतपथब्राह्मण (१३. ५. ४ १३) मे कहा गया है—"शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे ।" अर्थात् 'नाडपित् स्थानमे अप्सरा शकुन्तलाने भरतको जन्म दिया ।' भगवान् जाने, इन दिनो नाड़पित् कहा है ।

९. नैमिष वा नैमिश—इसी नैमिष वा नैमिषारण्यमे सूतजीने शौनकादि अठासी हजार ऋषियोको अठारह पुराण सुनाये थे । यही महाभारतका प्रथम प्रचार हुआ था । इसका वर्त्तमान नाम 'निमसार' है । काठकसहिता (१०. ६), ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५. ६. ४), जैमिनीय-ब्राह्मण (१. ३६३) कौषीतकि—ब्राह्मण (२६. ५ और २८. ४), छान्दोग्योपनिषद् (१ २. १३) आदिमे नैमिषारण्यका विवरण है ।

१०. परीणाह—ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५ १३. १) और जैमिनीय-ब्राह्मण (२ ३००) मे इसका नाम आया है । कुरुक्षेत्रके पश्चिममे यह स्थान माना जाता है ।

११. प्लक्ष प्रास्रवण—यह विनशन वा बीकानेरसे ४४ दिनोके रास्ते

पर माना जाता है। ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५ १० १६ और २२) में इसका विवरण है।

१२. रैक्वपर्ण—छान्दोग्योपनिषद् (४ २ ५) मे इसका उल्लेख है। महावृषोके देशमें रैक्वपर्ण कोई स्थान होगा।

१३ विनशन—ताण्ड्य-महाब्राह्मण (२५ १०.१) और जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण (४ २६) मे इसका उल्लेख है। डा० अविनाशचन्द्र दासके मतसे विनशन वर्त्तमान बीकानेर ह। इनके मतसे यही सरस्वती विलुप्त हुई थी, पटियालेमे नही।

१४. शर्यणावत्—ऋग्वेद (८ ६ ३९) में कहा गया है कि शर्यणावत् नामका स्थान कुरुक्षेत्रके पास है। इसके पास ही एक तडाग है। कुछ लोगोके मतसे कुरुक्षेत्रके तालाबका नाम ही शर्यणावत् है।

१५ साचीगुण—यह पश्चिम भारतका (भरतोके देशका.) कोई स्थान होगा। ऐतरेयब्राह्मण (८ २३) मे इसका उल्लेख है।

१६ स्थूलार्म—ताण्ड्यमहाब्राह्मण (२५ १० १८) मे इसका नाम आया है। भाष्यकार सायणाचार्यके मतसे यह सरस्वतीका ह्रद् है।

ऋषि और महर्षि

नीचे ऋग्वेदादिके उन ऋषियो और महर्षियोके नाम दिये जाते है, जिनकी या जिनके वशजो और ब्राह्मण-शिष्योकी आज्ञा और अनुमतिसे राजा-महाराजा देशका शासन करते थे। ये ही ऋषि-महर्षि वैदिक साहित्यके राजा-महाराजाओके गुरु-पुरोहित और व्यास थे। इन्ही तपोधन महापुरुषोने विशाल वैदिक साहित्यको कण्ठस्थ करके उसकी रक्षा की थी। इन्होने और इनके शिष्यो और वशजोने ही विपुल-विराट् सस्कृत-साहित्यका सृजन किया है। ये ही भारतीय सभ्यता और सस्कृतिके जनक और सरक्षक है। ये ऋषि-महर्षि नही हुए रहते, तो या तो हिन्दूजाति जगली रहती या ससारसे मिट गयी होती। इन

ब्रह्मण्य-गर्व-धारी, प्रातःस्मरणीय और स्वनामधन्य ऋषि-महर्षियोंकी पूज्य नामावली यह है--

मधुच्छन्दा, मेधातिथि, कण्व, शुनःशेप अजीगर्ति, हिरण्यस्तूप आंगिरस, घोर कण्व, प्रस्कण्व कण्व, सव्य आङ्गिरस, नोधा गौतम, पराशर शक्त्य, गौतम रहूगण, कुत्स आंगिरस, कश्यप मारीच, ऋजाश्व आम्बरीप, दैर्घतमस, परुच्छेद दैवोदासी, दीर्घतमस औतथ्य, अगस्त्य, विषशान्ति अगस्त्य, कक्षीवान्, एतश, तुर्वीति, दध्यङ् अथर्वा, दधीचि, गोतम, अत्रि, रेभ, भरद्वाज, कलि, वृश, स्यूमरश्मि, विमद, ऋतस्तुभ, ध्वसन्ति, पुरुपन्ति, पुरुकुत्स, सदस्यु, त्रिशोक, खेल, अश्व, वश, परावृज, श्रुतर्य, नर्य, वन्दन, नमी, ऋभुगण, शर्यु, श्याव, वामदेव, विश्वामित्र, वसिष्ठ, परुच्छेद, गृत्समद, अंगिरा, सोमाहुति, वव्रि, सुतम्भर, च्यवन, भेष, अर्चनाना, श्यावाश्व, सप्तवध्रि, एवय, भौम आत्रेय, सत्यश्रवा, अवस्यु, पौर, बाहुवृक्त, श्रुतविद्, शयु, पुरुमीह्ल, अजमीह्ल, ऋजिश्वा, अतियाज, द्वित, विश्वमना, स्थूलयूप, पुरु, अयास्य, आप्त्य त्रित कुत्स, नारद, अवत्सार, रेणु, ऋषभ, यम, कवष, विश्वक, ताम्ब, पार्थ्य, मायव, वत्सप्रि, देवमुनि, हविर्द्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, वसुक्त, अभितपा, श्रुतवन्धु, विप्रवन्धु, गय, वसुकर्ण, सुमित्र, वृहस्पति, जरत्कर्ण, वैश्वानर, नारायण, अरुण, शार्यात, अर्बुद, मुद्गल, अप्रतिरथ, दुर्मित्र, दिव्य, जमदग्नि, जैमिनि, जूति, पृथु, वृहद्दिव आदि आदि। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, अपाला, ममता, घोषा, विश्ववारा, सूर्या, जुहू आदि ऋषिकाओंके भी रचित वा आविष्कृत मन्त्र और सूक्त अनेक हैं।

राजर्षि और राजा-महाराजा

ऊपर भारतके समुद्र, पर्वत, नदी, देश, प्रदेश, नगर आदिके जो नाम दिये गये हैं, उनके पालक और शासक नीचे लिखे राजर्षि और राजा-महाराजा तथा इनके वंशज थे--

पुरुरवा, नहुष, पिजवन, दिवोदास, सुदास, शर्याति, शार्यात, अतिथिग्व, ऋजिश्वान्, सुश्रवा, तुर्वश, यदु, मनु, राजर्षि अन्तक, तुग्र भुज्यु, राजर्षि मान्धाता, राजर्षि वैन पृथि, राजर्षि पठर्वा, जाहुष, पृथुश्रवा, राजर्षि पेदु, इष्टाश्व, इष्टरश्मि, मशर्शार, स्वनय, रातहव्य, दुर्योणि, भरत, भरतगण, तृत्सुगण, सहदेव, सोमक, अर्ण, चित्ररथ, त्रसदस्यु, स्वश्व, श्रुतरथ, दुष्यन्त, क्षत्रश्री, प्रस्तोक, वृषभ, वेतसु, अभ्यवर्ती, चयमान, सृञ्जय, शात, कवि, गाथ, प्रगाथ, याद्व, पाशद्युम्न, अनु, द्रुह्यु, राम, वेन, अरुण, यौवनाश्व, विभिन्दु, आसग, राजर्षि रुशम, राजर्षि श्यावक, राजर्षि कृप, पाकस्थामा, कशु परशु, तिरिन्दिर, पक्थ, वरु, सहस्रबाहु, वपु ध्वस्र, ययाति, शन्तनु, पृथु आदि आदि। वैदिक ग्रन्थोमे खोज-ढूढ करने पर कुछ और भी ऋषियो और राजाओके नाम पाये जा सकते हैं।

ऋषियो और राजाओके ये नाम ऋग्वेदादिसे दिये गये हैं। परन्तु ये सारे नाम मन्त्रोमे ही नही है। बहुतसे नाम सायण-भाष्यसे भी लिये गये है। सायणके मतसे उन वेदमन्त्रोका तात्पर्य इन अप्रकट और परोक्ष नामो और इनकी कथाओसे ही है।

प्रायः इन सारे नामो और इनकी कथाओके विशिष्ट विवरण पुराणोमें आये है। इन राजाओके द्वारा शासित समस्त देशो-प्रदेशो के स्पष्ट विवरण भी पुराणोमें आये है। राजाओमे वे राजर्षि कहे जाते थे, जो ब्रह्मज्ञानी होते थे।

पशु और पक्षी

ऋग्वेदके १० म मण्डलका १४६वा सूक्त "अरण्यानी-सूक्त" कहाता है। इसमे बृहद् वनका बडा ही मार्मिक और हृदय-ग्राही वर्णन है। इसमें कुल ६ मन्त्र हैं। प्रत्येक सहृदय कवि इन्हें देखकर प्रभावित होता है। ऋग्वेदके "श्रद्धा-सूक्त" (१० मण्डल, १५१ सूक्त) के अव-

लम्वपर हिन्दीमे "कामायनी" नामका एक महाकाव्य रचा भी जा चुका है ।

अव यह देखना है कि इस वृहत् वनमे, अन्य वनोमे अथवा वैदिक भारतके अन्य स्थानोमें कैसे पशु और पक्षी रहते थे ।

ऋग्वेद आदिमे इन पशु-पक्षियोका उल्लेख है–गौ, अश्व, मेष, महिष, उष्ट्र, छाग, गर्दभ, हस्ती, कुक्कुर, सिंह, वृष, गौर मृग (वन्य महिप वा Bison), हरिण, कस्तूरी मृग, कृष्णसार मृग, वराह, उलूक, शुक, गृध्र, वृष्ण, शकुन (वड़ा कौवा), श्येन (वाज), वार्तिक (वत्तख), कपिञ्जल (तित्तिर), चक्रवाक, सर्प, मण्डूक, गोधा, वृश्चिक, मत्स्य, अश्वतर (खच्चर) ।

वैदिक गृहस्थ अधिकतया गौ, भेड और वकरा पालते थे । तवका वकरा वड़ा होता था, क्योकि वह रथ भी खीचता था (ऋ १ १३८ ४) । कुते भी वोझ ढोने और शिकारके काममे आते थे (ऋ ८.४६ २) । लदनीके सिवा गदहे भी रथ खीचते थे । अश्विनीकुमारोका रथ गदहे खीचते थे (ऋ १.३४ ६) । घोड़े चढने, रथमे जोतने, हल खीचने और वोझ ढोनेके काम आते थे ।

गौको अघ्न्या– अवध्या कहा गया है । गायको रुद्रोकी माता, वसुओकी पुत्री,आदित्योकी भगिनी, अदितिस्वरूपा और अमृतका उत्पत्ति-स्थान माना गया है। ऋग्वेद (६ २८)मे गौको इन्द्र आदि देवोके वरावर कहा गया है । यही अठाईसवा सूक्त गोसूक्त है, जिसमे गौकी वड़ी महिमा है। वस्तुत. चारो वेदोमे गायका वड़ा माहात्म्य कहा गया है । यजुर्वेद (माध्यन्दिन)मे गोघातकको प्राण-दण्ड देनेकी आज्ञा दी गयी है । एक स्थान (१३.४३) पर कहा गया है कि 'अदितिस्वरूपा गौकी हिंसा मत करो'–"गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ।" इसके आगे कहा गया है–'हजारो मनुष्योकी जीवन-रक्षिणी गौको नही मारना चाहिये (१३. ४९) ।' अथर्ववेदमे भी ऐसे अनेक वचन आये है ।

ऋग्वेदमें हाथीके लिये हस्त, इभ, वारण आदि शब्द आय हैं। मतग ऋषिने हाथीको पालतू जानवर बनानेका कार्य सर्व-प्रथम किया था, इसलिये हाथीका एक नाम "मातग" भी पड गया।

ऋग्वेद (८ ५६. २२)मे कहा गया है कि पुरोहित वशने राजा पृथुश्रवासे सत्तर हजार घोडो, दो हजार ऊँटो, काले रगकी एक हजार घोडियो और तीन अगोमे शुभ्र दस हजार गायोको दानमें पाया था।

इस तरह आर्य लोग पशुओके लिये बडे धनी थे—उनके यहा दूध-दहीकी नदी बहती थी। उनके पास सभी ऐश्वर्य और वैभव थे।

वृक्ष और अन्न

ऋग्वेदमें अश्वत्थ, शमी, पलाश, शाल्मली, खदिर, शिशपा आदिका उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण (३.३५ ४) मे वटवृक्षका विवरण है। आम और कटहलका उल्लेख ऋग्वेदमे नही है। ईखका नाम आया है। मधुका बडा उल्लेख है। जीका और उसके सत्तूका तो अनेक स्थलोमे वर्णन है। जौ (यव) यज्ञीय अन्न माना गया है। तिल, मूँग, सरसो, व्रीहि, गोधूम (गेहूँ) का उल्लेख यजुर्वेदमे है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक एच जी वेल्सके मतसे नौ हजार वर्ष पहले मेसोपोटामिया और एशिया माइनरसे भारतमें गेहूँ आया था। तो क्या ऐतिहासिक कहेंगे कि नौ हजार वर्षसे पहले वह वेद-ग्रथ बन गया था, जिसमें गेहूँका नाम नही है? परन्तु यूरोपीय और उनके अनुयायी एतद्देशीय ऐतिहासिक तो ऐसा नही मानते।

धातु आदि

ऋग्वेदम स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लौह आदिका उल्लेख है। स्त्री, पुरुष, दोनो ही आभूषण धारण करते थे। लोहे और ताम्रके विविध अस्त्र बनते थे। हिमालय और बाह्लीकमें कीमती रत्न पाये जाते थे। रत्नोको मणि भी कहा जाता था। मुक्ता (मोती) का वर्णन है। धनी लोग घोडोको मुक्ता-माला पहनाते थे।

निष्कर्ष

संक्षेपमे वैदिक भूगोलका यही विवरण है। इससे विदित होता है कि आर्यावर्त्तके चारो ओर समुद्र था। आर्य-राज्य अफगानिस्तान, विलोचिस्तान, सिन्ध, राजपूताना, विन्ध्य गिरि, हिमालय और उत्तर प्रदेश (युक्तप्रांत) के पश्चिमी भाग तक फैला था। आर्यावर्त्तमे अनेकानेक नदियां थी, पर्वत थे, वड़े-वड़े देश, प्रदेश और नगर थे। तपोधन ऋषियो और चक्रवर्ती राजाओका यहां निवास था। आर्य वडे प्रतापी योद्धा थे। व सोनेके थालोमे खाते थे, हजार स्तम्भोवाले महल वनाते थे और स्वर्णाभूषण तथा मणि-माणिक्य धारण करते थे। कोई दुखी और दरिद्र नही था। सभी आस्तिक, विनीत और सुखैश्वर्यसे सम्पन्न थे। सभी छल, कपट, मद, मत्सरता और प्रवञ्चनासे रहित थे; इसलिये सवकी समयपर मृत्यु होती थी। समयपर वर्षा होती थी; क्योकि यथाविधि यज्ञ किये जाते थे। आर्योका ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय चरम सीमापर था। पशु-पक्षी तक सरस-सुखद जीवन विताते थे। त्याग और तपस्याकी मूर्त्ति ऋषि-महर्षि देश-विदेशमे ज्ञानकी दिव्य और भव्य मन्दाकिनी वहाया करते थे, इसीलिये पाप-ताप और शोक-सन्तापका नाम भी नही था।

वैदिक साहित्यके वादके ग्रथोमे इन वातोका वडे विस्तारसे विवरण दिया गया है। पाणिनिकी अष्टाध्यायीसे ज्ञात होता है कि भारतमे सैकडो गण-तन्त्र राज्य हो चुके है। अशोकके समय आर्य-राज्य हजार कोससे भी अधिक फैला था। वैदिक राष्ट्रके आदर्शोको पूर्ण रूपसे जानने और समझनेके लिये वैदिक साहित्यका मन्थन करना चाहिये। स्थानाभावके कारण यहा अधिक नही लिखा जा सकता।

द्वाविंश अध्याय

वेद और खगोल

वैदिक साहित्यमे विश्वके तीन विभाग माने गये है–पृथ्वी (भू), अन्तरिक्ष (भुव) और द्युलोक (स्व)। पृथ्वीपर मनुष्यादि, अन्तरिक्ष वा वायुलोक पर मेघ, विद्युत् और वायु तथा द्युलोक वा स्वर्गमे सूर्य रहते है । निघण्टु (वैदिक कोष) में देवताओके नाम तीन विभागोमे दिये गये है। प्रथममे पृथ्वीपर रहनेवाले देवता ह, द्वितीयमें अन्तरिक्षमे रहनेवाले और तृतीयमे स्वर्गनिवासी देवता है। निखिल वैदिक साहित्यमे ऐसा ही लोक-विभाग पाया जाता है।

ऋग्वेद (१० ८९ ४) मे लिखा है–जैसे अक्षके द्वारा दो चक्र, दृढ रूपसे, धृत है, वैसे ही इन्द्रने पृथ्वी और द्युलोकको दृढ किया है। सूर्यके उदय और अस्तमनके सम्बन्धमें ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमे कहा गया है कि सूर्यके एक भागमे प्रकाश (दिन) है और दूसरेमें अन्धकार (रात्रि) है। सूर्य जब पूर्वसे पश्चिमकी ओर चलता है तब प्रकाशवाला भाग हमारी तरफ रहता है और अन्धकार वाला भाग ऊपर। इसी लिये हमे दिनमे प्रकाश मिलता है। पश्चिमी आकाशमे पहुँचकर सूर्य अन्धकारवाला अश हमारी तरफ और प्रकाशवाला अश देवोकी तरफ करके पूर्व दिशामें लौट आता है। इसीलिये रात्रिमें पृथ्वी अन्धकारमे रहती है। ऋग्वेदके अनेक स्थलो (१ ११५ ५०, ५ ८१ ४, ६ ९ १०, ७ ८. १०, १० ३७ ३) का ऐसा ही तात्पर्य है।

ऋग्वेदके १म मण्डलके ३५ वे सूक्तमें ग्यारह मन्त्र है और सबके मब सूर्यके वर्णनसे पूर्ण है। सूर्यका अन्तरिक्षमे भ्रमण, प्रात से साय तक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका

प्रकाशन आदि बातें इस एक ही सूक्तसे विदित होती हैं। इस सूक्तके आठवें मन्त्रमें कहा गया विवरण देखिये—

"अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देवः आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥"

अर्थात् 'सूर्यने पृथ्वीकी आठों दिशाएँ (चार दिशाएँ और चार उनके कोने) प्रकाशित की हैं। सूर्यने प्राणियोंके तीनों संसारों और सप्त सिन्धुओंको भी प्रकाशित किया है। सोनेकी आँखोंवाले सविता वा सूर्य हव्यदाता यजमानको वरणीय द्रव्य दान देकर यहाँ आवें।'

इससे विदित होता है कि आर्य ही आठ दिशाओं और सप्त सिन्धुओंके आविष्कारक थे।

इसी १म मण्डलके ८४वें सूक्तका १५वाँ मन्त्र है—

"अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
इत्था चन्द्रमसो गृहे॥"

अर्थात् 'इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें अन्तर्हित जो तेज है, वह आदित्य-किरण ही है, ऐसा जाना।'

इस मन्त्रपर भाष्य करते हुए सायणाचार्यने निरुक्त (२. ६) उद्धृत किया है—"**आदित्यतः अस्य दीप्तिर्भवति**" अर्थात् सूर्यकी ही किरण चन्द्रमामें प्रदीप्त होती है। इससे तो ज्ञात होता है कि आर्य ही खगोल-विद्याकी इस बातके आदि ज्ञाता हैं।

वैज्ञानिकोंका मत है कि अपनी अद्भुत शक्तिके कारण सूर्यकी किरणें अनेक रोगोंको विनष्ट कर देती हैं। ऋग्वेदके तीन मन्त्रों (१ ५०. ११–१३) में कहा गया है—'अनुरूप दीप्तिवाले सूर्य आज उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर मेरा हृद्रोग वा मानस रोग और हरिमाण (पीतवर्ण) रोग या शरीर-रोग विनष्ट करो। मैं अपने हरिमाण रोगको शुक और सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ। अपना हरिमाण रोग हरिद्रा वा हरिताल वृक्षपर स्थापित करता हूँ।

अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये आदित्य समस्त तेजके साथ उदित हुए है। मैं इस रोगका विनाश-कर्ता नही, सूर्य ही है।'

इस सन्दर्भसे विदित होता है कि सूर्योपासनासे सारे शारीरिक और मानसिक रोग विनष्ट हो जाते हैं। सूर्योपासकोके लिये ये तीनो मन्त्र प्रधान है। प्राय प्रत्येक सूर्योपासक, अपनी आधि-व्याधिकी शान्तिके लिये, इन मन्त्रोको जपा करता है। सायणाचार्यने लिखा है कि इन मन्त्रोका जप करनेसे ही प्रस्कण्व ऋषिका चर्मरोग विनष्ट हुआ था। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोका जप किया जाता है। प्रो० विलसनने हृद्रोगका अर्थ "Sickness of my heart" और हरिमाणका "Yellowness of my body" किया है।

ऋग्वेद (२ २७ १) में सूर्यके ये छ रूप माने गये है—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अश। एक स्थल (ऋग्वेद ९ ११४ ३) पर सूर्यके सात प्रकार माने गये है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमे इन आठ सूर्योका उल्लेख है—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अश, भग, इन्द्र और विवस्वान्। शतपथ-ब्राह्मणमें १२ महीनोके १२ सूर्य माने गये है। महाभारत (आदि-पर्व, १२१ अध्याय) में इन द्वादश आदित्योके द्वादश नाम आये है—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अश, भग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। परन्तु वस्तुत- सूर्य एक ही है —कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार ये विविध नाम रखे गये हैं। इस तरह आर्यों को सूर्यके प्रत्येक रूपका पूर्ण ज्ञान था।

ऋग्वेद (१ ५० ८) का मन्त्र है—

"सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केश विचक्षण॥"

अर्थात् 'दीप्तिमान् और सर्व-प्रकाशक सूर्य, हरित् नामके सात घोडे (किरणें) रथमे तुम्हे ले जाते है। ज्योति वा किरण ही तुम्हारा केश है।'

ऋग्वेदके २. १२ १२ मे भी सात किरणोका उल्लेख है। इसी वेदके १. १६४. २ मे सूर्यके सात घोड़ो (किरणो) की बात तो है ही, साथ ही यह भी लिखा है कि घोड़ा (किरण) एक ही है, जो सात नामोसे सूर्य-रथ ढोता है।

इसी प्रकार ५. ४५.९ मे भी सूर्यकी सात किरणोकी बात है।

ऋग्वेद (१. १२३ ८) में कहा गया है कि 'उषा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।' इसपर सायणाचार्यने लिखा है—'सूर्य प्रति दिन ५०५९ योजन भ्रमण करते है। इस तरह सूर्य, प्रत्येक दण्डमे, ७९ योजन घूमते है। चूंकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्वगामिनी है, इसलिये सूर्योदयसे प्राय. आधा घटा पहले उषाका उदय मानना चाहिये।' कुछ यूरोपियोके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते है। परन्तु सूर्यकी गति उनके अक्ष वा परिधिमे ही होती है।

ऋग्वेद, १म मण्डल, १६४ सूक्तके दो मन्त्रो (११–१२)मे अनेक ज्ञातव्य विषय पाये जाते हैं। वे मत्र ये हैं–

"द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासा अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थु ॥"

अर्थात् 'सत्यात्मक सूर्यका, बारह अरो, खूँटो वा राशियोसे युक्त, चक्र स्वर्गके चारों ओर बार बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नही होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप होकर सात सौ वीस (३६० दिन और ३६० रात्रिया) निवास करते हैं।'

इसके आगेका मन्त्र है–

"पञ्चपादपितरं द्वादशाकृतिं दिव आहु परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य अपरे विचक्षणं सप्त चक्रे षड़र आहुरर्पितम् ॥"

अर्थात् 'पाच पैरो (ऋतुओ) और बारह रूपो (महीनो)से युक्त आदित्य जिस समय द्युलोकके पूर्वार्द्धमे रहते हैं, उस समय उन्हे कोई-

कोई पुरीषी वा जलदाता कहते है। दूसरे कोई-कोई छ अरो (ऋतुओ) और मात चक्रोमे (किरणोमे) सयुक्त रथपर द्योतमान सूर्यको अर्पित करते हैं, जब कि वह द्युलोकके दूसरे आधेमें रहते है।'

यद्यपि ऋतु छ है, परन्तु हेमन्त और शिशिरको एक करके उन दिनो "पञ्च ऋतु" कहनेकी भी परिपाटी थी। 'पूर्वार्द्ध' और 'दूसरे आधे' का तात्पर्य सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणसे है। इस तरह इन दोनो मन्त्रोसे ही अनेक खगोल–विषय ज्ञात हो जाते है।

ऋग्वेद (१ १५५ ६) मे कालके ये ९४ अश बताये गये है—सवत्सर, दो अयन, पाच ऋतु, बारह मास, चौबीस पक्ष, तीन अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशिया।

ऋग्वेद ५ ४० के ५ वे मन्त्रमे कहा गया है कि 'जब स्वर्भानु (पृथ्वी ?) नामक असुरने तुम्हे (सूर्यको) अन्धकारसे (छायासे ?) ढक लिया था, उस समय सारे भुवन इस तरह दीख रहे थे, जैसे वहावाले सब लोग अपने–अपने स्थानोको नही जान रहे है अर्थात मूढ है।'
इस मन्त्रमे स्पष्ट ही सूर्य-ग्रहणका उल्लेख है।

ऋग्वेद ७ ६० के ३ रे मन्त्रमे कहा गया है कि 'जैसे गोपालक गोसमूहको भली भाति देखता है,वैसे ही सात घोडोको रथमें जोतकर और उदित होकर सूर्य सारे प्राणियो और ससारके सारे स्थानोको देखते है।' इसी प्रकार ७ ६६ ११ मे सूर्य (मित्र, वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास और दिनका बनाया जाना भी लिखा है।

७.८७.१ में सूर्यके द्वारा दिनसे रात्रिका अलग किया जाना लिखा है। ६ ५४.२ मे तीस दिनो और तीस रात्रियोका उल्लेख है।
ऋग्वेद १ २५का ८ वा मन्त्र है—
"वेद मासो धृत-व्रतो द्वादश प्रजावत। वेदा य उपजायते॥'
तात्पर्य यह कि 'जो व्रतावलम्बन करके अपने अपने फलोत्पादक

वारह महीनोको जानते हैं और उत्पन्न होनेवाले तेरहवे मासको भी जानते है।'

भाव यह है कि पृथिवीके चारो ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमे १२ अमावस्याओकी गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते है। इसीलिये सौर और चान्द्र वर्षोमे सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तृतीय वर्षमे एक अधिक मास वा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे विदित होता है कि वैदिक साहित्यमे दोनो वर्ष माने गये है और दोनोका समन्वय भी भली भाति किया गया है। इसके पहलेके मन्त्रसे यह भी जाना जाता है कि आर्यलोग आकाश-चारण और समुद्र-विहरण भी करते थे।

यद्यपि खगोल और भूगोल विषय वैदिक साहित्यके नही है, तो भी प्रसगतः वैदिक साहित्यमे इन दोनो विषयोका उल्लेख पाया जाता है। जो लोग कहते हैं कि वैदिक साहित्यमे खगोलकी वाते नही है, उनका उत्तर इस विवरणसे हो जाता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हजारों वर्ष पहले आर्योकी कितनी उच्च सस्कृति थी, उनका मस्तिष्क कितना उदात्त था और आर्य कितने अगम्य विषयोका आविष्कार कर चुके थे।

त्रयोविंश अध्याय

वेद और ज्यौतिष

अनेक विदेशी वेदाभ्यासी और एतद्देशीय वेदाध्यायी कहते है कि 'वैदिक आर्योको न तो सूर्यकी गतिका ज्ञान था, न पृथ्वीकी स्थिरताका पता था। उन्हें न तो अक-विद्याकी जानकारी थी, न वीजगणितकी और न रेखा-गणितका ही परिज्ञान था।' कोई कहता है, 'आर्योने ये विद्याएँ अरववालोसे सीखी' और किसीके मतसे 'ग्रीको और रोमनोसे प्राप्त की।' कुछ चाल्डिया और वेबीलोनियासे इन विद्याओका यहा आना मानते है।

यहा इस बातका विचार करना है कि वैदिक आर्य ये विद्याएँ जानते थे या नही।

लेखककी धारणा है कि जो लोग केवल दूसरोकी लिखी वेद-सम्वन्धिनी समालोचनाओ और टीका-टिप्पनियोपर ही विशेषतः निर्भर रहते है, वे ही उक्त विचार-सरणिका अनुधावन करते हैं। परन्तु जो निरुक्त और प्रातिशाख्योका विधिवत् अध्ययन कर चुके हैं और जिन्हें मूल वैदिक साहित्य समझनेकी क्षमता प्राप्त है, वे ही प्रामाणिक रूपसे वेदोक्त विषयोपर सम्मति देनेके अधिकारी है। ऐसे अनेक अधिकारी विद्वान् तो मानते है कि आर्यो को इन सारी विद्याओका ज्ञान ही नही था, वरच वे ही इन सारी विद्याओके जनक थे---दूसरोसे उधार लेनेकी वात तो अलग रहे ।

छ वेदागोमे एक अग ज्यौतिष माना गया है (मुण्डकोपनिषद् १ ५)। छान्दोग्योपनिषद् (७. १ २) में ज्यौतिष-विद्या और नक्षत्र-विद्याका विवरण है। शतपथ-ब्राह्मण (२ १ ३ ३) का कहना है कि उत्तरायणमे सूर्य देवोके और दक्षिणायनमे पितरोके

अधिपति होते हैं ।' इस तरह सूर्यकी उत्तरायण-दक्षिणायन गतियोका आर्योको पूर्ण ज्ञान था । ऋग्वेदके १. २४ १० में सप्तर्षियोकी गतिका उल्लेख है । मन्त्रमे 'ऋक्षाः' शब्द आया है, जिसका अर्थ सायणने 'सप्त नक्षत्र' किया है । ऋच् धातुका अर्थ उज्ज्वल है और इसीसे ऋक्ष शब्द बना है, इसलिये नक्षत्रो और सप्तर्षियो (सप्त ताराओ)का नाम कुछ लोग 'उज्ज्वल भालू' रखे हुए हैं। यूरोपमे भी इन्हे Great Bear कहा जाता है । मैक्समूलरकी भी यही राय है । फलतः आर्योको नक्षत्रोकी गतिका ज्ञान था ।

यजुर्वेद (३३ ४३) मे एक मन्त्र है–

"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥"

अर्थात् 'सूर्यदेव अपने आकर्षण-गुणसे मंगलादि लोको और पृथिवीको अपनी अपनी कक्षामे रखते हुए और उन्हे अपने चारो ओर नचाते हुए तथा स्वर्णके समान चमकीले शरीरसे लोक-लोकान्तरोको प्रकाशित करते हुए चले जा रहे हैं ।'

यह मन्त्र ऋग्वेद (१ ३५ २) मे भी है । इससे ज्ञात होता है कि सूर्य अपने ग्रहोपग्रहोको लिये-दिये भ्रमण कर रहे हैं ।

ऋग्वेदका ही एक दूसरा मन्त्र (८.१२ ३०) है–

"यदा सूर्यमसुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥"

अर्थात् 'इन्द्रदेव, जिस समय तुमने उज्ज्वल-ज्योति सूर्यको आकाशमे स्थापित किया, उसी समय पृथिव्यादि लोकोको अपनी अपनी कक्षामे नियन्त्रित किया ।'

ऋग्वेदके अगले मन्त्र (१० १४९. १)मे इस विषयका और भी स्पष्ट विवरण है–

"सविता यन्त्रै पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।"

अर्थात् 'अपने आकर्षणसे सूर्यने पृथिवीको बाधा है । सूर्यने निराधार आकाशमें द्युलोक-स्थित ग्रहोको भी दृढ रूपसे बाध रखा है।'

ऋग्वेदका ही एक मन्त्र और (१० १८९. १) देखिये-

"आय गौ पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुर । पितर च प्रयन्त्स्व ॥"

अर्थात् 'गतिपरायण और तेजस्वी सूर्य उदित होकर अपनी माता पूर्व दिशाका आलिगन करते है । अनन्तर अपने पिता आकाश की परिक्रमा करते है ।'

इन उद्धरणोसे यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध' होता है कि वैदिक ऋषियोको पृथ्वी आदि ग्रहोका सूर्यकी परिक्रमा करना पूर्ण रूपसे विदित था । उन्हे इस बातका भी पता था कि स्वय सूर्य भी स्थिर न रहकर अपने अक्षपर भ्रमण (आवर्त्तन) करते हुए अपने ग्रह-परिवारके साथ आकाशमें किसी निर्दिष्ट स्थान (महासूर्य) की ओर चले जा रहे हैं।

इन प्रमाणोंके रहते हुए भी पृथिवीको सौर जगत्का केन्द्र माननेवाले यवनोके ससर्गसे और वैदिक ज्ञानके प्रचारके अभावसे भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति और ब्रह्मगुप्तने तथा सस्कृत-साहित्यके अनेक ग्रन्थकारोने लिख डाला कि पृथ्वी 'स्थिरा' है !

पहले लिखा जा चुका है कि आर्योको चान्द्र मास, मलमास आदिका पूर्ण ज्ञान था । उन्हे चान्द्र नक्षत्रोका भी पूर्ण ज्ञान था। मघा, 'पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका उल्लेख ऋग्वेद (१० ८५ १३) मे है। कृष्ण यजुर्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदिमें सभी चान्द्र नक्षत्रोके नाम है ।

ज्यौतिष-विद्याके अन्तर्गत अकगणित, बीजगणित, रेखा-गणित आदिको आर्योंने माना है। इस विद्यामें ईसासे बहुत पहले आर्योंने दक्षता प्राप्त की थी। इस बातका समर्थन ब्रेली, लाप्लास, प्लेफेयर आदि

यूरोपीयोने भी किया है। हरमन हेकलने तो यह भी लिखा है कि ब्राह्मण ही बीजगणितके आदि रचयिता है। वस्तुत. शतोत्तर गणना और शून्य तो ससारको आर्योकी ही देन है।

फिनिशियन रीतिमे ६ के लिये नौ लकीरे खीची जाती थी और ६० के लिये अग्रेजीके चार 'एच 'अक्षर लिखे जाते थे । यूनानी लोगोकी सबसे बड़ी सख्याका नाम Myriad (मिरियड) था। रोमवालोंकी सबसे बडी संख्या Mille (मिल्ली) थी। मिरियड दस हजार और मिल्ली एक हजारको कहा जाता है। इस विद्यामें ग्रीक और रोमन आर्योंके शिष्यसे है।

तैत्तिरीय-सहिता, मैत्रायणी-सहिता, काठकसहिता आदिमें शतोत्तर गणनाका उल्लेख है। ऋग्वेद (८. ५६. २२) में कहा गया है—"मैंने साठ हजार और अयुत (दस हजार) अश्वोको प्राप्त किया है।" यजुर्वेद (१७. २) मे १ पर १२ शून्य देकर दस खरब तककी संख्याका उल्लेख है!

अनुयोगद्वारसूत्र (१०० बी. सी) मे तो असंख्य तक गणना की गयी है। इसमे दसपर एक सौ चालीस बिन्दुओको रखकर सख्या कही गयी है! पिंगलके छन्द.सूत्रमे (२०० वी. सी.) मे भी शून्यका पूरा उपयोग किया गया है। जिनभद्रने लिखा है कि 'सख्याओको लिखनेमे शून्यका प्रयोग किया जाता था।' सिद्धसेनने "तत्त्वार्थाधिगमसूत्र"की टीकामे, बड़ी सखाएँ लिखनेमे, शून्यका उपयोग दिखाया है। यजुर्वेदमे शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्वुद, समुद्र, अन्त, परार्द्ध तकका उल्लेख है। इन सारी सख्याओमे शून्यका प्रयोग किया जाता है। सस्कृतके अकगणित और बीजगणितके ग्रन्थोमें तो शून्यके सम्बन्धमे अध्याय और परिच्छेद तक पाय जाते हैं।

यूरोपमें छठी शताब्दीसे ही आर्य-अकोकी चर्चा चल पड़ी थी। आठवी शतीमे अरबके देशोने इसे अपनाया। पिसाके लियोनार्डोने, १३ वी

शतीमें, मिश्र, सीरिया, यूनान, टली आदि देशोकी अक-विद्याका अध्ययन कर निश्चय किया कि 'हिन्दुओकी अक-विद्या-प्रणाली सर्वोत्तम है।' उन्होने इस प्रणालीका यूरोपमें प्रचार करनेका बड़ा प्रयत्न किया। १५ वी शतीसे १७ वी शतीतक यूरोपने इसी आर्य-प्रणालीको लिया। इन दिनो इन्ही वैदिक अकोको "अन्ताराष्ट्रिय रूपमे भारतीय अक" कह कर भारतके नेताओने राजाभाषा हिन्दीमे ले लेनेकी घोषणा की है।

वर्गमूल, घनमूल आदिके आविष्कारक भी आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि थे। अरबके इब्न वहशीय, जहीज, अबल-अल-मसूदी आदिने भी इस बातको अगीकार किया है।

आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदिने ही बीजगणितका भी आविष्कार किया है। वर्ग-समीकरण, उच्च आघात आदिके जन्मदाता आर्य ही थे।

ज्यामितिका आदि जनक वैदिक साहित्य है। कल्पसूत्रोके अन्तर्गत 'शुल्व-सूत्रो'में यज्ञ-वेदियोकी रचना बतायी गयी है। विविध यज्ञोमे विभिन्न प्रकारकी वेदिया बनायी जाती है। इस तरह शुल्वसूत्रोमें भुजासे कर्णका सम्बन्ध, वर्गके समान आयत, वर्गके समान वृत्त आदि आदि का पूरा विचार किया गया है। आधुनिक विद्वान् इन सूत्रोका निर्माण-काल १००० वी सी मानते है। परन्तु एक हजार बी. सी. में तो ससारके अधिकाश देशोके निवासी जगली थे—घोर अज्ञानान्धकारमें डूबे हुए थे। उन्हें वैदिक आर्यो ने ही प्रथम प्रकाश दिया। वेली साहबका विचार है कि 'ईसाके हजारो वर्ष पूर्व आर्य (हिन्दू) वैज्ञानिक ग्रह-गणना करते थे।' फ्रेंच विद्वान् लाप्लासका मत है कि 'ईसाके ३०० वर्ष पहले हिन्दू ग्रहोका स्थान १" (१ विकला) तक निकाल लेते थे।' प्लेफेयर भी इस मतसे सहमत है।

प्रसिद्ध विद्वान् कोलब्रूकने लिखा है कि 'क्रान्ति-मण्डल और पृथिवीकी अयनाशगतिके आदि जनक आर्य या हिन्दू है।'

चतुर्विंश अध्याय

वैदिक राष्ट्रकी रूप-रेखा

यो तो साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि शब्द वैदिक साहित्य की ही देन है; परन्तु उसकी सबसे बडी देन 'राष्ट्र' शब्द है। वैदिक ग्रन्थोमे राष्ट्र शब्दका अत्यधिक उल्लेख है। स्वय ऋग्वेदमे यह शब्द अनेकानेक बार आया है। इस शब्दमे आर्योकी बडी भावना, बडी मार्मिकता और प्रोज्ज्वल अनुभूति निबद्ध है। इस शब्दमे देश, 'राज्य', जाति और सस्कृति निहित है।

राष्ट्रके अभ्युदयके लिये आर्य अपना सर्वस्व देनेके लिये तैयार रहते थे और राष्ट्रकी रक्षाके लिये अपने प्राणतकका हवन करनेको आर्य सदा सन्नद्ध रहते थे। उनकी प्रवल अभिलाषा थी—'वरुण राष्ट्रको अविचल करे, बृहस्पति राष्ट्रको स्थिर करे, इन्द्र राष्ट्रको सुदृढ करे और अग्निदेव राष्ट्रको निश्चल रूपसे धारण करे'—

"ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥"

ऋग्वेद १०.१७३.५

आर्योकी एकमात्र यही कामना थी—

" आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।"

यजुर्वेद २२.२२

(हमारे राष्ट्रमे क्षत्रिय वीर, धनुर्धर, लक्ष्यवेधी और महारथी हो।)

आर्योकी उत्कट उत्कण्ठा थी—

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।" यजुर्वेद ९.२३

(अपने राष्ट्रमें नेता बनकर हम जागरण-शील रहें।) आर्योंका दृढ विश्वास था–

"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।"

अथर्ववेद ५.१.७

(ब्रह्मचर्य-रूप तपके ही बलसे राजा राष्ट्रकी रक्षा कर सकता है।)

वैदिक साहित्यसे लेकर स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्रतकमें 'राष्ट्र'की महत्ता बतायी गयी है।

आर्य इस शब्दके इतने प्रेमी थे कि उन्होंने इसे विदेशोंतकमें प्रचार द्वारा पहुँचाया। इन दिनों श्याम (थाईलैंड) के बच्चे तक अपनी थाई भाषा में, बड़े प्रेम और श्रद्धासे, राष्ट्र, राष्ट्रपाल, राष्ट्रमन्त्री, सहराष्ट्र, सुराष्ट्र, प्रजाराष्ट्र आदि शब्दोंका व्यवहार किया करते हैं।

यह कहा जा चुका है कि राष्ट्र-रक्षाके लिये आर्य प्राणतक देनेको उद्यत रहते थे। आर्य-प्रजा राजासे बार-बार यही आग्रह करती थी–

"अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति॥"

ऋग्वेद १०.१७४.२

(जो विपक्षी हैं, जो हमारे हिंसक शत्रु हैं, जो सेना लेकर हमारे राष्ट्र में युद्ध करनेको आते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, राजन्, उन्हें अभिभूत करो।)

अभिषेक कर लेनेके अनन्तर राजासे आर्य कहते थे–

"आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥"

ऋग्वेद १०.१७३.१

(राजन्, तुम्हें राष्ट्रपति बनाया गया। तुम इस देशके प्रभु हुए हो। अटल, अविचल और स्थिर रहो। प्रजा (विश्) तुम्हें चाहे। तुम्हारा राष्ट्र नष्ट न होने पावे।)

"इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्रा इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय॥"

ऋग्वेद १०.१७३.२

(तुम यही पर्वतके समान अविचल होकर रहो। राज्यच्युत नही होना। इन्द्रके सदृश निश्चल होकर यहा रहो। यहा राष्ट्रको धारण करो।)

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥"

अथर्ववेद १२.१.५४

(मै अपनी मातृभूमिके लिये और उसके दुःख-विमोचनके लिये सव प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूँ—वे कष्ट जिस ओरसे आवे, चाहे जिस समय आवे, मुझे चिन्ता नही।)

"यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि ज्रूतिमानवान्यान् हन्मि दोहतः॥"

अथर्ववेद १२.१.५८

(अपनी मातृभूमिके सम्वन्धमे जो कहता हूँ, वह उसकी सहायताके लिये है। मैं ज्योति पूर्ण, वर्चस्वशाली और वुद्धियुक्त होकर मातृभूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओंका विनाश करता हूँ।)

ऋग्वेद, १०म मण्डल, १७३ वे सूक्तसे तथा अथर्ववेदके ३ ५ ६ और ६ ८७ १ से स्पष्ट विदित होता है कि राजा वा राष्ट्रपतिका चुनाव होता था, कोई जन्मना राजा कदाचित् ही होता था। अथर्वके ३ ४ से ज्ञात होता है कि प्रजाके विरुद्ध राजा राज्य नही कर सकता था और मनमानी करने पर राजा पद-च्युत कर दिया जाता था। अथर्वके एक मन्त्र (३.३ ६) से यह भी विदित होता है कि राष्ट्र-सभाके वहुमतके अनुसार ही राजाका निर्वाचन होता था।

वैदिक साहित्यमे जनताको विश (विश्का वहुवचन) कहा जाता था। जनता ही अपनेमेंसे योग्यतम व्यक्तिको राजा चुनती थी, जिसे

मन्त्रोमें 'विश्पति' कहा गया है। यूरोपीय वेदाभ्यासी कहते है कि 'विश अपनेको सजात मानते थे और अपने राजाको पितामहकी तरह। आर्योकी राज्य-संस्था पितामह-तन्त्र (Patriarchal) ही थी।' परन्तु वैदिक राज्य-व्यवस्थाके अनेक रूप थे, जिन्हें आगे लिखा जायगा। केवल पितामह-तन्त्रके प्रचलनका कोई ठोस प्रमाण नही है। जनताकी प्रत्येक टुकडी 'ग्राम' कहलाती थी। ग्रामका अर्थ समुदाय है। प्रत्येक ग्रामका सामाजिक सघटन था। ग्रामका नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। अपने ऊपर विपत्ति आनेपर अर्थात् अपनी रक्षाके लिये वा आक्रमणके लिये विश.के विविध ग्राम एकत्र होते थे। इसी एकत्रीकरणका नाम "सग्राम" पडा। पीछे यही "सग्राम" युद्धके अर्थमें रूढ हो गया।

सग्राममें स्थल-सेना और रथारोहिणी सेना होती थी। पदातिक अपना अपना शस्त्रास्त्र लाते थे। रथी अपने रथपर आते थे। धनुष्, वाण, भाला, वरछा, कृपाण, फरसा, मुद्गर आदिका युद्धमे वाहुल्य रहता था। योद्धा सोने और लोहेके कवच पहनकर रण-भूमिमे उतरते थे। वाणोकी अनी (शल्य) धातुकी होती थी। विषधर वाण भी कभी-कभी काममें लाये जाते थे। धनुर्वाणके आर्य वडे प्रशसक थे। यजुर्वेद (२६ ३६) मे कहा गया है—

'धनुष्से हम गौएँ जीते, धनुष्से युद्ध जीतें, धनुष्से तीक्ष्ण समर जीतें। धनुष् शत्रुकी कामनाएँ कुचलता है। धनुष्से हम सारी दिशाएँ जीत डालें।'

ठीक इसी आशयका मन्त्र ऋग्वेद, ६ मण्डल, ७५ सूक्तका दूसरा मन्त्र भी है। इस ७५ वे सूक्तके १६ मन्त्रोमे रणागणका और शस्त्रास्त्रोका वडा साहसिक और मार्मिक वर्णन है। ५ वा मन्त्र कहता है—

'यह तूणीर अनेक वाणोका पिता है। कितने ही वाण इसके पुत्र है। वाण निकालनेके समय यह तूणीर 'चिश्चा' शब्द करता है। यह योद्धा के पृष्ठ-देशमें निवद्ध रहकर युद्धकालमें वाणोका प्रसव करता हुआ सारी सेनाको जीत डालता है।'

७ वा मन्त्र ऐसा विवरण देता है–

'घोड़े टापोसे धूलि उडाते हुए और रथके साथ सवेग जाते हुए हिन-हिनाते हैं। घोडे पलायन न करके हिंसक शत्रुओको टापोसे पीटते हैं।'

'वाण शोभन पख धारण करता है। इसके दात मृग-शृग है। यह ज्या वा तातसे भली भाति बद्ध है। यह प्रेरित होकर पतित होता है।' (११ वा मन्त्र)।

'वाण, हमे परिवर्द्धित करो। हमारा शरीर पाषाणकी तरह हो।' (१२ वा मन्त्र)

'कशा (चावुक), ज्ञानी सारथि तुम्हारे द्वारा अश्वोके ऊरु और जघन मे मारते है। सग्राममे तुम अश्वोको प्रेरित करो।' (१३ वा मन्त्र)

'हस्तघ्न' (ज्याके आघातसे हाथको बजानेके लिये वँधा हुआ चर्म) ज्याके आघातका निवारण करता हुआ सर्पकी तरह शरीरके द्वारा प्रकोष्ठ (जानुसे मणिबन्धतक) को परिवेष्टित करता है, सारे ज्ञातव्य विषयोको जानता है और पौरुषशाली होकर चारो ओरसे रक्षा करता है।' (१४ वा मन्त्र)

'जो विषाक्त है, जिसका अग्रभाग हिंसक और जिसका मुख लौहमय है, उस वाण-देवताको नमस्कार।' (१५ वा मन्त्र)

'मन्त्र द्वारा तेज किये गये और हिंसा-परायण वाण, तुम छोडे जाकर गिरो, जाओ ओर शत्रुओपर पड जाओ। किसी भी शत्रुको जीते-जी नही छोडना।' (१६ वा मन्त्र)

यह सारा सूक्त देखनेपर आर्योकी समरभूमिकी सारी 'भूमिका' सामने नाचने लगती है। इस सग्रामका नेता राजा होता था। पहले ही मन्त्रमे कहा गया है–

'युद्ध छिड जानेपर राजा जिस समय लौहमय कवच पहनकर जाता है, उस समय मालूम पडता है कि वह साक्षात् मेघ है।'

समूचा सूक्त पढ जानेपर आर्य-जीवनकी एक मार्मिक झाकी मिलती है। यह सूक्त कण्ठस्थ करने योग्य है। वस्तुत यह समस्त सूक्त युद्ध-भूमिका वीर-गान है, प्रत्येक मन्त्रमे योद्धा अपने शस्त्रसे बातें करता और प्रेरणा प्राप्त करता है।

आर्योमे आपसमें तो वहुत कम, परन्तु दासो और दस्युओके साथ वहुत युद्ध होते थे। दास अनार्य और जगली थे। वे काले (कृष्णत्वक्) और चिपटी नाकवाले (अनास., निनीसा.) थे। उनकी वोली भी 'अव्यक्त' होती थी। आर्य गोरे रग, उभरे माथे, नुकीली नाक और स्पष्ट ठोडीके थे। आर्य-अनार्य-युद्धको ही कुछ लोग "देवासुर-सग्राम" कहते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि राजाको विश वा जनता चुनती थी। परन्तु कभी-कभी राजाके उत्तराधिकारी भी राजा वनाये जाते थे। ऐसे लोगोकी राजा वननेकी विधिवत् स्वीकृति विश ही देते थे। इनकी स्वीकृति वा 'वरण' होनेके वाद ही किसी भी राजाका अभिषेक होता था और वह राज-पदका अधिकारी होता था। 'वरण'के बाद राजा देशकी रक्षा और अभ्युदय करनेके लिये 'प्रतिज्ञा' करता था। इस प्रतिज्ञाके विपरीत आचरण करनेपर राजाको पद-च्युत कर दिया जाता था। राजा को राज्यके रूपमे थाती सौपी जाती थी।

विश की एक समिति होती थी, जिसके हाथमें राज्यकी वागडोर रहती थी। समिति चाहे जैसे राजाको नचाती थी। समितिका असन्तोष राजाके लिये काल था। वस्तुत राजाका चुनाव, पद-च्युति, पुनर्वरण आदि समिति ही करती थी। राज्यके सारे प्रश्नोपर विचार करना वा निर्णय करना और राज्यकी नीति स्थिर करना समितिके ही काम थे। राजनीतिके अतिरिक्त सामाजिक और अन्य सामुदायिक विषयोका भी विवेचन समिति करती थी। समितिका सारा विवाद बड़ी ही शान्तिके

साथ होता था। प्रत्येक सदस्य अपना मत देनेमे स्वतन्त्र था। हा, वक्ता लोग अपने वाक्पाटवसे सदस्योको अपनी ओर मिलानेकी पूरी चेष्टा करते थे। समितिका एक 'पति' ('**ईशान**') होता था। राजा भी समिति मे जाता था।

समितिमे ग्रामणी, सूत (सारथि), रथकार और कर्मकार (हथियार बनानेवाले) अवश्य रहते थे। समितिके आधार ग्राम थे। समितिमें प्रत्येक ग्रामका प्रतिनिधित्व रहता था या प्रत्येक ग्रामके सभी वयस्क रहते थे, इसका ठीक-ठीक उल्लेख नही मिलता।

समितिके सिवा '**सभा**' नामकी सस्था भी थी। कदाचित् सभा कुछ चुने हुए लोगोकी छोटी-सी सस्था थी और समिति सभी विश की सस्था थी। कुछ लोगोका मत है कि सभा प्रत्येक ग्रामके लोगोकी सस्था थी। सभामे वृद्ध, युवा—सभी होते थे। अन्य कार्योके अतिरिक्त सभामें मनोरजनकी बाते भी होती थी—यह गोष्ठीका भी काम देती थी। पशु-पालनकी चर्चा सभाका विशेष कार्य था। न्यायालयका कार्य भी सभा ही करती थी।

इन दोनोंके अतिरिक्त युद्धार्थ 'सेना' रहती थी। देश-रक्षाका कार्य विशेषत. इसीके जिम्मे था।

'**विदथ**' नामकी एक चौथी सस्था भी थी, जो यज्ञ-यागादि-विषयक शुद्ध धार्मिक सस्था थी।

राजाका अभिषेक-सम्बन्धी क्रिया-कलाप वडा विशद होता था। राजा को राजा वनानेवाले ('**राजानो राजकृतः**') मुख्य राज्याधिकारी पुरोहित, सेनापति और ग्रामणी आदि थे। अभिषेकके समय सूत, रथकार, कर्मकार, ग्रामणी, पुरोहित, सेनापति आदि एकत्र होकर राजाको पलाश वृक्षकी एक शाखा देते थे। शाखाका नाम '**पर्ण**' और '**मणि**' था। यही राज्यकी थातीका साकेतिक चिन्ह था। 'मणि' देनेवाले '**रत्नी**' कहलाते थे। भात्री

राजा राजसूय-यज्ञ करता था, जिसमे प्रजाके प्रतिनिधि 'रत्नियो'की पूजा करता था। पश्चात् 'पृथ्वी माता'से अनुमति मागता था। अभिषेक मिश्रित जलसे किया जाता था। गगा, सरस्वती आदि नदियो और राजाके अपने ग्रामके एक जलाशयका जल मिलानेसे मिश्रित जल कहलाता था। अनन्तर राजाको किरीट, मुकुट आदि पहनाये जाते थे। सभी कार्योके वेद-मन्त्रोसे सम्पन्न हो जानेपर अभिषेक हो जानेकी घोषणा ('आवित्') की जाती थी।

अन्तको राजा प्रतिज्ञा करता था कि "यदि मैं प्रजाका द्रोह करूँ, तो अपने जीवन, अपने पुण्य-फल, अपनी सन्तान आदि-सबसे वचित किया जाऊँ।" शपथके अनन्तर बाघकी छाल बिछाये हुए तख्तपर राजा चढता था और पुरोहित उसके ऊपर मन्त्राभिषिक्त जल छिडकते हुए कहते थे—"देवताओ, अमुक बापके बेटे और अमुक विश के अमुक राजाको-राज-शक्ति ('क्षत्र') के लिये दृढ बनाओ और जन-राज्यके लिये इसे शत्रु-रहित करो।"

पुन पुरोहित राजासे कहते—'यह राज्य तुम्हे कृषिके लिये, रक्षा ('क्षेम') के लिये, समृद्धिके लिये और पुष्टिके लिये दिया गया। तुम इसके सचालक ('यन्ता'), नियामक ('यमन') और ध्रुव धारण-कर्त्ता हो।' इसके बाद ही राज्यकी उक्त थाती राजाको सौंपी जाती थी।

पश्चात् राजाकी पीठपर दण्डसे हल्की चोट की जाती थी। यह इसलिये कि 'राजा भी दण्डसे रहित नही है।' अनेक छोटी छोटी क्रियाएँ भी होती थी। अनन्तर राजा पृथ्वी माताको नमस्कार करता और राजाको अन्य सब नमस्कार करते थे। सर्वान्तमे राजाको तलवार दी जाती थी और वह सबके सामने तलवारको फिराकर सबका सहयोग मागता था।

इस अभिषेकके द्वारा राजाके ऊपर एक बडा उत्तरदायित्व पडता था, जिसे निभानेके लिये राजा विश से 'कर' लेनेका अधिकारी हो जाता था।

परन्तु सर्वत्र और सदा राजा ही 'विश्पति' वा 'विशापति' नही होता था। अनेक बार अनेक जन-राज्योका शासन उक्त समिति करती थी।

ब्राह्मण-ग्रन्थमे इन आठ प्रकारके राज्योका उल्लेख है–

"स्वस्ति। साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयं, समन्तपर्यायी स्यात्; सार्वभौमः सार्वायुषः आन्ताद् आपराद्धात्; पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराड् इति।"

(ऐतरेय-ब्राह्मण, ८ अध्याय)

१ इनमे पहला **साम्राज्य** है। वर्तमान साम्राज्यसे यह वहुत भिन्न था। अत्याचार और अन्यायको मिटानेके लिये दूसरोको आर्य लोग अवश्य परास्त करते थे। परास्त करके वहाके किसी योग्यतम पुरुपको राज्य सौपकर उसे माण्डलिक बना लेते थे। साथ ही अपना विधान भी वहा लागू कर देते थे। वस, इतना ही आर्योका साम्राज्य था। वे न तो पराजित राज्यको लूटते थे, न आग लगाते थे। रामचन्द्रजीने भी अत्याचारी रावण को पराजित किया था, परन्तु लकाका लूटना और आग लगाना तो दूर रहे, लकाके भीतर रामजी गये तक नही! विभीषणको माण्डलिक राजा वनाकर और आर्य-विधान देकर अयोध्या चले आये।

२ दूसरा **भौज्य** था। यह प्राकृतिक सीमावाला होता था। जैसे इन दिनों ब्रिटेन है। वह चारो ओरसे जलसे घिरा हुआ है। भौज्यमे यह नियम था कि 'प्राकृतिक सीमामे वँधे हुए देशके ऊपर ही शासक राज्य करे, दूसरो पर आक्रमण न करे।' भारत भी भौज्य था; परन्तु पाकिस्तान वन जानेके कारण ऐसा नही रहा। भारतके शासक दूसरे देशकी केवल वलसे नही, धर्मसे विजय करते थे। विजित देशके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था, जैसा श्रीरामजीने लकाके प्रति किया था।

३ तीसरा **स्वाराज्य** या **स्वराज्य** था। इसमे आत्मशुद्धिपर विशेष जोर दिया जाता था। यम, नियमका पालन निष्काम होकर करना पडता था। वैदिक स्वराज्यमे अधिकार और राज्य-प्रसारकी वासना नही थी—चोरवाजारी, भ्रष्टाचारका तो नामतक नही था।

४ चौथे **वैराज्यमे** राजा नही रहता था। सारी जाति मिलकर नियम बनाती और शासन करती थी। यह शासन एक छोटेसे दायरेमे ही चल सकता था। इसमे कोई एक विशेष पुरुष शासन-भार नही सभालता था।

५ पाचवे **पारमेष्ठ्य राज्यका** तात्पर्य परमेश्वर-राज्यसे है। इसे ही इन दिनो राम-राज्य कहा जा रहा है। इसमे मानवीय दोषोका सुधार किया जाता है। सबको परमेश्वरकी समान सन्तान मानकर सबको समानाधिकार दिया जाता है। परमेश्वरको सर्वत्र सतत उपस्थित मानकर शासक शासन करते है। इसलिये इसे आदर्श राज्य माना जाता है। इसमे दोप आनेकी कम सम्भावना रहती है।

६ **महाराज्यमे** कई छोटे-छोटे राज्य मिले होते थे। यह सघ-राज्य की तरह था। यथेष्ट शक्तिशाली होता था। सभी सम्मिलित होकर शासन-विधान बनाते थे, शासनमे सभी लघु राज्योका समान अधिकार रहता था।

७ सातवा **आधिपत्यमय** राज्य था। अधिपति ही इसमे सर्वेसर्वा था। उसीके बनाये नियम इसमे चलते थे। राजकर्मचारियोकी विशेष शक्ति रहती थी। परन्तु आजकलकी दुनियामे फैली नौकरशाही वा 'ब्यूरोक्रसी'से यह राज्य भिन्न था। इसमें ऐसे दोप नही आ सके थे।

८ अन्तिम आठवा **समन्तपर्यायी** राज्य कहा गया है। 'सामन्त' माण्डलिक राजाओको कहा जाता है। किसी बडे शासकके अधीन माण्डलिक होते है। कई सूर्यवशी शासको (भरत, राम आदि) के अधीन सामन्त-राज्य थे, परन्तु मध्ययुगीन सामन्त-राज्योसे वे भिन्न थे। उनमे निरकुशता नही थी।

इन आठो राज्योके रहते भी वैदिक आर्योका प्रख्यात और प्रिय राज्य 'जन-राज्य' वा 'गण-राज्य' (Republic) ही था। इसे जान-राज्य भी कहा जाता था। यह राज्य सर्व-सम्मति वा बहु-मत

से सचालित राज्य था। इसका विवरण हम पहले दे आये हैं। इसीके लिये ऋषि और विश. लालायित रहते थे–

"व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।" ऋग्वेद ५.६६.६

(सुविस्तीर्ण और बहुमतसे रक्षित स्वराज्य (अपने राज्य) की भलाईके लिये हम यत्न करते रहेंगे।)

पञ्चविंश अध्याय

वैदिक संस्कृतिकी व्यापकता

"इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स" (भाग ७, जिल्द २) में किंग साहबने लिखा है—'प्राचीन पोलिनेशियन गाथाओंमें वैदिक भावोंका आभास मिलता है। स्वर्ग-नरक, पृथ्वी-आकाश और लोक-परलोकके सम्बन्धमें पोलिनेशियावालोंके विचार पढ़नेसे ज्ञात होता है, मानो वहांके द्वीप-द्वीपसे प्रशान्त महासागरके जलमें वैदिक मन्त्र प्रति-ध्वनित हो रहे हैं।' डा० रैंडीने भी अपने "पोलिनेशियन रिलिजन"में पोलिनेशियाकी कितनी ही गाथाओंका अनुवाद करके दिखाया है कि उनमें वैदिक भावोंसे कितनी समानता है।

इतना ही नहीं, जिन बेबीलोनिया और चाल्डियासे वेदोंमें 'उधार' शब्द आनेकी बात कही जाती है, वे भी वैदिक संस्कृतिके प्रभावके नीचे थे। बेबीलोनिया (बाबिलन)को आर्य लोग बभ्रु कहते थे और बेबीलोनि-यनको बाभ्रव्य। अपने "Aryan witness" में रेवरेण्ड के० एम० बनर्जीने सिद्ध किया है कि 'ऋग्वेदका 'बल' (असुर) ही बेबीलोनियाका बेल था'—यह बात पहले भी लिखी गयी है। पहले यह भी कहा गया है कि चाल्डियावालोंके अपने देश (मेसोपोटामिया)के बोगाजकूई नामक स्थानमें जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता ह्यूगो विन्करने खोदाई करायी थी। इस उत्खननमें उन्हें एक ऐसा अभिलेख मिला था, जिसमें 'मित्तनी' और 'हिताइत' नामकी दो जातियोंने एक ऐसा सन्धिपत्र लिखा था, जिसमें इन्द्र, वरुण, अर्यमा, पूषा आदि वैदिक देवताओंको साक्षी माना गया है। इस अभिलेख ('वा शिलालेख') का काल उन्होंने १५०० बी० सी० अर्थात्

ईसासे डेढ हजार वर्ष पहले माना है। इसका निष्कर्ष यह है कि आजसे साढे तीन हजार वर्षसे भी पहले चाल्डिया ही क्यो, सारा मध्य एशिया वैदिक सस्कृतिका शिष्य था,अनुयायी था, ऋणी था और वहाकी प्रतिष्ठित जातिया वैदिक धर्मके सामने सिर झुकाती थी। वहाकी फिनिशियन जाति (जिसे आर्य 'पणि' कहते थे) वरुणकी परम भक्त थी—उनके घर-घरमे वरुण-पूजा होती थी। हिन्दूकुश, काकेशस, ईरान, यूरोप आदिमे भी हिन्दू सस्कृतिके चिह्न पाये जाते हैं और हिन्दूधर्मका प्रभाव देखा जाता है।

थियासाफिकल सोसाइटीकी जन्मदात्री मैडम ब्लावस्कीने तो स्पष्ट ही लिखा है कि 'आर्यधर्म ससारका आदि धर्म है। ऋषि लोग भी इस धर्मके प्रचारक थे, प्रवर्त्तक नही। इसीसे क्रमश पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमानधर्म (इस्लाम) निकले हैं।' विश्व-प्रसिद्ध लेखक रोमाँ रोलांने तो बडी दृढताके साथ लिखा है—'मैंने यूरोप और एशियाके सभी धर्मोंका अध्ययन किया है; परन्तु उन सबमे मुझे हिन्दूधर्म ही श्रेष्ठ दिखाई दिया। मेरा विश्वास है कि एक दिन इसके सामने संसारको सिर झुकाना होगा।'

धर्मसे लेकर सस्कृतिके प्रत्येक क्षेत्रमे निष्पक्ष विदेशियोने हिन्दुओका लोहा माना है। पोलैंडकी विदुषी दिनोवास्काने लिखा है—'गहराईमें पैठा हुआ समस्त प्राणियोका एकात्म-बोध हिन्दुओमे लक्षित होता है।' आठवी सदीका प्रसिद्ध विद्वान् 'अलजहीम' हिन्दू संस्कृतिपर मुग्ध है। उसने लिखा है—'ध्यानकी प्रणालीका जन्म हिन्दुओने ही दिया है। ज्यौतिष, गणित, आयुर्वेद और अन्य विद्याओमे हिन्दू बढे हुए है। प्रतिमा-निर्माण, चित्र-लेखन, वास्तुकला आदिको हिन्दुओने पूर्णता तक पहुँचा दिया है। उनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा नैतिक शास्त्रोका सग्रह है।'

ससारके प्राचीन धर्मोपर हिन्दूधर्मके प्रभावकी बाते पहले सप्रमाण लिखी जा चुकी है। यहा अधिक उद्धरण देनेका न तो स्थल है और न आवश्यकता ही। मुख्य बात यह है कि भारतसे पश्चिमके देशोसे भी अधिक भारतसे पूर्वके देश श्याम, मलाया, मलक्का, हिन्दचीन, कम्बोडिया, जावा,

वाली, सुमात्रा, फिलीपाइन, चीन, जापान तथा अमेरिकामे वैदिक धर्म और सस्कृतिके अनेकानेक प्रामाणिक चिन्ह पाये जाते है। किसी-किसी देशमें तो भारतके किसी-किसी प्रान्त (वा राज्य) से भी अधिक वैदिक सस्कृतिके चिन्ह पाये जाते है।

रैगोजिनने लिखा है–"ऋग्वेदका समाज वडी सादगी (निष्कपटता) और सुन्दरताका था।" इसी सादगी-सुन्दरताका दान देकर आर्योको विश्व को आदर्श बनाना था। उनका सिद्धान्त ही था–"कृणुध्व विश्वमार्यम्" (ससारको उच्च-गुण-सम्पन्न = आर्य बनाओ)। इसी सिद्धान्तके अनुसार आर्योने विश्वमें अपनी सस्कृतिका प्रचार किया था। वैदिक सस्कृति, आर्य-सस्कृति अथवा हिन्दू सस्कृतिका पूर्ण विकास वेदोसे लेकर तन्त्रशास्त्र और उपपुराण तक हुआ है। सारी परम्परा वेदोके आधारपर है। कुछ वेद-भक्तोके मतसे वैदिक साहित्यसे भिन्न सस्कृत-वाड्मयके किसी भी ग्रन्थमें कोई भी सस्कृति नही है।

वर्मा और लका तो कभी भारतके ही अग थे। इन दोनो देशोमे सदासे हिन्दू रहते आये है और सदा वैदिक सस्कृतिका प्रचार रहा है। इनमें अनेकानेक प्राचीन चिन्ह तो है ही, अवतक भी वैदिक देवोके मन्दिरादि वनते रहते है।

श्याम (थाईलैण्ड)मे कल्पसूत्रोके विधानानुसार १२–१३ वर्षकी उम्रमें प्रत्येक वालकका शिखा-मुण्डन होता है—इस सस्कारसे वहाके मुसल-मानोके बच्चे भी नही बचने पाते। राजाके राज्याभिषेकके अवसरपर गायत्री-मन्त्रका पाठ किया जाता है, राजा भी इसका उच्चारण करता है। राजा भरतकी तरह खडाऊँ लेकर राज्य करता है। हवन-यज्ञ भी होता है। इस देशका प्राचीन नाम द्वारावती है। यहाके सभी राजा श्रीरामचन्द्र के अवतार माने जाते है। प्रत्येक राजाके नामके साथ प्राय 'राम' शब्द रहता है। छठे रामने 'अयुधिया' (अयोध्या) नामकी राजधानी स्थापित की थी। उत्तरी श्याममे 'लवपुरी' आजतक है। यहाके मन्दिरोमें ऋषियो,

विष्णु और लक्ष्मीकी मूर्तिया है। 'सुखोदय' और 'स्वर्गलोक' नामके नगरोमे सुन्दर मन्दिर है। गायत्रीके अवलम्बपर जिस बाल्मीकि रामायण-की रचना की गयी है, उसके दृश्य श्यामकी वर्त्तमान राजधानी (बैंकक) के बौद्ध विहारके चादीके फाटकपर अकित है। रामायणकी कथाका यथेष्ट प्रचार भी है।

श्यामकी थाई भाषामे प्रतिशत ५० शब्द सस्कृतके है। इन शब्दोके पर्यायवाची थाई शब्द भी नही है। पारिभाषिक शब्द केवल सस्कृतके है। स्त्री-पुरुषोके तो सस्कृत नाम है ही, नगरो और सडको तकके नाम सस्कृत मे है। नगरोके नाम है 'सुराष्ट्रधानी', इन्द्रपुरी, प्राचीन पुरी आदि। परस्पर साक्षात्कार होनेपर एक दूसरेको हाथ जोडकर 'स्वस्ति' कहता है। विवाहको स्वयवर कहा जाता है और विवाहमे जलाभिषेक और मन्त्रो-च्चारण किया जाता है। यहाके लोग कथाको 'कथा', व्याख्यानको 'सुन्दर वचन', मृत्युको 'दिवंगत' और शवको 'शव' कहते है। दाह-सस्कार भी किया जाता है। यहाके "विविधभाण्डार-स्थान" (अजायबघर) मे हजार —एक मतसे दो हजार वर्षोकी भारतीय वस्तुएँ रखी है। यहा प्राय. सभी शिल्पी होते है। शिल्प-विभागका चिन्ह गणेशकी मूर्ति है। अभी थोड़े दिन हुए यहाके "शिल्पाकरण-नाट्यशाला" मे सावित्री-सत्यवान्का नाटक खेला गया था। इसी वर्ष बैंकक विश्वविद्यालयसे १०० छात्र सस्कृत लेकर पास हुए है। इनमे ५० छात्राए है।

श्याममे रामायणका नाम 'रामकीर्ति' है। राम-लीला भारतसे भी यहा अधिक प्रिय है। स्थान-स्थानपर रामलीलाकी धूम मचा करती है। यहाके विधानका आधार मनुस्मृति है, जिसे 'रथ्य मनु' कहा जाता है। पातिव्रत्य धर्मपर लोगोका दृढ विश्वास है। यहाके लोगोका अटल विश्वास है कि सीताजीके शरीरसे पातिव्रत्य-रूपी आगका गोला निकला करता था, इसीसे रावण उन्हे छू नही सका! बहुत तो श्याममे ही रामावतार का होना भी मानते है! श्यामके जगी लाटके सुपुत्र अमेरिका और यूरोपमे

एम० ए०, पी-एच० डी० करनेके पश्चात् वौद्ध भिक्षु हो गये थे। इस आश्रमका उनका नाम था **डा० धम्मरक्खित एम० ए०, पी-एच० डी०।** इन पक्तियोके लेखकसे आपका एक सप्ताहतक साथ था। डा० धम्मरक्खित वरावर कहा करते थे कि 'रामावतार और तेईस वुद्धावतार श्याममें ही हुए थे ! केवल वुद्धका चौवीसवा अवतार ही कपिलवस्तु (जि० वस्ती) मे हुआ था।' इसमें सन्देह नही कि पाचवी शताब्दीमे यहा वौद्ध धर्मका प्रचार हुआ और लाखो श्यामी वौद्ध हो गये।

इस विषयमे जिन्हे अधिक जानना हो, वे ग्राहमकी "**श्याम**" और स्वामी सदानन्दकी "**थाईलैंड**" (१६४१) नामक पुस्तके देखे।

मलायाका प्राचीन नाम '**मलय**' है। वायुपुराणमे मलयका उल्लेख है। यहा इन दिनो भी "'**श्रीथमरात**''मे वेद-भक्त ब्राह्मणोकी वस्तिया है। कैम्ब्रिजसे प्रकाशित अपनी रिपोर्ट (१६२७)में इवान्स साहवने लिखा है, "यहाके निवासी हिन्दू है"। डा० वेल्सकी भी यही राय है। दूसरी शताब्दीसे लेकर छठी तक यहा सस्कृतका प्रचार था। पुराणोके कटह-द्वीपके नामपर यहा **कटाह-राज्य** स्थापित किया गया था। कटाह वा केडाह पहाडीपर एक मन्दिरमे दुर्गा, नन्दी, गणेश आदिकी बडी सुन्दर प्रतिमाएँ है। यहां भी रामायणका प्रचार है, परन्तु उसका नाम है "**हिकायत सेरीराम**"। वैदिक सस्कृतिके और चिह्न भी यहा अनेक है।

मलायाके पास ही **मलक्का** है। यह 'जावानीज' शव्द है, जिसका अर्थ है मिलनेका स्थान। विलकिसके मतसे यह भी हिन्दू-राज्य था। विन्सेटने १६३४ के "**मलायाके इतिहास**" मे लिखा है, "हिन्दू राज्यके समय यहा वैदिक धर्मका पूरा प्रचार था—विद्वानोका वडा सम्मान होता था।" पुर्तगाली लेखक अल्बुकर्कने लिखा है, 'यहाके राजाका नाम '**परमीसुरा**' (परमेश्वर) था।' चीनी लेखक हैयूके मतसे '१५३७ ई० तक यहाके लोग नागराक्षरोका ही प्रयोग करते थे।' अवतक **जेहोर** और **तेराकके** सुलतान अपने नामके आगे '**श्री**' लिखते है।

हिन्दचीनकी राजधानी अनामका प्राचीन नाम **चम्पा** है। इसके प्राचीन इतिहासमे लिखा है—'चम्पाके निवासी वानरोकी सन्तान है।' यहावाले रामायणकी सारी घटनाएँ चम्पामे ही हुई बताते है! इनके प्रथम राजा **श्रीराम** थे। इसके पश्चात् भद्रवर्मन, गगराज, देववर्मन, विजयवर्मन, रुद्रवर्मन, शम्भुवर्मन आदि हुए। अनन्तर भृगुवशका राज्य हुआ, जिसमे इन्द्रवर्मन नामका महाप्रतापी राजा था। इसने ही शिवलिगो की स्थापना करायी थी।

हिन्दचीनमे चौथी शताब्दीमे चार राज्य थे—कौठार, पाण्डुरग, विजय और इन्द्रपुरी (अमरावती)। डेढ हजार वर्षोतक यहा हिन्दुओका राज्य था। १५४३ से चम्पा परतन्त्रता-पाशमे बँधी।

यहा जो शिलालेख मिले है, उनसे ज्ञात होता है कि उपनिषद्की हैमवती उमा और महेश्वरकी उपासना यहा अत्यधिक प्रचलित थी। महेश्वरकी उपासना महादेव, पशुपति, शिव, देवलिगेश्वर, धर्मलिंगेश्वर आदि नामोसे की जाती थी। विष्णु, ब्रह्मा, गरुड़, वासुकि आदिका उल्लेख शिलालेखोमें है। इनकी पूजा भी की जाती थी। वरुण, अग्नि, यमराज, सूर्य आदि वैदिक देवोकी उपासना भी की जाती थी। यहाकी शिल्पकला भारतीय थी। चार वर्ण थे। विवाहमे वश और गोत्रका विचार किया जाता था। ब्रह्म-हत्याको महापातक माना जाता था। भाषा सस्कृतमयी थी।

हिन्दचीनमे इतस्तत ध्वस्त मन्दिर पाये जाते है। इन दिनो यहाके साहित्यमे रामायण, महाभारत, शिवपुराण, लिगपुराण आदिकी कथाएँ पायी जाती है। ७ वी शताब्दीमे यहा बौद्ध मतका प्रवेश हुआ। इस देशके सम्बन्धमे जो सज्जन अधिक जानना चाहे, वे डा० रमेशचन्द्र मजुमदारकी "चम्पा" पुस्तक देखे।

कम्बोडियाका प्राचीन नाम **कम्बोज** है। यहाके निवासी काम्बोज कहाते थे। मनुस्मृतिमे इन्हे कर्म-पतित क्षत्रिय कहा गया है। यहाके

प्राचीन इतिहासमे कहा गया है, 'कौण्डिन्यने कम्वोज आकर 'सोमा'से विवाह किया था, जिससे राजवश चला।' परन्तु "**वाकसेई चामक्रोम**" शिलालेखमे कहा गया है कि 'कम्वु नामके राजासे कम्बुज प्रजा उत्पन्न हुई है।' कम्वुजसे कम्वोज वना। दूसरीसे १४ वी शताब्दीतक यहा वैदिक सस्कृतिका वोलवाला था। १४ वी शतीतक हिन्दू-राज्य भी था। राजाओ की उपाधि वर्मा थी। यहा शिव और विष्णु, हर और हरि, दोनोकी उपासना की जाती थी। अकोर (प्राचीन यशोधरपुर)में एक ऐसा विष्णु-मन्दिर था, जिसकी परिखा ७०० फुट चौडी थी! चारो कोनोपर चार वुर्जे १८० फुट ऊँची थी। मन्दिरकी दीवारोपर अप्सराओ, देव-देवियोके चित्र थे। सस्कृतमें यहा कई शिलालेख भी मिले है। एकमे लिखा है— 'सोम शर्मा नामके ब्राह्मणने एक स्थानपर रामायण, महाभारत और पुराणोके प्रतिदिन पाठका प्रबन्ध किया था।' राजमहलमें अबतक इन्द्रकी तलवार रखी है, जिसका उत्सवोमे धूमधामसे जुलूस निकाला जाता है। यहा '**अकुरथोम**' नामका शैव और '**अकुरभट**' नामका वैष्णव मन्दिर है।

जावामें प्रम्बानम् और पानातरम् नामके विश्व-प्रसिद्ध मन्दिर है। इनपर महाभारत और रामायणके श्लोक अकित है। जावामे भी रामयण और रामलीलाका, विकृत रूपमे, प्रचार है। मुसलमान भी इसमें सम्मिलित होते है। जावा (हिन्देशिया) के वर्त्तमान राष्ट्रपति मुसलमान है, परन्तु उनकी स्त्रीका नाम पद्मावती है और पुत्रीका सत्यवती। जावाके सम्बन्धमें जिन्हे विशेष जानना हो, वे डा० कालीदास नागकी "Greater India" पुस्तक देख सकते है।

बाली-द्वीप छ सौ वर्ष पहले सोलहो आने आर्यद्वीप था। श्याम की ही तरह वहा वैदिक सस्कृतिका प्रचार था—वहुत कुछ अवतक है। विना अर्थ समझे भी अवतक वहाके लोग मत्र पढते है! गगा और सिन्धुके लिये दस-वारह स्तोत्र प्रचलित है। उनकी पूजा-विधि सनातनी पूजा-विधि से बहुत मिलती है। वे पूजाके समय वस्त्र-धारण, पाद-प्रक्षालन, आचमन,

अग-न्यास, करतल-न्यास, प्राणायाम आदि सब कुछ आर्य-रीति और आर्यमन्त्रोसे करते है। उनका शरीर-शुद्धिका मन्त्र है–"**ओं प्रसादस्थिति-शरीर-शिव-शुचि-निमलाय नमः**"। इस मन्त्रको वे "**मन्त्राणि शरीर**" कहते है। प्रत्येक अगपर भस्म-धारण भी करते है। उनका बीज-मन्त्र है, **अं उं मं**। यहा शैव और तान्त्रिक क्रियाएँ प्रचलित है। उनका इष्ट मन्त्र है–**ओं महादेवाय नमः** और **ओं शिवाय नमः**। उनकी दैनिक पूजा-विधि और पूजा-परिक्रमा देखने ही योग्य होती है। अभी भारतके प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरूके बाली जानेपर बालीके ब्राह्मणोने वेद-मन्त्र पढते हुए उनके मार्गमें पुष्प-वर्षा की थी। बालीमे वैदिक धर्म और सस्कृति के पुनर्जागरणके लिये स्व० प० सत्याचरण शास्त्री बालीमे बहुत दिन थे। उन्होंने बँगलामे बालीपर एक पुस्तक भी लिखी थी।

सुमात्राको बाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धा-काण्ड), महाभारत (वनपर्व) और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमे "**स्वर्णभूमि**" और "**सुवर्णद्वीप**" कहा गया है। यहा सोना निकलता भी है। ऐतिहासिकोने इसे सुवर्ण-द्वीप सिद्ध किया है। ७ वी शताब्दीसे १४ वी शतीतक यहा '**श्रीविजय-राज्य**' वा '**शैलेन्द्र-राज्य**'का शासन था। इसमे सारा हिन्देशिया तथा मलय और श्याम भी सम्मिलित थे। श्यामकी ही तरह यहा बहुत हिन्दू-मूर्तियां है और रामायण आदिका प्रचार भी है। यहा **इन्द्ररालय** (इन्द्रालय) नामका एक पर्वत भी है। इस द्वीपकी विस्तृत बाते जाननेके लिये डा० रमेशचन्द्र मजुमदारकी "**सुवर्ण-द्वीप**" पुस्तकका अध्ययन करना चाहिये।

फिलीपाइनमे पहली शताब्दीसे ही वैदिक संस्कृतिका प्रभाव पडा है। "फिलीपाइन मेगजिन" (१९२८) मे प्रो० बेयर साहबने लिखा है– "यहा रीति-रस्म, आभूषण आदिको देखते हुए मेरा दृढ मत है कि यहांकी सस्कृतिका मूल स्रोत भारत है।" प्रोफेसर क्रोवरका भी यही मत है। "पीपुल्स ऑव दि फिलीपाइन्स"मे स्वीकार किया गया है कि 'धार्मिक विचार, नाम, शब्द, लेखशैली, कला-कौशल—सबपर प्रत्यक्ष हिन्दू-प्रभाव

पड़ा है।' यहां भी ग्रहणका कारण राहु माना जाता है। दिनके पांच भाग माने जाते हैं--महेश्वर, काल, श्री, ब्रह्मा और विष्णु। यहांकी भाषा 'तगलाग'में संस्कृत-शब्दोंकी भरमार है। देव-मूर्तियां भी यत्र-तत्र पायी जाती हैं। डा० रायकी "फिलीपाइन और भारत" (१६३०)में फिली-पाइनपर वैदिक संस्कृतिके प्रभावकी विशेष विवृति है।

चीनका उल्लेख वाल्मीकि-रामायण (किष्किन्धा-काण्ड), महा-भारत (शान्तिपर्व, ६५ १३), विष्णुपुराण (१ ६ २१), मनुस्मृति, कौटिल्यके अर्थशास्त्र, शकुन्तला आदिमें है। भारतीय धर्म और संस्कृति का अध्ययन करनेके लिये १८७ चीनी यात्री समुद्रों, पर्वतों और विकट कन्दराओंको पार कर भारत आते रहे। इनमें १०५ का तो पूरा पता लग चुका है। ३७ तो आते-जाते ही मर गये। छः भारतमें मरे। भारतपर कुछ यात्रियोंने कुछ नहीं लिखा और कुछने लिखकर खो दिया। मूल ग्रन्थ तो इनमेंसे किसीका भी नहीं पाया जाता। कुछ ग्रन्थोंका मठोंसे उद्धार करके अंग्रेजीमें अनुवाद किया गया है। अनुवाद ही अब प्राप्य है। हुएन सांग, फाहियान, इत्सिंग, पाकु, फा ये, वां सिउ, सि तन शु, सु ग शी, ल्यु ह सु, तो केन तो, तु यु, चग चिन योके ग्रन्थानुवादोंमें भारतीय विवरण पाया जाता है।

यहांका प्राचीन मत ताओ-वाद है। ताओके विचार सोलहों आने अद्वैत वेदान्तसे मिलते हैं। महात्मा ताओका 'योकिंग' ग्रन्थ ३४६८ बी० सी० में बना माना जाता है। इसमें ठीक चार युगोंका वर्णन है। दूसरे महात्मा कनफूशस हो गये हैं, जो आर्योंकी ही तरह पितृ-पूजन, श्राद्ध, उपासना आदि मानते थे। मनुजीके "पिता रक्षति"के अनुसार चीनमें भी कुमारियोंकी रक्षा, विवाह आदि पिता ही करता है। डा० क्रीलने "The Birth of China" नामका एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'चीनी रीति-रस्मों और उपासनाओंमें वैदिक संस्कृतिकी झलक दिखाई देती है।' मन्त्रको चीनमें 'मण्डारिन'

कहा जाता है। यहा ईसासे दो सौ वर्ष पहले (२ री वी० सी० मे) वौद्ध मतका प्रचार हुआ। आज तो करोडो चीनी वौद्ध है।

जापानके सम्राट् सूर्य-पुत्र कहाते है। यहाका राज-धर्म और प्रतिष्ठित धर्म शिन्तो-वाद है। इसमे पितृ-पूजा और राजभक्ति आदि हिन्दू-प्रभावके द्योतक है। यहाके 'ईसी मन्दिर'मे गुरुकुलोकी तरह अरणि-मन्थनके द्वारा अग्नि उत्पन्न करके उसका पूजन किया जाता है। शिन्तो धर्ममे भी वैदिक अश्वमेध यज्ञकी तरह यज्ञका विधान है। जापानमे भी "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"पर दृढ विश्वास है। गोद लेनेकी भी प्रथा है। सरदारको समुराई (सामरिक) कहा जाता है।

अमेरिका—हिन्दू शब्द सिन्धु शब्दसे निकला है–यह वात प्राय॰ सभी देशी-विदेशी ऐतिहासिक मानते है। कुछ तो कहते है कि 'सिन्धु' शब्दसे भी हिन्दू शब्द प्राचीन है और अपनी विशिष्ट उच्चारण-प्रणालीके कारण आर्योने हिन्दूका उच्चारण सिन्धु कर डाला (वीर सावरकरका "हिन्दुत्व")। इस दृष्टिसे तो आर्य शब्दसे हिन्दू शब्द नवीनतर नही है। फलत हिन्दूधर्मका अर्थ वैदिक धर्म है और हिन्दूसस्कृतिका अर्थ वैदिक सस्कृति है।

"वैदिक सस्कृतिकी व्यापकता"का प्रमाण हिन्द महासागर, हिन्दू-कुश पर्वत, पूर्वी हिन्द द्वीप-समूह (हिन्देशिया आदि) और अमेरिकामे पश्चिमी हिन्द द्वीप-समूह (ट्रिनीडाड, जमैका, ब्रिटिश गायना आदि) है। पूर्वी हिन्द द्वीपोको अग्रेजीमे 'ईस्ट इडीज' और पश्चिमी हिन्द द्वीपो को 'वेस्ट इडीज' कहा जाता है। अमेरिकामे 'रेड इडियन' (लाल भारतीय) नामकी एक जाति है, जिसमे हमारी ही तरह अग्नि-संस्कार और सूर्य-पूजा प्रचलित है।

एक अज्ञात-नामा नाविकने "पेरिप्लस आव दि ईरिथ्रियन सी" नामकी दैनिक घटनावली लिखी है, जिसमें कहा गया है कि 'दो हजार वर्ष पहले समद्र-मार्गसे भारतीय ससारमे व्यापार करते थे।' इसी समुद्र-मार्गसे

आर्य अमेरिका पहुँचे थे। इसके बहुत पीछे कोलम्बस अमेरिका पहुँचा था। स्वय कोलम्बसने ही लिखा है—'अमेरिकामे हिन्दू और मगोलियन आकृतिके हजारो मनुष्य पाये जाते है। यहा हिन्दू-रीति-प्रथाएँ बहुत है। शिक्षा-प्रणाली हिन्दुओकी तरह है। अमेरिकामे गणेश, इन्द्र आदिकी पूजा होती है। पुरोहित-प्रथा भी है। हिन्दुओकी ही तरह विवाह-सस्कार और शव-दाहकी प्रथा है।'

अमेरिकाके मेक्सिकोमे पुनर्जन्म और आत्माकी अमरता मानी जाती थी। इन्द्र और यमलोकको भी मेक्सिकन मानते थे। दाह-क्रिया भी की जाती थी। हा, दाह-सस्कारमे सोमपायी वेद-ज्ञाता विप्रोके द्वारा दाह-विधि थी, जो लुप्त हो गयी है। सती-प्रथा थी। राजाके साथ अवश्य ही कुछ स्त्रिया जल जाती थी। जो नही जलती थी, वह हिन्दू विधवाओकी तरह रहती थी। पुत्रोत्पत्तिके समय देव-पूजन, अग्नि-सस्कार, नान्दीमुख-श्राद्ध आदि होते थे। ज्योतिषी भविष्य जीवनकी बाते बताते थे। अनन्तर नाम-करण होता था। ज्योतिषीके सम्बन्ध-विचारके पश्चात् लडके-लडकियोका विवाह मा-बाप करते थे। विवाहमे गठ-बन्धन होता था। स्त्रिया मा, बाप, भाईके साथ ही घरसे बाहर जा सकती थी। यह बात तो अबतक है। स्त्री अबध्य थी। पुरोहित ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषिक्त करता था, मुकुट पहनाता था और प्रजा-पालन आदिकी प्रतिज्ञा कराता था। मेक्सिकोकी प्रजा "आस्तिक" जातिकी कही जाती है।

मध्य अमेरिकाकी "माया" जातिमें भी प्राय ये सब बातें थी। इनमे गुरुकुलके समान शिक्षा प्रचलित थी। पुरोहित ही शिक्षक और गुरुकुलके सचालक थे। ब्राह्म मुहूर्त्तमे उठना, स्नान करना, अघमर्षण, अग्नि-रक्षण, यज्ञ, पुराण-पाठ आदि सब कुछ किये जाते थे। सामन्तोके लडके सामरिक विद्यापीठमे पढते थे। स्पेनके फ्रेडरिक टामसनने लिखा है—'यहाकी धर्म-भावना और असत्यसे घृणा देखकर चकित हूँ।' देवमन्दिर बहुत थे। देवदासी-प्रथा भी थी। देवदासिया एक ही बार भोजन करती थी। वे

अग्नि-रक्षण करती थी। यदि उनसे बाते करते कोई युवक पकड़ा जाता, तो उसे प्राण-दण्डकी सजा दी जाती थी!-अग्निमे अन्नाहुति करनेके वाद ही लोग भोजन करते थे। युद्धके पहले भी हवन किया जाता था।

दक्षिण अमेरिकाकी "इन्का" जातिमे भी बहुत कुछ ऐसी वाते थी। इस जातिके लोग हिन्दुओकी ही तरह पुनर्जन्म, वर्ण, जाति, आश्रम, ग्रहण लगनेपर स्नान, दान, मूर्त्तिपूजा आदि सब मानते थे। इनमे गणेश और नागकी पूजा भी प्रचलित थी। दक्षिण अमेरिकाके पेरू राज्यमे दतिया के सूर्यमन्दिरकी तरह देवोकी प्रतिमाएँ (शिवलिंग आदि) मिली है। यहाके लोग चार युग मानते थे। यहा कोई वेश्या नही थी।

इन सारी वातोको देखकर पोकोक साहवने अभिमत प्रकट किया है—'हमारी जातिके आनेके वहुत पहले अमेरिकामे भारतीय ऋषियोके भ्रमणके महान् वृत्तान्त निस्सदिग्ध और सत्य है।' जोन्स साहवने लिखा है—'पेरूमे सूर्यवशी राम सीतापति और कौशल्याके पुत्र माने जाते है। इनका जाति अपनेको इसी वशका मानती है और 'रामसीतोत्सव' मनाती है।' इन दिनो इसे 'रामसीतव' कहा जाता है। यह रामलीला ही है। इसमें राम-रावण-युद्ध होता है। "हिन्दू अमेरिका"के लेखक श्रीचमनलाल ने स्वय पेरूके 'चिलपनसिनको'मे इस 'रामसीतव'को देखा है। इस ग्रन्थ मे उक्त विषयोका विशद विवरण दिया गया है।

स्व० डा० एनी वेसेटके मतसे 'ग्रीसके मेसोडोनियामे ९००० वर्ष पहले वैदिक सस्कृति पहुँची थी।' ग्रीक और रोमन दर्शनोपर तो प्रत्यक्ष ही वैदिक हिन्दू-दर्शनोका प्रभाव पडा है। जर्मनीका राजकीय चिह्न वैदिक 'स्वस्तिक' है ही।

कर्नल टाडका कहना है, 'सम्राट् समुद्रराजने मिस्रमे राज्य स्थापित किया था।'

मास्कोमे भारतीय राजदूत डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने अभी कहा है कि 'मैने रूसके एक विश्वविद्यालयमे १७०३ मे छपे प्रथम रूसी समाचार-

षड्विंश अध्याय

वेद और अवस्ता

अनेक वेदज्ञाताओं और ऐतिहासिकोके मतसे आर्य और ईरानी एक ही जातिकी दो शाखाएँ है। दोनों ही अग्नि-पूजक है। दोनो ही गोरक्षक हैं। दोनोके ही धर्म-ग्रन्थोमे अनेकानेक शब्द, कुछ रूप बदलकर, आये हैं।

इससे भिन्न विचार रखनेवाले सज्जन कहते हैं कि 'ईरानी अनार्य हैं, दस्यु हैं और असुर-पूजक हैं। दोनोकी मान्यताओमे बड़ा भेद है। दोनो के धर्म-प्रचारको, परम्पराओ और धर्मोमे सदा तनातनी और शत्रुता रही है। एक इस पार है और एक उस पार।'

इस तरह दो मतवाद प्रचलित हैं। इन मतवादोपर शापुरजी कावसजी होडीवाला, शेहेरियारजी आदि तथा अनेक पाश्चात्त्य और पौरस्त्य विद्वानो ने बडा विचार किया है, कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं। अतीव सक्षेपमे दो-चार बाते यहा लिखी जायगी।

पहले कहा गया है कि जैसे आर्योका सर्वस्व वैदिक साहित्य है, वैसे ही ईरानियोका गाथा और अवस्ता हैं। अवस्ताका प्रकाशन "सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट" पुस्तक-मालामे, जेन्द टीकाके साथ, १८९५ ई०मे, डर्मेस्टर के द्वारा हुआ था। अवस्ताके २१ भागोमेसे दोको तो नशेमे आकर सिकन्दर ने नष्ट कर डाला और कुछको उसके कर्मचारी ग्रीस उठा ले गये। शेष भाग छपे हैं।

ईरानियोकी अहुनवद, वोहुक्षत्र्, उश्नवद, स्पेन्तोमद और वहिश्तोइश्त नामकी पाच गाथाएँ, १८९४ मे, मील्स साहब द्वारा छापी गयी। ये पाचो

"विश्वा अग्ने ऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।"

अर्थात् 'अग्निदेव, जिस तेजसे तुमने कर्कश शब्दवाले जरूथको जलाया, उसीसे राक्षसोंको जलाओ।'

दूसरा मन्त्र है—

"त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये
पुरन्धिम्।" ऋग्वेद ७.९.६

अर्थात् 'अग्नि, वसिष्ठ तुम्हें समिद्ध करते हैं। तुम कर्कश बोलनेवाले जरूथ राक्षसको मारो—जलाओ।'

ये दोनों मन्त्र ७ वें मण्डलके हैं। १० वें मण्डलके एक मन्त्र (१० ८०.३) में भी ऐसी ही बात है—

"अग्निर्ह त्य जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।"

अर्थात् 'अग्निने जरत्कर्ण नामके ऋषिकी रक्षा की। अग्निने जलसे निकालकर जरूथ नामके शत्रुको जलाया।'

पहले दो मन्त्रोंमें सायणाचार्यने जरूथका अर्थ 'कर्कश-शब्दकर्त्ता राक्षस' किया है और तीसरे मन्त्रमें जरूथका अर्थ 'जरूथ नामक शत्रु' किया है।

परन्तु होडीवाले और कुछ अन्य वेदाभ्यासियोके मतसे तीनो मन्त्रोमे जरूथ सज्ञा है, उसका यौगिक अर्थ करनेकी आवश्यकता ही नही।

इन तीनो मन्त्रोसे ज्ञात होता है कि जरूथको आगमे जलाकर ही मारा गया था। पारसियोके दीनकर्द, वेहेरामयश्त, दाहेस्तान आदि ग्रन्थोसे भी जाना जाता है कि जरथुस्त्रकी मृत्यु अग्निके ही द्वारा हुई थी।

फलत केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि ऋग्वेदका 'जरूथ' पारसियो (ईरानियो)का पैगम्बर जरथुस्त्र है।

पारसियोके धर्मग्रन्थोमे जरथुस्त्रको दस्यु (दख्युमा) और दस्युओमे विद्वान् (दख्युनाम सूरो) भी कहा गया है। पारसी साहित्यमे दस्युका अर्थ सम्मानपरक है। परन्तु वैदिक साहित्यमे दस्युका अर्थ 'काटना' है। दस्यु और असुर एक ही है। वेदमे दोनोको राक्षस माना गया है। इन असुरोका देवोके साथ सदा युद्ध चलता ही रहता था। कुछ लोगोके मतसे यही युद्ध देवासुर-सग्राम है। कई असुरोको 'पणि' कहते है। वेदोमे पणियोके विरोधमे बहुत कुछ कहा गया है। पणि पक्के देव-द्रोही थे। पणियोको कुछ लोग फिनिशियन भी कहते है। ये बड़े व्यापारी और धनी थे।

अहुनवद-गाथामें एक स्थान (हा० २८ ७) पर आया है—

"दाइदी तू आमइंते वीश्तास्पाइ इषम मइव्याया।"

इसमे वीश्तास्पका नाम आया है। इसे भी ऋग्वेदके नीचेके मन्त्रमे पारसी विद्वानोने खोज निकाला है—

"किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नृन्॥"

ऋग्वेद १.१२२.१३

कहते हैं, इस मन्त्रका इष्टाश्व गाथाका वीश्तास्प है। वीश्तास्प गुश्तहम वशका था। पारसी कहते है, इस मन्त्रका इष्टरश्मि गुश्तहम है।

जो हो, सायणाचार्यने इष्टाश्व और इष्टरश्मिको राजा माना है।

बहुत समालोचक ऐसे भी हैं, जिनका मत है कि 'पारसी गाथाओंमें विशुद्ध एकेश्वर-वाद है। पीछे, अवस्ता-कालमें, पारसी अनेक देवताओं (यजतों) के उपासक बन गये।' परन्तु गाथाओंमें भी वैदिक आचार-विचारकी बहुत-सी बातें हैं। गाथाओंमें जरथुस्त्र ही नहीं, अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियोंका भी विवरण है। परन्तु अवस्तामें जरथुस्त्रका जो विवरण दिया गया है और जितनी बातें लिखी गयी हैं, वे ही इस बातके यथेष्ट प्रमाण हैं कि ऋग्वेदकी प्रणालीपर ही उनके पात्रों और विवरणोंको लेकर गाथाओंका निर्माण किया गया है। अवस्तामें तो अधिकांश वैदिक देवता विभिन्न उच्चारणके साथ विभिन्न रूपोंमें गृहीत हैं। वैदिक विश्वास

और परम्परा भी बहुत कुछ गृहीत है। अवस्तामें यमको मित्र कहा गया है। यमके पिता विवस्वान्‌को अवस्तामे 'विवनघत्' लिखा गया है। वैदिक पुस्तकोकी तरह ही अवस्ताकी यमपुरीमे भी पुण्यात्मा रहते है। प्रसिद्ध कवि फिरदौसीने अपने "शाहनामा"मे मित्रको यमशिद् लिखा है। यमशिद् नामी सम्राट् थे।

अवस्तामे एक स्थानपर कहा गया है, 'बेबीलोन नगरको आर्य-शून्य करनेके लिये वृत्रासुरने 'अद्विशूर' नामक देवीकी उपासना की थी। परन्तु उस प्रयत्नमे वह असफल रहा।' अनन्तर इन्द्रने वृत्रको मार डाला, जिसका उल्लेख ऋग्वेदके अनेक मन्त्रो (१ ४ ८, १ ८५ १३ आदि) मे है। देवीभागवत और अन्य कई पुराणोमे कहा गया है, 'ब्रह्मासे वर पाकर वृत्रासुर त्रिलोक-विजयी हो गया था। अन्तको दधीचि ऋषिकी हड्डियोने विश्वकर्माने वज्रका निर्माण किया, जिससे इन्द्रने वृत्रका वध कर डाला।' पुराणोकी यह कथा निराधार नही है। स्वय ऋग्वेद (१ ८५ १३) मे स्पष्ट ही लिखा है कि 'इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोसे वृत्रका वध किया था।'

अवस्तामे वृत्रको 'वेरेथ्रघ्न' लिखा गया है और इन्द्रको कट्टर शत्रु माना गया है। इधर ऋग्वेद (१ ४ ५) मे इन्द्रके निन्दको–शत्रुओंको इस देश और अन्य देशोसे निकाल देनेकी बात कही गयी है। इसी मन्त्रके आधारपर लोग कहते है कि 'इन्द्रद्रोही होनेके कारण पारसियोको भारतसे निकाल दिया गया था।' परन्तु उधर अवस्ता (दसवें फर्गाद)मे इन्द्रको पापमति कहा गया है और ससारभरसे इन्द्र-पूजकोको निकाल देनेकी बात कही गयी है। यह भी कहा गया है कि 'फारसके राजा साइरस (Cyrus) ने जिस तरह टाइग्रीस नदीका प्रवाह रोककर बेबीलोनको जीता था, उसी तरह वृत्रने भी आर्यभूमिको अधिकृत करना चाहा था।' जो हो, परन्तु अवस्ताके कथनानुसार भी ज्ञात होता है कि एक समय बेबीलोन नगर आर्योंके अधिकारमे था।

मैक्समूलर साहबकी तो धारणा है कि 'वृत्र-युद्धके ऊपर ही होमरके 'इलियड' ग्रन्थमे 'ट्राय-युद्ध'की कल्पना हैं। वेदका पणि-गण ट्राय-युद्धका 'पैरिस' है।' ग्रीसके जियस और अपोलो देवताओकी कथाएँ भी इन्द्रकथा से मिलती हैं।

जरथुस्त्र और वेरेथ्रघ्न आदिकी ही बात नही, अवस्तामे अन्य वैदिक पात्र भी इसी तरह गृहीत हैं। ऋग्वेद (१ ५२ ५) मे त्रितका उल्लेख है, जो असुरोके घोर शत्रु थे। तैत्तिरीय-सहिताके अनुसार सायणने लिखा है कि 'त्रित अग्निके पूजक थे। एक बार जल पीने जाकर त्रित कुएँमे गिर पडे। यह देखकर असुरोने कुएँपर एक 'ढक्कन' दे दिया। पीछे उसे भिन्न करके त्रित कुएँसे बाहर आये।'

अवस्ताके अनुसार 'थ्रेतन' नामसे ईरानी त्रितकी उपासना करते है। उनके ये प्राचीन देवता है। फिरदौसीने शाहनामामे लिखा है, 'फारसमें तीन मस्तकोवाले जोहक नामके एक राजा थे। उन्हे फिरुद्दीनने जीता था।' तो क्या अवस्ताके थ्रेतन ही जोहक है ?

इटली, ग्रीस और जर्मनीमे भी त्रैतनकी कथा प्रचलित है। उनमें भी यह उपास्य देवता है। ग्रीकोमे Triton नामके एक जल-देव भी हैं। ग्रीकोके जियसकी कन्याका नाम Trilogeneia था।

जिस मन्त्रमें त्रितका उल्लेख है, उसीमें बल नामके असुरके वधकी बात है। १ ११ ५ मे भी बलका उल्लेख है। रेवरेंड कृष्णमोहन बनर्जी ने अपने "Aryan witness" में लिखा है कि 'ऋग्वेदका बल ही बेबीलोनाधिपति बेल था।' यह बात पहले भी लिखी गयी है।

अवस्ताके अनुसार ईरानी सूर्यके उपासक है। सूर्यको वे 'खोरसेद' कहते है। ग्रीको, रोमनो और ट्यूटनोमे भी सूर्य-पूजा है। ग्रीक सूर्यको हेलिओस और सूर्यवशको हेलिनेस कहते है। सूर्यको रोमन 'सोल' और ट्यूटन 'टिर' कहते है।

ईरानी वायुपूजक भी है। Pan (पान) नामसे ग्रीक और रोमन भी वायुकी पूजा करते हैं।

अवस्तामे अग्नि-पूजाका विशद उल्लेख है। अग्नि ईरानियोंके अतीव प्रिय देवता हैं। वे 'अतर' नामसे अग्निकी उपासना करते हैं। पारसियो के फारस और भारतमे ऐसे अनेक अग्नि-कुण्ड है, जिनमे सैकडो वर्षोसे अखण्ड अग्नि प्रज्वलित है। लैटिन-भाषा-भाषी अग्निको Ignis, और स्लाव Ognis कहते हैं। ये सब जातिया अग्निकी उपासिका हैं। Prometheus (सस्कृत—प्रमन्थ) नामसे ग्रीक अग्निकी उपासना करते हैं।

अवस्तामे वैदिक सोमका नाम "हउम्म" है। 'थियासाफिकल सोसा-इटी' की जन्मदात्री मैडम ब्लावस्कीके मतसे सोम और वाइबिलका ज्ञान-वृक्ष (Tree of Knowledge) एक ही पदार्थ है।

अवस्तामे मित्रको मिथ् और वरुणको वरण कहा गया है। ग्रीक वरुण को उरानोस (Uranos) कहते और उन्हे सभी देवोंके पिता मानते हैं।

अवस्तामे असुरको अहुर और यातुधान (राक्षस)को यातुमान लिखा गया है।

वैदिक साहित्यमे अग्निको नाराशंस भी कहते हैं। इसे ईरानी "नैर्यो-सघ" कहते और इसकी पूजा करते हैं।

मैक्समूलर साहबने यह भी लिखा है कि 'ऋग्वेदका वृसय असुर (१. ९३ ४) इलियडका Brises है।'

डा० राजेन्द्रलाल मित्रने "Indo-Aryans"मे लिखा है कि वेदमे उषाके जो अर्जुनि, ब्रिसया, दहना, सरमा, अहना और मरण्यू नाम हैं, वे ग्रीक आदिमे भी विकृत रूपसे प्रचलित हैं। ग्रीक उषाको Eos, अर्जुनिको Argynoris, ब्रिसयाको Brisis, दहनाको Daphne, सरमाको Helen, अहनाको Athena और सरण्यूको Erynis कहते हैं। लैटिन-भाषाभाषी अहनाको minerva कहते हैं।

"Mythology of Aryan Nations"में काक्सने लिखा है, 'अर्जुनिसे ही Argos और Aroadia शब्द उत्पन्न है।'

जैसे सरण्यूने अश्व-रूप धारण कर अश्विनीकुमारोको जन्म दिया था, वैसे ही एरिनिज नामकी ग्रीक देवीने घोडीका रूप धारण कर अरियेन और डिस्पोनाको पैदा किया था। अश्विनीकुमारोको ग्रीक कैस्टर और पोलक कहते हैं।

पारसी साहित्यमें एक व्यक्तिका नाम जामास्प वएतस है। ऋग्वेद (६ १६ ८) के मन्त्रमे वेतसु नामक असुरका उल्लेख है। शेहेरियारजीकी राय है कि जामास्प वएतस और वेतसु एक ही है।

मैक्समूलरका मत है कि 'आर्य शब्दसे ही ईरान, अर्मनी, आयरत, आरियाई, आयर्लेंड, एरिन आदि शब्द उत्पन्न है और ये सब शब्द ससारमें आर्योकी अबाध गति और आधिपत्यके परिचायक है।'

अवस्तामे आर्योका निवास-स्थान "आर्येनेवेजो" (आर्याणां बीजम्) कहा गया है। और भी ऐसे अनेक विषय अवस्तामे आये है, जिनका वैदिक साहित्यके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेपर बडा मनोरजन और ज्ञानवर्द्धन होता है। यहा विशेष लिखनेका स्थल नही है। हमे यहा इतना ही देखना है कि आर्य और ईरानी एक ही जातिकी दो शाखाएँ है या नही ? अबतक दिये गये विवरणसे क्या परिणाम निकलता है ?

ऐतिहासिक कहते है कि 'दोनो एक ही जातिके है। दस्यु, पणि, असुर भी एक ही है। पणि व्यापारी और धनाधिपति थे। आर्य शासक थे, इसलिये इन्होने पणियोसे धन चाहा, कर बढाया। इसीपर पणियोसे झगडा हो गया। पणियोको देशसे निकाल दिया गया। तबसे पणि (पारसी) असुर-पूजक हो गये। पहले असुर शब्दका अर्थ बुरा नही था। पीछे आर्योने असुर, दस्यु आदि शब्दोका बुरा अर्थ लिख डाला।'

इसमे सन्देह नही कि ऋग्वेद (१ ५४ ३)मे "बली" अर्थमे असुर शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी तरह १ २४ १४ मे "अनिष्ट हटानेवाला"के

अर्थमें, १ ३५ १० मे "प्राणदाता"के अर्थमे तथा चार और मन्त्रो (१. ३५.७, १ ६४ २; १ १०८ ६, १ ११० ३) मे अच्छे अर्थोमे असुर शब्द आया है।

परन्तु वैदिक और सस्कृत साहित्योमे ऐसे अगणित शब्द है, जिनके कितने ही अर्थ होते है। 'अश्विनौ' शब्दको लीजिये। निरुक्तकारने (१२. १) इस शब्दके स्वर्ग-मर्त्य, अहोरात्र तथा सूर्य-चन्द्र आदि कई अर्थ दिखाये है। किसी शब्दकी अर्थ-विविधताके कारण ऐतिहासिक तथ्यका कैसे निर्णय होगा? इन स्थानोको छोडकर वैदिक साहित्यमे असुर शब्द का प्रयोग दैत्य, राक्षस, नास्तिक, प्राण-घातक आदि अर्थोमे आया है। आर्य-ईरानीके झगडेका कही वैदिक साहित्यमे उल्लेख भी नही मिलता। पणियोसे धन मागने या कर बढानेकी बात भी तो किसी भी मन्त्रमे नही पायी जाती।

अच्छा, असुर शब्दका अर्थ तो आर्योने आगे चलकर बुरा कर दिया, परन्तु जरुथ, वृत्र, यातुधान, इष्टाश्व आदि शब्दोके तो कही भी अर्थ नहीं बदले गये। इनके अर्थ तो अनार्य, राक्षस, यज्ञद्रोही, दस्यु और नास्तिक आदि ही सदा किये गये है। इसलिये अनेकानेक वेदज्ञोमे यह बात मानी जाती है कि जरूथ, वृत्र आदि अनार्य और असुर थे तथा इनके अनुयायी ईरानी वा पारसी भी अनार्य थे। ईरानपर आर्योके आधिपत्यके कारण ये कुछ वैदिक देवोकी भी पूजा करने लगे और वैदिक साहित्यके अनेकानेक शब्द गाथाओ और अवस्ता आदि ईरानी साहित्यमे भर गये। गाथा शब्द भी वैदिक है। बहुत लोग 'अवस्ता'को भी अवस्था शब्दका तद्भव रूप बताते है। दुर्गादास लाहिडीके मतसे तो परशुरामजीने ही फारस वा पारसको बसाया था।

सप्तविंश अध्याय

वेद और गोजाति

आर्यजातिमें सदासे गौकी प्रतिष्ठा और पूजा होती आयी है। इसका नाम ही "अघ्न्या" रख दिया गया है। कहा गया है—"अघ्न्या इति गवा नाम क एना हन्तुमर्हति ?" अर्थात् 'गोजातिका नाम ही अघ्न्या (न मारने योग्य) है, इसे कौन मार सकता है?' गौओंके विना आर्योंका यज्ञ नही हो सकता था—"गावो यज्ञस्य हि फल गोषु यज्ञा. प्रतिष्ठिता" अर्थात् 'यज्ञफलका कारण गौएँ है, गौओमे ही यज्ञ प्रतिष्ठित है।' गौओके समादरका यह प्रधान कारण है। हविष्यके विना यज्ञ नही हो सकता और गोदुग्धके विना हविष्य बन नही सकता। इसलिये गायका एक नाम "हविर्दुघा" भी रखा गया। विना गोवरके यज्ञ-वेदी पोती नही जा सकती और विना कडोंके यज्ञाग्नि प्रज्वलित नही किया जा सकता। "पचगव्य"का पान किये विना यजमान यज्ञ करनेका अधिकारी नही हो सकता और गोमूत्र तथा गोबरके विना पचगव्य बन नही सकता। गोघृतके विना यज्ञमे हवन नही हो सकता और हवनके विना यज्ञ ही नही हो सकता।

यज्ञ-धूमसे मेघ बनते है, मेघ जल बरसाते है, जलसे अन्न और तृण होते है और अन्न-तृणसे प्राणियोका प्रतिपालन तथा जीवन-धारण होता है, इसलिये समस्त विश्वका आधार गौएँ है। विना गौओके सारा विश्व नष्ट हो सकता है, इसलिये आर्योंका मत है कि "एतद् वै विश्वरूप सर्वरूप विश्वरूपम्" अर्थात् 'सम्पूर्ण-विश्व-रूप गाये है—विश्वमे जो कुछ है, सो सब गोरूप है।'

इसीलिये एक-एक राजा और ऋषि हजारो हजार गायें रखते थे—ऋग्वेदके अनेकानेक स्थानोपर ऐसा उल्लेख है। गोजातिके विकासके लिये अच्छे साडोका रखना आवश्यक है, इसलिये सुलक्षण साड रखे जाते थे।

पारस्कर-गृह्यसूत्र, ३ काण्ड, ६ कण्डिकामे अच्छे-बुरे सांड़ोके लक्षण दिये हुए हैं।

ऋग्वेदमे दो गोसूक्त अत्यन्त प्रख्यात है। एक है छठे मण्डलका अठाईसवा सूक्त और दूसरा है दशम मण्डलका १६९ वा सूक्त। इनके सिवा ऋग्वेदमे ही नही, सभी वेदोमें गौका महत्त्व बताया गया है। कुछ उदाहरण देखिये—

"वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वसमवत् यावत्सूर्यो विपश्यति॥"

अथर्ववेद १०.१०.३४

(जहातक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, गाये सबको समान रूपसे लाभ पहुँचाती हैं। देव, मनुष्य, राक्षस—सभी गोदुग्धसे लाभ उठाते हैं।)

"माता रुद्राणं दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं बधिष्ट॥"

ऋग्वेद ८.१००.१५

(जो गौ रुद्रोंकी माता, वसुओकी पुत्री, आदित्योकी भगिनी और दुग्धका निवास-स्थान है, मनुष्यो, उस निरपराध और अदितिरूपिणी गो—देवीका वध नहीं करना।)

ऋग्वेदके छठे मण्डलके २८ वे सूक्तमे सव आठ मन्त्र हैं, जिनमेसे २ रे और ८ वे मन्त्रोंमे इन्द्रकी स्तुति है, शेष मन्त्र गो-विषयक हैं। तीसरा मन्त्र है—

"न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥"

(हमारे समीपसे गौएँ नष्ट न हो। हमारी गौओको चोर नही चुरावे। हमारी गौओपर शत्रुओका शस्त्र पतित न हो। गोस्वामी यजमान जिन गौओसे इन्द्रादिका यजन करते है और जिन गौओको इन्द्रके लिये प्रदान करते है, उनके साथ वे चिर काल तक रहे।)

"गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गाव. सोमस्य प्रथमस्य भक्ष'।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥ ५॥"

(गौएँ हमारे लिये धन हो। इन्द्र हमे गौएँ प्रदान करें। गौएँ हव्य-श्रेष्ठ सोमरस (आज्यादि गव्यके साथ) का भक्षण प्रदान करे। हे मनुष्यो, गौएँ ही इन्द्र हैं, जिनकी कामना हम श्रद्धायुक्त मनसे करते हैं।)

एक मन्त्र और उद्धृत किया जाना आवश्यक है। यह अथर्ववेद (४ २१ ६) मे भी है—

"यूयं गावो मेदयथा कृशचिदश्रीर चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो वृहद्वो वय उच्यते सभासु॥ ६॥"

(गायो, तुम हमे पुष्ट करो। दुर्बल और कुरूपको सुन्दर वनाओ। कल्याणमयी वाक् कहनेवाली गायो, हमारे घरको मगलमय करो (गौओ से सयुक्त करो)। गायो, यज्ञ-सभाओमे तुम्हारा महान् यश वखाना जाता है।)

दशम मण्डलका १६९ वा सूक्त चार मन्त्रोमे परिपूर्ण है। चारो ही मन्त्र गोजातिका सच्चा स्वरूप और उसके प्रति आर्य-जातिकी सम्पूर्ण श्रद्धा व्यक्त करते हैं। मन्त्र ये हैं—

"मयोभूर्वातो अभि वातूस्त्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्या' पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृल॥१॥"

(सुखकर वायु गायोकी ओर वहे। गाये वलकारक तृण, पत्र आदि-का आस्वादन करे। ये प्रभूत और प्राण-परितृप्ति-कारक जल पान करे। रुद्रदेव, चरण-युक्त और अन्न-स्वरूपिणी गायोको स्वच्छन्दतासे रखो।)

"याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अगिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥२॥"

(कभी गाये समान वर्णोकी होती है, कभी विभिन्न वर्णोकी और कभी एक वर्णकी। यज्ञमे अग्नि उनको जानते हैं। तपस्याके द्वारा अगिरा की सन्तानोने उनको वनाया है। पर्जन्यदेव, गायोको सुख दो।)

"या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥"

(देवोके यज्ञके लिये गाये अपने शरीरको दिया करती है। सोम उनकी अशेष आहुतियोको जानते है। इन्द्र, उन्हे दूधसे परिपूर्ण करके और सन्तान-युक्त वनाकर हमारे लिये गोष्ठमे भेज दो।)

"प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमोकस्तासां वयं प्रजया संसदेम ॥४॥"

(देवो और पितरोसे परामर्श करके प्रजापतिने मुझे इन गायोको दिया है। इन समस्त गायोको कल्याण-युक्त करके वह हमारे गोष्ठमें रखते है, ताकि हम गायोकी सन्तति प्राप्त कर सके।)

इन मन्त्रोसे ज्ञात होता है कि आर्य लोगोकी सबसे प्रिय वस्तु गाय थी। वे गायोको स्वादिष्ट तृण खिलाना, तृप्तिकर जल पिलाना और उन्हें सुखसे रखना अपना परम धर्म समझते थे। आर्योंकी प्रवल अभिलाषा थी अपने गोष्ठमे स्वस्थ, सुन्दर, स्वच्छ और मगलमयी गायोके रखने और उनके सन्तानवती होते रहनेकी। गायोके विना आर्योंका न तो यज्ञ हो सकता था, न वे स्वस्थ और पुष्ट ही रह सकते थे। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक—सभी तरहके लाभ गायोसे होते है। इसीलिये आर्य उन्हे प्राणोसे बढकर मानते थे। उन्होने अपने 'पूर्णावतार' भगवान् कृष्णका नाम ही 'गोपाल' रख दिया है।

जो कोई गौओको चुराता या मारता था, उसे आर्य लोग राक्षस कहते और मार डालते थे। पणियोने एक वार गाये चुराकर छिपा दी थी। इन्द्रने उन्हे खोज निकाला, अनेक पणियोको मार डाला और अन्तिम काण्ड यह हुआ कि पणि आर्योंके चिर शत्रु वन गये!

हा, ऋग्वेद (१ ६१.१२) मे "गोर्न" उपमार्थक शब्द आया है, जिसे देखकर प्रो० विलसन और रमानाथ सरस्वतीने अनुमान लगाया है कि 'आर्य लोग गोमासका व्यवहार करते थे।' परन्तु इन सज्जनोका अनुमान

व्यर्थ है। सायणने इसका अर्थ किया है—'जैसे पशुको कसाई काटते है।' यहा गोका अर्थ साधारण पशु है और साधारण पशुको काटनेवाले भी 'कसाई' थे, आर्य नही। कुछ लोगोका विचार है कि 'यज्ञमे गौ आदि पशुओका वध होता था।' परन्तु वेदोमे एक भी ऐसा मन्त्र वा मन्त्राश नही है, जिससे इस विचारका अनुमोदन होता हो। गोमेध, अश्वमेध आदि मे जो मेध शव्द है, उसका अर्थ 'पवित्र' है। यज्ञको अध्वर कहा जाता है, जिसका अर्थ 'निर्मल' है। यज्ञ शव्दका अर्थ भी पूजन है। फिर पशु-वधकी वात कहासे आयी ?

ऋग्वेदके १ २१ ५ मे पहले पहल 'रक्ष' शव्द आया है, जिसे 'भक्षक' कहा गया है। राक्षस प्राणि-हन्ता और मास-भक्षक थे, इसलिये इसी मन्त्रमे इनके निर्वंश होनेकी वात लिखी गयी है। इसी वेदके १० ८७ २ मे स्पष्ट लिखा है कि 'अग्निदेव, जो मास-भक्षक राक्षस है, उन्हे जला डालो, काट डालो।' भला जो मास-भक्षकोको समूल नष्ट कर देनेकी प्रार्थना देवोसे वार-वार करता है, वह कैसे मास-व्यवहार कर सकता है ? जिस आर्य-की परम लालसा थी, 'मित्रकी दृष्टिसे सारे प्राणियोको देखू' (यजुर्वेद १८ ३४), वह कैसे किसीको कष्ट भी पहुँचा सकता है, वधकी वात तो अलग रहे ?

'गोर्न'की तरह सन्देह यजुर्वदकी वाजसनेय-सहिता (पुरुषमेधप्रकरण), तैत्तिरीय-व्राह्मण (अश्वमेध-प्रकरण), आश्वलायनगृह्यसूत्र (१ अध्याय) आदिमें भी उठाया जाता है, परन्तु इन स्थानोमें भी दूसरे ही अर्थ है, मास-समर्थक अर्थ एकमे भी नही है। 'यज्ञपरिभाषासूत्र' आदि वैदिक साहित्य-के अन्य ग्रन्थोमे जहा कही मांस-व्यवहारकी वात आयी है, वहा या तो दूसरे ही अर्थ है या क्षेपक है अथवा यह माना जा सकता है कि कुछ कुरुचिके लोग (राक्षस) पहले भी थे, जो मास-भक्षक थे, इसी लिये हीन-दृष्टिसे देखे जाते थे। वस्तुत गोपूजाके ग्रन्थोमें गोभक्षणकी वात आना असम्भव है।

अष्टाविंश अध्याय

वेद और विमान

अमेरिकन महिला ह्वीलर विल्लाक्सने "Sublimity of the Vedas" (पृष्ठ ८३) मे लिखा है–'वैदिक ऋषियोको विद्युत्, रेडियो, एलेक्ट्रन, विमान आदि सभी वातोका ज्ञान था।' अपने "त्रयी-चतुष्टय"मे भारत-प्रसिद्ध वेद-विद्वान् स्व० प० सत्यव्रत सामश्रमीने भी लिखा है कि 'वेदोमे सारे विज्ञान, सूक्ष्म रूपसे, विद्यमान है।' वडोदामें 'यन्त्रसर्वस्व' नामका एक हस्तलिखित ग्रन्थ मिला है, जिसके लेखक भरद्वाज ऋषि है। ग्रन्थके '**वैमानिक प्रकरण**'मे लिखा है कि 'वेदोके आधारपर ही इस ग्रन्थको बनाया गया है।' इसमे इतने प्राचीन वैमानिक ग्रन्थोके नाम दिये हुए है–मयकी 'विमानचन्द्रिका' तथा 'यानबिन्दु', 'आकाश-यानरहस्य', 'व्योमयानतन्त्र' और 'व्योमयानार्कप्रकाश'। '**यन्त्रसर्वस्व**' के उक्त प्रकारणमे बत्तीस प्रकारके वैमानिक रहस्य बताये गये है। प्रत्येक विमानमे दूरवीनका रहना भी लिखा है। प्रत्येकमे गति वक्र करने, दूसरे विमानवालोसे बाते करने, दूसरे विमानकी वस्तुएँ देखने, दूसरे विमान की दिशा जानने, दूसरे विमानवालोको बेहोश करने और शत्रु-विमानको नष्ट करनेके भी यन्त्र लगे रहते थे।

यहा देखना है कि क्या वेदोमे विमानकी वाते पायी जाती है? ऋग्वेद (१ ३४.२)मे अश्विनीकुमारोके ऐसे रथका उल्लेख है, जो तीन चक्को और तीन स्तम्भोवाला है। तीनो खम्भे 'अवलम्वनके लिये है।' यह भी लिखा है कि 'चन्द्रमाका वेनाके साथ विवाहके समय इस रथको लोगोने पहले पहल जाना।' क्या यह कोई अद्भुत रथ है या विमान है? परन्तु रथमे न तो तीन चक्के ही रहते है, न तीन खम्भे ही।

इसी १ म मण्डलके ३४ वे सूक्तके १२ वें मन्त्रमे 'त्रिकोण और त्रिलोक मे चलनेवाले रथ'का उल्लेख है। क्या यह त्रिलोकचारी विमान है? रथ तो त्रिकोण नही होता, न तीनो लोकोमें चल ही सकता है।

१ ४७ २ में फिर कहा गया है–'अश्विद्वय, अपने त्रिविध-बन्धन-काष्ठो से युक्त, त्रिकोण वा त्रिलोकमें वर्त्तमान और सुरूप रथके साथ आओ।' यहा भी १ ३४ २ की ही बाते है।

१ ११२ १२ मे अश्विनीकुमारोके 'अश्वरहित रथ'का उल्लेख है। इसके 'विजयके लिये चलाने'की बात भी लिखी गयी है। 'अश्व-रहित रथ' तो यान्त्रिक ही हो सकता है। रथका अर्थ यान वा सवारी भी होता है। तो क्या यह विमान ही है?

आगे १ ११८ १ मे तो और भी स्पष्ट विवरण मिलता है। पूरा मन्त्र देखिये–

"आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृलीक. स्ववां यात्वर्वाङ्।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वातरहा॰॥"

आचार्य सायणने इसका अर्थ यो किया है–'अश्विद्वय, तुम्हारा बाज पक्षीकी तरह शीघ्रगन्ता, सुखकर और सम्पन्न रथ हमारे सम्मुख आवे। अभीष्टवर्षक-द्वय, तुम्हारा रथ मनुष्यके मनकी तरह वेगवान्, त्रिविध बन्धनोसे युक्त और वायुवेगी है।'

बाज पक्षीकी तरह शीघ्रगामी तथा मन और वायुकी तरह वेगशाली रथ तो घोडोवाला नही हो सकता। यदि सायणका अर्थ ठीक माना जाय, तो ऐसा रथ वायुयान ही हो सकता है। मन्त्रमे घोडेका कही नाम भी नही है।

१ १२० १० मे फिर अश्व-रहित रथका उल्लेख है। कहा गया है–

"अश्विनोरसन रथमनश्व वाजिनीवतो.। तेनाह भूरि चाकन॥"

अर्थात् 'मैने अन्नदाता अश्विद्वयका अश्व-शून्य और गमनशाली रथ प्राप्त किया है। इससे मैं अनेक प्रकारके लाभ प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।'

अबतक तो यह अश्वरहित रथ अश्विनीकुमारोके ही पास था; परन्तु अब इसे कक्षीवान् ऋषि पाकर तरह-तरहके मनसूबे बाधने लगे! अभिनव और अद्भुत वस्तु पाकर ऐसे मनोरथ होते ही हैं।

४ ३६ १ मे तो स्पष्ट ही आकाशचारी रथका उल्लेख है। मन्त्र ऐसा है—

**"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ॥"**

अर्थात् 'ऋभुओ, तुम्हारा कर्म स्तुत्य है। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अश्विनीकुमारोका त्रिचक्र रथ अश्वके विना और लगामके विना अन्तरिक्ष (आकाश) मे परिभ्रमण करता है। जिसके द्वारा तुम लोग द्यावापृथिवीका पोषण करते हो, वह रथ-निर्माण-रूप महान् कार्य तुम लोगोके देवत्वको प्रसिद्ध करता है।'

अश्वके विना आकाशचारी रथ क्या है? कदाचित् कोई भी उत्तर देगा 'विमान'।

४ ७७.३ मे भी 'मन और वायुकी तरह वेगशाली' और 'दुर्गम मार्गो का अतिक्रम करनेवाले रथ'का उल्लेख है।

१० ३९ १२ मे १ ११८.१ की ही तरह मनके सदृश वेगवान् रथका उल्लेख है। ४ ३६ १ की तरह इस मन्त्रमे भी ऋभुओके द्वारा अश्विनीकुमारोको प्रदत्त रथकी बात है।

इन समस्त मन्त्रोसे ज्ञात होता है कि अश्विनीकुमार और ऋभु लोग ऐसे **विमान** रखते ही नही थे, स्वय **बनाते** भी थे। ये लोग वैज्ञानिक ही नही, वैद्य भी थे। खेल नामक राजाकी पत्नी विशप्लाकी जाघ टूट गयी थी, जिसे अश्विनीकुमारोने नयी और **नकली जांघ** बनाकर दे दी और वह चगी हो गयी। ऋजाश्व राजाके पिताकी अन्धी आखे भी इन्होने अच्छी कर दी थी। कक्षीवान् ऋषिकी ब्रह्मवादिनी घोषा नामकी कन्याका अश्विद्वयने **कुष्ठ रोग दूर** कर दिया था। प्रथम मण्डलके ११६ वे और ११७ वे सूक्तोमे इस तरहके अश्विद्वयके अनूठे कार्योकी एक तालिका ही

एकोनत्रिंश अध्याय

वेद और अवतार

ऋग्वेद, प्रथम मण्डलके २२ वे सूक्तके १६ वेसे इक्कीसवें मन्त्रतक विष्णुके वैभवका वर्णन है। इसी प्रसगमे इस सूक्तके १७ वे मन्त्रमे विष्णु के वामनावतार या त्रिविक्रमावतारका वर्णन आया है। मन्त्र यह है–

"इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूलमस्य पांसुरे ॥"

अर्थात् 'वामनावतारधारी विष्णुने इस जगत्की परिक्रमा की। उन्होने तीन प्रकारसे अपने पैर रखे और उनके धूलि-धूसरित पैरोसे जगत् छिप गया।' १६ वे और १८ वे मन्त्रोमें भी "पैरोके परिक्रम"की बात है।

इसी मण्डलके १५४ वे सूक्तके देवता विष्णु हैं। इसके प्रथम मन्त्रमें ही वामनावतारकी बात है। इसी वेदके ३ ५४ १४ मे भी यही कथा है। ऐतरेय-ब्राह्मण (६ १५) में लिखा है, 'देवो और असुरोके बीच जब ससार-का बटवारा होने लगा, तब इन्द्रने कहा–'अपने तीन पैरोसे विष्णु जितना नाप सकें, उतना ससार देवोके लिये रहेगा, शेष असुरोके लिये होगा।' असुर भी इस प्रस्तावसे सहमत हो गये। पश्चात् विष्णुने अपने पाद-परिक्रमसे जगत्के साथ ही वावयको भी व्याप्त कर लिया।' शतपथ-ब्राह्मण (१ २ ५)मे उल्लेख है–'असुरोने कहा कि 'वामनरूप विष्णुके शयन करनेपर जितना स्थान आवृत होगा, उतना देवोका, शेष असुरोका होगा।' इस प्रस्तावका समर्थन देवोने किया और विष्णुने सारे ससारको आवृत कर उसे देवोको दिलवा दिया।'

पुराणोमे, विस्तृत रूपमें, विष्णुके इसी वामनावतारकी कथा आयी है। इसीलिये पुराण वेदोके भाष्य कहे जाते है। इसी प्रकार वेदोके एक-

एक मन्त्र और मन्त्राशके आधारपर पुराणोमे विशद विवरण दिये गये है। दो-एक उदाहरण और लीजिये। यजुर्वेद (१६ २८) मे आया है "नमो नीलग्रीवाय"। इसका अर्थ है, 'नील गलावाले शकरको प्रणाम।' इसपर महीधर-भाष्य है, 'विष-भक्षणसे नीला हो गया है गला जिसका, उस शकर को प्रणाम।'

ऋग्वेद (१ ८४ १३) मे कहा गया है कि 'दधीचिकी हड्डियोसे इन्द्र ने वृत्रादिको ८१० ("नवतीर्नव" = नवगुण नवति) बार मारा था।' यह दधीचिवाली कथा पुराणोमे विस्तृत रूपमे है।

ऋग्वेदके १०.९३ १४मे 'दु शीम, पृथवान्, वेन और वलशाली राम'के नाम आये है। इन राजाओकी बृहत् गाथाएँ महाभारत, बाल्मीकिरामायण और पुराणोमे पायी जाती है।

इसी प्रकार नहुष, उर्वशी, पुरूरवा, तुर्वश, यदु, मनु, मान्धाता, पृथु-श्रवा, सुदास, च्यवन आदि आदिका उल्लेख अथवा सक्षिप्त विवरण मूल वेदोमे है और इन सबकी विशद कथाएँ पुराणादिमे है। पुराणो की इसी विशदतामे वैदिक मन्त्रोके परम्परागत अर्थ पाये जाते है। इन पक्तियोके लेखकने सम्पूर्ण ऋग्वेदका जो हिन्दी-अनुवाद किया है, उसमे प्रत्येक अष्टक और मण्डलके पहले ऐसी कथाओकी सक्षिप्त सूची दी है, जिनका विस्तार और भाष्य पुराणादिमे है। जिज्ञासु सज्जन उस ग्रन्थको देख सकते है।

त्रिंश अध्याय

वेद और अलंकार

वेदोमें जैसे अनेकानेक विद्याओ, कलाओ और विज्ञानोका सक्षिप्त उल्लेख है, वैसे ही अलकारोका भी है। ये अलकार स्वाभाविक रूपमे ही पाये जाते है, आजकलकी तरह अस्वाभाविक अलकार वेदोमे नही है। वेदोमे परोक्षवादके भी अलकार है, जो "वस्तु व्यग्य" की शैलीके है। ये स्वाभाविक अलकारोके विकसित रूप है। ये वर्ण्य विषयको ध्वनित करनेवाले और लाक्षणिक अधिक है। सभी वैदिक सहिताओमे ऐसे अलकार और व्यजनाएँ बहुत है। इनके लिये वेद-भाष्य देखने चाहिये। कुछ उदाहरण यहा दिये जा रहे है।

ऋग्वेदका "अस्य वामीय सूक्त" अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमे अनेक उच्च कोटिके विषय वर्णित है। यह १म मण्डलका १६४ वा सूक्त है। इसका सोलहवा मन्त्र है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पल स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति ॥"

(दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रताके साथ एक ही वृक्ष (शरीर) मे रहते है। इनमे एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पल (कर्म-फल) का भक्षण करता और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भोग नही करता, केवल द्रष्टा है।)

इसमें दो पक्षी जीवात्मा और परमात्माके लिये, वृक्ष शरीरके लिये और पिप्पल कर्मफलके लिये उपमान बनकर आये है, इसलिये रूपकातिशयोक्ति अलकार है। यहा परोक्षवाद और दार्शनिक रहस्यके लिये रूपकातिशयोक्तिका सहारा लिया गया है।

शास्त्रीय अलकार तीन है—शब्दालकार, अर्थालंकार और उभया-लकार। आचार्य भरत मुनिने चार अलकार-भेद माने है—उपमा, रूपक, दीपक और यमक। वस्तुत उपमा आलकारिक शैलीका हृदय है। रूपक, उत्प्रेक्षा आदि इसीसे निकले है। वेदोमे उपमा और रूपक अधिक है। ऋग्वेद (१ २५ ४)का एक मन्त्र है—

"परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये। वयो न वसतीरुप॥"

सायणाचार्यने इसका अर्थ लिखा है—'जैसे चिडिया अपने घोसलोकी ओर दौडती है, उसी प्रकार हमारी क्रोध-शून्य चिन्ताएँ भी धन-प्राप्तिकी ओर दौड रही है।' यहा उपमालंकार है। इस सूक्तके १ ले और ३ रे मन्त्रोमे भी उपमा है। इसी मण्डलके ३० वे सूक्तके २ रे और ४ थे मन्त्रोमे भी उपमा है। उपमाकी गणनाकी इयत्ता नही है, इस वेदमे यह अलकार भरा पडा है। इसी प्रकार सामवेद (२ ७ ८), यजुर्वेद (३ ६०) और अथर्ववेद (२० काण्ड)मे भी उपमालंकार है। अथर्ववेदकी पैप्पलाद-सहिताका प्रथम मन्त्र है—

"शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये।"

(परमात्माकी शक्तिया हमारे अभीष्ट आनन्दके लिये सुखदायी हो, हमारी तृप्तिके लिये सुखदायी हो।) 'शन्नो'मे 'लाटानुप्रास' है। प्रथम 'शन्नो'के साथ 'भवन्तु' रहनेसे 'दीपकालंकार' होता।

शुक्ल यजुर्वेद (१ ४८) का मन्त्र है—

"यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।"

(जहा बाण बालकोके शिखाहीन बालोकी तरह गिरते है।) बाणाः और विशिखा मे 'पुनरुक्तवदाभास' है।

एक उदाहरण और देखिये—

"अहरहरप्रयाव भरतो श्वायेव तिष्ठते घासमस्य रायस्पोषण सनिषा मदन्तोऽग्ने माते प्रतिवेशा रिषाय॥" (यजुर्वेद ११.७५)

(जैसे गृहके अश्वको प्रतिदिन घास दी जाती है, उसी प्रकार खाद्य और भोग्य सामग्री प्राप्त करते और तुझे प्रदान करते हुए तथा अन्न-धनकी समृद्धिसे हृष्ट और आनन्दित होते हुए हम तेरे पड़ोसीकी तरह तुझमें प्रविष्ट होकर कभी पतित न हो।) बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होनेसे इसमें उपमा नही है—'उदाहरण' वा 'दृष्टान्त' है।

इस तरह स्वाभाविक रीतिसे कुछ अन्य अलकार भी वेदोमे आ गये है, परन्तु मुख्य वैदिक अलकार उपमा है। इसीसे अनेक अलकार निकले है। यह श्रेष्ठ अलकार है। इसे ही अपनाकर कालीदास अमर कवि हो गये—"उपमा कालिदासस्य।" वेदार्थ करते समय इस आलकारिक शैलीपर भी दृष्टि रखनी चाहिये।

"गीर्वाणी" (पृष्ठ ३१-३२) का यह कहना प्राय ठीक ही है—"वेदभाषा उत्तम शैलीकी काव्य-रचना है। सस्कृत-ग्रन्थोमे उससे उत्तम अलकार कम मिलेगे। धर्मज्ञानके पूज्य नियमोका देवी-देवताओके रूपोमे वर्णन किया गया है। ×××× जब वेद-मन्त्रोका गलत अर्थ लगाओगे, तो वेदोका कोई दोष नही है। ×××× जो व्यक्ति काव्य-रचना, निरुक्त और अलकारकी विद्यासे अनभिज्ञ है, वह वेदोके वास्तविक भाव को समझ नही सकता।"

एकत्रिंश अध्याय

वेद और परलोक

ऋग्वेदके १० ५८ सूक्तमें १२ मन्त्र हैं और बारहोंमें मृतकके मनको लक्ष्य करके परलोकका वर्णन किया गया है। प्रथम मण्डल, ३५ सूक्तके दूसरे मन्त्रमें 'भुवनों'का उल्लेख है। ५ वें मन्त्रमें भी "भुवनानि" है। इस प्रकार अनेकानेक मन्त्रोंमें "भुवनानि" शब्द आया है। इसी ३५ वें सूक्तका छठा मन्त्र है—

"तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥"

सायणाचार्यने इसका अर्थ लिखा है, 'द्युलोक आदि तीन लोक हैं। इनमें द्युलोक और भूलोक—दो सूर्यके पास हैं। तीसरा अन्तरिक्ष यमराजके लोकमें वा घरमें जानेका मार्ग है। जैसे रथ कीलका ऊपरी हिस्सा अवलम्बन करता है, उसी प्रकार चन्द्र आदि नक्षत्र सूर्यका अवलम्बन किये हुए हैं। जो सूर्यको जानते हैं, वे इस विषयमें बोलें।'

इस एक ही मन्त्रमें तीनों लोकोंका भी उल्लेख है और आकर्षण-शक्तिका भी।

ऋग्वेदके १० म मण्डलका १४ वाँ सूक्त यमलोक और पितृलोकके वर्णनसे परिपूर्ण है। इस सूक्तके देवता ये ही दोनों लोक हैं। १ ले मन्त्रमें कहा गया है, 'सत्कर्म करनेवालोंको यमराज सुखके देशमें ले जाते हैं। उनके पास ही सारा मनुष्य-समुदाय जाता है।' दूसरा मन्त्र यह है—

"यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः॥"

अर्थात् 'सबमे मुख्य यम हमारे शुभाशुभको जानते हैं। यमके मार्ग का कोई विनाश नही कर सकता। जिस पथमे हमारे पूर्वज गये हैं, उसीसे अपने-अपने कर्मानुसार सारे जीव जाते हैं।'

सातवें मन्त्रमे कहा गया है—'जहा हमारे प्राचीन पितामह आदि गये हैं, उसी मार्गसे हे मृत पित, जाओ और स्वधासे प्रहृष्टमना राजा यम और वरुणको देखो।'

आठवें मन्त्रका कहना है—'पित, उत्तम स्वर्गमे अपने पितरोके साथ मिलो—अपने धर्मानुष्ठानके फलसे मिलो।'

९ वे मन्त्रमे लिखा है—'श्मशान-घाटपर स्थित पिशाचादिको, इस स्थानसे चले जाओ। हट जाओ। दूर होओ। यमने मृत यजमानके लिये इस स्थानको वनाया है।' दसवें मन्त्रमे यमद्वारके रक्षक दो कुक्कुरोका उल्लेख है। ११ वेंमें भी दोनो कुत्तोका उल्लेख है और १२ वेंमें कुक्कुरो को लम्वी नाकोवाले, प्राण-भक्षण करनेवाले और महावलशाली कहा गया है। १३ वेमें यमके लिये सोम प्रस्तुत करने और हवन करनेकी वात है। १६ वेमे यमराज यज्ञाधिकारी वताये गये है।

१० म मण्डलके १५ वे सूक्तमे १४ मन्त्र है और सव पितृलोक तथा पितरोके वर्णनसे पूर्ण है। १ ले मन्त्रमे 'उत्तम, मध्यम और अधम' नामकी तीन श्रेणियोमें विभक्त पितरोको वताया गया है। दूसरा मन्त्र यह है—

"इद पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयु.।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥"

अर्थात् 'जो पितर (पितामहादि) आगे और जो (कनिष्ठ भ्राता आदि) पीछे मरे हैं, जो पृथिवीपर आये हैं अथवा जो भाग्यशाली लोगोके वीचमे हैं, उन सवको आज प्रणाम है।'

अगले मन्त्रोसे ज्ञात होता है कि पितरोको यज्ञमे वुलाया जाता था, कुशोपर वैठाया जाता था, उन्हें सोमरस दिया जाता था तथा देवोके साथ हा पितरोको भक्ष्य और पेय भी दिया जाता था। पितर इन्द्रके साथ रथपर

चलते थे। 'स्वधा'के साथ जाने-अनजाने सभी पितरोको भक्षणके लिये हवि दी जाती थी– यह वात १३ वे मन्त्रमे है। १४ वे मन्त्रसे विदित होता है कि सभी मृत व्यक्ति जलाये नही जाते थे। कर्मानुसार उत्तम गतिकी प्राप्ति वतायी गयी है।

ऋग्वेद १०.२.७ मे 'पितृयान' का उल्लेख है। १०.१८ १ मे देवयान और पितृयान–दोनोका उल्लेख है। २ रे मन्त्रमे भी पितृयानकी वात है। १०.८८ १५ मे दोनो यानोका उल्लेख है।

ऋग्वेद ४.५.५ मे विपथगामिनी, पतिविद्वेपिणी और दुष्टाचारिणी स्त्री तथा यज्ञ-विहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यशून्य और असत्यवादी पुरुषके लिगे नरक-प्राप्तिकी वात लिखी है।

इन सारे लोकोका विवरण उपनिषदोमे कुछ अधिक है और पुराणोम अतीव विस्तृत रूपमे है।

द्वात्रिंश अध्याय

वेद और गायत्री

चौवीस अक्षरोवाला प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र वैदिक मन्त्रोमे अत्युच्च स्थान रखता है। यह गायत्री छन्दमे है, इसलिये इसका नाम गायत्री पडा। सविता (सूर्य वा विश्व-प्रसव-कर्त्ता परमात्मा)से सम्वन्धके कारण इसका एक नाम सावित्री भी है।

इस मन्त्रका महत्त्व इससे भी ज्ञात होता है कि यह तीनो वेदोमें पाया जाता है। ऋग्वेद (३ ६२ १०) और सामवेद (उत्तरार्चिक १३ ३ ३) मे तो एक-एक वार ही आया है, परन्तु यजुर्वेदमे कई वार आया है—३ ३५, ३० २ और ३६ ३। मन्त्र यह है—

"तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न. प्रचोदयात्॥"

सायणाचार्यने इसका इस प्रकार अर्थ किया है—'जो सविता हम लोगो की वुद्धिको प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियोमे प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वरके सभजनीय तेजका हम लोग ध्यान करते है।'

इसका अर्थ इस तरह भी किया जाता है—'विश्वके रचयिता परमात्मा (वा सूर्य) के श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते है, जो हमारी वुद्धिको (सत्कर्म मे) प्रेरित करे।'

मन्त्रमे २३ ही अक्षर है, परन्तु सर्व-प्रथम ओकार (ओ३म् वा ॐ) रहता है, इसलिये २४ अक्षर हो जाते है। कुछ आचार्य ओकारके विना मन्त्रमे मन्त्रत्व ही नही मानते। वहुत लोग गायत्रीमे तेईस अक्षर ही मानकर इसका नाम 'निचृद् गायत्री' रखते है। कुछ लोग 'वरेण्यम्'का पाठ 'वरेणियम्' करके चौवीस अक्षर मानते है। इस मन्त्रके पहले 'भू

भुव स्व' भी लोग लगाते हैं। इनका अर्थ है, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ। कुछ लोग इन तीनोका अर्थ सत्, चित्, आनन्द भी करते है। ब्रह्म-परक होनेसे इसका एक नाम 'ब्रह्म-गायत्री' भी है। इसमे तीन चरण हैं।

तैत्तिरीयारण्यक (१ ११ २) मे इस मन्त्रका विवरण है। छान्दोग्योपनिषद् (३.१२ १) का कहना है कि "गायत्री वा इदं सर्वम्।" अर्थात् 'ब्रह्माण्डमे जो कुछ है, वह गायत्री है।' वादरायणके ब्रह्मसूत्र (१ १ २५)) पर शारीरक-भाष्यमे शकराचार्यने कहा है, 'गायत्री-मन्त्रके जपसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।' मनुजीने लिखा है–'तीन वर्षतक सावधानी के साथ गायत्रीका जप करते रहनेसे जपकर्त्ताको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है'–

"यो ऽधीते ऽहन्यहन्येतास्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्त्तिमान्॥" (मनुस्मृति २.८२)

भागवत गीतामे भगवान्ने कहा है—"मै वेदोमे गायत्री हूँ,'– "गायत्री छन्दसामहम्" (१०.३५)।

श्रीमद्भागवतको तो गायत्रीका भाष्य ही वताया गया है–"गायत्री-भाष्यरूपो ऽसो वेदार्थपरिबृंहितः।" माना जाता है कि भागवतके दशम स्कन्धकी 'रामपचाध्यायी'मे ब्रह्मगायत्री महामन्त्रको सर्वाङ्गीण मूर्ति प्रदान की गयी है।

उपनिषदोसे प्रतिदिन सन्ध्या करनेकी आज्ञा दी गयी है। कहा गया है–"अहरहः सन्ध्यामुपासीत।"

कर्म तीन प्रकारके वताये गये है–नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इनमे स्नान, सन्ध्या, गायत्री-मन्त्र-जप, हवन, देवपूजन और वलिवैश्वदेव आदि छ नित्य कर्म हैं। पर्व, तीर्थ आदिके कर्म नैमित्तिक हैं। फलाशासे हरिवश, पुराण आदिका पाठ काम्य कर्म हैं। इनमे नैमित्तिक और काम्य कर्म करनेमे फल-प्राप्ति तो होती है, परन्तु नही करनेसे कोई बुरा फल नही मिलता। परन्तु नित्य कर्म और नित्य कर्मोमे सर्व-श्रेष्ठ

गायत्री-जप न करनेसे जीवनमें विघ्न होता है, पाप भी होता है। मनु महाराज कहते हैं–

'पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥"

अर्थात् 'प्रात काल आसन लगाकर गायत्री जपनेसे रातका किया पाप नष्ट होता है और सायकाल सन्ध्या (गायत्री-जप) करनेसे दिनका किया पाप विनष्ट होता है।'

यह वात मानी हुई है कि मनुष्य दिन और रातमें कितनी ही वार झूठ वोलता है, कितने ही प्राणियोको कष्ट देता है और अपने स्वार्थ-साधन के लिये जानते-अनजानते क्या-क्या अनर्थ करता है! इन सब दुष्कर्मोसे उत्पन्न वुरे फलोको नष्ट करनेके लिये गायत्रीका प्रतिदिन दो वार जप करना अत्यावश्यक है। याज्ञवल्क्य आदिकी स्मृतियोमे तो तीन वार जप करनेकी आज्ञा है।

जन्मसे आठवे वर्षमे व्राह्मण, ग्यारहवेंमे क्षत्रिय और वारहवेमे वैश्य के वालकोके उपनयनकी विधि है। इन्ही समयोमे इन तीनोको गायत्रीकी दीक्षा देनेकी भी विधि है। परन्तु सोलह वर्षतक व्राह्मण, इक्कीस वर्षतक क्षत्रिय और वाईस वर्षतक वैश्यके वालकोका उपनयन न किया जाय और गायत्रीकी दीक्षा न दी जाय, तो वे पतित हो जाते है, आर्यजातिकी निन्दा के पात्र वन जाते है और फिर उनका गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा लेनेका अधिकार भी जाता रहता है–

"सावित्री-पतिता ह्येते भवन्त्यार्यविगर्हिता:।" (मनुस्मृति)

रात-दिन और दिन-रातकी सन्धि (सयोजक वेला) मे, प्रात और साय कालमें, करणीय माने जानेके कारण इसका एक नाम सन्ध्या है। यह 'सन्ध्या सावित्री' साक्षात् व्रह्मरूपिणी जगन्माता मानी गयी है–

"त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि, जननी परा।" (दुर्गासप्तशती)

इस प्रकार नाना शास्त्रोमे गायत्रीकी विविध महिमाएँ बतायी गयी है। इसके जपके बड़े-बडे फल और सिद्धिया कही गयी हैं। कितने ही तो इसी एक मन्त्रमे निखिल वेदोका अन्तर्भाव मानते है। इसके साथ कई कर्मोंकी भी विधिया हैं—आचमन, अघमर्षण, शुद्धि-मन्त्र, प्राणायाम, विभिन्न न्यास आदि। इस मन्त्रपर इतने भाष्य और इतनी टीका-टिप्पनिया निकली है कि उनके बडे-बडे पोथे बन गये हैं। इसमे सन्देह नही कि वैदिक मन्त्रोमे सर्वाधिक प्रतिष्ठा और प्रख्याति इसी गायत्रीमन्त्रकी है।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

तीन वैदिक देवता

वेदोमे इन्द्र और अग्नि प्रधान देवता है। केवल इन दोनोके सम्बन्ध मे वेदोमे जितने मन्त्र है, उतने ही अन्य समस्त देवोके सम्बन्धमे है। वैदिक सहिताओमे इन्द्र और अग्निके सम्बन्धके प्राय छ हजार मन्त्र है। इनमे साढे तीन हजार इन्द्रके और ढाई हजार अग्निके मन्त्र है। इससे वैदिक साहित्यमे इन दोनो देवोकी विशाल महत्ता सूचित होती है।

ऋग्वेदके नवम मण्डलमे सोम देवताके अधिकाश मन्त्र है। सामवेद के पूर्वार्द्धमे अग्निदेवता-विषयक ११४ मन्त्र है। इस प्रथम काण्डका नाम "आग्नेय पर्व" है। दूसरे काण्डमे इन्द्रदेवता-विषयक ३५२ मन्त्र है। इस का नाम "ऐन्द्र पर्व" है। तीसरे काण्डमे सोमदेवता-विषयक ११६ मन्त्र है। इसे "पावमान पर्व" कहा जाता है। इन क्रम-बद्ध मन्त्रोके सिवा सारी वैदिक सहिताओमे ऐसे हजारो छिट-फुट मन्त्र है, जो देवता-विषयक है। इन मन्त्रोसे देवोका वास्तव स्वरूप समझमे आ सकता है। इसी अभि-प्रायसे इन्द्र, अग्नि और सोम देवताओके सम्बन्धमें यहा कुछ विवरण दिया जा रहा है।

इन्द्र

मन्त्रोमे इन्द्रको परमात्मा, आत्मा, वीर, विद्युत् आदि कहा गया है। यूरोपीय वेदज्ञाता इन्द्रको "मेघस्थ विद्युत्" मानते है। परन्तु विचार करने पर इन्द्र बिजली ही नही, प्रत्युत सर्वशक्तिमान् विदित होते है। पाणिनि की "अष्टाध्यायी" (५.२.९३) की टीकामे भट्टोजी दीक्षितने इन्द्रियोका

शासक इन्द्रको माना है। इन्द्रसे ही इन्द्रियोको शक्ति मिलती है, ज्ञान मिलता है। फलत यहा इन्द्र आत्मा है।

निरुक्त (१० १ १९) ने इन्द्रको अन्नदाता, जलदाता, चन्द्र-रस-दाता, भूत-प्रकाशक, प्राण-दीपक, जगन्निर्माता, वैभव-शाली, शत्रु-हन्ता और याज्ञिकोका सम्मान-कर्त्ता आदि वताया है। सब १५ प्रकारसे इन्द्रकी व्युत्पत्ति यास्कने की है। ऐतरेयोपनिषद् (४ ३ १४ और ५ ३ आदि) ने इन्द्रको आत्मा, ब्रह्मा, सर्व-देव आदि कहा है। वृहदारण्यकोपनिषद् (१ ५ १२), तैत्तिरीयोपनिषद् (२ ८ १), मैत्रायणी-उपनिषद् (६ ३३), प्रश्नोपनिषद् (२ ९) आदिमे इन्द्रको क्रमश अद्वितीय, आनन्द-रूप, सूर्य और प्राण कहा गया है।

ऐतरेय-ब्राह्मण (८ ७), शतपथ-ब्राह्मण (८ ५ ३ २), जैमिनीय-ब्राह्मण (१ ३३ २), गोपथ-ब्राह्मण (उत्तरार्द्ध, ४ ११), तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३ ८ २३ २), कौषीतकि-ब्राह्मण (६ ९) आदिमे इन्द्रको क्रमश इन्द्रिय-रक्षक, सूर्य, वाणी, मन, राजा आदि वताया गया है। इसी प्रकार इन्द्रको कही (कौषीतकि-ब्राह्मण ६ १४) ब्रह्मा कहा गया है, कही (शत-पथ-ब्राह्मण ११.४ ३ १२ और तैत्तिरीयब्राह्मण २ ५ ७ ४) वलपति माना गया है, कही (ताण्ड्य-महाब्राह्मण ९ ७ ५) वीर्य कहा गया है, कही (शत-पथब्राह्मण ३ ४ २ २) सर्वदेव वताया गया है, कही (कौषीतकि-ब्राह्मण ६ १४) देवोमे वलिष्ठ कहा गया है और कही (कौषीतकि-ब्राह्मण १४ १) ज्योति माना गया है।

वैदिक सहिताओमे इन्द्रको व्यापक (विभु), विश्व-ज्ञाता (विश्व-वेदा), सर्वश्रेष्ठ देवता (देवतम.), श्रेष्ठ पिता (पितृतम), स्वय तेज-स्शाली (स्वरोचि), अमर (अमर्त्य), धर्म-विधायक (धर्मकृत्), अच्युत (अनपच्युत्) आदि कहा गया है। ऋग्वेदके एक मन्त्र (१ ५५.१) की उक्ति है, 'आकाशमे भी इन्द्रका प्रभाव विस्तीर्ण है। महिमामें पृथिवी भी इन्द्रकी समता नही कर सकती। भीषण और वली इन्द्र मनुष्योके

लिये शत्रुको जलाते है। जैसे साड अपनी सीग रगडता है, वैसे ही इन्द्र तीक्ष्ण करनेके लिये अपना वज्र रगडते है।'

ऋग्वेद (२ २० ७) मे कहा गया है, 'इन्द्र वृत्रासुरका विनाश करने वाले और शत्रु-पुरीको नष्ट करनेवाले है। उन्होने मनुके लिये जल और पृथवीकी सृष्टि की। वह यज्ञ-कर्त्ताकी इच्छा-पूर्ति करे।'

इसी वेदके २ १५ २ मे उल्लेख है—'आकाशमे इन्द्रने द्युलोकको स्थिर किया है। द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको अपने तेजसे पूर्ण किया है। उन्होने विस्तीर्ण पृथिवीका धारण करके उसे प्रसिद्ध किया है।'

१ ५४ ८ में इन्द्रकी बुद्धि और बल अतुलनीय कहे गये है। ६ ३० ४ मे कहा गया है कि 'इन्द्रके समान न तो कोई मनुष्य है, न देवता ही है।' १ ८०.१४ में लिखा है, 'वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा गर्जन सुनकर स्थावर और जगम कापने लगते है! तुम्हारे कोप-भयसे त्वष्टा भी काप जाते है।'

इन उद्धरणोसे ज्ञात होता है कि आर्य लोग इन्द्र शब्दसे भी परमात्माको जानते थे। इन्द्रकी विभूति और ऐश्वर्यका जो वर्णन किया गया है, वह परमात्मामें घटित होता है। परन्तु साथ ही आर्य लोग इन्द्रको श्रेष्ठ देव और शूर-वीर भी मानते थे। अध्यात्म-दृष्टिसे इन्द्र परमात्मा थे, अधि-दैव-दृष्टिसे श्रेप्ठ देव थे और अधिभूत-दृष्टिसे महान् योद्धा थे। सारे इन्द्र-विपयक विवरण पढनेसे ये वातें मालूम पडती है।

सहिताओमें इन्द्रकी वीरताके द्योतक वहुत शब्द आये है—असुर-हन्ता (असुरहा), महावली (सुवीर, महावीर, वीरतम आदि), सारे शत्रुओके विजेता (सजित्वान), शत्रु-पुरियोके नाशक (पुरन्दर), सेना-धनी (वाजिनीवसु), सेनापति (सेनानी), महारथी (रथितम), वज्रवाहु (वज्रहस्त), असीम-तेजस्वी (अमितौजा) आदि। इन्द्र विशेष ज्ञानी (सुवेदा), मनुज-स्वामी (नृपति), प्रजा-स्वामी (विश्पति), धनाधिपति (वसुपति), गोपालक (गोपति), सर्व-कल्याण-कारी (भद्रकृत्) आदि भी वताये गये है।

ऋग्वेद १ ५१ ९ मे इन्द्र धार्मिकोंके हितैषी कहे गये हैं। वे कई मन्त्रो (ऋ० २ १३ १०, ५ ३२ ११)मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद (पञ्च-जन) के रक्षक माने गये हैं। ऋग्वेद १.५५ ५ मे कहा गया है कि 'इन्द्र लोक-कल्याणके लिये ही युद्ध करते है।' ३ ३०.१७ मे 'दुष्ट-दलन-कर्त्ता' कहे गये हैं। १ ४ ९ मे सौ यज्ञ करनेवाले (शतक्रतु) बताये गये है। १ १७८ ३ मे वीरोके साथ उन्हे युद्धमे विजेता कहा गया है। इन्द्र शत्रुको कारागारमे रखनेवाले माने गये है (ऋ० १ ५६ ३)। इन्द्र को कपटियोके साथ कपटी कहा गया है (ऋ०१.५१ ५)। इन्द्र शत्रुके सौ नगरोको नष्ट करनेवाले कहे गये है (ऋ० १ ५३ ८)। ऋग्वेद १ ५३ ९ मे उल्लेख है, 'सुश्रवा राजाके साथ बीस राजा और साठ हजार निन्यानबे सैनिक इन्द्रसे लडनेके लिये आये थे। इन्द्रने सबको पराजित कर दिया था।' २ १८ ६ मे कहा गया है कि 'इन्द्र सौ घोड़ोके रथपर बैठाकर यज्ञमे बुलाये गये।' ३ ३० ३ मे इन्द्रके सुन्दर शिरस्त्राणका उल्लेख है। २ ३५ ६ मे इन्द्रके उच्चैःश्रवा घोडेका उल्लेख है।

ऋग्वेद १ ८० ८ मे कहा गया है कि 'इन्द्रके वज्र नब्बे नदियोंके ऊपर विस्तृत हुए थे।' २ ११ १०, २ १६.३ आदिमे इन्द्रके वज्रकी बडी प्रशसा की गयी है।

संहिताओंके मन्त्र जैसे इन्द्रको परमात्मा, देव-श्रेष्ठ और महाबली बताते हैं, वैसे ही ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंके मन्त्र इन्द्रको अद्वितीय, आत्मा, जीवात्मा, प्राण आदि कहते हैं।

अग्नि, वरुण, वायु, मरुत्, सोम, विष्णु, बृहस्पति, पूषा, ऋभु, त्वष्टा, द्यावापृथिवी, ब्रह्मणस्पति और सूर्य आदिके साथ सैकडो संहिता-मन्त्रोंमे इन्द्रकी स्तुति की गयी है और उनका वर्णन किया गया है। इन्द्र-तत्त्व वैदिक साहित्यका एक विशिष्ट प्रतिपाद्य है।

अग्नि

पहले कहा जा चुका है कि संहिताओंमें अग्नि-सम्बन्धी ढाई हजार

मन्त्र है। अग्नि विश्वमें पुरुष-शक्ति (वैश्वानर), वन-विजयी (धनञ्जय), ज्ञानोत्पादक (जातवेदा), शरीर-रक्षक (तनूनपात्), लाल घोड़ावाले (रोहिताश्व), सुवर्ण-वीर्य (हिरण्य-रेता), सात ज्वालावाले (सप्तार्चि), सात जीभवाले (सप्त-जिह्व), सारे देवोंके मुख (सर्वदेवमुख) आदि कहे गये हैं।

ऋग्वेद १ ३१मे अग्निको राजा नहुषका सेनापति कहा गया है। इसी मन्त्रमे अग्निको अंगिरा (अंगारे ?)का पुत्र भी बताया गया है। इसी मन्त्रके आधारपर कई वेदज्ञ अग्निको ऋषि मानते हैं। परन्तु मन्त्रमे ऐसी कोई बात नही है। उसमे यज्ञ-कर्त्ता नहुषका यज्ञ सम्पन्न करनेके कारण अग्नि नेता (यज्ञमें अग्र-गन्ता) मात्र कहे गये है। १० ५ ७ मे कहा गया है कि 'अग्नि सृष्टिके पहले अव्यक्त थे और सृष्टि होनेपर व्यक्त हुए। अग्नि आकाशमे सूर्य-रूपसे जनमे है। अग्नि हमसे (आप्त्य त्रित ऋषिसे) पहले उत्पन्न हुए है। अग्नि यज्ञके पहले अवस्थित थे।' १ ३१ १ में कहा गया है, 'अग्ने, देवोंमे प्रथम तुम अंगिरा ऋषि थे' अर्थात् तुम देवोंमे अंगिरा (अंगारे या आग ?) थे अथवा 'यज्ञ-मण्डपमें प्रथम आनेके कारण तुम प्रथम ऋषि थे।' इसके अगले मन्त्रका भी ऐसा ही आशय है। उसमें वायुका अग्रगामी अग्निको बताया गया है। अग्नि शरीरधारी ऋषि थे, ऐसा किसी मन्त्रसे नहीं ज्ञात होता। यज्ञके प्रथम सम्पादक होनेके कारण अग्निकी प्रशंसा, नाना प्रकारसे, की गयी है। जड-अग्निके अधिष्ठाता चेतन-अग्नि माने जाते थे, इसलिये इन्हे देव कहा गया है।

अग्निको 'मरण-धर्मवाले प्राणियोमे अमर प्रकाश' कहा गया है (६ ९ ४)। इस मन्त्रमे जठराग्निका भी उल्लेख है। १ १४८ १ मे कहा गया है—'गाछके भीतर घुसकर वायुने विविध-रूप-शाली, समस्त देवोंके कार्यमे निपुण और देवोंको बुलानेवाले अग्निको बढ़ाया। पहले देवोंने अग्निको, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यकी तरह, मनुष्यो और ऋत्विकोंकी

यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया।' १.५८ ३ मे अग्निको धन-जयी और अमर कहा गया है। ४ ६ २ मे अग्निको देव-दूत वताया गया है।

भागवत गीताके ज्ञानाग्नि, इन्द्रियाग्नि आदि और गर्भोपनिपद् के 'ज्ञानाग्नि', 'दर्शनाग्नि', 'कोष्ठाग्नि' आदिके समान वेदोमे भी अनेक अग्नियोका उल्लेख है। वैदिक गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि और दक्षिणाग्नि तो प्रसिद्ध है ही। परन्तु ऋग्वेदके १ २६ १०, ३ २४ ४, ६ १० २, ५ ६ ६ आदिमे अनेक अग्नियोका वर्णन है।

अग्निको कही (ऋग्वेद ७ ३ १) यज्ञ-दूत, कही (८ ६० १) होता, कही (४ ६ ८) हव्यभाजी और सुन्दर-वदन, कही (५ ११.२) इन्द्रके समकक्ष, कही (१० १२२ ४) यज्ञकी पताका, कही (१० २० २) युवक और सवके मित्र, कही (३ २३ १) क्रान्त-कर्मा आदि कहा गया है।

इन्द्र और अग्निके मन्त्रोमे उपमाएँ बहुत आयी है। जहा-कही इन्द्र और अग्निकी स्तुति की गयी है वा इनका वर्णन किया गया है, वहा इनके विशेषणोकी भरमार है। ये विशेषण इनके गुण-बोधक है। इन विशेपणोसे इन्द्र और अग्निका स्वरूप समझनेमे बडी सहायता मिलती है।

सूर्य, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम, मरुत्, वरुण, विष्णु, वायु आदिके साथ अनेकानेक मन्त्रोमे अग्निकी स्तुति की गयी है, प्रशसा की गयी है और वर्णन किया गया है।

इन्द्र और अग्निके सैकडो मन्त्र और मन्त्राश कई-कई वार कहे गये है। सोम, मरुत्, मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देवोके मन्त्र भी पुनरुक्त हुए है। हो सकता है कि जटिल सन्दर्भोको सुगम और वोध-गम्य वनानेके लिये वा विषयोको दृढ करनेके लिये पुनरुक्तिया की गयी हो।

सोम

आर्य सोमके अत्यन्त अनुरागी थे। वैदिक संहिताओके दशमाश मन्त्र सोमकी स्तुति, प्रशसा और विवरणसे परिपूर्ण है। इन्द्र और अग्निको

छोडकर वेदोमें सोमके सम्बन्धमे जितने मन्त्र है, उतने किसी भी देवताके सम्बन्धमे नही है ।

सोमको ओषधीश (वीरुधा पति —ऋग्वेद ९ ११४ २, अथर्ववेद ५ २४ ७), चन्द्र (इन्दु—ऋ० ९ ८६.४१, ९ ६६ २५), अमृत (पीयूष—ऋग्वेद ९ ५१ २, ९ ९७ ३२), पवमान (९ ६६.२५) आदि कहा गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थोमें सोमको ज्योति (शतपथ-ब्राह्मण ५ १ ५ २८), श्री (शतपथ० ४ १ ३ ९), राजा (तैत्तिरीय-ब्राह्मण २ ५ ७ ३), चन्द्रमा (कौषीतकि-ब्राह्मण ७ १०, शतपथ० १० ४.२ १), प्रजापति (शतपथ० ५ १ ३ ७), विष्णु (शतपथ० ३ ३ ४ २१), वायु (शतपथ० ३ ७ १ १), पर्ण (शतपथ० ६ ५ १ १), पलाश (कौषीतकि-ब्राह्मण २ २), दधि (कौषीतकि० ८ ९), यश (तैत्तिरीय-ब्राह्मण २ २.८ ८), अन्न (ताण्ड्यमहाब्राह्मण ६ ६ १), हवि (शतपथ० ३ ५ ३ २), ब्राह्मण (ताण्ड्य-महाब्राह्मण २३ १६.५), वीर्य (कौषीतकि० १३ ७, शतपथ० ३.३ २ १), दुग्ध (शतपथ० १२ ७ ३ १३), पुरुष (तैत्तिरीय-ब्राह्मण १ ३.३ ४—"पुमान्वै सोम स्त्री सुरा"), सुवर्ण (तैत्तिरीय-ब्राह्मण १ ४ ७ ४—५) आदि बताया गया है ।

ये सोमके गुण-बोधक विशेषण है—इन विशेषणोके कुछ न कुछ गुण सोममें है । लाक्षणिक रूपसे सोमको चन्द्रमा भी कहा गया है। चन्द्रमाको देखकर जैसे हर्ष होता है, उमग बढती है, वैसे ही सोम-पानसे भी। सुश्रुत-सहिता, २९ अध्याय, २१—२२ श्लोकोके अनुसार 'शुक्ल पक्षमें जैसे एक-एक कला चन्द्रमा बढते-बढते पूर्णिमाको पूर्णता प्राप्त करते है, वैसे ही सोम भी शुक्ल पक्षमें एक-एक पत्ता बढते-बढते पूर्णिमाको १५ पत्तियोसे युक्त हो जाता है। सोमवल्लीमें सब १५ पत्ते होते है। कृष्ण-पक्षमे क्रमश एक-एक पत्ता गिरता जाता है और जैसे अमावास्याको चन्द्रमा लुप्त हो जाते है, वैसे ही सोमके सारे पत्ते भी अमावास्याको लुप्त हो जाते है ।' इन गुणोकी समानताके कारण ही सोमको चन्द्रमा कहा गया है ।

वस्तुत सोम सबसे मूल्यवान् और शक्तिशाली जडी अथवा औषधि था। यह आरोग्य, आनन्द, वीर्य, प्रतिभा, मेधा आदि प्रदान करनेवाला था। इसीलिये इसकी लाक्षणिक रूपसे इतनी महिमा बखानी गयी है। अत्युपकारक होनेसे जैसे इन्द्र तथा अग्निकी स्तुतिमे इन्द्र और अग्नि को सब कुछ कह दिया गया है, वैसे ही अत्युपकारी होनेसे सोमका भी इतना गुण-गान किया गया है।

मूजवान् (हिमालयस्थ पर्वत), शर्यणावान् (कुरुक्षेत्रस्थ तडाग वा झील), आर्जीकीया (व्यास नदी), सुषोमा (सोहान नदी), सिन्धु आदि सोमकी उत्पत्तिके स्थान माने गये है। यह गिरिष्ठा (ऋग्वेद ९ ६२ ४, ९ १८ १) कहा गया है अर्थात् यह पर्वतपर होता था। हो सकता है कि इन नदियोके उद्गम-स्थानके पर्वतोपर भी सोम उत्पन्न होता हो।

सोमके सम्बन्धमे "**सामवेदकी संहिताएँ**" नामके अध्यायमे कुछ विवरण दिया गया है, इसलिये यहा विशेष बाते ही लिखी जा रही है। सोम-वल्लीके पत्ते हरे, सावले और कुछ-कुछ लाल बताये गये है। कुछ पत्ते सुनहले रगके भी कहे गये है। इसके भाति-भातिके वर्णन मिलते है।

युद्ध-भूमिमे जाते समय आर्य सोम पीते थे। पीते ही पीते उनमे उमग, तरग और प्रतिभा प्रस्फुटित हो जाती थी। स्तुति-पाठ और वक्तृत्वकी शक्ति बढ जाती थी। पान करनेवाला उच्च भावो और आनन्द मे डूब जाता था। बुद्धि-वृद्धि करना इसका विशेष गुण था। यह बूढेको तारुण्य प्रदान करता था। असीम बल बढा देता था। शरीरको रोग-रहित कर देता था। जानवरोको भी सोम-रस पिलाया जाता था। सोम-रस पीनेवाली गायोके दूधमे सोमका गुण आ जाता था। इसमे घृत, दधि, दूध, मधु, जल, सत्तू आदि भी मिला दिये जाते थे। यज्ञमे १८ ऋत्विक्, ३३ देव और कुछ सदस्य इसे पीते थे। यज्ञमे सोमरसमे इक्कीस गायोका दूध मिलानेकी भी विधि है।

ये ही सव कारण है कि देव और मनुष्य, सबकी इसमे चूडान्त आसक्ति थी।

सोमके सम्वन्धमे कितनी ही आलकारिक कथाएँ भी वैदिक साहित्य मे है। उनके यहा लिखनेकी आवश्यकता नही। आश्चर्य तो यह है कि इतनी महत्त्व-पूर्ण औषधि क्योकर दुर्लभ्य हो गयी? वैदिक सहिताओका दशमाश जिसके वर्णन, प्रशसा और स्तुतिसे परिपूर्ण है, वह अनमोल वस्तु जगती-तलसे कैसे उठ गयी? हिमालय आदिमे सुश्रुतमें कहे २४ प्रकार के सोमकी प्राप्तिकी सम्भावना बतायी जाती है। क्या कुछ साहसी वेद-भक्त और वैद्य इसकी खोजके लिये चेप्टा नही कर सकते? यदि यह वस्तु उपलब्ध हो गयी, तो ससारमे युगान्तर उपस्थित हो जायगा।

सहिताओके अनेकानेक मन्त्रोमे पूषा, अदिति, रुद्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वृहस्पति, अर्यमा, सविता आदिके साथ सोमका यश—स्तवन किया गया है।

इन्द्र और अग्निकी तरह ही सोमके मन्त्रोमे भी वडी उपमाएँ आयी है। मन्त्रोमे सोमके गुण-वोधक विशेषण भी वहुत हैं। सोमके मन्त्रोमे भी पुनरुक्तिया हैं। प्रत्येक देवताका स्वरूप समझनेके लिये उनकी उपमा ओ, उनके मन्त्रान्तर्गत विशेषणो और उनके पुनरुक्त मन्त्रोका अध्ययन करना परमावश्यक है। जिस देवताका स्वरूप समझना हो, उसके सम्वन्ध के वैदिक साहित्यके समस्त मन्त्रोका अध्ययन करना अनिवार्य है। नमूने के तौरपर यहा इन तीन देवोका उल्लेख किया गया।

चतुस्त्रिंश अध्याय

वैदिक संहिताओंके पदपाठकार

पदो और शब्दोका विच्छेद, स्वराकन (अवग्रह तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) आदि बतानेवाले पदपाठकार कहे जाते हैं। ये भी एक तरहसे वैदिक सहिताओके भाष्यकार हैं। पदपाठकार प्राय ऋषि, महर्षि हैं। पदपाठोके साहाय्यसे पदोकी प्रकृति, प्रत्यय और समासोका रूप आदि विदित हो जाते हैं। ये पदपाठ बड़े प्रामाणिक माने जाते हैं। अधिकाश विषयोको बतानेके लिये पदपाठकार अवग्रह (ऽ)का प्रयोग करते हैं।

पदपाठ कई प्रकारके होते हैं। विभिन्न सहिताओके विविध पद-च्छेद भी पाये जाते है। इन सबका तुलनात्मक अध्ययन करनेवाला ही प्रकृत वेदार्थ समझनेका अधिकारी है। वेदोंके भाष्य-टीका-कारोने पद-पाठोकी सहायता लेकर अपनी भाष्य-टीकाएँ लिखी है। पद-पाठ-कारो और भाष्य-टीका-कारोका एक बड़ा समूह है, जिनके पद-पाठो और भाष्य-टीकाओको देखकर वैदिक साहित्यकी विशालता और व्यापकताका अनुमान होता है।

ऋग्वेदीय पदपाठकार

ऋग्वेद (शाकल-सहिता) के पदपाठकार शाकल्य हैं। महर्षि सत्यश्रिय के तीन शिष्य थे—देवमित्र शाकल्य, शाकपूणि रथीतर और बाष्कलि भरद्वाज। ये तीनो ही शाखा-प्रवर्त्तक थे। पुराणोसे विदित होता है कि शाकल्यने पांच संहिताएँ वनायी थी। इन्हे 'स्थविर शाकल्य' और 'विदग्ध शाकल्य' भी कहा गया है। ऋक्प्रातिशाख्य और निरुक्तमें शाकल्यका उल्लेख है। शाकल्य राजर्षि जनकके विख्यात यज्ञमे उपस्थित थे। वहा इनका जनकसे सवाद हुआ था।

ऋग्वेदका शाकल्य-विरचित पद-पाठ कई स्थानोंमें छप चुका है। शाकल्यके पदपाठसे एक-दो स्थलोंपर यास्कका मत-भेद पाया जाता है। ऋग्वेदके वालखिल्य सूक्तोंका पदपाठ भी उपलब्ध है। परन्तु इनके कर्त्ता का पता नहीं चलता।

रावणका भी ऋग्वेदीय पदपाठ पाया जाता है। कहीं-कहीं शाकल्यने रावणका मतभेद है। ऋग्वेदके १० १२६ १ में शाकल्य 'कुहकस्य'को दो पद मानते हैं—कुह कस्य। परन्तु रावणके मतमें कुहकस्य एक ही पद है, जिसका अर्थ किया गया है, ऐन्द्रजालिकस्य। परन्तु स्वरकी दृष्टिसे शाकल्य ऋषिका पाठ ही उपयुक्त है।

यजुर्वेदीय पदपाठकार

तैत्तिरीय-संहिताके पदपाठकार महर्षि आत्रेय हैं। स्कन्द-महेश्वरने 'निरुक्त-भाष्य-टीका' (२ १३) में पदकार आत्रेयका उल्लेख किया है। बौधायन-गृह्यसूत्र (३ ९ ७) का मत है कि 'ऋषितर्पणमें पदपाठकार आत्रेयका भी स्मरण करना चाहिये।' "तैत्तिरीय-संहिता-पदपाठ सस्वर" वैद्यनाथ शास्त्री और नारायण शास्त्रीने "कुम्भकोणम्"से प्रकाशित किया है। इस पद-पाठसे तैत्तिरीय-संहिताके भाष्यकार भट्ट भास्करका कहीं-कहीं मतभेद है।

मैत्रायणी-संहिताके दो प्रकारके पद-पाठ प्राप्त हैं। स्वर-चिह्नोंके विचारसे पहला पदपाठ ऋग्वेद-संहितासे मिलता है और दूसरा कापिष्ठल-संहितासे मिलता है। दोनों पदपाठोंके कर्त्ता अज्ञात हैं।

माध्यन्दिन-संहिताके पदपाठकार भी महर्षि शाकल्य हैं। भाष्यकार आनन्दबोध और महीधरका इस पदपाठसे यत्र-तत्र मत-द्वैध है। कुछ लोग कहते हैं कि माध्यन्दिनके पदपाठकार शाकल्य नहीं हैं। तब कौन है? इसका उत्तर वे नहीं देते! परन्तु इस पद-पाठमें ही लिखा है कि 'यह शाकल्य-कृत है।'

काण्वसहिताका भी पद-पाठ प्राप्त है, परन्तु इसके कर्त्ताका पता नही चलता ।

सामवेदीय पद्पाठकार

कौथुम-संहिताके पद-पाठकार गार्ग्य है। इसी पदपाठको लक्ष्य कर यास्कने निरुक्तमे अनेकानेक शब्दोका अर्थ किया है । इस पदपाठमे नवीनता यह है कि इसमे शब्दोको ही अलग-अलग नही किया गया है, शब्दांशोका भी पदच्छेद किया गया है। जैसे—अन् + ये = अन्ये, मि + त्रम् = मित्रम्; स + ख्ये = सख्ये, चन्द्र + मस = चन्द्रमस , दु + आत् = दूरात् इत्यादि।

अथर्ववेदीय पद्पाठकार

शौनक-सहिताका पदपाठ प्राप्त है, परन्तु इसके कर्त्ताका नाम अज्ञात है। इसका पदपाठ प्राय ऋग्वेदके समान ही है। इसमे अवग्रह (ऽ) के स्थानमे विन्दु (०) दिया जाता है।

उपर्युक्त सहिताओके पदपाठोके अतिरिक्त अन्य सहिताओके पदपाठ अनुपलब्ध है।

विशेष

शाकलसहिता और शौनकसहिताके पद-पाठोमे अवग्रह दिखानेके लिये शब्दोकी आवृत्ति नही की जाती। जैसे—

पुरःऽहितम् (ऋग्वेद १.१.१)।

त्रि ० सप्ताः (अथर्ववेद १.१.१)।

अन्य सहिताओके पद-पाठोमे अवग्रह दिखानेके लिये शब्दोंकी आवृत्ति की जाती है और प्राय 'इति'का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे—

श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठऽतमाय (यजुर्वेद १.१)।

श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठ ऽ त मा य (तैत्तिरीय १.१.१ और मैत्रायणी १.१.१)।

हे व्यं दा तये हे व्यं दा तये (सामवेद पू० १.१.१)।*

काण्वसहिताके एक पदपाठमे भिन्न रीतिसे स्वराकन होता है–

प्रजावतीरिति प्रजा ऽ वती. (१.१)।

इसमे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, तीनोके चिन्ह् लगते है।

---

* इस "वैदिक साहित्य" ग्रन्थमें सक्षेप और सुगमताके लिये 'शाकल-सहिता'के स्थानपर ऋग्वेद, 'माध्यन्दिन-सहिता'के स्थानपर यजुर्वेद, 'कौथुमसहिता'के स्थानपर सामवेद और 'शौनकसहिता'के स्थानपर अथर्ववेद शब्दोका सर्वत्र प्रयोग किया गया है। पाठक इस बातको बराबर ध्यानमें रखें। अन्य सहिताओके तो नाम ही दिये गये है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है।

पञ्चत्रिंश अध्याय

वैदिक भाष्य-टीका-कार

वेदोके सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि भागोपर हजारो वर्षोसे कितने ही भाष्य लिखे गये और कितनी ही टीकाएँ रची गयी, तो भी मानवकी तृप्ति नही हुई। न मालूम अभी और कितनी भाष्य-टीकाएँ लिखी जायगी, तो भी नही कहा जा सकता कि मनुष्य सन्तुष्ट हो जायगा। वेदोके अगणित सूक्त और मन्त्र ऐसे है, जिनमेसे एक-एकपर एक-एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। वैदिक साहित्य और वैदिक सस्कृतिकी गरिमा और महिमा भली भाति समझ जानेपर ऐसा समय आ सकता है, जब एक-एक सूक्त और एक-एक मन्त्रपर एक-एक ग्रन्थ लिखा जायगा।

अवतक वैदिक साहित्यपर इतनी भाष्य-टीकाएँ लिखी जा चुकी है, जिनकी विशालता देखकर महान् आश्चर्य होता है। अवश्य ही इनका अधिक भाग अप्रकाशित और अप्राप्य है। अनेक भाष्य-टीकाकारोकी केवल नामावली मिलती है और अनेकके तो नाम तक नही मिलते—"केचन", "अन्य आह", "अपर आह", "कश्चिदाह", "सम्प्रदायविद.", "आचार्या", "एके", "अन्ये", "अपरे" आदि देखकर अनुमान भर होता है।

स्थान-सकोचके कारण यहा केवल चारो वेदोकी कुछ सहिताओके भाष्य-टीका-कारो और निघण्टु-निरुक्तके भाष्य-टीकाकारोका ही उल्लेख किया जायगा। इस उल्लेखसे विराट् वैदिक साहित्यका कुछ अनुमान लगाया जा सकेगा।

ऋग्वेद (शाकलसंहिता)

१ स्कन्द स्वामी

ऋग्वेदके ज्ञात भाष्यकारोमे प्राचीनतम भाष्यकार स्कन्द स्वामी माने जाते है। हरिस्वामी, आत्मानन्द, वेंकट माधव, सायण, देवराज यज्वा आदिने स्कन्द स्वामीको अपने भाष्योमे उद्धृत किया है। ये वलभीके निवासी थे। विक्रमीय सवत् ६८७ मे इन्होने ऋग्वेदपर भाष्य लिखकर पूरा किया। सायणाचार्यकी ही तरह स्कन्दका भाष्य भी याज्ञिक है। वेदार्थ समझनेमे स्कन्दने छन्दोज्ञानको अनावश्यक माना है, परन्तु प्रत्येक सूक्तके पहले अनुक्रमणियोके देवता और ऋषिका ज्ञान करानेवाले श्लोकाशोको उद्धृत किया है। इन्होने "केचित्" लिखकर ऋग्वेदके प्राचीन भाष्यकारोके मन्तव्योको उद्धृत किया है। परन्तु अवतक इन प्राचीन भाष्यकारोके नाम तक नही मिल सके !

ऋग्वेदके प्रथमाष्टकका सम्पूर्ण स्कन्द-भाष्य प्राप्त है। द्वितीयसे पचम अष्टकोतकका तो खण्डित स्कन्द-भाष्य ही उपलब्ध है। इस भाष्यका कुछ अश प्रसिद्ध वेदज्ञ प० साम्बशिव शास्त्रीने प्रकाशित किया है। त्रिवेन्द्रम् और अड्यारके पुस्तकालयो तथा मद्रासके राजकीय पुस्तकालयमें स्कन्द-भाष्यके हस्त-लेख है।

वेंकट माधवके मतसे स्कन्द स्वामी, नारायण और उद्गीथने मिलकर ऋग्वेद-भाष्य लिखा। डा० कुन्हन राजाका भी यही मत है। कई वेदज्ञाताओके मतसे ऋग्वेदके प्रथम भागोपर स्कन्दने, मध्य भागोपर नारायणने और अन्तिम भागोपर उद्गीथने भाष्य लिखा था।

२ नारायण

ये स्कन्द स्वामीके सहकारी भाष्यकार थे। ऋग्वेदके पचम और सप्तम अष्टकोके कुछ अशोपर इनका भाष्य मिला है। नारायणने आश्वलायन-श्रौत-सूत्रपर एक वृत्ति भी लिखी है। इनका विशेष विवरण नही मिलता। कहते है, सामवेद-विवरणकार माधव इनके ही सुपुत्र थे।

३ उद्गीथ

जैसा कि लिखा जा चुका है, उद्गीथ स्कन्द स्वामीके सहकारी थे। ऋग्वेदके १० म मण्डल, ५ म सूक्त, ७ म मन्त्रसे लेकर ८३ वे सूक्तके ५ म मन्त्रतकका उद्गीथ-भाष्य उपलब्ध है। उद्गीथने निरुक्त, बृहद्देवता, देवतानुक्रमणी आदिका उल्लेख किया है। इन्होने "केचित्" लिखकर प्राचीन भाष्यकारोकी ओर भी सकेत किया है। आत्मानन्द और सायणाचार्यने अपने भाष्योमे उद्गीथका उल्लेख किया है।

उद्गीथ-भाष्य भी याज्ञिक है। कुछ लोगोका मत है कि अनेक स्थलोमे सायण-भाष्य स्कन्द स्वामी और उद्गीथके भाष्योकी छाया है। तीनों ही याज्ञिक भाष्यकार है, इसलिये ऐसी छाया मालूम पड सकती है। उद्गीथने प्रत्येक सूक्तके आरम्भमे अपनी सस्कृतमे ही ऋषि, देवता आदिका उल्लेख किया है। उद्गीथ-भाष्यके कुछ अश छप चुके है।

कहा जाता है, उद्गीथ भी वलभीके निवासी थे।

४ हस्तामलक

सुप्रसिद्ध हस्तामलकने भी ऋग्वेदपर भाष्य लिखा था। हस्तामलक शकराचार्यके प्रसिद्ध शिष्य थे। ये आश्वलायन-शाखी थे। इनका भाष्य विक्रमीय सवत् ७५७ मे लिखा गया था। भाष्य अप्रकाशित है।

५ वेंकट माधव

ये चोल देश (काबेरी नदीके दक्षिणी तटके गोमान ग्राम) के निवासी थे। इनका गोत्र कौशिक था और इनकी माताका गोत्र वासिष्ठ था। इनके पितामहका नाम माधव था और पिताका नाम वेकट वा वेकटार्य था। इनके नानाका नाम भवगोल था और माताका नाम सुन्दरी था। इनके छोटे भाईका नाम सकर्षण था। इनके दो पुत्र थे, वेकट और गोविन्द।

वेकट माधवके 'ऋगर्थ-दीपिका'-भाष्यका प्राय. सम्पूर्ण हस्तलेख मिल चुका है। यह भाष्य लाहोरसे आधा छप भी चुका है। देशके विभाजनके

कारण इसका अवशिष्ट हस्तलेख पाकिस्तान सरकारके हाथमें चला गया है। नही कहा जा सकता कि यह मूल्यवान् भाष्य कबतक छपेगा। इसके प्रकाशक (मोतीलाल बनारसीदास) इसे शीघ्र छपानेकी चिन्तामे है।

यह भाष्य भी सायणके भाष्यकी ही तरह याज्ञिक है। यह भाष्य सायण-भाष्यके समान विस्तृत नही है, किसी टीकाकी तरह अत्यन्त सक्षिप्त है। वेंकट माधवका विश्वास था कि जो ब्राह्मण-ग्रन्थोके विद्वान् नही है, वे ऋग्वेदार्थ नही समझ सकते। जो निरुक्त और व्याकरणके ही पण्डित हैं, वे ऋग्वेद-सहिताका केवल चतुर्थांश जानते है–

"सहितायास्तुरीयांश विजानन्त्यधुनातना:।
निरुक्त–व्याकरणयोरासीद्येषां परिश्रम.॥"

कुछ वेदज्ञोका मत है कि वेकट माधवके दो भाष्य थे। जो भाष्य प्रकाशित हो रहा है, वह प्रथम भाष्य है। अभी तो यही पूरा नही छपा, द्वितीय कब छपेगा, भगवान् जाने। प्रथमका चौथा भाग छप रहा है।

वेंकट माधवका काल ग्यारहवी शताब्दी माना जाता है।

६ लक्ष्मण

इन्होने वेद-भूषण नामका कोई वेद-भाष्य लिखा था, जो अप्राप्य है। इनका काल बारहवी शताब्दी है।

७ धानुष्कयज्वा

कहा जाता है कि इन्होने ऋक्, यजु, साम–तीनो वेदोपर भाष्य लिखा था। परन्तु किसी भी वेदपर इनका भाष्य उपलब्ध नही है। इनका समय तेरहवी शती है।

८ आनन्दतीर्थ

ये मध्व-सप्रदाय (द्वैत सिद्धान्त) के आचार्य थे। इनके मध्व, पूर्णप्रज्ञ आदि भी नाम है। इन्होने ऋग्वेदके प्रथम चालीस सूक्तोपर ही भाष्य लिखा

थां। इनका अर्थ भगवत्परक है। इन्होने वेदका प्रतिपाद्य नारायणको बताया है। जयतीर्थने इस भाष्यपर टीका लिखी है। जयतीर्थकी टीकापर नरसिंहकी विवृति है। राघवेन्द्र यतिने तो इस भाष्यपर स्वतन्त्र व्याख्यान ही लिखा है। इन्ही राघवेन्द्रके शिष्य नारायणने भी जयतीर्थकी टीकापर एक विवृति लिखी है।

आनन्दतीर्थका काल १२५५–१३३५ माना जाता है। ये ८० वर्ष तक जीवित थे।

९ आत्मानन्द

ऋग्वेदके १ म मण्डलके १६४ वे सूक्तका प्रथम मन्त्र "अस्य वामस्य" पदोसे प्रारम्भ हुआ है, इसलिये इस सूक्तका नाम **"अस्य वामीय सूक्त"** रख दिया गया है। इसमे अत्युच्च कोटिकी आध्यात्मिक विवृति है। एक तरहसे यह सूक्त भी अद्वैतवादका आधार है। प्रसिद्ध अद्वैतवादी विद्वान् आत्मानन्दने इस सूक्तपर आध्यात्मिक भाष्य लिखा है। भाष्य महत्त्वपूर्ण है। भाष्यकारने अपने भाष्यमे अनेकानेक अलभ्य ग्रन्थोका भी उल्लेख किया है। इनका काल तेरहवी शताब्दी है।

१० सायण

वैदिक भाष्यकारोमे सायण महाप्रतिभाशाली थे। वे मेधावी मनीषी ही नही, विजयनगरके बुक्क प्रथम, कम्पण, सगम (द्वितीय) और हरिहर (द्वितीय) के मन्त्री भी रह चुके थे। उन्होने चम्प-नरेन्द्रको पराजित किया था।

सायणके पिताका नाम मायण, माताका श्रीमती, बड़े भाईका माधव, छोटे भाईका भोगनाथ, स्वामीका सगम और गुरुका नाम श्रीकण्ठनाथ था। सायणका गोत्र भारद्वाज और सूत्र बौधायन था। सायणके कम्पण, मायण और शिंगण नामके तीन पुत्र थे। सायण १४ वी शताव्दीमे थे और ७२ वर्षकी अवस्थामे उन्होने देह-त्याग किया था।

सायगका ऋग्वेद-भाष्य याज्ञिक है, यह लिखनेकी अब आवश्यकता नही। सायण-भाष्यमे स्कन्द स्वामी, नारायण और उद्गीथके याज्ञिक भाष्योकी कही-कहीं झलक दिखाई देती है।

सायणकी वेद-शाखा तैत्तिरीय है। कहा जाता है कि ऋग्वेदका भाष्य लिखनेके पहले सायण तैत्तिरीय-सहिता, तैत्तिरीय-ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यकपर भाष्य लिख चुके थे। सायणने काण्व, कौथुम और शौनक सहिताओपर भी भाष्य लिखा है। सामवेदके प्रसिद्ध आठो ब्राह्मणो, ऐतरेयारण्यक, ऐतरेयोपनिषद् (दीपिका), सामप्रातिशाख्य आदिपर भी सायणका भाष्य उपलब्ध है। सायणके बनाये ये पाच ग्रन्थ भी है—सुभाषित-सुधानिधि, प्रायश्चित्त-सुधानिधि, अलकार-सुधानिधि, पुरुषार्थ-सुधानिधि और यज्ञयन्त्र-सुधानिधि। सायण-विरचित एक धातुवृत्ति भी पायी जाती है।

सायणके वेद-भाष्योके निर्माणमे नरहरि सोमयाजी, नारायण वाज-पेययाजी और पण्डरी दीक्षित आदि सहकारी थे।

सायण-भाष्यमें शाट्यायन, हारिद्रविक और चरक ब्राह्मण उद्धृत है। शाट्यायन-ब्राह्मण अब मिल चुका है। माधव भट्ट (वेकट माधव), भट्टभास्कर, भरत स्वामी, कपर्दी स्वामी आदि भी सायण-भाष्यमें उद्धृत है।

राजनीतिमे दुरूह मन्त्रित्वका कार्य करते हुए भी सायणने कैसे इतने ग्रन्थ और भाष्य लिखे, यह स्मरण कर सायणकी अद्भुत और अद्वितीय प्रतिभा तथा मेधापर विस्मित और विमुग्ध होना पडता है! सायणके सब भाष्य, कई स्थानोसे, छप चुके है।

वैदिक सहिताओमें सबसे बडी शाकल-सहितापर वेकट माधवका 'प्राय' समग्र भाष्य उपलब्ध होनेपर भी अभीतक अधूरा ही छपा है। "प्राय" इसलिये कि माधव-भाष्य कही-कही खण्डित है। वह अत्यन्त सक्षिप्त भी है। परन्तु सायण-भाष्य पूर्ण है, विस्तृत है और देश-विदेशमे

सम्पादित तथा प्रकाशित है। वस्तुत वेद-विज्ञानकी ज्योति पानेके लिये एक बडा आधार महाविद्वान् सायणाचार्यके वेद-भाष्य है ।

सायण अपने अग्रज माधवके इतने भक्त थे कि उनका नाम सायण-माधव वा केवल 'माधव' भी पड गया ! सायणने अपने भाष्यको 'माधवीय' लिखा है। सायणने माधवसे अध्ययन भी किया था।

११ रावण

बहुत लोग सायण-भाष्यको ही ऋग्वेदीय रावण-भाष्य कहते हैं। उनकी धारणा है कि अक्षर-विपर्यय होकर सायणका रावण बन गया है। परन्तु बात ऐसी नही है। मल्लारि, दैवज्ञ सूर्य पण्डित आदिके लेखोसे विदित होता है कि रावणका ऋग्वेद-भाष्य प्रसिद्ध भाष्योमेसे है। हाल साहबने तो रावण-भाष्यके प्राप्त अशको प्रकाशित भी किया है। सायण का भाष्य आधिदैविक (याज्ञिक) है और रावणका भाष्य आध्यात्मिकता लिये हुए है। वेदान्ती आत्मानन्दका भाष्य प्रायः रावण-भाष्यके सदृश है।

रावणने यजुर्वेदपर भी भाष्य किया था, जो अनुपलब्ध है।

रावणने ऋग्वेदका पद-पाठ भी किया था। इसका कुछ हस्तलेख प्राप्त है। यह केवल ऋग्वेदके सप्तमाष्टकका है। उद्गीथ और दुर्गाचार्य ने रावणके पद-पाठका समर्थन किया है।

यदि रावणके सम्पूर्ण ऋग्यजुर्भाष्य और पद-पाठ मिल जाते, तो भाष्य-कार जगत्मे युगान्तर उपस्थित हो जाता। अनेक सन्देहोका निराकरण भी हो जाता और कुछ आध्यात्मिक वेदार्थका रहस्य भी स्पष्ट हो जाता ।

वेद-भाष्यकार रावण लकाधिपति रावण था या दूसरा ? इस बात के निर्णयका कोई उपाय नही है। बाल्मीकि-रामायणसे यह तो पता चलता है कि रावण उद्भट विद्वान् था—वेद-वेदाग-पारग था।

ससारमे रावण, हिरण्यकशिपु, कस जैसे कुख्यात नाम रखनेवाले भी तो कदाचित् ही मिले !

तो क्या वेद-भाष्यकार लकेश्वर ही था ? भगवान् जाने। भाष्यकार रावणका काल-निर्णय करना विकट कार्य है।

१२ मुद्गल

मुद्गल-भाष्य प्रथमाष्टकपर पूर्ण और चतुर्थाष्टकपर पाच अध्यायो तक मिलता है। मुद्गल सायणानुयायी है—एक तरहसे सायण-भाष्यका ही सक्षेप मुद्गल-भाष्य है। मुद्गलका काल १५ वी शताब्दी है।

१३ चतुर्वेद स्वामी

इन्होने ऋग्वेदके कुछ अशोपर भाष्य लिखा था। ये श्रीकृष्णके अनन्य अनुरागी भक्त थे। इन्होने मन्त्रोका अर्थ श्रीकृष्ण-परक किया है। इनके अर्थसे कोई भी भाष्यकार सहमत नही है। इन्होने पूतना और कस का बध, गोवर्द्धन-धारण, कौरव-पाण्डव-युद्ध, सब कुछ ऋग्वेदके एक ही मन्त्र (१० ११३ ४) से निकाल डाले है ! इनकी अनल्प कल्पना निराली है ! ये १६ वी शताब्दीमे थे।

१४ देव स्वामी

महाभारतके टीकाकार विमलबोधके लेखसे अनुमान होता है कि देव स्वामीने ऋग्वेदपर भाष्य लिखा था। ऋग्वेदके आश्वलायन-श्रौत-सूत्र और आश्वलायन-गृह्य-सूत्रपर देवस्वामीका भाष्य उपलब्ध है। यह विक्रमकी प्रथम शताब्दीके पूर्वके है।

१५ स्वामी दयानन्द

आधुनिक युगमे सर्वाधिक वेद-प्रचार स्वामी दयानन्द सरस्वतीने किया है। स्वामीजी वेद-विद्याके अनन्य भक्त और विद्वान् थे। उनके वेद-ज्ञानके कुछ विदेशी भी कायल थे।

स्वामीजीका जन्म सवत् १८८१ मे (कदाचित् आश्विन-कृष्णा सप्तमीको) हुआ था। उनका नाम मूलजी वा मूलशकर था। वे सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। उनके सन्यास-गुरु मथुराके स्वामी विरजानन्द थे। अपने गुरुदेवसे ही स्वामीजीने व्याकरण आदि पढे थे।

स्वामीजीने सवत् १६३३ (भाद्रपद-शुक्ला प्रतिपद्) मे ऋग्वेदपर भाष्य लिखाना प्रारम्भ किया था। भाष्य सरल सस्कृतमे है। साथ ही भाष्यका हिन्दी-अनुवाद भी है। यह भाष्य विना पूर्ण किये ही स्वामीजी सवत् १६४० की दीपावलीके दिन स्वर्गवासी हो गये। ऋग्वेदके ७ म मण्डल, २ य सूक्त, २ य मन्त्रतक ही यह भाष्य हो सका था।

इसके पहले स्वामीजीने 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' लिखी थी, जो सवत् १६३५ मे ही छप चुकी थी। इसमे चारो वेदोकी प्रस्तावना है।

स्वामी दयानन्द देवतावाद नही मानते। उन्होने निरुक्तकारोके तीन देवोकी पूजा, याज्ञिकोके तैतीस देवोकी स्तुति और पाश्चात्त्योकी अग्नि आदि जड वस्तुओकी आराधनाका खण्डन कर वेदमे एकेश्वरवादकी स्थापनाकी चेष्टा की है। उन्होने अग्नि आदि अनेक देव--नामोका अर्थ परमात्मपरक किया है। उनका मत है कि वैदिक सूक्त विभिन्न नामोसे एक ईश्वरके ही गीत गाते है।

किसी भी पूर्व भाष्यकारके मतसे स्वामीजीका मत पूरा नही मिलता। वे अद्वैतवादी वेदान्ती भी नही थे। वे वेदोको नित्य तो मानते है, परन्तु ब्राह्मणादिको नही। वे वेदोमे इतिहास नही मानते। वैदिक शब्दोको यौगिक और योगरूढ मानते है, रूढि नही। वे वाचकलुप्तोपमासे अनेकानेक मन्त्रोका भावार्थ निकालते है। स्वामीजी भी रावणकी ही तरह कही-कही शाकल्य-भिन्न पद-पाठ स्वीकार करते है। सर्वानुक्रमणीसे भिन्न कही-कही देवता भी मानते है। एक-एक शब्दके वे विविध अर्थ भी मानते है। वे इन्द्र शब्दका अर्थ कही ईश्वर, कही सूर्य, कही वायु, कही जीवात्मा और कही विद्वान् राजा करते है। योगी अरविन्द आदिने स्वामीजीकी शैलीका समर्थन किया है।

स्वामीजीने रावण-भाष्यका उल्लेख किया है।

प्रो० रुडाल्फ हार्नलेने लिखा है कि 'जब मैने अपना हस्तलेख दिया, तभी स्वामी दयानन्दने पहले पहल सम्पूर्ण अथर्ववेदको देखा।'

प० महेशचन्द्र न्यायरत्न, वर्त्तमान भारतीय काग्रेसके जन्मदाता मि० ह्यूम, प्रो० ग्रिफिथ तथा अनेकानेक एतद्देशीय विद्वानोने स्वामीजी के मतका खण्डन किया है।

कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय-संहिता)

१ भव स्वामी

ये सवत् (विक्रमीय) से आठ सौ वर्ष पहले हुए थे। भट्ट भास्कर मिश्र ने अपने तैत्तिरीय-सहिता-भाष्यके प्रारम्भमे "भवस्वाम्यादिभाष्य" पद का उत्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि भव स्वामीने तैत्तिरीयसहिता पर भाष्य लिखा था। परन्तु अबतक यह भाष्य उपलब्ध नही है।

२ गुहदेव

गुहदेवका तैत्तिरीयसहितापर भाष्य था। ये भव स्वामीके समकालीन थे। भट्ट भास्करने 'भवस्वाम्यादिभाष्य'मे गुहदेव-भाष्यका भी ग्रहण किया है, ऐसा मत ऐतिहासिकोका है। देवराज यज्वाने निघण्टु-भाष्यकी भूमिका मे लिखा है कि 'गुहदेवका वेद-भाष्य था'।

३ भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर ११ वी शताब्दीके भाष्यकार है। सायण और देवराज यज्वाने भट्ट भास्करको वहुत वार उद्धृत किया है।

ये शैव थे। अपने भाष्यके मगल-श्लोकमे इन्होने शिवजीको प्रणाम किया है। इनका भाष्य उच्च कोटिका है। इनके भाष्यका नाम 'ज्ञानयज्ञ' है। भट्ट भास्करका 'प्राय' सम्पूर्ण तैत्तिरीय-भाष्य छप चुका है। 'प्राय' इसलिये कि तैत्तिरीयके चतुर्थ काण्डके कुछ अशका भट्ट भास्करका भाष्य नही छपा है।

इनका गोत्र कौशिक है और पूरा नाम है भट्ट भास्कर मिश्र। इन्होने अपने भाष्यमे 'केचित्', 'अपरे' लिखकर अपने पूर्ववर्त्ती भाष्यकारोकी ओर सकेत किया है।

४ क्षुर

सायणाचार्यने अपनी धातुवृत्तिमे क्षुरके मतका उल्लेख पाच वार
या है। इससे ज्ञात होता है कि क्षुराचार्यने सम्पूर्ण तैत्तिरीय-सहितापर
ष्य लिखा था, जो अप्राप्य है। अनुमानत. क्षुर १४ वी शताव्दीके थे ।

५ सायण

सायणका भाष्य सम्पूर्ण तैत्तिरीय-सहितापर है। सायणका सर्वप्रथम
द-भाष्य यही है। इसमे 'अन्ये', 'अपरे', 'एके' लिखकर सायणने दूसरो
। मत दिया है। तैत्तिरीय-सहिताके १.८ १२ के भाष्यमे सायणने नरसिह
र्मा और उनके पुत्र राजेन्द्र वर्माका उल्लेख किया है।

६ वेंकटेश

तैत्तिरीय-सहिताके ७ काण्डोमेसे अन्तिम तीन काण्डोपर ही वेकटेश
। भाष्य है। यह ग्रन्थि-लिपिमे मिला था। अबतक अप्रकाशित है। इनका
ाम वेकटेश्वर और वेकटनाथ भी पाया जाता है। ये १५ वी शताव्दीमे थे।

७ वालकृष्ण

तैत्तिरीय-सहितापर इनका भाष्य है। अप्रकाशित और खण्डित
। इनके कालका कुछ पता नही चलता।

८ शत्रुघ्न

इनका तैत्तिरीय-भाष्य प्राप्त और प्रकाशित है । भाष्यका नाम
मन्त्रार्थदीपिका" है। यह पूर्ण नही है। ये १६ वी शतीके अन्तमे थे।

शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिनसंहिता)

१ शौनक

माध्यन्दिन-सहिताके ३१ वे अध्याय (पुरुष-सूक्त) पर ऋषि शौनकका
ाष्य उपलब्ध है। इसमे "अपरे", "केचित्" कहकर अन्य मतोका भी
। इससे विदित होता है कि शौनकसे भी पहले इस सहितापर कई भाष्य
। यह याज्ञिक है। पुरुष-सूक्तका विनियोग मोक्षमे माना गया है। इसमे
ैष्णव-मतकी छाप है। यह अत्युच्च कोटिका भाष्य गिना जाता है ।

२ उवट

ऋक्प्रातिशास्य और यजु प्रातिशास्यपर भाष्य लिखनेवाले उवट का माध्यन्दिन-भाष्य अतीव विख्यात है। ११ वी शतीके अन्तमे, महाराजा भोजके शासकत्वमें, अवन्ती राजधानीमे, उवटने यह भाष्य लिखा था। ये आनन्दपुर-निवासी वज्रटके पुत्र थे। वज्रट उद्भट विद्वान् थे। उवटका कही-कही उव्वट नाम भी पाया जाता है।

अनेक स्थानोसे उवट-भाष्य प्रकाशित हो चुका है। इसके दो पाठ है—काशीपाठ और महाराष्ट्र-पाठ। काशीपाठमें पुरुषसूक्तपर उवटका अपना भाष्य है और महाराष्ट्र-पाठमे पुरुषसूक्तपर उक्त शौनकका भाष्य छपा है। काशी-सस्करणमे प० रामसकल मिश्रने उवट-भाष्यके दोनो पाठोको अलग-अलग प्रकाशित किया है। उवट-भाष्य याज्ञिक वा आधि-दैविक है। ५,२० मे उवटने अवतारोका वर्णन किया है। उवटने याजुप-सर्वानुक्रमणीके अनुसार ऋषि, देवता और छन्द नही रखे है। शत्रुघ्न और महीधरके भाष्य, अनेक स्थलोमें, उवट-भाष्यकी छाया है।

३ गौरधर

गौरधर कश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके पौत्र 'स्तुतिकुसुमाजलि'-कर्त्ता जगद्धरके कथनानुसार गौरधरने माध्यन्दिनपर "वेदविलास" नामकी एक टीका लिखी थी। ये १४ वी शतीमे थे।

४ रावण

"रुद्रप्रयोग-दर्पण"—कर्त्ता पद्मनाभके लेखसे ज्ञात होता है कि रावण ने माध्यन्दिन-सहितापर भी भाष्य लिखा था।

५ महीधर

वाजसनेय-माध्यन्दिनपर काशीवासी महीधरका वेददीप नामका भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रचलित है। यह सत्रहवी शतीमें लिखा गया। भाष्य याज्ञिक है।

कहते हैं, महीधरने "मन्त्र-महोदधि" नामका एक तान्त्रिक ग्रन्थ भी, संवत् १६४५ मे लिखकर, पूर्ण किया था। तान्त्रिक महीधरके भाष्यके अनेक विरोधी भी है।

प० सत्यव्रत सामश्रमी और डा० लक्ष्मणस्वरूपके मतसे महीधरने १२ वी शतीमे अपना भाष्य और ग्रन्थ लिखे थे।

६ स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके माध्यन्दिन-भाष्यका लेखन सवत् १९३४, पौष-कृष्णा त्रयोदशी, गुरुवारसे प्रारम्भ हुआ और १९३९ मार्गशीर्ष-कृष्णा प्रतिपदा, शनिवारको समाप्त हुआ। १९४६ के वैशाखमे यह प्रकाशित हो गया।

ऋग्वेद-भाष्यमे जो इनकी शैली है, वही इसमे भी है। इसमे यज्ञके अर्थ पूजा, स्तुति आदि तो है ही, 'ससारके पदार्थोंसे उपयोग लेना' भी यज्ञका अर्थ है। स्वामीजीके इस भाष्यका भी विरोध हुआ है।

शुक्लयजुर्वेद (काण्वसंहिता)

१ सायण

काण्वसहिताके वीस अध्यायोपर ही सायण-भाष्य मिलता है, अवशिष्ट २० अध्यायोपर नही। शतपथ-ब्राह्मणके प्रथम काण्डके अन्तिम अध्यायोका सायण-भाष्य जैसे लुप्त हो गया है, वैसे ही काण्व-सहिताके उत्तरार्द्धका सायण-भाष्य भी लुप्त हो गया है। सायणने शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाओके नाम गिनाये है। 'अध्ययनकी सुगमताके लिये ही खण्ड और वर्ग किये गये हैं'—ऐसा भी सायणने माना है। इस भाष्यमें वासिष्ठ-रामायणको भी सायणने उद्धृत किया है। इस सहिताका ४० वा अध्याय भी माध्यन्दिनके ४० वे अध्यायके समान उपनिषदात्मक है।

२ आनन्दबोध

जातवेद भट्टोपाध्यायके पुत्र आनन्दबोधने सम्पूर्ण काण्वसंहितापर 'काण्डवेदमन्त्र-भाष्य-संग्रह' लिखा है। परन्तु आजतक न तो सम्पूर्ण भाष्य

प्राप्त है, न प्रकाशित है। इसके कई खण्डित लेख मिल चुके हैं। आनन्द-बोधके कालका ठीक पता नही लग सका है।

३ अनन्ताचार्य

ये काण्वशाखीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम नागेशभट्ट वा नागदेव और माताका नाम भागीरथी था। ये काशी-निवासी थे।

अनन्ताचार्यने काण्वसहिताके २१ से ४० अध्यायोपर **भावार्थदीपिका** नामकी टीका लिखी है। आनन्दवोध और अनन्ताचार्यकी भाष्य-टीकाएँ काण्वसहिताके चालीसवें अध्यायपर म० म० प० वालशास्त्री आगाशेने छापी है।

अनन्ताचार्यने भाषिकसूत्र-भाष्य, यजु प्रातिशाख्य-भाष्य और शतपथ-ब्राह्मण-भाष्य (१३ वें काण्डपर) भी वनाये हैं। इन्होने **कण्वकण्ठाभरण** नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इन्होने **'वेदार्थदीपिका'** और **'कात्यायन-स्मार्त्तमन्त्रार्थ-दीपिका'** नामकी टीकाएँ भी लिखी हैं। ये अठारहवी शताब्दी मे हुए थे।

४ हलायुध

इन्होने काण्वसहिताके मन्त्रोपर भाष्य लिखा है। इनका भाष्य खण्डित रूपमें यत्र-तत्र मिलता है। इनके भाष्यका नाम **ब्राह्मण-सर्वस्व** है। इनके लिखे मीमासा-सर्वस्व, वैष्णव-सर्वस्व, शैव-सर्वस्व, पण्डित-सर्वस्व भी हैं। परन्तु सब अप्रकाशित और उपलब्ध नही है। ये १३ वी शतीमे हुए थे।

विशेष

यजुर्वेदकी सहिताओमे **'रुद्राध्याय'**का एक विशेप स्थान है। अनेकानेक भाष्य-टीका-कारोने केवल रुद्राध्यायपर ही अपनी भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। इसी तरह पुरुष-सूक्त और 'अस्य वामीय सूक्त' आदिपर भी अनेक भाष्य-टीकाएँ, स्वतन्त्र रूपसे, लिखी गयी हैं। अनेकानेक विद्वानोने अपने अपने कल्पसूत्रोमें आये मन्त्रोपर ही भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। ऐसे भाष्य-

कारो और टीकाकारोकी लम्वी सूची देश-विदेशके विभिन्न पुस्तकालयोमें पायी जाती है। स्थान-सकोचके कारण ऐसे भाष्यकारो और टीकाकारो और उनकी विविध भाष्य-टीकाओका उल्लेख नही किया जा सका।

सामवेद (कौथुमसंहिता)

१ माधव

प्रसिद्ध वेदज्ञ प० सत्यव्रत सामश्रमीने जो सायण-भाष्य-सहित कौथुम-सहिता छापी है, उसमे उन्होने '**माधवीय विवरण**'को टिप्पनीके रूपमें प्रकाशित किया है। इस विवरणकी दो अशुद्ध पुस्तके सामश्रमीजीको मिली थी। उनका सम्पादन करके सर्वोत्तम भागोको ही उन्होने छापा है। सामश्रमीजीने ही ससारको सर्व-प्रथम इस पुस्तकका पता दिया था।

यह **सामविवरण** उच्च कोटिकी टीका है। सहिताके पूर्वार्द्धकी टीकाको 'छन्दसिका-विवरण' और उत्तरार्द्धकी टीकाको 'उत्तर-विवरण' कहा गया है।

कई वेदज्ञाता कहते है कि स्कन्द स्वामीके सहकारी नारायणके पुत्र ये ही माधव थे। स्कन्द स्वामीके भाष्यसे माधवने बडा लाभ उठाया है। स्कन्दके ऋग्वेद-भाष्यकी भूमिकाका वहुत कुछ रूपान्तर ही माधवकी सामवेदीय भूमिका है। माधवका काल सातवी शती है।

२ भरत स्वामी

श्रीरगपट्टम्मे रहकर १३ वी शतीमें भरत स्वामीने अपना सामवेद-भाष्य लिखा था। इनका गोत्र कश्यप था। इनके पिताका नाम नारायण था और माताका यज्ञदा। सक्षिप्त होते हुए भी भाष्य सुन्दर है और सम्पूर्ण सहितापर है। परन्तु अवतक सम्पूर्ण भाष्य मुद्रित नही हुआ है। इन्होने माधवसे वडी सहायता ली है।

३ सायण

वेदज्ञ-शिरोमणि आचार्य सायणने इस सहितापर भी भाष्य लिखा है। अपनी भूमिकामे सायणने सामवेदीय विषयोका मार्मिक विवेचन किया

हैं। सायण 'छन्द आर्चिक'के छठे अध्यायको ही 'अरण्य-सहिता' मानते हैं। परन्तु सामश्रमीजीने इस बातका अनुमोदन नही किया है।

४ दैवज्ञ सूर्य पण्डित

ये गोदावरीके निकट पार्थ नगरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ज्ञानराज्य था। पिता और पुत्र प्रसिद्ध ज्योतिषी थे।

सूर्यने भागवत गीताकी अपनी 'परमार्थ-प्रपा' टीकामे लिखा है कि 'मैंने '**सामभाष्य**' लिखा है।' परन्तु वह अप्राप्य है। अपनी गीता-टीकाके अन्तमे सूर्यने लिखा है कि 'मैंने रावण-भाष्यका ज्ञान प्राप्त किया है।' इन्होने 'लीलावती'पर भी टीका लिखी है। ये १६ वी शताव्दी मे थे।

अथर्ववेद (शौनकसंहिता)

१ सायण

शौनकसहितापर केवल आचार्य सायणका भाष्य प्राप्त और प्रकाशित है। दूसरे किसी भी भाष्यकार वा टीकाक़ारकी कोई भी भाष्य-टीका इसपर नही है। सायणने अन्य वैदिक सहिताओपर भाष्य लिखनेके बाद, सर्वान्तिमें, यह भाष्य लिखा। उन्होने भाष्यारम्भमे लिखा है—

"व्याख्याय वेद-त्रितयं आमुष्मिक-फल-प्रदम्।
ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति॥"

आशय यह है कि 'परलोकमे फल देनेवाले तीनो वेदोका भाष्य करने के पश्चात् लोक, परलोक, दोनोमें फल देनेवाले चतुर्थ वेदका भाष्य किया जाता है।'

इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामे सायणने अथर्ववेदके नौ भेद (सहिताएँ) ये गिनाये है—पैप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श और चारणवैद्य।

सायणका मत है कि 'पापाचरणसे रोग उत्पन्न होते है और आथर्वण-मन्त्रोंसे रोगोकी निवृत्ति होती है।'

षट्त्रिंश अध्याय

निघण्टु और निरुक्तके भाष्य-टीका-कार

निघण्टु

कितने ही वेदज्ञ कहते हैं कि वर्त्तमान निघण्टु और निरुक्तके कर्त्ता महाभारतकालके ऋषि यास्क हैं। श्रीभगवद्दत्तजीका मत है कि अनेक निरुक्तकार हो गये हैं, जिन्होंने निरुक्तोंके साथ ही अपने-अपने निघण्टु (वैदिक-शब्द-कोष) भी बनाये। प्रत्येक निरुक्तकार पहले निघण्टु बनाकर अपना भाष्य आरम्भ करता था। इसीलिये निघण्टुको भी निरुक्त कहा गया है।

परन्तु अधिकांश वेदज्ञों और पुराणादिके मतसे प्राप्त निघण्टुको कश्यप प्रजापतिने बनाया है, जिसपर यास्कका निरुक्त है। १४ वीं शताब्दी के देवराज यज्वाने इसी निघण्टुपर स्वतन्त्र भाष्य लिखा है। देवराजका भाष्य-क्रम निरुक्तकारके भाष्य-क्रमसे भिन्न है। इनके सिवा कदाचित् कोई दूसरा निघण्टु-भाष्यकार हुआ भी नहीं। यदि हुआ भी हो, तो उसका भाष्य अप्राप्त है।

देवराजके पितामहका नाम भी देवराज यज्वा ही था। इनके पिताका नाम यज्ञेश्वर आर्य था। इनका गोत्र अत्रि था। ये किसी "रंगेशपुरी-पर्यन्त" नामके ग्रामके निवासी थे।

निघण्टुके तीन काण्डों (नैघण्टुक, नैगम और दैवत) मेंसे नैघण्टुक काण्डका निर्वचन देवराजने विशेष रूपसे किया है। देवराजने ऋग्वेदके स्कन्द-भाष्य और स्कन्द-महेश्वरकी निरुक्त-भाष्य-टीकासे यथेष्ट साहाय्य

प्राप्त किया है। देवराजने शब्द-निर्वचनमे प्राचीन प्रमाणोको अधिक एकत्र किया है।

निघण्टु-भाष्यमे वैदिक शब्दो और निरुक्त-भाष्यमे वैदिक मन्त्रोकी भाष्य-टीकाएँ की गयी है, इसलिये निघण्टु-निरुक्त-भाष्य-टीका-कार भी वैदिक भाष्य-टीका-कार माने जाते हैं।

निरुक्त

एक प्रकारसे निघण्टुका भाष्य निरुक्त है। यास्क-कृत विद्यमान निरुक्तपर एक अत्यन्त प्राचीन 'निरुक्त-वार्त्तिक' है। निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने और मण्डन मिश्रकी 'स्फोटसिद्धि'की गोपालिका नामकी टीका के रचयिताने इस वार्त्तिकको उद्धृत किया है। बृहद्देवतामे भी इसके उद्धरण हैं। स्व० प० वैजनाथ काशीनाथ राजवाडेका मत है कि 'बृहद्देवता' ही 'निरुक्त-वार्त्तिक' है। परन्तु कई वेदज्ञोके मतसे निरुक्तवार्त्तिक स्वतन्त्र ग्रन्थ था। वह अनुपलब्ध है। उसके कर्त्ताका भी पता नही चलता।

१ बर्वरस्वामी

स्कन्द-महेश्वरकी 'निरुक्तभाष्य-टीका'से पता चलता है कि बर्बर स्वामीने निरुक्तपर एक विशद टीका लिखी थी। कुछ लोगोके मतसे ये ही निरुक्तवार्त्तिककार थे। परन्तु इसमे अनुमानके अतिरिक्त कोई प्रमाण नही है। बर्बर स्वामीके कालका न तो पता है, न उनकी टीकाका ही।

२ दुर्गाचार्य

दुर्गाचार्य अत्यन्त प्राचीन भाष्यकार है। छठी शताब्दीमें ये कश्मीर के समीप रहते थे। सन्यासी थे। इनका गोत्र कापिष्ठल वासिष्ठ था।

इन्होने निरुक्तपर जो वृत्ति वा टीका लिखी है, वह वैदिक साहित्यमें मूल्यवान् वस्तु समझी जाती है। इसके कितने ही संस्करण छप चुके है। इसमे अनेकानेक ऐसे प्राचीन ग्रन्थोके प्रमाण दिये गये है, जो अबतक अप्राप्त है। इस वृत्तिमे कितने ही मत-वादोका समीक्षण है। निरुक्तमे ये प्रधान मत दिये गये है—अधिदैव, अध्यात्म, आख्यान-समय, ऐतिहासिक, नैदान,

नैरुक्त, परिव्राजक, पूर्व याज्ञिक और याज्ञिक। इन सारे मतो और पक्षो की दुर्गाचार्यने आलोचना की है। दुर्गने रामायण और पुराणका भी उल्लेख किया है। दुर्गने वेदोमे इतिहास माना है। दुर्ग स्कन्द स्वामीसे भी प्राचीन-तर कहे जाते है।

कलकत्ताके प० सत्यव्रत सामश्रमी और पूनाके श्रीबैजनाथ काशीनाथ राजवाडेने वैदिक साहित्यपर सर्वाधिक परिश्रम किया था। इन दोनो सज्जनोने भी सम्पादित कर दुर्ग-वृत्तिके सुन्दर सस्करण निकाले है।

३ स्कन्द-महेश्वर

स्कन्द-महेश्वरकी निरुक्त-भाष्य-टीकाके साथ लाहोरके डा० लक्ष्मण स्वरूपने निरुक्तका अत्यन्त उपादेय सस्करण निकाला है। वैदिक साहित्य मे यह सस्करण एक विशेष स्थान रखता है।

स्कन्द स्वामी ऋग्वेदके भाष्यकार थे। कहा जाता है कि स्कन्द स्वामी ने निरुक्तपर भाष्य लिखा था, जो स्वतन्त्र रूपसे अनुपलब्ध है। इस भाष्यके अनेक अशोको अपनी स्मृतिमे रखकर इसकी टीका महेश्वरने लिखी है। निरुक्तके तीसरे अध्याय आदिके समाप्ति-वाक्य टीकाको महेश्वर-कृत कहते भी है।

परन्तु कुछ वेदज्ञ कहते है, 'स्कन्द स्वामी महेश्वरके गुरु थे और दोनो गुरु-शिष्यने मिलकर निरुक्त-भाष्य-टीका लिखी है। स्कन्दके निरुक्त-भाष्यकी टीका केवल महेश्वरने नही लिखी है। प्रत्युत निरुक्त-रूपी जो निघण्टु-भाष्य है, उसकी टीका स्कन्द स्वामी और महेश्वरने मिलकर की।'

यदि स्कन्द और महेश्वर साथी वा गुरु-शिष्य थे, तो दोनो ही सातवी शताब्दीके पुरुष है। दोनोने ही वेदोमे इतिहास माना है।

४ वररुचि

'निरुक्त-समुच्चय' नामका एक ग्रन्थ मिलता है। यह निरुक्तका न भाष्य है, न टीका। निरुक्तके मतानुकूल इसमे सौ मन्त्रोकी व्याख्या है। इसमे चार कल्प है। पहलेमे कहा गया है—'निरुक्तके विना मन्त्रोका न तो

विवरण हो सकता है, न अर्थ-ज्ञान ही। इसीलिये बडोका कहना है कि 'निरुक्तको न जाननेवाला मन्त्रोका निर्वचन नही कर सकता।' निरुक्त की प्रक्रियाके अनुसार ही मन्त्रोका निर्वचन होना चाहिये।'

'निरुक्त-समुच्चय'के चतुर्थ कल्पमें इतने प्रकारके मन्त्रोका उल्लेख किया गया है—प्रैप, आह्वान, स्तुति, निन्दा, सख्या, आशी, कर्म, कत्थना, प्रश्न, वचन, शोधित, विकल्प, सकल्प, परिदेवना, अनुवन्ध, याच्ञा, प्रसव, सवाद, समुच्चय, प्रशसा, शपथ, प्रतिशय, आचिख्यासा, प्रलाप, व्रीडा, उपधावन, आक्रोश, परिवाद, परित्राण आदि।

इस 'निरुक्त-समुच्चय'के कर्त्ता वररुचि है। ये पाणिनीय व्याकरणके वार्त्तिककार वररुचि नही है। ये दूसरे वररुचि थे। ये कदाचित् स्कन्द स्वामीके समकालीन थे।

दुर्ग और स्कन्द-महेश्वरकी भाष्य-टीकाओसे ज्ञात होता है कि निरुक्त पर और भी कितनी ही भाष्य-टीकाएँ थी, जो अभीतक अनुपलब्ध है।

सप्तत्रिंश अध्याय

कुछ आदर्श सूक्त

१ नासदीय सूक्त

ध्यानाभ्याससे मनको वशी करके ऋषियोने जो अत्युच्च मनन और चिन्तन किये है, वे सूक्तोमे उपनिवद्ध हैं। इन सूक्तोमे भी कुछ सूक्त स्वाधीन चिन्तनकी सर्व-श्रेष्ठ कोटिकी चूडान्त सीमाको पहुँचे है। स्थितप्रज्ञ ऋषियो के इन आदर्श और अनूठे सूक्तोको पढकर स्तव्ध और विस्मित हो जाना पडता है! इनमेसे कुछको यहा दिया जा रहा है।

ऋग्वेदके १० म मण्डलके १२९ वे सूक्तका नाम "नासदीय सूक्त" है। इसके देवता (प्रतिपाद्य) परमात्मा है और ऋषि प्रजापति है। इसी सूक्तको लो० वालगगाधर तिलकने अपने "गीता-रहस्य"के "विषय-प्रवेश"मे मानव-जातिका "सर्वश्रेष्ठ स्वाधीन चिन्तन" कहा है। लोकमान्य ही नही, इस सूक्तकी मौलिक विचार धाराको पढकर ससार भरके वेद-ज्ञाता आश्चर्य-चकित हो रहते है! इसमे सव सात मन्त्र है और सातो एकसे एक वढकर प्रतापशाली है। इन्ही मन्त्रोके आधारपर हमारे यहा छहो शास्त्रोकी सृष्टि हुई है और इन्ही छहो दर्शनोसे ससार भरके दर्शनोंकी उत्पत्ति हुई है।

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥ १॥"

(उस समय (प्रलय-दशामे) असत् (सियारकी सीगके समान अस्तित्व-हीन) नही था। जो सत् (जीवात्मा आदि) है, वह भी नही था। पृथिवी भी नही थी और आकाश तथा आकाशमें विद्यमान सातो भुवन भी नही

"को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥ ६॥"

(प्रकृत तत्वको कौन जानता है? कौन उसका वर्णन करे? यह सृष्टि किस उपादान कारणसे हुई? किस निमित्त कारणसे ये विविध सृष्टिया हुईं? देवता लोग इन सृष्टियोके अनन्तर उत्पन्न हुए है। कहासे सृष्टि हुई, यह कौन जानता है?)

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद॥७॥"

(ये नाना सृष्टिया कहासे हुई, किसने सृष्टियां की और किसने नही की, यह सब वे ही जाने, जो इनके स्वामी परम धाममे रहते हैं। हो सकता है कि वे भी यह सब न जानते हो!)

ऋग्वेद १ म मण्डलके १६४ वे सूक्तका नाम "अस्य वामीय सूक्त" है। इसमें ५२ मन्त्र हैं। इनमेसे ४ थे, ५ वे, ६ ठे, ३४ वे और ३७ वे मन्त्रो की चिन्तना अतीव उदात्त कोटिकी है।

२ संज्ञान-सूक्त

ऋग्वेद-सहिताका अन्तिम सूक्त है संज्ञानसूक्त वा ऐकमत्यसूक्त। सब चार ही मन्त्र हैं। इनमे आधुनिकतम गणतान्त्रिक विचारधाराकी प्राप्तिसे अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि गणतन्त्र वा जन-तन्त्रकी प्रणाली के जनक ये ही मन्त्र है। प्रथम मन्त्रके देवता अग्नि है और शेषके ऐकमत्य (सज्ञान) है।

"संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥ १॥"

(अग्नि, तुम यथेच्छ फलदाता और प्रभु हो। तुम विशेष रूपसे प्राणियोमें मिले हो। तुम यज्ञ-वेदीपर प्रज्वलित होते हो। हमे धन दो।)

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥"

(स्तोताओ, तुम मिलित होओ, एक साथ होकर स्तोत्र पढो। तुम लोगोका मन एकसा हो। जैसे प्राचीन देवता एकमत होकर अपना हविर्भाग स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी एकमत होकर धन आदि ग्रहण करो।)

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समान मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥"

(इन पुरोहितोकी स्तुति एक-सी हो, इनका आगमन एक साथ हो तथा इनके मन (अन्त करण) और चित्त (विचारजन्य ज्ञान) एक-विध हो। पुरुहितो, मैं तुम्हे एक ही मन्त्रसे मन्त्रित (सस्कृत) करता हूँ और तुम्हारा, साधारण हविसे, हवन करता हूँ।)

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥"

(यजमान-पुरोहितो, तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हो और तुम्हारे मन एक हो। तुम लोगोका सम्पूर्ण रूपसे सघटन हो।)

२ दानसूक्त

ऋग्वेदके दशम मण्डलका १०७ वा सूक्त "दक्षिणा-सूक्त" है और ११७ वा "दान-सूक्त" है। दोनोमें ही उत्तम दाता, दान, देय, दानका पात्र और दानका फल आदिका विवरण है। दानके दुरुपयोगके इन दिनोमें ते मन्त्र वडे उपयोगी है। दोनो सूक्तोके कुछ चुने हुए मन्त्र यहा दिये जाते है। दक्षिणा-सूक्तका ५ वा मन्त्र है—

"दक्षिणावान् प्रथमो हूत एधि दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥ ५ ॥"

(दाताको सबसे पहले बुलाया जाता है। वह ग्रामाध्यक्ष होता है और सबके आगे-आगे जाता है। जो सबसे पहले दक्षिणा देता है, उसे मैं (आगिरस दिव्य ऋषि) सबका राजा मानता हूँ।)

"न भोजा ममॄर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥ ८ ॥"

(दाताओ (के नामो) की मृत्यु नही होती। वे अमर (देवता) हो जाते है। दाता दरिद्र नही होते—वे क्लेश, व्यथा और दु ख भी नही पाते। इस पृथिवी वा स्वर्गमे जो कुछ है, सो सब उन्हे दक्षिणा देती है।)

"भोजमश्वाः सुष्ठु वाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥ ११ ॥"

(सुन्दर वहन करनेवाले अश्व दाताको ले जाते है। उसके लिये सुन्दर रथ विद्यमान रहता है। युद्धके समय देवता लोग दाताकी रक्षा करते है। युद्धमे दाता शत्रुओको जीतता है।)

अब ११७ वे दानसूक्तके कुछ मन्त्र देखिये—

"य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥ २ ॥"

(जिस समय कोई भूखा मनुष्य भीख मागनेको उपस्थित होता है और अन्नकी याचना करता है, उस समय जो अन्नवाला होकर भी हृदयको निष्ठुर रखता और सामने ही भोजन करता है, उसे कोई सुख देनेवाला नही मिल सकता।)

"न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्य मरणं चिदिच्छेत् ॥ ४ ॥"

(अपना साथी पास आता है और मित्र होकर भी जो व्यक्ति उसे दान नही देता, वह मित्र कहाने योग्य नही है। उसके पाससे चल जाना ही उचित है। उसका गृह गृह ही नही है। उस समय किसी धनी दाताके यहा जाना ही उचित है।)

"पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्ति रायः ॥ ५ ॥"

(याचकको अवश्य धन देना चाहिये। दाताको अत्यन्त दीर्घ पुण्य-पथ मिलता है। जैसे रथ-चक्र नीचे-ऊपर घूमता है, वैसे ही धन भी कभी किसीके पास रहता है और कभी दूसरेके पास चला जाता है—कभी एक स्थानपर स्थिर नही रहता।)

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमण पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ ६॥"

(जिसका मन उदार नही है, उसका भोजन करना वृथा है—उसका भोजन उसकी मृत्युके समान है। जो न तो देवताको देता है और न मित्र को देता है, जो स्वय ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।)

४ भाषा-सूक्त

ऋग्वेदके इसी १० वे मण्डलका ७१ वा सूक्त भाषासूक्त कहाता ह। यह सूक्त विद्वानोके विशेष मननकी वस्तु है। कुछ मन्त्र यहा उद्धृत किये जाते है।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय. सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ २॥"

(जैसे चलनीसे सत्तूको परिष्कृत किया जाता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग बुद्धिके बलसे भाषाको परिष्कृत करते है। उस समय विद्वान् लोग अपने अभ्युदयको जानते है। विद्वानोके वचनमे मगलमयी लक्ष्मी निवास करती है।)

"यज्ञेन वाच. पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधु. पुरुत्रा ता सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥ ३॥"

(बुद्धिमान् (विद्वान्) लोग यज्ञके द्वारा वचन (भाषा) का मार्ग पाते है। ऋषियोके अन्त करणमे जो वाक् (प्रथम भाषा) थी, उसको उन्होने प्राप्त किया। उस भाषाको उन्होने सारे मनुष्योको पढाया। सातो छन्द उसी (वैदिक) भाषामे स्तुति करते है।)

"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥"

(कोई-कोई देखकर वा समझकर भी भाषाको नही देखते वा समझते; कोई-कोई उसे सुनकर भी नही सुनते। किसी-किसीके पास तो वाग्देवी स्वय वैसे ही प्रकट होती है, जैसे सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली भार्या अपने पतिके पास प्रकट होती है।)

"उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ॥ ५ ॥"

(विद्वन्मण्डलीमे किसी-किसीकी प्रतिष्ठा है कि वह उत्तमभावग्राही है और उसके विना कोई कार्य नही हो सकता। (ऐसे लोगोके कारण ही वेदार्थ-ज्ञान होता है।) कोई-कोई असार-वाक्यका प्रयोग करते है। वे वास्तवमे धेनु नही है, काल्पनिक, मायामात्र धेनु है।)

"अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे ॥७॥"

(जिन्हे आखे है, कान है, ऐसे सखा (समानज्ञानी) मनके भावको (ज्ञानको) प्रकट करनेमे असाधारण होते है। कोई-कोई मुखतक जलवाले पुष्कर और कोई-कोई कमरतक जलवाले तडागके समान होते है। कोई-कोई स्नान करनेके उपयुक्त गभीर ह्रदके समान होते है।)

"इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ ९ ॥"

(जो व्यक्ति इस लोकमे वेदज्ञ ब्राह्मणोके और परलोकीय देवोके साथ (यज्ञादिमे) कर्म नही करते, जो न तो स्तोता (ऋत्विक्) है, न सोम-यज्ञकर्त्ता है। वे पापाश्रित लौकिक भाषाकी शिक्षाके द्वारा, मूर्ख व्यक्तिके समान, लागल-चालक (हल जोतनेवाले) वनकर कृषि-रूप वाना वुनते है।)

५ अरण्यानी-सूक्त

आश्रमोका निष्कपट जीवन वितानेवाले, प्रकृतिके निविड नीडमें विहरण करनेवाले और वनानी देवीके अभय क्रोडमें विचरण करनेवाले आर्योका स्वाभाविक प्रकृति-वर्णन कितना हृदयग्राही और कितना मन-प्राण-विमुग्धकारी है, यह इस सूक्तके छ मन्त्रोमे देखते ही वनता है। ऋग्वेद के १० म मण्डलके १४६ वे सूक्तके देवता अरण्यानी और ऋषि देवमुनि है।

"अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथं ग्राम न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतिम्॥ १॥"

(अरण्यानी (बृहद् वन), तुम देखते-देखते अन्तर्धान हो जाती—इतनी दूर चली जाती हो कि दिखाई नही देती। तुम क्यो नही गावमे जानेका मार्ग पूछती हो? अकेली रहनेमे तुम्हें डर नही लगता?)

"वृपारवाय वदते यदुपावति चिच्चिक.।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते॥ २॥"

(इस गहन विपिनमे कोई जन्तु वैलकी तरह वोलता है, कोई "चीची" करके मानो उसका उत्तर देता है—मानो ये वीणाके पर्दे-पर्देमे वोलकर अरण्यानीका यश गाते हैं।)

"उत गाव इवादन्त्यूत वेश्मेव दृश्यते।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति॥ ३॥"

(इस विपिनमे कही गाये चरती है और कही लता, गुल्म आदिका भवन दिखाई देता है। सन्ध्याकाल वनसे कितने ही शकट-से निकलते हैं।)

"गामगैष आ ह्वयति दार्वंगैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते॥ ४॥"

(एक व्यक्ति गायको वुला रहा है और एक काठ काट रहा है। अरण्यानीमें जो व्यक्ति रहता है, वह रातको शब्द सुनता है।)

"न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते॥ ५॥"

(अरण्यानी किसीको नही मारती। यदि बाघ, चोर आदि वहा न आवे, तो कोई डर नही। वनमे स्वादिष्ट फल खा-खाकर भली भांति काल-क्षेप किया जा सकता है।)

"आञ्जनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्॥ ६ ॥"

(मृगनाभि (कस्तूरी)के समान अरण्यानीका सौरभ है। वहा आहार भी है। वहा प्रथम कृषिका अभाव है। वह हरिणोकी मातृरूपिणी है। इस प्रकार मैने माता अरण्यानीकी स्तुति की।)

ऋग्वेद, १० म मण्डलका ६० वा सूक्त 'पुरुषसूक्त' कहलाता है। सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्रको छोडकर 'पुरुष-सूक्त'के मन्त्र सर्वाधिक विख्यात हैं। इस सूक्तके समान तो कोई भी सूक्त विख्यात नही है। इसमे सब १६ मन्त्र है। कुछ नमूने देखिये। इसके देवता परमात्मा है और ऋषि नारायण है।

६ पुरुष-सूक्त

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २ ॥"

(जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, सो सब परमात्मा (पुरुष) ही है। वह देवत्वके स्वामी है, क्योकि प्राणियोके कर्म-फल-भोग के लिये अपनी कारणावस्थाको छोडकर जगदवस्थाको प्राप्त करते है।)

"एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३ ॥"

(यह सारा ब्रह्माण्ड उनकी महिमा है—वह तो स्वयं अपनी महिमासे भी बड़े है। इन पुरुषका एक पाद (अश) ही यह ब्रह्माण्ड है—इनके अविनाशी तीन पाद तो दिव्य लोकमे है।)

"तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥"

(देवता और मनुष्य वायुको रक्षक पाकर श्रद्धाकी उपासना करते हैं। मनमे कोई सकल्प होनेपर लोग श्रद्धा (विश्वास)की शरणमें जाते हैं। श्रद्धा वा विश्वासके बलसे मनुष्य धन पाता है।)

"श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५ ॥"

(हम लोग प्रात, मध्याह्न और सूर्यास्तके समय श्रद्धाको ही बुलाते हैं। श्रद्धा-देवि, इस ससारमे हमे श्रद्धावान् करो—विश्वासी बनाओ।)

८ अथर्ववेदीय संज्ञान-सूक्त

ऋग्वेदकी ही तरह अथर्ववेद (पैप्पलाद-सहिता, ५ १९) मे भी संज्ञान-सूक्त है, जिसमे सब सात मन्त्र हैं। एकता और सघटनका यह सूक्त आदर्श है। यह ध्यान रखना चाहिये कि वेदोका अच्छा ज्ञान (सज्ञान) एकता वा सघटन कहा गया है।

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ १ ॥"

(आप सबके बीचसे द्वेषको हटाकर मै सहृदयता और समनस्कताका प्रसार कर रहा हूँ। जैसे गौ (अघ्न्या) अपने बछडेसे प्रेम करती है, वैसे ही आप लोग परस्पर एक-दूसरेसे प्रेम करे।)

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संयतः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥ २ ॥"

(पिताके व्रतका पालक और माताकी आज्ञाका वाहक पुत्र हो। पत्नी पतिसे शान्तिमयी और मीठी वाणी बोलनेवाली हो।)

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ ३ ॥"

(आपसमे भाई-भाई डाह न करें। बहिन-बहिन परस्पर ईर्ष्या न करे। आप सब एकमत और समान-व्रत होकर मीठा वचन बोले।)

"ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधन्तः सधुराश्चरन्त.।
अन्योन्यस्मै वल्गु वदन्तो यात
समग्रास्थ सध्रीचीनान्॥ ५॥"

(श्रेष्ठत्वको अधिकृत करते हुए सब लोग हार्दिक प्रेमके साथ मिल कर रहो। कभी विलग नही होना। एक दूसरेको प्रसन्न रखकर और एक साथ मिलकर भारी बोझको खीच ले चलो। परस्पर मीठे वचन बोला करो और अपने प्रेमी जनोसे मिलकर रहा करो।)

"सध्रीचीनान् वः समनसः कृणोम्येकश्नुष्टीन् संवनेन सहृदः।
देवा इवेदममृतं रक्षमाणाः सायं प्रात· सुसमितिर्वो अस्तु॥ ७॥"

(समान-मार्ग-गामी आप सबको समान मनवाले बनाता हूँ, जिससे आप परस्पर प्रेमसे, समान भावोके साथ, एक नेताका अनुधावन करे। जैसे देवता लोग समान-चेता होकर अमृतकी रक्षा करते हैं, वैसे ही साय प्रात आप लोगोकी उत्तम समिति (सघटन-सभा) हो।)

६ पृथ्वी-सूक्त

अथर्ववेद (शौनक-सहिताके) १२ वें काण्डका प्रथम सूक्त पृथ्वी-सूक्त कहाता है। इसमे ६३ मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्र देश-भक्तिसे ओत-प्रोत है। एक प्रकार से यह सूक्त आर्योका "राष्ट्रिय गीत" है। कुछ मन्त्र उद्धृत किये जा रहे हैं।

"यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः सबभूवुः।
या बिभर्त्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥"

(जिसकी चार दिशाएँ है, जहा किसानी की जाती है, जो अनेक प्रकारसे प्राणियोंकी रक्षा करती है, वह मातृ-भूमि हमे गौओ और अन्नसे सयुक्त करे।)

"यस्या पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्त्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥ ५"

(जहा हमारे पूर्वजोने अद्भुत कार्य किये, जहा देवोने असुरोको मारा और जो गौओ, अश्वो और पक्षियोकी माता है, वह जन्मभूमि हमे ऐश्वर्य और तेज दे।)

"यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥ १४॥"

(जो हमसे द्वेष करते है, जो सेना लेकर हमे सताने आते है, जो मनसे भी हमारी बुराई चाहते है और जो हमे मारनेको तैयार है, उन्हे, हे शत्रु-मर्दिनि, विनष्ट कर दे।)

"यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि॥ २७॥"

(जहा चारो ओर वनस्पति और वृक्ष अडिग खड़े है, उस विश्वधारिका पृथिवी माताका हम गुणानुवाद करते है।)

"मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया बधम्॥ ३२॥"

(आगे-पीछे और ऊपर-नीचे कोई मुझपर प्रहार न करे। मातृभूमे, मेरे लिये तू मगल कर। हिंसक, चोर और लुटेरे मेरा पता न पावे। इन्हे तू दूर भगा दे।)

"निधिं बिभ्रति बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ ४४॥"

(विविध वैभवोवाली पृथिवी मुझे मणि और सुवर्ण प्रदान करे। प्रसन्नवदना, वरदात्री और धन-रत्न-धात्री वसुधे, हमे अमित वैभव प्रदान कर।)

"मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥ ४८॥"

(छोटे-बड़े पदार्थोंका धारण करनेवाली और पापी तथा सुकृतीके शवका भार वहन करनेवाली यह पृथ्वी है। इसे खोजकर सूकर-तनु-धारी वराह भगवान्‌ने प्राप्त किया।)

"उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयु: प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ ६२॥"

(मातृभूमि, तेरे जो प्रदेश है, वे रोग, क्षय और भयसे रहित हो। हम दीर्घायु हो, हम सदा सजग रहे और जान हथेलीपर लेकर तेरे लिये सर्वस्व त्यागनेको तैयार रहे।)

१० आग्नेय-सूक्त

अग्निसे ही यज्ञ होता है, हवन होता है और अग्निसे ही हविष्य आदि भोज्य पदार्थ बनते है। अग्नि (तेज, प्रकाश और उष्णता) से ही विश्वके अधिकाश कार्य चलते है और अग्निसे ही यह विश्व स्थिर है। यदि अग्नि न रहे, तो सारा विश्व विनष्ट हो जाय। इसीलिये आर्योंने ऋग्वेदमें सर्व-प्रथम अग्निका ही यश गाया और असख्य मन्त्रोमे अग्निकी प्रशसा की। ऋग्वेदके प्रथम सूक्तका नाम ही है "आग्नेय सूक्त"। इसमें नौ मन्त्र है। कुछ मन्त्र उद्धृत किये जाते है। सूक्तके देवता अग्नि और ऋषि मधुच्छन्दा है।

"अग्निमीड़े पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ १॥"

(यज्ञके पुरोहित, देवोको बुलानेवाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ।)

ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोमे अग्निको पुरोहित कहा गया है। वह पुरोहित (अग्रणी) इसलिये है कि अग्निके विना यज्ञ ही नही हो सकता। अग्नि देवोको बुलानेवाले (होता) इसलिये है कि अग्निका प्रज्वलित होना ही देवोके यज्ञमे आनेका कारण है। अग्निदेव ऋत्विक् (निर्दिष्ट समयमें यज्ञ-कर्त्ता) इसलिये है कि उन्हीके कारण निश्चित समयपर यज्ञ होता है। वह रत्नधारी इसलिये कहे गये है कि यज्ञ-फल-रूप रत्नो (धनो) के वह धारण (पोषण) करनेवाले है।

कोई भी जड पदार्थ स्वय कार्य करनेमे असमर्थ है। यदि उसका कोई चेतन अधिष्ठाता हो, तो वह कार्य करनेमे समर्थ हो सकता है। इसी विचार से आर्य लोग जड अग्नि, वायु आदिके अतिरिक्त उनके अधिष्ठातृ-रूपसे अग्निदेव, वायुदेव आदि एक-एक चेतन देवता भी मानते थे। ऐसे असख्य देव है और परमात्मा सबके अधिष्ठाता है। इसीलिये इन समस्त देवोको ईश्वराश माना गया है। फलत शासक और अधिष्ठाताके रूपमे, कर्मानुसार, देवोके अगणित नाम अवश्य है, परन्तु सबके चेतन-रूप होनेसे सामूहिक रूपसे सब देव एक ही है और वे ही परमात्मा है। वेदोमे जड पदार्थोका वर्णन चेतन-रूपसे करनेका यही तात्पर्य है।

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एह वक्षति॥ २॥"

(प्राचीन ऋषियोने जिनकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि जिनकी स्तुति करते है, वे अग्निदेव इस यज्ञमे देवताओको बुलावें।)

"उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥७॥"

(अग्निदेव, हम अनुदिन, दिन-रात, अन्तर्बुद्धिके साथ तुम्हें प्रणाम करते-करते तुम्हारे पास आते है।)

"राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥ ८॥"

(अग्निदेव, तुम प्रकाशक, यज्ञ-रक्षक, कर्मफलके द्योतक और यज्ञ-शालामे वर्धनशाली हो।)

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ ९॥"

(जैसे पुत्र पिताको सरलतासे पा जाता है, उसी तरह हम भी तुम्हें पा सके। हमारा मगल करनेके लिये, अग्निदेव, हमारे पास निवास करो।)

११ ऐन्द्र सूक्त

ऋग्वेदमे सर्वाधिक मन्त्र इन्द्रके सम्बन्धमे है। इन्द्रके विविध रूप बताये गये है। वह कही परमात्मा, कही आत्मा, कही शतक्रतु (सौ यज्ञ करनेवाले), कही वृत्रहन् और कही वज्रभृत् कहे गये

हैं। कर्मानुसार इन्द्रके ये सब नाम पडे हैं। ऋग्वेदके १ म मण्डलके ५ वे· सूक्तमे १० मन्त्र हैं। इनमेसे कुछ मन्त्र यहा दिये जा रहे हैं। इस सूक्तको 'ऐन्द्र सूक्त' भी कहा जाता है।

"आत्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत। सखायः स्तोमवाहसः॥-१॥"

(स्तुति करनेवाले मित्रो, शीघ्र आओ, बैठो और इन्द्रको लक्ष्य कर गाओ।)

"स घानो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः॥३॥"

(अनन्त-गुण-सम्पन्न वे ही इन्द्र हमारे उद्देश्योको सिद्ध करें, धन दें, बहुमुखी बुद्धि प्रदान करे और धनके साथ हमारे पास पधारे।)

"यस्य सस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रव·। तस्मा इन्द्राय गायत॥४॥"

(रणागणमे जिन देवताके रथ-युक्त अश्वोके सामने शत्रु नही आते, उन्ही इन्द्रके लिये गाओ।)

"त्व सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो॥६॥"

(शोभनकर्मा इन्द्र, सोमपानके लिये, सदा ज्येष्ठ होनेके कारण, तुम सबके आगे रहते हो।)

"त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था. शतक्रतो। त्वा वर्द्धन्तु नो गिरः॥८॥"

(सौ यज्ञोके कर्त्ता इन्द्रदेव, तुम्हे सामवेद और ऋग्वेद—दोनो ही वेदोके मन्त्र प्रतिष्ठित कर चुके है। हमारी स्तुति भी तुम्हे सर्वाधित वा प्रतिष्ठित करे।)

इस मन्त्रमें पहले साममन्त्रो (स्तोमो) का नाम आया है और पीछे ऋक्मन्त्रो (उक्थो) का। जो लोग वेदोको नित्य नही मानते और ऋग्वेद के पश्चात् सामवेदकी रचना मानते हैं, वे रमेशचन्द्र दत्त आदि यहा बडे घबराये है। परन्तु सायणाचार्यके इस अर्थका वे खण्डन भी नही कर सके हैं।

१२ उषाके मन्त्र

उप कालमें मनमें नयी स्फूर्ति और शरीरमे नया ओज उत्पन्न होता

है। उषःकालमे ही यज्ञादि अनुष्ठान और परमात्माकी उपासना की जाती है। इसीलिये आर्य उषाके भक्त होते थे। यहा उषाके कुछ मन्त्र दिये जाते है।

"उषो येते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥" ऋ० १.४८.४

(उषा, तुम्हारा आगमन होनेपर विद्वान् लोग दानकी ओर ध्यान देते हैं और अतिशय मेधावी कण्व ऋषि दानशील मनुष्योका प्रसिद्ध नाम लेते है।)

"वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि।
उषः प्रारन्नृतूंरनु दिवोऽन्तेभ्यस्परि ॥"

(शुभ्रवर्ण उषा, तुम्हारे आगमनके समय द्विपद, चतुष्पद और पक्ष वाले पक्षी आकाश-मण्डलके नीचे अपने-अपने कार्यमे सलग्न हो जाते है।)

"व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम्।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥"

(उषा, अन्धकारका विनाश करके किरणोंसे जगत्को उद्भासित करो। कण्वपुत्रोने धनार्थी होकर तुम्हारी स्तुति की है।) पीछे के ये दोनों मन्त्र ऋग्वेद के १ ४९.३-४ है।

"सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः।
रुजद्दृलानि ददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥"
ऋग्वेद ७.७५.७

(सत्यस्वरूपिणी, महती और यजनीया उषा देवी सत्य, महान् और यजनीय देवोके साथ अत्यन्त घनान्धकारका भेदन करती है। उषा गौओके चरनेके लिये प्रकाश देती है। गाये उषाकी कामना करती है।)

"एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वीतमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्याणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥"
ऋ० ७.८०.२

(यह वही उषा है, जो नव यौवन धारण करके अपने प्रभावके द्वारा निगूढ़ अन्धकारको विनष्ट करके (प्राणियोंको) जगाती है। लज्जाहीना युवतीकी तरह उषा सूर्यके सम्मुख आती और सूर्य, यज्ञ तथा अग्निको सावधान करती हैं।)

"जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥"
ऋग्वेद १.११३.५

(जो लोग टेढ़े-मेढ़े सोये थे, उनमेंसे किसीको भोगके लिये, किसीको यज्ञके लिये और किसीको धनके लिये—सबको अपने-अपने कर्मोंके लिये उषाने जागरित किया है। जो थोड़ा देख सकते है, विशेष रूपसे उनकी दृष्टिके लिये उषा अन्धकार दूर करती है। विशाल उषाने सारे भुवनोंको प्रकाशित किया है।)

"परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कञ्चन बोधयन्ती॥"
ऋ० १.११३.८

(पहलेकी उषाएँ जिस अन्तरिक्ष-मार्गसे गयी हैं, उसीसे उषा जा रही है और आगे अनन्त उषाएँ भी उसी पथका अनुधावन करेंगी। उषा अन्धकारको दूर करके और प्राणियोंको जागरित करके संज्ञा-शून्य लोगोंको चैतन्य प्रदान करती है।)

"ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्॥"
ऋग्वेद १.११३.११

(जिन मनुष्योंने अतीव प्राचीन समयमें आलोकका प्रसार करते हुए उषाको देखा था, वे इस समय नहीं हैं। हम उषाको देखते हैं। आगे जो लोग उषाको देखेंगे, वे आ रहे है।)

"उदीर्ध्व जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥"
ऋग्वेद १.११३.१६

(मनुष्यो, उठो। हमारा शरीर-सञ्चालक जीवन आ गया है। अन्धकार गया, आलोक आया। सूर्यको जानेके लिये उषाने मार्ग बना दिया है। उषा, जहा तुम ऐश्वर्य प्रदान करती हो, वहा हम जायँगे।)

"एता उत्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥"
ऋग्वेद १.९२.१

(उषा देवियोने आलोक द्वारा प्रकाश किया है। वे पहले पूर्व दिशाके अन्तरिक्षको प्रकाशित किया करती हैं। जैसे योद्धा अपने सारे हथियारोंको परिमार्जित करते है, वैसे ही अपने तेजके द्वारा ससारका सस्कार करके गतिशीला और ओजस्विनी उषा माताएँ प्रतिदिन गमन करती है ।)

"अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः॥"
ऋग्वेद १.९२.४

(नर्तकीकी तरह उषा अपने रूपको प्रकट करती है। दूहनेके समय गाये जैसे अपना अधस्तन भाग प्रकट करती है, वैसे ही उषा भी अपना वक्ष प्रकट करती है। जैसे गाये अपने गोष्ठमे शीघ्र जाती है, वैसे ही उषा भी पूर्व दिशामे जाकर सारे ससारके अन्धकारको दूर करती है।)

"अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाति सुप्रतीका सौमनसायाजीगः॥"
ऋग्वेद १.९२.६

(हम रात्रिके अन्धकारको पार कर चुके है। उषाने प्राणियोके ज्ञान

को जगाया है। प्रकाशवती उषा, तोषामोदकारीकी तरह, प्रीति प्राप्त करनेके लिये अपनी दीप्तिके द्वारा मानो हँस रही है। आलोक-विलासिताङ्गी उषाने हमारे सुखके लिये अन्धकारका विनाश किया है।)

१३ गृह-भूमिकी महत्ता

(पैप्पलादसंहिता, ३ २६)

"सूनृतावन्त. सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ३॥"

(जिन घरोके निवासी आपसमे मधुर और सभ्य सम्भाषण करते है, जहा सौभाग्य रहता है, प्रीति-भोज होता है, जहा सब हँसी-खुशीसे रहते है और जहा न कोई भूखा है, न प्यासा, वहा कहीसे भयका सचार न हो।)

"येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायत.॥४॥"

(प्रवासमे रहते हुए हमें जिनका वरावर ध्यान आया करता है, जिनमे सहृदयता भरी हुई है, उन घरोका हम आवाहन करते है। वे हमको वाहरसे आये हुए जाने।)

"उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥५॥"

(हमारे इन घरोमे दुधार गाय है, इनमे भेड, वकरी आदि भी वहुत है। अन्नको अमृत-तुल्य स्वादिष्ट वनानेवाले रस भी यहा है।)

"उपहूता भूरिधना. सखाय· स्वादुसम्मुदः।
अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वदा॥६॥"

(प्रचुर धनवाले मित्र इन घरोंमें आते है और हँसी-खुशी हमारे साथ स्वादिष्ट भोजनमे सम्मिलित होते है। हमारे गृहो, तुम्हारे अन्दर रहने वाले सारे प्राणी नीरोग और अक्षीण रहे उनका किसी प्रकार ह्रास न हो।)

१४ "मा भैः"

(शौनकसंहिता २. १५)

"यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥२॥"

(जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा वीरश्च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥६॥"

(जैसे वीर और वीरत्व न डरते हैं, न क्षीण होते है, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥११॥"

(जैसे मृत्यु और अमृत न डरते हैं, न क्षीण होते है, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥१२॥"

(जैसे सत्य और अनृत न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

"यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥१३॥"

(जैसे भूत और भव्य न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण, तुम भी न डरो, न क्षीण हो।)

१५ दरिद्रता-नाशक सूक्त

(ऋग्वेद, १० म मण्डल, १५५ सूक्त)

"अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे।
शिरिम्बिठस्य सत्त्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१॥"

(दरिद्रते, तुम दान-विरोधिनी, कुशब्दवाली, विकट आकारवाली और क्रोधिनी हो। मैं (शिरिम्बिठ) ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे तुम्हें दूर करूँगा।)

"चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी।
अराय्य ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥२॥"

(दरिद्रता वृक्ष, लता, शस्य आदिका अंकुर नष्ट करके दुर्भिक्ष ले आती है। उसे मैं इस लोक और उस लोकसे दूर करता हूँ। तेज शाली ब्रह्मणस्पति, दान-द्रोहिणी उस दरिद्रताको यहाँसे दूर कर आओ।)

"अदो यद्दारु प्लवते सिन्धो पारे अपूरुषम्।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३॥"

(यह जो काठ समुद्र-तटके पास बहता है, उसका कोई कर्त्ता (स्वामी) नहीं है। विकृत आकृतिवाली अलक्ष्मी (दरिद्रता), उसीके ऊपर चढ़कर समुद्रके दूसरे पार चली जाओ।)

"यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥४॥"

(हिंसामयी और कुत्सित शब्दवाली अलक्ष्मियो, जिस समय तरह तरह तुम लोग शीघ्र गमनसे चली गयीं, उस समय इन्द्र (आर्य) के सब शत्रु, जल-बुद्बुदके समान, विलीन हो गये।)

१६ राजयक्ष्म-नाशक सूक्त

(ऋग्वेद, १० म मण्डल, १६३ सूक्त)

"अक्षिभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥"

(तुम्हारे दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नाकों, चिबुक, सिर, मस्तिष्क और जिह्वासे मैं यक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ।)

"ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते॥२॥"

(तुम्हारे कण्ठो, धमनियों, स्नायु, अस्थि-सन्धि, दोनो भुजाओ, दोनों हाथो और दोनों स्कन्धोसे मैं रोग दूर करता हूँ।)

"आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते॥३॥"

(तुम्हारी अन्ननाड़ी, क्षुद्रनाडी, बृहद्दण्ड, हृदय-स्थान, मूत्राशय, यकृत और अन्यान्य मास-पिण्डोंसे मैं रोगको दूर करता हूँ।)

"ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंसतो वि वृहामि ते॥४॥"

(तुम्हारे दोनो उरुओ, दोनों जानुओं, दोनो गुल्मो, दोनो पाद-प्रान्तो, दोनो नितम्बो, कटिदेश और मलद्वारसे मैं रोगको दूर करता हूँ।)

"मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते॥५॥"

(मूत्रोत्सर्ग करनेवाले पुरुषाग, लोमो और नखो—सर्वांग शरीरसे मै रोगको दूर करता हूँ।)

"अंगादंगाल्लोम्नो लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते॥६॥"

(प्रत्येक अंग, प्रत्येक लोम, शरीरके प्रत्येक सन्धि-स्थान और तुम्हारे सर्वांगमें जहां-कही रोग उत्पन्न हुआ है, वहांसे मैं उस रोगको दूर करता हूँ।)

अष्टत्रिंश अध्याय

वैदिक संहिताओंकी सूक्तियां

यों तो सूक्तों, सूक्तियों और सुन्दर उपदेशोंका संग्रह वैदिक संहिताएं हैं ही; परन्तु यहां उनमेंसे कुछ ऐसी उक्तियोंका उल्लेख किया जाता है, जो प्रतिदिन स्मरणीय हैं। उनके अनुसार चलकर अपने जीवनको महत्त्व-पूर्ण बनाया जा सकता है।

ऋग्वेद

१ एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (१.१६४.४६)
(परमात्मा एक है, तो भी विद्वान् लोग उन्हें अनेक नामोंसे पुकारते हैं।)
२ कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। (१०.११४.५)
(कवि या क्रान्तदर्शी लोग एक परमात्माकी कल्पना अनेक प्रकारसे

८ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो यज्ञ उग्रः। (१०.१२०.१)
(जिनसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं, वे सबसे ज्येष्ठ हैं।)
९ वपूंषि बिभ्रदभि नो विचेष्ट। (३.५५.९)
(वे नाना रूप धारण करते हुए भी हमे विशेष अनुग्रह-दृष्टिसे देखे।)
१० मा नो रीरिषो मा परा दाः। (१०.१२८.८)
(हमारा अनिष्ट नही करना, हमारे प्रतिकूल नही होना।)
११ उत देव अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। (१०.१३७.१)
(देवो, मुझ पतितको ऊपर उठाओ।)
१२ उतागश्चक्रुषं देवा देवाजी वयथा पुनः। (१०.१३७.१)
(मुझ अपराधीको अपराधसे बचाओ। देवो, मुझे चिरजीवी करो।)
१३ देवा न आयुः प्र तिरन्तु। (१.८९.२)
(देवगण हमारी आयुको बढावे।)
१४ न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (४.३३.११)
(देवगण तपस्वीको छोडकर दूसरेके मित्र नही होते।)

१५ न देवानामपि व्रतं शतात्मा च न जीवति। (१०.३३.९)
(एक सौ प्राण रहनेपर भी देवोके नियमके विरुद्ध कोई नही जी सकता।)

१६ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। (८.२.१८)
(देवगण यज्ञ-कर्ता पुरुषार्थीको चाहते हैं—सोये हुएको नही।)

१७ स नः पर्षदति द्विषः। (१०.१८७.१)
(देव हमे शत्रुसे बचावे।)

१८ अपश्यं गोपामनिपद्यमानम्। (१०.१७७.३)
(मैंने देख लिया कि आत्माका कभी विनाश नही होता।)

१९ अजो भागस्तपसा तं तपस्व। (१०.१६.४)
(मनुष्यमे जो अंश (आत्मा) जन्म-रहित है, उसे तेजस्वी करो।)

२० अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (१.१६४.३५)
(सम्पूर्ण संसारकी नाभि यह यज्ञ है।)
२१ मह्यं वातः पवताम्। (१०.१२८.२)
(मुझे वायु पवित्र करे।)
२२ सत्या मनसो मे अस्तु। (१०.१२८.४)
(मेरी कामना पूरी हो।)
२३ एनो मा नि गाम्। (१०.१२८.४)
(मैं पापमें न फसूं।)
२४ ज्ञाती चित् सन्तौ न समं प्रणीतः। (१०.११७.९)
(एक वंशके होकर भी दो व्यक्ति समान-दानी नहीं होते।)
२५ ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। (९.७३.६)
(दुष्कर्मी मनुष्य सत्यके मार्गका पार नहीं कर सकते।)
२६ स्वस्ति पन्थामनुचरेम। (५.५१.१५)
(हम कल्याणवाही पथके पथिक हों।)
२७ विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (१.११४.१)
(इस ग्राममें सब लोग स्वस्थ और नीरोग रहें।)
२८ उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः (१०.१०१.१)
(मित्रो, समान-मना होकर जागो।)

यजुर्वेद

१ तमेव विदित्वाति मृत्युमेति। (३१.१८)
(उस परमात्माका ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य मृत्युको लांघ जाता है।)
२ तस्मिन् तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (३१.१९)
(परमात्मामें ही सारे लोक अवस्थित हैं।)
३ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। (३२.८)
(वह व्यापक परमात्मा सारी प्रजामें ओतप्रोत है।)

४ शं नः कुरु प्रजाभ्यः। (३६.२२)
(हमारी सन्तानोंका कल्याण करो।)
५ ऋतस्य पथा प्रेत। (७.४५)
(सत्यके पथपर चलो।)
६ अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः। (२.१०)
(हमारी इच्छाएँ सच्ची हो।)
७ अहमनृतात्सत्यमुपैमि। (१.५)
(मैं असत्यसे बचकर सत्यके पास जाता हूँ।)
८ भूत्यै जागरणं अभूत्यै स्वपनम्। (३०.१७)
(जागना वैभव देनेवाला है और सोना वा आलस्यमे पडे रहना दरिद्रताको बुलानेवाला है।)
९ यशः श्रीः श्रयतां मयि। (२९.४)
(मुझमे कीर्ति और वैभव हो।)
१० मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। (४०.१)
(किसीकी सम्पत्तिका लालच मत करो।)
११ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (४०.२)
(संसारमें कर्म करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।)
१२ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (३६.१८)
(हम आपसमे मित्रकी दृष्टिसे देखे।)
१३ सुसस्याः कृषीष्कृधि। (४.१०)
(बढ़िया अन्नवाली खेती करो।)
१४ पश्येम शरदः शतम्। (३६.२४)
(हम सौ वर्षोतक देखते रहे वा जीवित रहें।)
१५ अदीनाः स्याम शरदः शतम्। (३६.२४)
(हम सौ वर्षोतक सम्पन्न होकर जीवित रहें।)

१६ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (३४.१)
(मेरा मन कल्याणकारी संकल्पवाला हो।)
१७ अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः। (१९.७७)
(परमात्माने झूठमें अश्रद्धा (अविश्वास) को और सत्यमें विश्वास को रखा है।)

अथर्ववेद

१ य इत् तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः। (९.१०.१)
(जिन्होंने परमात्माको जान लिया, उन्हें मोक्ष मिल गया।)
२ एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। (२.२.१)
(एक मात्र परमात्मा ही प्रणाम और स्तुतिके योग्य है।)
३ तस्य ते भक्तिवांसः स्याम। (६.७९.३)
(भगवन्, हम तेरे भक्त हों।)
४ स नो मुञ्चत्वंहसः। (४.२३.१)
(वह परमात्मा हमें पापसे बचावें।)
५ तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः। (१०.८.४४)
(आत्म-ज्ञानी पुरुष मृत्युसे नहीं डरता।)
६ वयं देवानां सुमतौ स्याम। (६.४७.२)
(हम देवोंकी आराधनामें रहें।)
७ प्रियं मा कृणु देवेषु। (१९.६२.१)
(मुझे देवताओंका प्रिय बना।)
८ सं श्रुतेन गमेमहि। (१.१.४)
(हम वेदोपदेशके साथ-साथ चलें।)
९ अयशियो हतवर्चा भवति। (१२.२.३७)
(यश-शून्य निस्तेज होता है।)
१० सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। (१९.१५.६)
(सारी दिशाएँ हमारी हितैषिणी हों।)

११ वयं सर्वेषु यशसः स्याम। (६.५८.२)
(हम सबमे यशस्वी हो।)
१२ मधुमती वाचमुदेयम्। (७.५२.८)
(मैं मीठी बात बोलू।)
१३ मा नो द्विक्षत कश्चन। (१२.१.२४)
(हमारा द्वेषी कोई न रहे।)
१४ शं मे अस्तु अभयं मे अस्तु। (१९.९.१३)
(मुझे कल्याण मिले और भय न हो।)
१५ मा मा प्रापत पाप्मा मोत मृत्युः। (१७.१.२९)
(मेरे पास पाप और मृत्यु न आवे।)
१६ अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः। (५.३.५)
(हम शरीरसे नीरोग रहे और उदात्त वीर बने।)
१७ आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्। (५.३०.७)
(ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवका लक्ष्य है।)
१८ ज्योगेव दृशेम सूर्यम्। (१.३१.४)
(हम सूर्यको बहुत समयतक देखे वा चिर जीवित रहें।)
१९ मा जीवेभ्यः प्रमदः। (८.१.७)
(प्राणियोकी ओर उपेक्षा मत करो।)
२० कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। (७.५२.८)
(मेरे दाहिने हाथमे पुरुषार्थ है, तो बाये हाथमे सफलता रखी हुई है।)
२१ माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। (१२.१.१२)
(मेरी माता भूमि है और मै उसका पुत्र हूँ।)
२२ मा पुरा जरसो मृथाः। (५.३०.७)
(मनुज, तू बुढापा आनेके पहले मत मर।)
२३ परैतु मृत्युरमृतं न एतु। (१८.३.६२)
(हमसे मृत्यु दूर भाग जाय और हमे अमरता मिले।)

२४ सर्वमेव शमस्तु न.। (१९.९.१४)
(हमारे लिये सब कल्याणकारी हो।)
२५ शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स किर। (३.२४.५)
(सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे बाटो।)
२६ शिव मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् । (६ ७१.३)
(मेरा अन्न कल्याणकारी और मधुर हो ।)
२७ एवा मे आश्विना वर्चस्तेजोबलमोजश्च ध्रियताम्। (९.१७)
(अश्विद्वय, मुझमें वर्चस्, तेज, बल और ओज बढ़े ।)

विशेष

१ विश्वा स्पृध आर्येण दस्यून् । (ऋग्वेद २ ११.१९) ।
(इन्द्रने आर्यके द्वारा प्रतिस्पर्द्धी शत्रुओंका नाश किया ।)
२ अपावृणोर्ज्योतिरार्याय (ऋग्वेद २ ११.१८)
(इन्द्र वा परमात्मन्, आर्यके लिये तुमने ज्योति दी है ।)

उपसंहार

कृष्ण यजुर्वेदके तैत्तिरीय-ब्राह्मणमे कहा गया है, 'ऋषि भरद्वाजने जीवन भर तपस्या की। प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और भरद्वाजसे पूछा कि 'यदि तुम्हे एक जन्म और मिले, तो तुम उस जन्ममे क्या करोगे?' भरद्वाजने उत्तर दिया—'मै इस जन्मके समान ही तपस्या करता हुआ उस जन्ममे भी वेदाध्ययन करूँगा।' देवाधिपति इन्द्रने पुन. प्रश्न किया—'यदि तुम्हे पुन एक जन्म और मिले, तो क्या करोगे?' भरद्वाजने दृढता-पूर्वक उत्तर दिया—'मै उस जन्ममे भी तप करता हुआ वेदोका स्वाध्याय करूँगा।' इस उत्तरके साथ ही भरद्वाजके सामने तीन पर्वत प्रकट हुए। इन्द्रने उन तीनोमेंसे एक मुट्ठी भरकर कहा—'भरद्वाज, अवतक वेदोको पढकर जो कुछ ज्ञान तुमने प्राप्त किया है और दूसरे जन्मोमे जो कुछ ज्ञान पाओगे, सो सब इन पर्वतोकी तुलनामे इस मुट्ठीके समान है। वेद तो अनन्त है—"अनन्ता वै वेदा:।"

वस्तुत वेद अनन्त है; वेदोका अन्त किसीको नही मिला। भारतके बडे-वडे तपोधन महर्षियोने वेदाध्ययनमे अपने सारे जीवन खपा डाले; परन्तु वेद-समुद्रका थाह नही लगा, वह अथाह ही रहा! 'कितने ही जीवन भर वेदाध्ययन करके भी वेद-रहस्यको, वेदके यथार्थ तत्त्वको नही समझते' (ऋग्वेद १० ७१.४)। विश्वकी सभ्यतम जाति—आर्यजाति—ने वेदोके आधारपर, वेदोकी व्याख्यामे, हजारो हजार ग्रन्थ रच डाले, शास्त्र, धर्म-शास्त्र, पुराण, तन्त्र आदि वना डाले, विशाल साहित्य गढ डाला, हजारो और लाखों श्लोकोंके महाविराट् पोथे तैयार कर डाले; तो भी वेदोंकी

पूरी पडताल नही हुई, वेद सदाकी ही तरह अपार और अनन्त ही बने रहे ! वेदका प्रत्येक मन्त्र इतना निगूढ, इतना दुरूह और इतना सूक्ष्मभावापन्न है कि बडे-बडे ऋषि-महर्षियोने एक-एक मन्त्रको लेकर एक-एक ग्रन्थ बना डाला, तो भी सन्तोष नही हुआ, प्रत्येक मन्त्र अगम्य ही रहा ! कमसे काम उसका ऐसा राई-रत्ती रहस्य नही जाना गया, जिससे विद्वानोकी जिज्ञासा शान्त और परितृप्त हो जाय। 'ऋषियोके अन्त करणमे, समाधि-दशामे, जो दिव्य ज्ञान-ज्योति प्रस्फुरित हुई, उसे उन्होने प्राप्त किया, उसे उन्होने पाया और उसे ससारके मनुष्योको पढाया' (ऋग्वेद १० ७१ ३); परन्तु उनकी ज्ञान-पिपासा बुझी नही, वे उपवेद, वेदाग और वेदान्त बनाते ही गये ! प्रत्येक मन्त्रकी आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि व्याख्याएँ की गयी, तो भी वह मन्त्र उतना ही जटिल और विकट बना रहा, जितना व्याख्याओके पहले था। महर्षि वाल्मीकिने वेदके चौवीस अक्षरो वाले गायत्री-मन्त्रको लिया और एक-एक अक्षरपर एक-एक हजार करके अपनी रामायणके चौवीस हजार श्लोक बनाये—"चतुर्विंशति-साहस्रय श्लोकानामुक्तवान् ऋषि."; परन्तु क्या किसीने आत्मपरितोष किया ? किसीने कहा कि 'वाल्मीकिने तो गायत्रीकी अथसे इतितक गोपनीयता खोल डाली, अब इसपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नही रही ?' वाल्मीकिके बाद गायत्री-मन्त्रकी सैकडो व्याख्याएँ हो चुकी और अबतक नवाभिनव व्याख्याएँ हो रही है और पता नही, कबतक होती रहेगी ! गायत्री-मन्त्रपर दो-दो सौ रुपयेकी एक-एक पुस्तक लिखी गयी, तो भी विद्वानोकी ज्ञान-पिपासा अतृप्त-जिह्वा ही बनी रही ! ग्रिफिथ और विलसन, लुड्विग और लागलोआ, मैकडानल और मैक्समूलर, राथ और बोहट्लिङ्क ने वेद-व्याख्यामे अपना जीवन ही बिता डाला; तो भी उनकी व्याख्याएँ 'अधूरी' है और अधूरी है उनके देश-वासियोकी ही दृष्टिमें ! श्री बसन्त जी० रेलेके "The Vedic Gods" की भूमिकामे प्रसिद्ध वेदाध्येता डा० ई० जे० टामसने लिखा है—"It will help the scholars

of India to realise, as we are learning in the west, that the great problem is not yet solved" अर्थात् 'इस पुस्तकसे भारतीयोको मालूम हो जायगा–जैसा कि अब हम पश्चिमके विद्वान् अनुभव करने लगे हैं–कि वेदार्थका महत्त्व-पूर्ण प्रश्न अभीतक हल नही हुआ।' सचमुच भाष्यों, निरुक्तो और प्रातिशाख्योका सांगोपांग मन्थन करके भी वेदोके अनेकानेक मन्त्रोका पूरा अर्थ अबतक नही ज्ञात हो सका है!

इतना सब होते हुए भी वेदने मानवजातिको पूर्ण निराश नही किया है, उसने वेदार्थ समझनेका एक मार्ग निकाला है। ऋग्वेद (१७१ १) ने उपदेश दिया है–'वेदार्थ-ज्ञान गोपनीय है, वह सरस्वतीके प्रेमसे प्रकट होता है।' सो, जिसे सरस्वती-प्रेम है, जो सरस्वतीका अनन्य भक्त है, जिसने वेद-सरस्वतीकी पवित्रतम उपासनामे अपनेको अर्पित कर दिया है, उसे कुछ न कुछ वेदार्थ-ज्ञान होगा ही; सूक्ष्मतम और निगूढ अर्थ न सही, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ कुछ विदित होगे ही। इसी आधार और आशापर अगम-अपार वैदिक साहित्यकी कुछ बाते इस ग्रन्थ मे लिखी गयी है और आगे भी उनकी कुछ थोड़ी-सी चर्चा की जायगी। शारदा देवी ही जाने कि इस ग्रन्थमे वेदोकी कुछ रूप-रेखा खीची जा सकी है या नही।

उपनिषद्मे कहा गया है–"यद्यन्मनुरवदत्तत्तादेव भेषजम्" अर्थात्, करुणापरवश होकर 'जो कुछ मनुजीने कहा है, वह मनुष्योकी भलाईके लिये औषध है।' वही मनुजी कहते हैं–

"सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥"

तात्पर्य यह है कि वैदिक शब्दोके आधारपर ही जगत्के प्राणियोके नाम, कर्म और व्यवस्थाएँ अलग-अलग की गयी।

पहले लिखा गया है कि वेदोके नित्यत्व-प्रतिपादक आचार्योने इसी श्लोकके आधारपर अपनी सम्मति दी है कि 'वेदोक्त नाम, कर्म और व्यवस्थापनको लेकर ही लोगोने ऐतिहासिक पुरुषोके नाम, कर्म और व्यवस्थापन रख दिये, वस्तुत वेदोमे इतिहासकी गन्धतक नही।'

मनुजी एक स्थानपर और लिखते हैं–

"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥"

आशय यह है कि 'भूत, भविष्य, वर्त्तमान–सब वेदसे ही सिद्ध होते हैं।' मानो वेद त्रिकाल-सूत्रधर है, उसकी आज्ञाके अनुसार सदा चलनेसे निश्चित रूपसे सफलता मिलती है।

परन्तु क्या-क्या वेदाज्ञाएँ है, यह जानना कुछ कठिन है। अबतक तो यह भी निर्णय नही हुआ कि वेद-मन्त्र कितने है। 'चरण-व्यूह, (५ १) मे कहा गया है–

"लक्षं तु वेदाश्चत्वारो लक्षं भारतमेव च।"

अर्थात् 'चारो वेदोके मन्त्र एक लाख है और महाभारतके श्लोक भी एक लाख हैं।' प्रसिद्ध विद्वान् प्रज्ञाचक्षु प० धनराज शास्त्रीने भी इन पक्तियोके लेखकसे कहा था, 'यदि कोई तैयार हो, तो मै एक लाख वेद-मन्त्र लिखा सकता हूँ।"

परन्तु चारो वेदोकी उपलब्ध ११ सहिताओमे तो एक लाख तो क्या, पचास हजार भी मन्त्र नही है–महाभारतके भी एक लाख श्लोक नही मिलते। ऋग्वेदकी शाकल-सहिता सभी सहिताओसे विशाल है। उसमें एक मन्त्र है–

"सहस्रधा पंचदशान्युक्था." (ऋग्वेद १०.११४.८)।

अर्थात् 'ऋग्वेदीय मन्त्र १५ हजार है।' परन्तु ऋग्वेदकी प्राप्त शाकल-सहितामे तो केवल १०४६७ ही मन्त्र है और इनमेसे सैकडो-हजारो मन्त्र यजु, साम और अथर्वमे भी पाये जाते है। इसलिये यही कहा जा सकता है

कि अनुपलब्ध वेद-मन्त्र नष्ट, लुप्त वा गुप्त है। तो भी ११ सहिताओके जितने मन्त्र उपलब्ध है और उनकी जितनी उल्लेखनीय आज्ञाएँ और सामयिक विषय वा बातें है, प्राय उन सारे विषयो और बातोका कुछ विशद विवेचन पिछले अध्यायोमे किया गया है। साथ ही प्रत्येक विषयके विवेचनमे मूल ग्रन्थ, तर्क, युक्ति, प्रमाण तथा प्राचीन-नवीन और देशी-विदेशी टीकाकारोकी आलोचनाओको यथोचित आधार माना गया है। लेखक की धारणा है कि जो मूल वेदग्रन्थोको समझनेकी क्षमता नही रखता, उसका सिद्धान्त वा निष्कर्ष कभी प्रामाणिक नही हो सकता।

वेदोत्पत्ति और विभिन्न मत-वाद

प्रसगत. कई अध्यायोमे लिखा जा चुका है कि वेदोपर अनेक मतवाद प्रचलित है और ये मतवाद एकसे एक अनूठे और अद्भुत है। वेदार्थ करनेमे ये मतवाद कुछ सहायता करते है। वेद-विद्याके जिज्ञासुओको इन सबका विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यहा अत्यन्त सक्षेपमे सबका उल्लेख किया जाता है।

पहला मत स्वय वेदका है। ऋग्वेद (१० ९० ९) का एक मन्त्र कहता है—

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥"

अर्थात् 'उस यज्ञसे ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए। उसीसे गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद भी उत्पन्न हुए।' आशय यह है कि सर्वात्मक पुरुषके सकल्प-रूप होमसे युक्त मानस यज्ञसे ऋग्वेदादि उत्पन्न हुए। स्पष्ट तात्पर्य यह समझना चाहिये कि भगवान्ने इच्छा की और वेद उत्पन्न हुए। उत्पन्न होनेका अर्थ अभिव्यक्ति करके बहुत लोग कहते है कि नित्य वेद सृष्टिके समय ईश्वरेच्छासे अभिव्यक्त हुए। दूसरा मत कहता है कि भगवान् (पुरुष) से वेद उत्पन्न हुए; इसलिये वे ही वेद-कर्त्ता है। बृहदारण्यकोपनिषद् वेदोको भगवान्‌का श्वास मानती है।

शतपथ-ब्राह्मण, निरुक्त और मनुजीका मत है कि सूर्य, अग्नि और वायु देवताओने वेदोको बनाया अर्थात् इनके द्वारा वे ससारमे प्रकट हुए। मनुजीने लिखा है—

"अग्निवायु-रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ-सिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम्॥"

अर्थात् ऋग्यजु-साम-रूप तीनो शाश्वत वेदोको यज्ञ-सिद्धिके लिये अग्नि, वायु और सूर्यसे दूहा अर्थात् प्राप्त किया गया।

आर्यसमाजके स्वामी दयानन्द सरस्वती तो अग्नि, सूर्य, वायु और अगिराको 'प्राथमिक ऋषि' मानते हैं, जिनके द्वारा सृष्टिके आदिमें चारो वेद प्रकट हुए। पश्चात् वेदार्थोके साक्षात्कर्त्ता और व्याख्याता अनेकानेक ऋषि हुए, जिनके नामोपर सूक्तादि प्रसिद्ध हुए। स्वामीजी वेदोके शब्द, अर्थ और शब्दार्थ-सम्बन्ध तथा क्रम आदि भी नित्य मानते हैं। स्वामी-जीका मत है कि 'वेदोमे अनित्य व्यक्तियोका वर्णन नही है।' प्रकृति-प्रत्यय के अर्थोके आधारपर चलनेवाली यौगिक शैली ही आर्यसमाजमे वेदार्थ करनेकी ठीक शैली मानी जाती है। स्वामीजी वेदोमे आये नामोको ऐति-हासिक और भौगोलिक न मानकर यौगिक अर्थोमे लेते हैं। वे वसिष्ठको ऋषि नही मानते, वसिष्ठ शब्दका अर्थ 'प्राण' करते है। इसी तरह भरद्वाज का अर्थ 'मन' और विश्वामित्रका अर्थ 'कान' किया गया है। इस प्रकार वेदोमें जितने ऐतिहासिक और भौगोलिक नाम आये है, स्वामीजी और अन्य आर्यसमाजी विद्वानोने सबका यौगिक अर्थ कर डालनेकी चेष्टा की है।

यास्कने भी यौगिक अर्थ किये है, परन्तु कही-कही उन्होने इतिहास भी माना है। सायण, महीधर, उवट आदि 'वेदोको प्रभुका ज्ञान' (अर्थात् ईश्वर-दत्त) मानते है और उन्हें ईश्वरीय गुणोकी तरह 'नित्य' भी कहते हैं। तो भी उन्होने ऐतिहासिक और भौगोलिक नामोका यौगिक अर्थ नही किया है—इतिहास और भूगोलको भी माना है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (६ ८) मे कहा गया है–

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।"

अर्थात् 'जो सृष्टिके आदिमे ब्रह्माको उत्पन्न करता और उसके लिये वेदोको भेजता है।' वशब्राह्मणमे भी परम्परया वेदोकी उत्पत्ति ब्रह्मासे बतायी गयी है। मनुजीका जो श्लोक पहले लिखा गया है, उसमे भी वेद-दोग्धा प्रजापति ही बताये गये हैं। इसी प्रकार मनुजीने 'नित्या वाक्' का ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होना बताया है–**"नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।"** एक स्थानपर तो मनुजीने स्पष्ट कहा है–

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥"

अर्थात् ब्रह्माकी अनुज्ञासे महर्षियोने, तपस्याके द्वारा, प्रलयावस्थामें छिपे हुए, इतिहासके साथ, वेदोको प्राप्त किया।

इस श्लोकमे 'इतिहास'का नाम देखकर नित्यतावादी चौक पड़ते और 'नित्य इतिहास'की व्याख्या कर डालते हैं! कहते हैं, 'उर्वशी-पुरूरवा, यम-यमी आदिका नित्य इतिहास वेदमें है, पौराणिक इतिहास नही।'

श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोकाश है–""तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये" अर्थात् भगवान्ने ब्रह्माके लिये वेद-विस्तार किया। वेदान्त भी ब्रह्माके द्वारा ही वेद-प्राप्ति बताता है।

महाभारतने तो स्पष्ट ही लिखा है कि ब्रह्माने वेदोको बनाया है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि अजपृश्नि ऋषिने तपोबलसे प्रसाद-रूपमे वेदोको पाया। कही अंगिराका पाना भी लिखा है।

मणिकारके मतसे मत्स्य भगवान्के वाक्य ही वेद हैं।

सांख्यशास्त्र कहता है कि 'वेदोंके कर्त्ताका पता नही चलता; इसलिये वेद अपौरुषेय हैं।' योगशास्त्रका भी यही मत है।

न्यायशास्त्र वर्ण, शब्द—सबको अनित्य मानता है। नैयायिक वेदोको आप्त और प्रवाह-नित्य मानते हैं—कूटस्थ नित्य नही।

वैशेषिक दर्शन अर्थ-रूप वेद-विद्याको अपौरुषेय मानता है, परन्तु शब्द-रूप वेदको अनित्य।

वैयाकरण कैयट भी अर्थरूप वेद-विद्याको अपौरुषेय मानते हैं।

परन्तु सबसे कट्टर मत जैमिनि ऋषिकी मीमासाका है। मीमासा स्पष्ट कहती है—"**आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्**" (१.२ १)। अर्थात् 'वेद यज्ञ-क्रिया-रूप है, इसलिये इससे भिन्न अर्थात् यज्ञ-कर्मसे शून्य वाङ्मय निरर्थक है।' जैमिनिका यह भी दृढ मत है कि वर्णोकी उत्पत्ति नही होती, अभिव्यक्ति होती है। कण्ठ, तालु आदि अभिव्यजक है, उत्पादक नही। जैमिनि शब्द और शब्दार्थको भी नित्य मानते हैं। 'ऋषि शब्दार्थ-सम्बन्धके द्रष्टा थे—वे वेदको विश्वमे अभिव्यक्त भर करने वाले थे।' मीमासा मन्त्र और फलका सम्बन्ध भी नित्य मानती है। जिस मन्त्रके जो देवता कहे गये है, उनकी शक्ति उस मन्त्रमे रहती है। मन्त्रोमें चुम्बकमें खीचनेकी तरह, फल देनेकी, स्वर्गादि प्राप्त करानेकी स्वाभाविक शक्ति है। मीमासाके मतसे पृथक् देवता और ईश्वर नही हैं। मीमासा प्रधान वेद-रक्षक शास्त्र है, इसलिये एक पृथक् अध्यायमे इसपर कुछ अधिक विचार किया गया है।

परन्तु इन दिनो जिस मतका अधिक प्रचार, प्रामुख्य वा प्रावल्य हो रहा है, वह 'आर्ष मत' है। इस मतसे वसिष्ठ, अगस्त्य, भृगु, अगिरा, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र आदिके द्वारा वेद बनाये गये है, ऋषियोपर मन्त्रोका 'इलहाम' वा अवतरण नही हुआ है। ऋग्वेद (१ १०९ २) में भी स्पष्ट कहा गया है—"**स्तोमं जनयामि नव्यम्**" अर्थात् 'मै नया मन्त्र बनाता हूँ।' इसी वेदमे एक दूसरे स्थान (६ ८ ५) पर और कहा गया है—

"**युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्यो रयिं यशस धेहि नव्यसीम्।**"

तात्पर्य यह है कि 'प्रत्येक युगमे (मन्त्रात्मक) नवीन स्तोत्र कहनेवाले हमको तुम, हे अग्नि, धन और यश प्रदान करो।'

वायुपुराण (५९ अध्याय) मे कहा गया है—**"प्रतिमन्वरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते"** (प्रत्येक मन्वन्तर-कालमे दूसरी श्रुति (मन्त्र) बनायी जाती है।)

निरुक्त (१० ४२) मे आया है—**"तत्परुच्छेदस्य शीलम्"** अर्थात् परुच्छेद ऋषिका यह शील है कि 'वह अपनी रचनामे एक बार कहे शब्द को दुबारा ले आते हैं।' यह पूर्णत सत्य है। प्रथम मण्डलके १२७ सूक्त से लेकर १३९ सूक्तोतक १३ सूक्तोके ऋषि दिवोदासके पुत्र परुच्छेद हैं। इन सारे सूक्तोमे निरुक्तमे कही गयी विचित्रता अवश्य है। यही नही, अभूतपूर्व वस्तुके उत्पादनके अर्थमे जन्, कृ, तनु, सृज्, तक्ष आदि अनेक धातुओका प्रयोग ऋग्वेद-संहिताके मन्त्रोमे, कई स्थानोमे, आया है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है। इन धातुओका प्रयोग ऐसे स्थानोपर ऐसे ढगसे आया है, जिससे विदित होता है कि ऋषि लोग आवश्यकतानुसार बराबर नये मन्त्र बनाया करते थे। इस सम्बन्धमे अधिक जाननेवाले सज्जन निम्नलिखित मन्त्रोका सायण-भाष्य देखे—१ २० १, १ ३८ १४, १ ४७ २, १ ६३ ९, १ १६६ १५, २ ३९ ८; ३ ३० २०, ४ ६ ११, ४ १६. २१; ६ १८ १५, ७ १८ ४, ७ २२ ९, ७ ९४ १, ७ ९७ ९, ८ ८ १७, ९ ११४ २, १० २३ ६, १० ८० ७ आदि आदि। इनमेसे आपको प्रत्येक मन्त्रमे मिलेगा, 'मन्त्र बनाया'। नमूनेके लिये एक मन्त्र देखिये—

"ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥"

सनातनधर्मावलम्बियोंके विश्वास-पात्र सायणाचार्यने इसका ऐसा अर्थ किया है—'जितने प्राचीन ऋषि हो गये है और जितने नवीन ऋषि है, हे इन्द्र, वे सभी तुम्हारे लिये मन्त्रात्मक स्तोत्र उत्पन्न करते है। तुम्हारा सख्य हमारे लिये मगलमय हो। तुम सदा स्वस्ति द्वारा हमारा पालन करो।' (ऋग्वेद ७ २२ ९)

इस तरह सिद्ध है कि 'ऋषिकृत और मनुष्य-रचित पुस्तक नित्य नही हो सकती। निरुक्तकारो और भाष्यकारोके मतसे वेदोमे इतिहास है और अनित्य इतिहासवाली पुस्तक कभी नित्य नही हो सकती।' आर्ष-मतवादियो का यही अभिमत है।

वेदोके आविर्भाव और रचनाके सम्बन्धमे ये ही मतवाद है। इस पुस्तकमे इन मतोकी जहा-तहा प्राय झलक मिलेगी। वैदिक साहित्यके जिज्ञासुओको इन सब मतोका ज्ञान रखना आवश्यक है।

वैदिक साहित्य और आधुनिक विद्वान्

वैदिक साहित्यका पठन, पाठन, प्रचार, उद्धार, प्रकाशन, समीक्षण और भाष्य-टीका करनेवाले आधुनिक विद्वान् तीन श्रेणियोमें विभक्त किये जा सकते हैं---आर्यसमाजी, सनातनी और विदेशी तथा विदेशियोके एतद्देशीय अनुयायी। वैदिक साहित्यके ऊपर इन तीनो प्रकारके विद्वानो के दृष्टिकोणोमे पृथ्वी-आकाशका भेद है। तीनोके तीनो आपसमे कट्टर समालोचक है। पुस्तकमे यत्र-तत्र सारे मतवादोका उल्लेख रहनेपर भी यहा तीनो दृष्टिकोणोका उल्लेख कर देना आवश्यक है, क्योकि तीनोका पूरा दृष्टि-भेद जान लेनेपर वेदोकी विषयावगतिमे साहाय्य मिलेगा।

आर्यसमाजके सस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदोके परम भक्त थे। उन्होने आर्यसमाजकी नीव वेदोके आधारपर ही रखी थी। वे भारतमें ही नही, समस्त विश्वमें वेदोका मेघ-मन्द्र-निनाद सुनना चाहते थे। वस्तुत स्वामीजी वेद-प्रचारके लिये ही जिये और मरे। उन्होने ऋग्वेदका तीन-चौथाई और यजुर्वेदका सम्पूर्ण भाष्य किया था। इसके सिवा उन्होने कितने ही आलोचना-ग्रन्थ भी लिखे और वैदिक साहित्यके सम्बन्धमे अगणित व्याख्यान दिये तथा लेख लिखे।

स्वामीजीके बाद उनके अनुयायियोने अनेक अमूल्य वेद-ग्रन्थोके प्रकाशन, सम्पादन और अनुवाद किये। आर्यसमाजकी ओरसे चारो वेदोकी

एक-एक सहिताका अनुवाद हो चुका है। कितनी ही वेद-सस्थाएँ भी स्थापित हो चुकी है। वेद-प्रचारके लिये कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती है।

यह सब होते हुए भी आर्यसमाजके वैदिक ग्रन्थ एकागी दृष्टिसे देखे जाते हैं। सनातनी ही नही, विदेशी विद्वान् भी आर्यसमाजी वेदज्ञोको उक्त दृष्टिसे ही देखते है। क्यो? इसके कई कारण हैं। आर्यसमाजी ऋग्वेदकी शाकल, यजुर्वेदकी माध्यन्दिन, सामवेदकी राणायणीय और अथर्ववेदकी शौनक सहिताओको ही मूल चारो वेद मानते है; शेष सहिताओको इन्हीकी शाखाएँ मानते है। आर्यसमाज देवतावाद नही मानता, याज्ञिक अर्थ भी नही मानता, भाषा-विज्ञानकी चिन्ता नही करता, वेदोमे इतिहास नही मानता, वेदोके ऐतिहासिक व्यक्तियो, नदियो, पर्वतो—सबका केवल यौगिक अर्थ करता है। आर्यसमाजके विचारसे वेदोमे न तो अवतारवाद है, न श्राद्ध है, न मृत-पितृ-लोककी वात है। परन्तु मूल वेद-ग्रन्थ समझने वाले किसी निष्पक्ष विद्वान्के लिये ये सारे सिद्धान्त मानना असम्भव है। ये सारी बाते आर्य-परम्पराके विरुद्ध भी है। यही कारण है कि वेदोका केवल आध्यात्मिक अर्थ करनेवाले सज्जन किसी भी अधिकारी वेद-विज्ञाता विद्वान्को अपने सिद्धान्तोसे अबतक सन्तोष नही दिला सके।

दूसरे है सनातनधर्मी विद्वान्। वेदोके मन्त्रोके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आदि तीनो ही अर्थ यथाप्रसग और यथास्थान विहित हैं। सनातनी इन तीनोको मानते भी है, परम्परा-प्राप्त अर्थोको भी मानते है। परन्तु गवेपणा करनेकी उनकी प्रवृत्ति 'नही सी' है। वैदिक साहित्यके किन-किन ग्रन्थोकी सहायतासे किन-किन वैदिक प्रकरणोकी सगति वैठेगी और किन-किन मन्त्रोका अर्थ स्पष्ट होगा, कुछ सनातनी इसकी 'नही सी' आवश्यकता समझते है! जैसे आर्यसमाजी स्वर-पाठकी तरफ कुछ कम ध्यान देते है, वैसे ही सनातनी भाषा-विज्ञानकी तरफ कुछ कम। कुछ निश्चित मन्त्र कण्ठस्थ कर लिये और उनका यज्ञोमे पाठ वा विवाह-यज्ञोपवीतके समय उच्चारण कर दिया, वस, वेदोके प्रति कर्त्तव्य पूरा हो

गया ! कहनेको तो हर एक सनातनी पण्डित गर्वके साथ कहेगा—"निष्कारण ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यः" (बिना कारण, निष्काम भावसे, ब्राह्मण को छहो वेदागोके साथ वेद-स्वाध्याय करना चाहिये)। परन्तु कुछ पण्डित स्वार्थ और पुरोहिताईके लिये थोडेसे वेद-मन्त्र रट लेते है। इनमें अधिकाश वेदार्थ नही जानते। इन्ही कारणोमे ये न तो आर्यसमाजी वेदाभ्यासियो को कभी प्रभावित कर सके, न विदेशी वेद-विद्यार्थियोको ही। ज्योतिष, कर्मकाण्ड, व्याकरण आदिसे इन्हें अवकाश ही नही कि ये गवेषणा-परायण होकर विधिवत् वेदाध्यन करें और दूसरोको प्रभावित करें ! क्या सनातन-धर्मावलम्बियोमें स्व० प० सत्यव्रत सामश्रमीके समान अक्लान्त-परिश्रमी और अदम्य अन्वेषण-परायण एक भी वेद-ज्ञाता नही होगा ?

सनातनी द्विजाति मात्रके लिये वेदाधिकार मानते है। परन्तु द्विजाति में क्षत्रिय और वैश्य तो वेदाध्ययन छोड ही चुके, ब्राह्मणोके लडके भी यज्ञोपवीतके समय अपनी शाखाके कुछ मन्त्रतक कण्ठस्थ नही करते, न उन्हें मन्त्र कण्ठस्थ ही कराये जाते है। दूसरोकी बाते जाने दीजिये, वैदिकोके सुपुत्र भी अब गायत्री-मन्त्रतकका कण्ठस्थ करना व्यर्थ समझने लगे है ! संस्कृत-पाठशालाओमे ३०) रु० मासिकपर वैदिक रख लिये जाते है और वे 'रुद्री' "घोखाया" करते है !! हजारो वर्ष पहले निश्चित किये गये स्वरोको ज्योके त्यो पढनेवाले ब्राह्मणोको ३०) रु० की 'चाकरी' दी जाती है !! इससे बढकर भी कोई महाश्चर्य होगा !!!

तीसरे दलमें है विदेशी वेदज्ञ और उनका अनुधावन करनेवाले। इस दलमे एकसे एक विचित्र सूझवाले पुरुष है। कुछ तो कहते है, ? 'सायण सडे दिमागका आदमी था, वह क्या वेद जाने ?' कुछ कहते है, 'यास्क भी मूर्ख ही था—वेदोको नित्य भी मानता है और वेदोमे इतिहास भी मानता है।' कुछका तो खयाल है कि 'गर्म देश (भारत) मे स्वतन्त्र विचार उत्पन्न हो ही नही सकते। वेदोमे कोई स्वाधीन चिन्ता नही, वे तो भेंड चरानेवाले गडेरियोके गीत है।' कुछ सबसे आगे बढकर कहते है—'दक्षिण अफ्रीकामें

हजार सिरवाले राक्षसकी जो कहानी है, उसीकी नकलपर 'सहस्रशीर्षा' लिखा गया है !' जिनका काम ही भारत, भारतवासी और वेदको नीच समझना है, उन उलटे विचार वालोको कोई क्या उत्तर देगा ? परन्तु इनमे कदाचित् एक भी ऐसा 'वेद-ज्ञाता' नही है, जो प्रातिशाख्य और निरुक्त भी पढा सके, मूल वेदोका पढाना वा समझना तो दूर रहा। और तो और, इनमे कदाचित् एक भी व्यक्ति एक भी मन्त्रका शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करने वाला भी नही मिलेगा ! आर्य-धर्म और आर्य-सस्कृतिके विरोधी ऊल-जूलूल पुस्तके पढकर ही ऐसी अनोखी राय कायम कर बैठते हैं !

ये वेदोके ऊपर तरह-तरहके सन्देह-जाल बिछाते है। कहते है, 'वेदोमें ओषधिया वैद्योसे बाते करती है, द्यावा-पृथ्वी बोलती है, जल और वायु, चमस और स्रुवा--सबके सब चलते, वर देते या धन देते है। क्या ये चेतन है ? 'नही', तो जड पदार्थ ये सब कार्य कैसे करेगे ?'

यह बात लिखी जा चुकी है कि वेद प्रधानत आध्यात्मिक ग्रन्थ है, उनमे चेतनवादकी प्रधानता है। वैदिक मन्त्रोके साथ विहार करने वाले ऋषि चेतनमे रमण करते है, चेतनगतप्राण है। ऐसे पुरुष सभी पदार्थोको चेतनमय देखते है--वे चेतनके साथ ही खाते-पीते, सोते-जागते और बोलते-बतराते है। वे कुछ बनावट नही करते, वस्तुत ऐसा अनुभव करते है। अभी भी यहांके वा किसी भी देशके महात्मा ऐसा ही अनुभव करते और जड़-पदार्थोसे बाते करते है। जो "आत्मवत् सर्वभूतेषु" समझते है, वे पशु, पक्षी, ककड और ठीकरेसे भी बाते करते है। भला जो वैद्य अपनी ओषधियोसे बातें नही करता, वह क्या भेषजका मर्म जानेगा ? जो वीर अपनी तलवारसे बाते नही करता, वह भी कोई वीर है ? सच्चाई तो यह है कि अपनेमे चेतनका जितना ही अधिक विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड वस्तुओसे चेतनवत् व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमे चेतनका विकास नही है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जडानुगत है, वह तो मनुष्यको भी जड़ समझेगा और जडकी तरह ही उसपर भी नाना

प्रकारके अत्याचार करेगा। फलत वेदमन्त्रोका चेननानुगत होना उनकी अत्युच्च अध्यात्म-भूमिका है।

इनका दूसरा सन्देह है, 'वेदोमे सब ओर देव ही देव है। सारे वैदिक साहित्यमे देवोका ही गीत गाया गया है। क्यो ?'

परमात्माकी दिव्य-गुण-सम्पन्न पृथक्-पृथक् शक्तियोको देव कहा जाता है। ये दिव्य शक्तिया चारो तरफ है—बाहर, भीतर, सर्वत्र। प्रत्येक जड पदार्थका अधिष्ठाता एक देव है। ऋषि लोग वृक्ष, शाखा, पर्ण—सबमे देव ही देव देखते थे। अनुमान किया जा सकता है कि ऋषि लोग जब अपनेको चारो ओरसे देवोसे घिरा हुआ अनुभव करते होगे, तब उनका ससार कैसा आनन्दमय, स्वर्णमय रहा होगा! क्षण भरके लिये भी यदि आप अपनेको देवोसे घिरा हुआ अनुभव करें, तो आपके सारे दुर्गुण भाग जायँगे और आप सद्गुणोकी खान हो रहेंगे। यदि आप इन देवोमें ही विचरे, सोयें, जागें, तो आपका जीवन दिव्य हो जायगा, आपके सारे कार्य सिद्ध हो जायँगे और आपका ससार देवोका नगर बन जायगा!

वैदिक ऋषियोकी दृष्टि विशाल और व्यापक थी। उनकी माता पृथ्वी थी, उनका पिता द्यौ था, उनके शरीरमे तीनो लोक थे। वे प्रत्येक विषयमें सारे भुवनोका स्मरण करते थे। वे अपने व्यष्टिको समष्टिसे सवलित रखते थे—साढे पाच 'फीट'मे ही अपनेको कैद नही रखते थे। उनके मन विशाल थे, उनके वचन उदार थे, उनके कार्य व्यापक थे। वे अपनेमे विश्वको देखते थे और विश्वमे अपनेको देखते थे। जिस "Universal Brotherhood" ('वसुधैव कुटुम्बकम्') के लिये इन दिनो लोग केवल चिल्लाते है, उनकी वे मूर्ति थे। ऐसे दिव्य पुरुषोका सर्वत्र चेतन और देवता देखना बिलकुल स्वाभाविक है।

कुछ विदेशी और भारतीय यह भी कहते है कि 'वेदोमे युद्धकी बडी बाते है—कुछ ही सूक्त ऐसे है, जिनमे लडाई-झगडेकी चर्चा नही है।' यह

ठीक है। परन्तु जीवन आरामतलबीमे नही है, जीवन है तपमे, जीवन है युद्धमे। वस्तुतस्तु जीवन ही सग्राम है। जीवन-रहस्य बतानेवाले वेदोसे बढकर क्या कोई दूसरा स्थल भी युद्ध-वर्णनके लिये उपयुक्त होगा ?

कहावत है—"**सुन्दरमणिमय-भवने पश्यति पिपीलिका रन्ध्रम्**" (सुन्दर मणिके मकानमें भी चीटी छेद ही खोजती है) ! सो, जिन्हे हिन्दू, हिन्दूत्व, हिन्दूधर्म, हिन्दूसस्कृति और हिन्दूसभ्यतामे केवल छेद ही ढूढने है, उन्हे तो वेदोमे दोष ही दोष दिखाई देगे ही। वस्तुत दोष ही दिखानेके लिये अनेकानेक विदेशी विद्वान् और उनके अनुयायी वैदिक साहित्यके पीछे पडे भी।

मैक्समूलरने दबी जबानसे एक स्थानपर स्वीकार भी किया था कि 'वेदोकी 'पोल' खोलनेके लिये ही मैंने वेदानुवाद प्रारम्भ किया था।' पाश्चात्त्य देशोमे यह कहावत प्रसिद्ध है–"Mock profundity and impotent reaching out after the inexpressible(श्रुतियोमे गहराई तो है, परन्तु थोथी है, उनके कर्त्ताओने अगम्य तत्त्वोतक पहुँचनेका प्रयास तो किया, परन्तु उनका प्रयास नपुसक होनेसे असफल रहा!) अपने मनसे 'वेद-विद्या-वारिधि' बननेवालोकी ऐसी ही सूझ होती है। मूल वेद-ग्रन्थ न समझनेवाले और हिन्दूधर्मसे द्वेष करनेवाले अन्य मत भी तो क्या दे सकते है !

इस बुद्धि-भेदने विषका काम किया। कहा जाने लगा कि 'अग्रेजी भाषासे वेदमे अनेक शब्द उधार लिये गये है! अग्रेजी Path शब्दसे ही वेदका 'पन्था' शब्द बना है! ऋग्वेदमे विदेशी भाषाओके शब्दोका एक 'अम्वार' ही है!' ऋग्वेदके "**सचा मना हिरण्यया**"मे 'मना' वेबीलोनियन शब्द है ! ऋग्वेदके आलिगी, विलिगी, तैमात, ताबुवम् आदि शब्द चाल्डियन वा काल्डियन भाषाके है ! मीन और पूजा शब्दोको भी विदेशी बना दिया गया ! 'हरप्पा' और 'मोहन जो दडो' की खोदाई करानेवाले

प्रो० एल० ए० वैडलने एक ग्रन्थ लिखा–"इंडो-सुमेरियन सील्स डिसाइ-फर्ड"। उसमे लिखा गया–'सुमेरियन संस्कृति और सभ्यताने ही आर्योको सभ्य बनाया। आर्य-सभ्यताकी जननी अनार्य-सभ्यता है। सुमर लोगोके राजाओके ही नाम पौराणिक राजाओके है। वस्तुत पौराणिक राजा भारतीय है ही नही! सुमर लोगोके 'एदिन' शब्दसे सिन्धु शब्द बना है। सुमेरियन भाषाके 'मद्गल'से वैदिक 'मुद्गल' शब्द बना है! इसी प्रकार सुमेरियन कन्वसे कण्व, बरमसे ब्राह्मण और तप्स (अक्कदके सगुनका मन्त्री) मे दक्ष बना' इत्यादि। मानो सारा वैदिक साहित्य विदेशी भाषाओ, इतिहासो और रीति-रस्मोकी नकल है!!!

परन्तु सभी पाश्चात्त्य इस विचारधाराके नही है। उनमे अनेक निष्पक्ष भी है। कइयोने अपनी ज्ञान-पिपासाको शान्त करनेके लिये ही अनाय वेद-ग्रन्थोके प्रकाशन और सम्पादन किये है। वे लाखो रुपये खर्च करके अलभ्य वैदिक ग्रन्थोको प्रकाशमें ले आये हैं और वैदिक ग्रन्थोकी उच्च गुणावलीके भक्त और प्रशसक भी बन चुके है। फ्रासके सुप्रसिद्ध विद्वान् वाल्टेयरका मत है, 'केवल इसी देन (ऋग्वेद) के लिये पूर्वका पश्चिम सदा ऋणी रहेगा।' "Sex and Sex-workship" (पृष्ठ ८) मे वाल साहबने स्वीकार किया है कि 'हिन्दुओका धर्म-ग्रन्थ ऋग्वेद ससारका सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है।' "The Bible in India" मे जकोलियटने जोर देकर लिखा है, 'धर्म-ग्रन्थोमें वेद ही एकमात्र ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान विज्ञानसे मिलते है, क्योकि वेदमें भी विज्ञानानुसार जगत्की रचनाका प्रतिपादन किया गया है।' क्यूजिनका मत है, "ससारकी प्राचीन जातियोमे ईश्वरके लिये आये हुए सभी शब्द वैदिक 'देव' शब्दसे निकले है।"

यद्यपि काव्य-ग्रन्थोकी तरह वैदिक ग्रन्थोमें भाषाकी छटा नही है; किन्तु भावोकी घटा अवश्य है। सीधी-सादी भाषामें निर्मल-हृदय और तपोधन ऋषियोने जड और चेतनकी सारी पहेली खोलकर, दर्पणकी तरह,

रख दी है। आत्मा और पुनर्जन्म, सृष्टि और परलोक, जीवन और मरण तथा राजनीति और समाजनीतिके जटिल और विकट प्रश्नोकी तहतक वेदोके उपदेश, तीरकी तरह पहुँचते है और हर एककी राई-रत्ती कहानी गा जाते है। मानवके कर्त्तव्य और जीवनके लक्ष्यके निगूढ रहस्यको वेद ऐसी सरस और सात्त्विक भाषामे समझाते है कि हठात् आनन्दाश्रु बहने लगते है ! वेद ब्रह्म-द्रवकी ऐसी मधुर और मजुल व्याख्या करते है, जिसका पाया जाना ससारकी किसी भी जातिके किसी भी साहित्यमे कठिन है। ससारके कई चोटीके विद्वानोका मत है कि "वैदिक साहित्यके समान परमोपयोगी, अभ्युदयकारी, कल्याण-वाही और मगल-दाता स्वाध्याय विश्वमे कही नही।" वस्तुत वेदोमे मानवीय उदात्त भावना अपने उच्चतम शिखरपर पहुँची हुई है।

अवश्य ही भागवत गीताकी तरह वेद भी साधु-सरक्षण और दुष्ट-दलनके लिये शस्त्र उठानेकी आज्ञा देते है। मनुष्योमे जो राक्षस है, वे वस्तुत "ताडनके अधिकारी" है। दुष्ट-दमन नही करनेसे समाजका सारा ढाचा, मनुष्यकी सम्पूर्ण व्यवस्था और समस्त 'श्रुति-मार्ग ही भ्रष्ट' होनेका भय है, अतएव वेदका दण्ड देनेकी आज्ञा देना आवश्यक ही है।

पूजा, उपासना, परोपकार, भगवान्मे मिलना आदि यज्ञके अर्थ है। यज्ञसे शिक्षा मिलती है कि 'भले काम किये जाओ और बुरे कामोसे बचते रहो।' वेदकी आज्ञा है कि यज्ञके द्वारा अपनेको समाजमे, देशमे विश्व की समस्त मानवजातिमे और सारे प्राणियोमे मिला दो, अपनेमें सबको समझो और अपनेको सबमें समझो। मनको वशी कर अपनेको ब्रह्माण्डमे और समस्त ब्रह्माण्ड-पतिमे मिला दो। तुम्हें दिव्य ज्ञान, अखड आनन्द और चिर शान्ति मिल जायगी। तुम 'शुद्ध-बुद्ध-मुक्त' हो जाओगे। यही तुम्हारे जीवनका लक्ष्य है, "लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य, विद्धि।"

यही 'अक्षर'-प्राप्ति जीवनका लक्ष्य है। अवश्य ही इसका पथ कुछ विकट है। इसकी विकटता और जटिलता दूर करनेके लिये, इसे मानव मात्र के लिये सरस, सुन्दर और हृदय-ग्राही बनानेके लिये वैदिक मन्त्रोमें द्विरुक्तिया तक की गयी है। जिज्ञासु पाठकोके लिये वैदिक विषयोको सुगम, सरल और बोध-गम्य बनानेके लिये कही इस वर्त्तमान पुस्तकमे भी पुनरुक्ति करनी पडी है।

पाठक यह बात ध्यानमे रखेंगे कि वैदिक भाषा विश्वकी प्राचीनतम भाषा है और इसके आविष्कारक वा निर्माता ऋषि-महर्षि भी अनन्त कालके पुरुष है। उनकी वर्णन करनेकी शैली भिन्न है, उनके चिन्तन और मननके ढग पृथक् है, उनके भाव-प्रकटन और विषय-कथनकी दिशा अलग है। आजकलके मनुष्योकी तरह न तो वे चिन्तन करते थे, न शब्दाडम्बरी भाषा लिखते थे, न अर्द्ध-पक्व भावाभिव्यञ्जन करते थे और न आधुनिक मानवोकी तरह वे कूटनीतिज्ञ ही थे। ये ही कारण है कि उनकी भाषा और उनकी विषय-विवेचन-शैली दुरूह और अगम्य दिखाई देती है। परन्तु जिनकी नाडियोमे अपने पूर्वज ऋषियोका रक्त दौड रहा है, जो उनकी ही तरह सच्चे और सात्त्विक है और जो अपनी सभ्यता, अपनी सस्कृति, अपने जीवन-लक्ष्य और अपनी विमल वेद-विद्याके विज्ञान और रहस्यके वस्तुत जिज्ञासु है, उनके लिये ऋषियोकी भाषा और वर्णन-प्रणाली सुन्दर और सुखद, मदुल और मजुल है।

महाविशाल वैदिक साहित्यके अधिकसे अधिक विषयोका अत्यन्त सक्षेपमे परिचय और समालोचन देनेकी इस ग्रन्थमें चेष्टा की गयी है। इस बातका ध्यान रखा गया है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण वेद-विषय छूटने न पावे। कृष्णगढ, सुलतानगज, भागलपुरसे प्रकाशित ऋग्वेदके हिन्दी-अनुवाद और वहीसे निकलनेवाली "गगा" (मासिक पत्रिका) के विशेषाक "वेदाक" के सम्पादनके समय इन पक्तियोके लेखकने एक "वेद-रहस्य" नामक ग्रन्थ

लिखनेकी सूचना दी थी। जिन विषयोंके समावेशकी कामना "वेद-रहस्य"की सूचनामें की गयी थी, वे सारे विषय इस ग्रन्थमें आ गये हैं।

हो सकता है कि इस पुस्तकके प्रमेयों और प्रतिपाद्योंसे अनेक वेद-विज्ञाताओंका मत-भेद हो। यह भी हो सकता है कि लेखककी अल्पज्ञता, अज्ञता अथवा दृष्टि-दोषके कारण इसमें कोई त्रुटि रह गयी हो। किसी भी त्रुटि और कमीके लिये लेखक विज्ञ वाचकोंसे क्षमा-याचक है। वैदिक साहित्य हमारी अगाध महानिधि है। इसका जनतामें वितरण हो, जन-राज्यमें इसका महत्त्व और प्रचार बढ़े, इसके उपदेशानुसार हम अपनेको सुधारकर अपने जीवनोद्देश्यको प्राप्त करें, हमारा पथ मंगलमय और आनन्दवाहक हो—परम पितासे हम यही परम पावन प्रार्थना प्रतिदिन करें।

कूसी,
पो० आ० दिलदारनगर,
जिला गाजीपुर।

रामगोविन्द त्रिवेदी
आषाढ़-पूर्णिमा, २००७ विक्रमीय

वैदिक ग्रन्थ, उनका मूल्य, निर्माणकाल आदि

वैदिक साहित्यके जिज्ञासु और प्रेमी पाठकोकी जानकारीके लिये इस ग्रथमे वर्णित अथवा अवश्य पठनीय वैदिक ग्रथो तथा उनके समालोचना-ग्रथोकी सूची (मूल्य, प्रकाशन-समय, निर्माण-काल, प्राप्ति-स्थान आदिके साथ) विशेष रूपसे सग्रह करके यहा प्रकाशित की जा रही है। सूचीमे उपनिषदोको इसलिये छोड दिया गया है कि उनका अत्यधिक प्रचार है। जिस वेदके जो ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, प्रातिशाख्य आदि है, उसीमे उनका समावेश किया गया है। बी० सी० का अर्थ है ईसासे पहले। ऋग्वेदके निर्माण-कालके सम्बन्धमे पहले ही लिखा जा चुका है, शेषका यहा लिखा जा रहा है। निर्माणकालके सम्बन्धमे स्व० श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य का मत दिया गया है, क्योकि वैद्यजीका मत अधिक पाठक जानना चाहते है। वैद्यजी बडे सग्रही और गवेषणा-परायण थे। अनेक ऐतिहासिक वैद्यजी के विरोधी भी है, क्योकि वैद्यजी वैदिक ग्रन्थोका निर्माणकाल बहुत पीछे ले आये है—वैद्यजीके अनुमित निर्माणकालसे बहुत पहले ये ग्रन्थ बन चुके थे। वेदोके नित्यतावादी तो वैद्यजीके विरोधी है ही। 'नि०' से निर्माणकाल समझना चाहिये।

ऋग्वेद

१ सायणाचार्य—शाकल-सहिता। सस्कृत-भाष्य। प्रो० मैक्समूलर और श्रीपशुपति आनन्द गजपति राय द्वारा सम्पादित। प्रथम सस्करण १८४९–७५ ई०। पाच भाग। द्वितीय सस्करण १८९०–९२। चार भाग। मूल्य ३००)

२ राजाराम शिवराम शास्त्री-सायणभाष्य। शकाब्द १८१०-१२। १५०)

३ दुर्गादास लाहिड़ी—सायणभाष्य। एक अष्टकका बँगलामे स्वतन्त्र अनुवाद। १६ भाग। पदपाठसहित। वंगाक्षर। १९२५ ई०। २५०)

४ वेंकट माधव—भाष्य। तीन भाग। अपूर्ण। १९४५–४६। १५०)

५ एफ० रोजन—यूरोपमे सर्व-प्रथम ऋग्वेदके प्रथम अष्टकका लैटिन भाषामे अनुवाद। १८३८ ई०। ३।=)

६ ए० लुड्विग—जर्मन अनुवाद। छ भाग। १८७६—८८ ई०। २००)

७ एच० ग्रासमान—जर्मन भाषामे पद्यबद्ध अनूदित। दो भाग। रोमन लिपि। १८७६—७७ ई०। ३०)

८ एच० ओल्डेनवर्ग—जर्मन अनुवाद। दो भाग। १८०९—१२। ३५)

९ थ्यूडोर आउफरेख्त—सम्पादित। रोमन लिपि। प्रथम सस्करण १८६२—७३। द्वितीय सस्करण १८७७। ३५)

१० एस० ए० लागलोआ—फ्रेंच अनुवाद। चार भाग। १८५१। २०)

११ एच० एच० विलसन—अंग्रेजी अनुवाद। छ भाग। १८५०—८८। १२५)

१२ टी० एच० ग्रिफिथ—अंग्रेजी पद्यानुवाद। दो भाग। १८८९—९२। १५)

१३ प्रसन्नकुमार विद्यारत्न—प्रकाशित। सायणभाष्य। १८९३। १००)

१४ स्वामी दयानन्द सरस्वती—ऋग्वेदका हिन्दीभाष्य। पचम अष्टकके पाचवे अध्यायतक। ४२)

१५ आर्य मुनिजी—ऋग्वेदका हिन्दीभाष्य। सप्तम-भाग-रहित। ३७)

१६ रामगोविन्द त्रिवेदी—सम्पूर्ण ऋग्वेदका हिन्दी अनुवाद। टिप्पनियो के साथ। आठ भाग। ज्ञातव्य विषयोकी सूची। प्रथम सस्करण १९८८—९३ विक्रमीय। १६)

१७ सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव—केवल मराठी अनुवाद। १२)

१८ कोल्हटकर और पटवर्द्धन—मराठी अनुवाद। आठ भाग। पृष्ठ-संख्या १२४४। १०)
१९ एस० पी० पण्डित—केवल तीन मण्डल। मराठी और अंग्रेजी अनुवाद। ७५)
२० रमेशचन्द्र दत्त—केवल वंगानुवाद। दो भाग। १८८५-८७। २०)
२१ सायणाचार्य—ऐतरेय-ब्राह्मण। भाष्य। निर्माणकाल २५०० वी० सी०। दो भाग। काशीनाथ शास्त्री द्वारा। १८९६ ई०। १०)
२२ मार्टिन हाग—ऐतरेय-ब्राह्मण। अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १८६३ ई०। ६)
२३ थ्यूडोर आउफरेख्त—ऐतरेय-ब्राह्मण। सम्पादित। रोमन लिपि। १८७९ ई०। १०)
२४ ए० वी० कीथ—ऋग्वेद-ब्राह्मण (ऐतरेय और कौषीतकि)। अंग्रेजी अनुवाद। दस भाग। १९२० ई०। ३४)
२५ वी० लिंडनर—कौषीतकि-ब्राह्मण। नि० २००० वी० सी०। सम्पादित। १८८७ ई०। ८)
२६ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेय-ब्राह्मण। सम्पादित। सायण-भाष्य। १९५२-१९६२। १०)
२७ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयारण्यक। नि० १५०० वी० सी०। सायणभाष्य। १८७२-७६ ई०। ७)
२८ ए० वी० कीथ—शाखायन-आरण्यक। नि० १५०० वी० सी०। अंग्रेजी अनुवाद। ६)
२९ सत्यव्रत सामश्रमी—ऐतरेयालोचन। १८६३ ई०। ५)
३० ए० मैकडानल—बृहद्देवता। नि० ४०० वी० सी०। सटिप्पन। १९०४ ई०। २५)
३१ ए० मैकडानल—ऋक्-सर्वानुक्रमणी। नि० ३५० वी० सी०। 'वेदार्थदीपिका'—सहित। सटिप्पन। १८९६ ई०। १८)

३२ कुन्हन राजा—माधवीयानुक्रमणी। सम्पादित। अग्रेजी भूमिका। १९३२ ई०। ३॥)
३३ जयदेव शर्मा—माधवीयानुक्रमणी। हिन्दी अनुवाद। १९४१। ३)
३४ ए० रेग्नियर—प्रातिशाख्य ड्यू ऋग्वद। तीन भाग। निर्माण-काल ४०० बी० सी०। सम्पादित। १८५७-५९ ई०। २१)
३५ मैक्समूलर—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। जर्मनमे टिप्पनी। नागराक्षर। १८५६-६९ ई०। ३९)
३६ शौनक—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य (पार्षदसूत्र)। उवट भाप्य-सहित। १८९४-१९०३। ६)
३७ युगलकिशोर शर्मा—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। हिन्दी अनुवाद। १९०३। ६)
३८ मंगलदेव शास्त्री—ऋग्वेद-प्रातिशाख्य। सम्पादित। अग्रेजी भूमिका। १९३१। ६॥)
३९ गोविन्द और अनृत—शाखायन-श्रौतसूत्र। नि० १२०० बी० सी०। टीका। १५)
४० राजेन्द्रलाल मित्र—आश्वलायन-श्रौतसूत्र। नि० १२०० बी० सी०। सम्पादित। १८६४-७४ ई०। ४०)
४१ ए० एफ० स्टेस्लर—आश्वलायनगृह्यसूत्र। दो भाग। सम्पादित। १०)
४२ ए० ब्लूमफील्ड—'ऋग्वेद रिपिटीशन्स'। अग्रेजी। दो भाग। ३४)
४३ अविनाशचन्द्र दास—'ऋग्वेदिक इडिया'। अग्रेजी। १९२७ ई०। १०)
४४ महेशचन्द्रराय तत्त्वनिधि—ऋग्वेदेर समालोचना। बँगला। ५)
४५ एफ० सैंडर—ऋग्वेद ऐंड 'एड्डा'। १८९३ ई०। ३।=)

कृष्ण यजुर्वेद

१ सायण—तैत्तिरीयसहिता। भाष्य। निर्माणकाल ३१०० बी० सी०। दुर्गादास लाहिडी द्वारा प्रकाशित। ९ भाग। १४४)

२ सायण—संस्कृत-भाष्य। ६ खण्ड। ४८॥=)

३ ए० बी० कीथ—अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १६१४ ई०। २५)

४ माधवाचार्य—संस्कृत-भाष्य। १८०२। २०)

५ भट्ट भास्कर—१० भाग। अपूर्ण। १८९६ ई०। ८०)

६ ए० वेबर—मैत्रायणी-संहिता। नि० ३००० बी० सी०। १८४७ ई०। ६५)

७ एल० श्रोडर—मैत्रायणी-संहिता। ४ भाग। १८८१—८६ ई०। ६०)

८ एल० श्रोडर—काठक-संहिता। ४ भाग। नि० ३००० बी० सी०। १६१०। ४०)

९ सायण—तैत्तिरीय-ब्राह्मण। नि० २८०० बी० सी०। १८६६। पूना १४॥)। कलकत्ता १८६० ई०। ४५)

१० भट्ट भास्कर—तैत्तिरीय-ब्राह्मण। ४ भाग। अपूर्ण।१८२१ ई०। १६)

११ सायण—तैत्तिरीय-आरण्यक। राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा सम्पादित। दो भाग। १८७३ ई०। ३०)

१२ भट्ट भास्कर—तैत्तिरीय-आरण्यक। ३ भाग। १५)

१३ ह्विटने—तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य। नि० ४०० बी० सी०। त्रिरत्नभाष्य-सहित। १८७१—१८७२। ३०)

१४ सोमयार्य—तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य। १२)

१५ एम० विंटर्निट्ज—आपस्तम्बगृह्यसूत्र। नि० १४०० बी० सी०। १२॥)

१६ हरदत्त मिश्र—आपस्तम्बगृह्सूत्र। काशी। ३)। मद्रास। १०)

१७ आर० गार्बे—आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र। नि० १४०० बी० सी०। दो भाग। १८८१-१६०३। २५)

१८ डब्ल्यू० कैलेड—बौधायनधर्म-सूत्र। नि० १२५० बी० सी०। ६)

१९ गोविन्द स्वामी—संस्कृत-भाष्य। बौधायन-धर्मसूत्र। ८ भाग। ६)

२० डब्ल्यू० कैलेड—बौधायन-श्रौतसूत्र। नि० १३०० बी० सी०। १६०४—१६२०। १३)

१० सायण–काण्वसहिता। २० अध्यायतक। ६)

११ जे० एगलिंग–शतपथ-ब्राह्मण। नि० ३००० बी० सी०। अंग्रेजी अनुवाद। ५ भाग। ७४)

१२ ए० वेबर–सम्पादित। शतपथ-ब्राह्मण। सायण, हरिस्वामी और द्विवेदगगकी टीकाएँ। १९२४ ई०। ६०)

१३ सत्यव्रत सामश्रमी–शतपथ-ब्राह्मण। सायण-भाष्य-सहित। १९१० ई०। ४०)

१४ डब्ल्यू० कैलेड–शतपथ-ब्राह्मण। काण्वशाखा। अंग्रेजी प्रस्तावना। १९२६ ई०। १०)

१५ ए० वेबर–कात्यायन-श्रौतसूत्र। नि० १००० वी० सी०। १८५९। ३०)

१६ मनमोहन पाठक–सम्पादित। कात्यायन-श्रौतसूत्र। कर्कभाष्य-सहित। ९)

१७ कर्कोपाध्याय, जयराम, गदाधर, हरिहर और विश्वनाथ–पारस्करगृह्यसूत्र। नि० १००० वी० सी०। ३)

१८ मस्करी–भाष्य। गौतमधर्मसूत्र। ४।=)

१९ कात्यायन–शुक्ल-यजुर्वेदप्रातिशाख्य। उवटभाष्य। ६ खण्ड। नि० ४०० वी० सी०। ६)

२० कात्यायन–शुक्लयजु सर्वानुक्रमसूत्र। ४)

२१ कात्यायन–शुल्वसूत्र। सी० मुलर द्वारा प्रकाशित। १।।)

सामवेद

१ दुर्गादास लाहिड़ी–प्रकाशित। कौथुमशाखा। नि० ३१०० वी० सी०। सायण-भाष्य। १९२५ ई०। १२८)

२ थ्यूडोर वेनफे–जर्मन अनुवाद। १८४८ ई०। २५)

३ सत्यव्रत सामश्रमी–वगानुवाद। सायण-भाष्य। १८७१–७८। १८)

४ तुलसीराम स्वामी–हिन्दीभाष्य। १२)
५ रामस्वरूप शर्मा–सायणभाष्य। १९२० ई०। १०)
६ टी० एच० ग्रिफिथ–अंग्रेजी पद्यानुवाद। १८९३ ई०। ४)
७ रजनीकान्त भट्टाचार्य–सम्पादित। १०)
८ जयदेव शर्मा विद्यालकार–सामवेद-हिन्दी-भाष्य। ४)
९ जे० स्टीवेन्सन–अंग्रेजीमें अनूदित। राणायणीय-शाखा।
नि० ३१०० बी० सी०। १८४२ ई०। १०)
१० डब्ल्यू० कैलेड–जैमिनीयशाखा। नि० ३००० बी० सी०। १३)
११ सायण–ताण्ड्यमहाब्राह्मण। नि० १४०० बी० सी०। ए० सी०
वेदान्त-वागीश द्वारा सम्पादित। दो भाग। १८६९–७४ ई०। २०)
१२ ए० बर्नेल–सामविधान-ब्राह्मण। नि० १५०० बी० सी०।
सायणभाष्य–सहित। १८७३ ई०। १२॥)
१३ सायण–सामविधान-ब्राह्मण। सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा
सम्पादित। १८६६ ई०। ६।)
१४ डब्ल्यू० कैलेड–आर्षेय-ब्राह्मण। १०)
१५ ए० बर्नेल–जैमिनीय-आर्षेय-ब्राह्मण।
नि० १५०० बी० सी०। १८७८। १०)
१६ एच० आर्टल–जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण। १९२१ ई०। १०॥)
१७ के० क्लेम–षड्विंश-ब्राह्मण। नि० १३०० बी० सी०।
१८९४ ई०। ८)
१८ एच० एफ० एलसिंग–षड्विंश-ब्राह्मण। १९०८ ई०। १२)
१९ ओ० बोहट्लिंग्क–छान्दोग्योपनिषद्-ब्राह्मण। १८८९ ई०। २०)
२० सत्यव्रत सामश्रमी–मन्त्र-ब्राह्मण। १८९० ई०। १५)
२१ सत्यव्रत सामश्रमी–वंश-ब्राह्मण।
बंगानुवाद-सहित। १८९२ ई०। १।)
२२ सत्यव्रत सामश्रमी–देवताध्याय-ब्राह्मण। बंगानुवाद। २)

२३ सायणाचार्य—साम-प्रातिशाख्य। १२॥)
२४ आर० सायमन—सामवेद-पुष्पसूत्र।
नि० १००० बी० सी०। जर्मन अनुवाद। १६०८ ई०। १५)
२५ आर० सायमन—पञ्चविधसूत्र। जर्मन। ६)
२६ जी० पर्ट्स—उपलेखसूत्र। १०)
२७ पुष्पर्षि—लक्ष्मण शास्त्री द्रविड द्वारा सम्पादित।
सामप्रातिशाख्य—पुष्प-सूत्र। ४॥)
२८ आनन्दचन्द्र—अग्नि स्वामीके भाष्यके साथ लाट्यायन-श्रौत-
सूत्र। नि० १०५० वी० सी०। १८७०—७२ ई०। ४५)
२९ जे० एन० रूटर—द्राह्यायण-श्रौतसूत्र। नि० १००० वी० सी०। २५)
३० चन्द्रकान्त तर्कालिकार—गोभिलगृह्यसूत्र। १८७१—८०। ५)
३१ सत्यव्रत सामश्रमी—गोभिलगृह्यसूत्र। वगानुवाद। १)
३२ रुद्रस्कन्द—खदिरगृह्यसूत्र। व्याख्यात। १।)
३३ डब्ल्यू० कैलेंड—जैमिनीयगृह्यसूत्र। १९२२ ई०। ६)
३४ डी० गास्ट्रा—जैमिनीय-गृह्यसूत्र।
डच भाषामें अनुवाद। १९०६ ई०। १०)
३५ डी० गास्ट्रा—जैमिनीय-श्रौतसूत्र। सम्पादित। १२)

अथर्ववेद

१ दुर्गादास लाहिडी—शौनक-संहिता।
नि० २७०० वी० सी०। सायणभाष्य। ५ भाग। ८०)
२ डब्ल्यू० डी० ह्विटने और सी० आर० लागमैन—
अंग्रेजी अनुवाद। १९०५ ई०। ४२)
३ एस० पी० पण्डित—सायणभाष्य। १८९० ई०। ४०)
४ डब्ल्यू० कैलेंड—उट्रिच (हालैंड) से प्रकाशित। ६०)
५ क्षेमकरणदास त्रिवेदी—हिन्दीभाष्य। ४७॥)

६ आर० राथ और डब्ल्यू० डी० ह्विटने—जर्मन। १८५६ ई०। २५)
७ ग्रिफिथ—अंग्रेजी अनुवाद। दो भाग। १८९५—९८ ई०। १२)
८ एम० ब्लूमफील्ड और आर० गार्वे—पैप्पलाद-संहिता। चार भाग। ५४० फोटो प्लेटोंमे। १९०१ ई०। महाराजा कश्मीरके राज-पुस्तकालयसे प्राप्त। साधारण सस्करण २५०)। विशेष। ३५०)
९ एम० ब्लूमफील्ड—पैप्पलाद-सहिता। नि० २७०० बी० सी०। अग्रेजी अनुवाद। १९०१ ई०। २२)
१० डी० गास्ट्रा—गोपथ-ब्राह्मण। नि० १५०० बी० सी०। १९१९। २०)
११ राजेन्द्रलाल मित्र और हरचन्द विद्याभूषण—गोपथ-ब्राह्मण। १८७०—७२ ई०। २५)
१२ क्षेमकरणदास त्रिवेदी—गोपथ-ब्राह्मण। हिन्दी अनुवाद। ७।)
१३ जी० एम० वालिंग और आई० बी० नेगलिन—अथर्ववेद-परिशिष्ट। जर्मन। १९१० ई०। ४५)
१४ रामगोपाल शास्त्री—सम्पादित। अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी। ४)
१५ डब्ल्यू० डी० ह्विटने—अथर्ववेद-प्रातिशाख्य। जर्मन। ३०)
१६ विश्ववन्धु शास्त्री—अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य। ३)
१७ भगवद्दत्त—अथर्ववेदीय पंचपटलिका। १॥)
१८ एम० ब्लूमफील्ड—कौशिकसूत्र। १८९० ई०। ३८)
१९ डब्ल्यू० कैलेंड—वैतानसूत्र। नि० २००० बी० सी०। जर्मन। १०)
२० ए० गिल—हड्रेड लेसन्स ऐंड लेक्चर्स ऑव अथर्ववेद। ७)
२१ भगवद्दत्त—माण्डूकी शिक्षा। १)

वैदिक साहित्यके अन्य महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ

१ डा० लक्ष्मणस्वरूप—द निघटु और निरुक्त। मूल ग्रन्थ कागज और तालपत्रोंपर मलयालम् तथा नागरी लिपिमे था। २१)

२ आर० राथ–निरुक्त। नि० १००० बी० सी०। १८४६ ई०। १७)
३ चन्द्रमणि विद्यालकार–निरुक्तपर "वेदार्थ-दीपक" हिन्दीभाष्य। ७)
४ सत्यव्रत सामश्रमी–निरुक्त। चार भाग। १८८०–९१ ई०। १२)
५ सत्यव्रत सामश्रमी–निरुक्तालोचन। ६)
६ कैलेंड और हेनरी–अग्निस्तोम। जर्मन। ४०)
७ के० रेनो–त्रित आप्त्य। १९२७ ई०। ६)
८ ए० बी० कीथ–हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर। १९२८ ई०। १८॥)
९ चिन्तामणि विनायक वैद्य–हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर (वेदिक पीरियड)। १९३० ई०। १०)
१० आर० डब्ल्यू० फ्रेजर-लिटररी हिस्ट्री ऑव इडिया। १८९८ ई। १०)
११ पी० पी० एस० शास्त्री–वैदिक-साहित्य-चरितम्। सस्कृत। मैकडानलके हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचरका अनुवाद। १९२७ ई०। ३।=)
१२ मैक्समूलर–हिस्ट्री ऑव दि एन्शियेट सस्कृत लिटरेचर। १८५९। १०)
१३ ए० वेबर–हिस्ट्री ऑफ दि इडियन लिटरेचर। जर्मन। १८८२। १०॥)
१४ ए० मैकडानल–हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर। १९०० ई०। ७॥)
१५ एम० विंटर्निट्ज–हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर। जर्मन। तीन भाग। १९०४ ई०। ३५)
१६ भगवद्दत्त–वैदिक वाङ्मयका इतिहास। तीन भाग। १५)
१७ राथ और वोहट्लिंग्क–पीटर्सवर्ग सस्कृत-जर्मन-महाकोष। सात भाग। पृष्ठ सख्या १००००। १८५५–७५ ई०। १०००)
१८ एच० ग्रासमान–ऋग्वेदिक कोष। जर्मन। १८७३–७५ ई०। ५०)
१९ ए० हिलेब्रान्त–वेदिक डिक्शनरी। तीन भाग। ९०)
२० हसराज–वेदिक कोष। प्रथम भाग। १९२६ ई०। १२)
२१ एम० ब्लूमफील्ड–वेदिक ककार्डेन्स। वेदोके ११९ ग्रन्थोके आधारपर यह "मन्त्र-महासूची" बनायी गयी है। ९०)

२२ मैक्डानल और कीथ—वेदिक इडेक्स। ५०)
२३ ए० मैक्डानल—वेदिक ग्रामर। १९१० ई०। ६)
२४ ए० मैक्डानल—वेदिक रीडर। १८९७ ई०। ५॥)
२५ रैगोजिन—वेदिक इडिया। १८९५ ई०। ५॥=)
२६ लो० तिलक—आर्कटिक होम इन द वेदाज। ८॥)
२७ लो० तिलक—ओरायन। अंग्रेजी और हिन्दी। १८९३। ३), १)
२८ वी० जे० रेले—द वेदिक गाड्स। १९३१ ई०। ६॥)
२९ ए० वेन्स—दि इन्साइक्लोपीडिया ऑव इंडो-आर्यन रिसर्च। १२)
३० ए० बनर्जी शास्त्री—असुर इडिया। १९२६ ई०। ५)
३१ लुइस रेनो—ब्राइब्लोग्राफिया वेदिका। नौ भाग। फ्रेंच। १९३१ ई। १२)
३२ एच० टी० कोलब्रूक—एसे आन द वेदाज। आठ भाग। १८३७। ५०)
३३ ए० हिलेब्रान्त—वेदिक माइथालाजी। जर्मन।
तीन भाग। १९०२ ई०। १८)
३४ एच० ओल्डेनवर्ग—वर्ल्ड व्यू आव ब्राह्मन्स। जर्मन। २०)
३५ एम० ब्लूमफील्ड—रिलिजन ऑव द वेद। जर्मन। १८९४। १५)
३६ जे० म्योर—ओरियटल सस्कृत टेक्स्ट। १८५८ ई०। २१)
३७ एम० ब्लूमफील्ड—वेदिक वेरियाट्स। १९३० ई०। ८)
३८ रिलिजन ऐंड फिलासफी ऑव द ब्राह्मन्स ऐंड दि उपनिषद्स।
दो भाग। २५)
३९ ई० हार्डी—वेदिक ब्राह्मण पीरियड। जर्मन। १८९३ ई०। १०)
४० स्टेन कोनो—दि आर्यन गाड्स ऑव द मितानी पीपुल। १९२१। ८)
४१ डी० क्यूलिकव्सकिज्—राजवोर वेदिज्सकागो मीफी ओस्कोले,
प्रिमेसेम इवटोक सोनी। रशियन भाषा। १५)
४२ रामगोविन्द त्रिवेदी—'गंगा'—'वेदाक'। सम्पादित। १९३२ ई०। २॥)
४३ सत्यव्रत सामश्रमी—त्रयी-चतुष्टय। ४०)
४४ सम्पूर्णानन्द—आर्योका आदि देश। ५)

४५ भागवतशरण उपाध्याय–वूमेन इन ऋग्वेद । १९४१ । ७)
४६ वलदेव उपाध्याय–वेदभाष्यभूमिका-सग्रह । सस्कृत और अग्रेजी प्रस्तावना । १९३४ । २॥)
४७ वलदेव उपाध्याय–सायण और माधव । १९४६ । ६)

इन ग्रन्थोके अतिरिक्त कुछ और भी वैदिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और हो भी रहे हैं, परन्तु यहा तालिकाको लम्बी करनेकी आवश्यकता नही है। इस पुस्तकमे जिन ग्रन्थोका परिचय दिया गया है, वे प्राय तालिकामें आ गये है। तालिकाके इन ग्रन्थोसे ससारकी भाषाओमें छपे वैदिक साहित्य की विशालताका पता लग जायगा और पढने पर वेदोके प्रति समस्त विश्वके प्रसिद्ध वेदाभ्यासियोके विचार भी विदित हो जायँगे। वेद-भक्त पाठक इन ग्रन्थोका सग्रह कर डाले, तो जनताका महान् लाभ हो। इनमेंसे कुछ ग्रन्थ अलभ्य हैं। जो पुस्तकें मिलती है, उनका पुस्तक-विक्रेता मन-चाहा मूल्य भी ले लेते है।

इन पतोपर इन ग्रन्थोका मिलना सम्भव है–

१ दि ओरियटल वुक एजेसी, १५, शुक्रवार, पूना।
२ गवर्नमेट सेंट्रल वुक डिपो, कलकत्ता।
३ मोतीलाल वनारसीदास, चौक, वनारस।
४ भाण्डारकर ओरियटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।
5 B. H. Blackwell Ltd.,
50/51, Broad Street, Oxford, England.
6 Otto Harrassowitz, Leipzig, Germany.
7 W. Heffer and Sons Ltd.,
Cambridge, England.

परिशिष्ट १

ग्रन्थ आदि

परिशिष्ट २

ग्रन्थकार आदि

श

परिशिष्ट ३

विशिष्ट पुरुष आदि

परिशिष्ट ४

जाति और धर्म

जाति

धर्म

परिशिष्ट ५

देश, प्रदेश, नगर आदि

परिशिष्ट ६

समुद्र, झील, नदी, पर्वत आदि

—— ० ——

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	७	Cazetteer	Gazetteer
३२	१२	प्रतिध्वनि	प्रतिध्वनित
४०	११	उव्वट	उवट
४०	१७	हरिहर	नरहरि
४३	२	छिपी	छपी
५२	१२	शाकल	शाकल्य
६१	१३	पाशो	पासो
७०	२३	लालोआ	लागलोआ
७२	२०	असज्यात्या	असजात्या
७३	५	कर्म	कर्मा
७३	५	वा	वा
८२	२६	पाशेके	पासेके
८७	२०	मैत्रायिणी	मैत्रायणी
८७	२१	कण्व	काण्व
११४	८	देवीरभीष्टये	देवीरभिष्टये
११६	१०	वरुणं	वरुणो
१३०	१५	परीक्षित्पुत्र	परीक्षित-पुत्र
१४८	४	द्रोणकार	द्रोणाकार
१५१	१	योग	याग
१६४	१५	शाहजहांके	शाहजहांका
१८६	१०	एक मात्र	एक

"वैदिक साहित्य" पर सम्मतियाँ

"वैदिक साहित्य"की छपी फाइल देखकर भारत-प्रसिद्ध विद्वानों और वेद-विज्ञाताओंने जो सम्मतिया लिख भेजनेकी कृपा की है, वे स्थानाभावके कारण सक्षिप्त रूपमे ही प्रकाशित की जा रही है।

भारतके अद्वितीय विद्वान् और जीवित विश्वकोष महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्०—

"पण्डित रामगोविन्दजी त्रिवेदीकी "वैदिक साहित्य" नामक पुस्तक को मैंने "स्थालीपुलाक-न्याय"से आद्योपान्त देखा। पढकर चित्त प्रसन्न हुआ। हिन्दी-भाषामें वैदिक विषयो एवम् तत्सम्वन्धी साहित्यपर लिखित इस प्रकारके आलोचनात्मक ग्रन्थका अभाव था। इस पुस्तकसे यह अभाव वहुत दूर होगा, ऐसी आशा है।

"यह पुस्तक अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोके गवेषणात्मक ग्रन्थों के आधारपर लिखी गयी है। ××× हिन्दी-भाषी पाठकोके लिये एवम् वेदिक साहित्यमे अभिरुचि रखनेवाले विद्यार्थियोके लिये इसकी उपयोगिता निस्सन्देह महत्त्वकी है।

पुस्तककी भाषा प्राञ्जल और शैली सुन्दर है। आशा है, वैदिक वाङ्मयके प्रेमी पाठक इस ग्रन्थसे लाभ और आनन्द प्राप्त करेंगे।"

बनारस
२८-७-५०

गोपीनाथ कविराज

डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन), भूतपूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस—

"श्री रामगोविन्द त्रिवेदीजी द्वारा लिखित हिन्दीकी नवीन पुस्तक "वैदिक साहित्य" के कई स्थलोको मैंने ध्यानपूर्वक पढा। पुस्तकमे वैदिक सहिताओसे लेकर वैदिक अनुक्रमणियो तकके वेद-सम्वन्धी वाङ्मय

के विभिन्न भागोंकी साहित्यिक रूप-रेखाके साथ-साथ उनके स्वरूप और महत्त्वको भी सामान्य रूपसे दिखानेका प्रयत्न किया गया है। उक्त वाङ मयके विस्तारको और साथ ही पुस्तकके अल्प परिमाणको देखते हुए यही कहना चाहिये कि ग्रन्थकारको अपने उद्देश्यमे बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। × × × × हिन्दी भाषामें अपने विषयको, एक ही ग्रन्थके रूपमें, प्रतिपादित करनेवाली यह प्रथम पुस्तक है। पुस्तककी उपादेयता स्पष्ट है। हम इसका हृदयसे स्वागत करते हुए ग्रन्थकार महोदयका अभिनन्दन करते हैं।

ग्रन्थकार महोदय वर्षोंसे वैदिक साहित्यके अनुशीलनमें लगे रहे हैं। इस विषयमे आपने जो बडा कार्य किया है, वह हिन्दी ससारमे छिपा नही है। आपके व्यापक अध्ययनकी छाप प्रस्तुत पुस्तकके प्राय प्रत्येक पन्नेमे स्पष्ट है। इससे पुस्तककी उपादेयता और महत्ता और भी बढ गयी है।"

बनारस
१४-७-५०

मंगलदेव शास्त्री

भारत-प्रसिद्ध इतिहास-विज्ञाता प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार--

"वेद हमारा सबसे पुराना वाङ्मय है। हम हिन्दू उसे अपने धर्म और सस्कृतिका आधार मानते है। किन्तु आजका हिन्दूपन वेदसे बहुत दूर है। वेदमें जो जीवट और ताजगी है और आजके हिन्दुओंका विचार और बर्त्ताव जिस प्रकार पथराया हुआ है, वे दोनो एक दूसरेके ठीक उलटे हैं। पर इसीलिये तो आजके भारतमे फिरसे जान फूकनेको उसके कानमे वेदकी पुकार पडनी चाहिये।

प० रामगोविन्द त्रिवेदीने इस दिशामें यह यत्न किया है। × × ×
उन्होने वैदिक वाङ्मयको खूब मथा है। उस वाङ्मयके अपने साक्षात् परिशीलनके आधारपर इस ग्रन्थमे उन्होने जो कुछ लिखा है, वह कीमती है। पाठकोको उससे भरपूर ज्ञान मिलेगा।

× × × × × इस ग्रन्थका मुख्य अंश पाठकोको बहुत ज्ञान देगा और भारतीय जीवनके उषा-कालीन विचारो और भावनाओके निकट पहुँचानेका रास्ता दिखायगा, इसमे सन्देह नही।"

दुर्गाकुण्ड, बनारस
१ श्रावण (सौर), २००७ वि० } जयचन्द्र

'मंगलाप्रसाद'-पुरस्कार, 'डालमिया'-पुरस्कार तथा 'उत्तरप्रदेश राज्य'-पुरस्कारके विजेता और काशी-हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्कृत तथा पालीके अध्यापक साहित्याचार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए०—

"वेदके स्वरूप, महत्त्व तथा सिद्धान्तसे परिचय प्राप्त करना प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिका, प्रधानत. प्रत्येक भारतीयका नितान्त आवश्यक कर्तव्य है। वेद हमारी संस्कृतिके मूल स्रोत है, हमारी सभ्यताको उच्चकोटि तक पहुँचानेवाले ग्रन्थरत्न है, जिनकी विमल प्रभा देश तथा कालके दुर्भेद्य आवरणको छिन्न-भिन्न कर आज भी विश्वके अध्यात्म-पारखी जौहरियोकी आखोको चकाचौंध बनाती है। जो लोग वेदके भीतर ससारकी समस्त भौतिक तथा ऐहिक विद्याओ, कलाओ और आविष्कारों को ढूढ निकालनेका अक्लान्त परिश्रम करते है, वे नही जानते कि वेद तथा ज्ञानमे अन्तर है। विद् धातु तथा ज्ञा धातुमे सामान्यत ऐक्य होने पर भी मूलत. पार्थक्य है। भौतिक विद्याओकी जानकारीका नाम है ज्ञान तथा अध्यात्म-शास्त्रके तथ्योकी अवगतिका अभिधान है वेद। एक का लक्ष्य बाह्य विषयोके विश्लेपणकी ओर रहता है, तो दूसरेका लक्ष्य आन्तर विपयोके सश्लेषणकी ओर रहता है। यह पार्थक्य संस्कृतसे सम्बद्ध अनेक यूरोपीय भाषाओके शब्दोके अनुशीलनसे भी स्पष्टत जाना जा सकता है। जर्मन भाषामे दो सम्बद्ध धातु है—Kennen तथा Weisen। अग्रेजीमे दो सम्बद्ध शब्द है—Knowledge तथा Wisdom। इनमें Kennen तथा Knowledge का

साथका सम्बन्ध है सस्कृतके ज्ञा धातुसे और Weisen और Wisdom का सम्बन्ध है विद् धातुसे। फलत इन विदेशी शब्दोके अर्थोमें वही भेद है, जो सस्कृतके ज्ञान तथा वेद शब्दोके अर्थमे है। इसलिये हमारी दृष्टिमें वेदका मौलिक तात्पर्य अध्यात्म-शास्त्रकी समस्याओका हल करना है। सायणके अनुसार वेदका वेदत्व प्रत्यक्ष अथवा अनुमानके द्वारा अगम्य उपायके वोधनमे है—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

विश्वके आद्य ग्रन्थ, भारतीय धर्मके कमनीय कल्पद्रुम, आर्य-संस्कृति के प्राणदाता वेदोके रूप तथा रहस्य, स्वरूप तथा सिद्धान्तका ज्ञान भारतीय सस्कृतिके उपासकके लिये नितान्त आवश्यक है। परन्तु दु खकी वात है कि वेदोके गाढ अनुशीलनकी वात तो दूर रहे, उनके साथ हमारा सामान्य परिचय भी नही है। वेदोके परिचायक ग्रन्थोकी नितान्त आवश्यकता वनी है। इस सम्मतिके दाताने 'आचार्य सायण और माधव', 'वैदिक वाड्मय' तथा 'वैदिक सस्कृति' के द्वारा वेदके विशाल साहित्य तथा महत्त्व को प्रदर्शित करनेका थोडा उद्योग किया है।

सौभाग्यवश पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदीजीने अपने अनेक वर्षोके अध्ययनका फल इस 'वैदिक साहित्य' मे जनताके कल्याणके लिये प्रस्तुत किया है। पुस्तक वडी ही सुन्दर, रोचक, और उपयोगी है। ग्रन्थकार का लक्ष्य वेदके रूप, विषय तथा महत्त्वका, सर्वसाधारणके उपयोगके लिये सुवोध भाषामे, वर्णन करना है और इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें वे सर्वथा कृत-कार्य हुए है। विशाल तथा गम्भीर वेदोका यह अनुशीलन व्यापकता की दृष्टिसे विशेषत श्लाघनीय तथा संग्राह्य है। ऐसे शोभन ग्रन्थके प्रणयनके लिये हिन्दी-ससार त्रिवेदीजीका चिर कृतज्ञ रहेगा।"

रथयात्रा, स० २००७ वि०
काशी

वलदेव उपाध्याय

हमारे सांस्कृतिक प्रकाशन

[प्राकृत ग्रंथ]

महाबन्ध (महाधवलसिद्धान्त) प्रथमभाग, हिन्दी अनुवाद सहित
स०–प० सुमेरुचन्द दिवाकर, न्यायतीर्थ। मूल्य १२)

करलक्खण (सामुद्रिकशास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। मूल्य १)

[संस्कृत ग्रंथ]

तत्त्वार्थवृत्ति—(श्रुतसागर सूरिरचित टीका) हिन्दीसार सहित।
सम्पादक—प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

१०१ पृष्ठकी प्रस्तावनामे तत्त्व, तत्त्वाधिगमके उपाय, सम्यग्दर्शन, स्याद्वाद, सप्तभंगी आदिका नूतन दृष्टिसे विवेचन। मूल्य १६)

मदनपराजय—कवि नागदेव विरचित। भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित। सम्पादक और अनुवादक—प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य। जिनदेवके द्वारा कामके पराजयका सरस रूपक। मूल्य ८)

न्यायविनिश्चय विवरण [प्रथमभाग] विस्तृत प्रस्तावनामें इस भागके ज्ञातव्य विषयोंका हिन्दीमे विषय परिचय। मूल्य १५)

कन्नडप्रांतीयताडपत्रीय ग्रन्थसूची मूल्य १३)

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि—सम्पादक—नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य। प्रश्नशास्त्रका अद्भुत ग्रंथ, हिन्दीविवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदिके हिन्दी परिशिष्टोंसे विभूषित। इसके अध्ययनसे सामान्य पाठक भी ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मूल्य ४)

नाममाला सभाष्य—महाकवि धनञ्जय कृत नाममाला और अनेकार्थनाममालाका अमरकीर्तिकृत भाष्य सहित सुन्दर संस्करण। मूल्य ३॥)

सभाष्यरत्नमंजूषा-(छन्दोग्रंथ) स०-प्रो. एच डी. वेलणकर। सूत्रशैली में लिखा गया एकमात्र जैन छन्दशास्त्रका ग्रंथ। मूल्य २)

ज्ञानपीठके आगामी प्रकाशन

[जो सन् ५० में प्रकाशित हो रहे हैं]

१. हमारे आराध्य–ये रेखाचित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें उन्होने अपनी आत्मा उडेल दी है।

२. शेर-ओ-सुखन [प्रथम भाग] उर्दू शायरीका प्रारभसे ई० स० १९०० तक का प्रामाणिक इतिहास। तुलनात्मक विवेचन, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमे हुए प्राय सभी मशहूर शायरोके श्रेष्ठतम कलामका सकलन तथा उनका परिचय।

३. सिद्धशिला [काव्य] सिद्धार्थके ख्यातिप्राप्त कवि श्री अनूप शर्मा की हिन्दी ससारको अमर देन। भगवान् महावीरका हृदय-स्पर्शी जीवन।

४. रेखाचित्र और संस्मरण-हिन्दीके तपस्वी सेवक श्री बनारसी-दास चतुर्वेदीकी जीवनव्यापी साधना। उनकी अन्तरात्माकी प्रतिध्वनि।

५. बापू–हिन्दीके उदीयमान तरुण कवि श्री 'तन्मय' बुखारिया की महात्मा गाधीके प्रति मूक श्रद्धाञ्जलि।

६. भारतीय ज्योतिष–ज्योतिषके अधिकारी विद्वान् श्री नेमिचंद्र जी जैन ज्योतिषाचार्यकी प्रामाणिक कृति।

७. ज्ञानगंगा–ससारके महान् पुरुषोकी श्रेष्ठतम सूक्तिया।

नोट––जो १०) भेजकर स्थायी सदस्य बन जायंगे उन्हें ये ग्रंथ पौने मूल्य में प्राप्त होगे।